स्वाध्याय   स्वमन्थन   स्वावलम्बन

उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

(उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा निर्गत अधिनियम संख्या 10, 1999 द्वारा स्थापित)

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

॥ सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

MAHI-03 (N)
I-भाषा विज्ञान

प्रथम खण्ड : भाषा विज्ञान

द्वितीय खण्ड : हिन्दी संरचना

तृतीय खण्ड : अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, इलाहाबाद - 211013

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

MAHI-03 (N)

I - भाषा विज्ञान

खंड

1

भाषाविज्ञान

इकाई 1
भाषा और संप्रेषण 7

इकाई 2
भारत में भाषा चिंतन 19

इकाई 3
भाषाविज्ञान की पाश्चात्य परंपरा 35

इकाई 4
संरचनात्मक भाषाविज्ञान 45

इकाई 5
चॉम्स्की तथा रूपांतरण - निष्पादन व्याकरण 59

इकाई 6
समाजभाषाविज्ञान : भाषा और समाज 70

इकाई 7
हिंदी भाषा क्षेत्र 95

खंड परिचय

यह भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा नामक पाठ्यक्रम का पहला खंड है। इस खंड में भाषाविज्ञान की मूलभूत मान्यताओं और भाषा अध्ययन के प्रमुख उपागमों की चर्चा की गयी है।

भाषा संप्रेषण की व्यवस्था है। आदिकाल में भाषा व्यक्तिगत संप्रेषण का साधन थी, आधुनिक युग में संचार साधनों के आविष्कार और व्यापक प्रयोग के कारण संप्रेषण का स्वरूप बदल गया है। पहले भी व्यक्तिगत संपर्क में भाषा व्यवहार परिवर्तन का साधन भी। आज व्यापक संप्रेषण सांस्कृतिक प्रभाव का आधार बन रहा है। *इकाई-1 भाषा और संप्रेषण* में संप्रेषण के स्वरूप और प्रभाव की चर्चा की गई है। इकाई-6 *समाजभाषाविज्ञान : भाषा और समाज* में भाषा और समाज के संबंध की चर्चा की गई है। भाषाविज्ञान में आम तौर पर भाषा के एक (प्रायः मानक) रूप को अध्ययन का आधार बनाया जाता है। समाजभाषाविज्ञान भाषा को विविधरूपा मानता है। भाषा के ये विविध रूप अपने में पूर्ण, जीवंत रूप है और समाज के विविध संदर्भों में संप्रेषण की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। *इकाई-7 हिंदी भाषा क्षेत्र* में हिंदी भाषा के व्यापक क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में उसके विविध रूपों का परिचय दिया गया है। भाषा के क्षेत्रीय भेद भाषा के इतिहास का सहज परिणाम हैं। हिंदी भाषा इस संदर्भ में विशिष्ट है, क्योंकि यह संपर्क भाषा, राजभाषा, राष्ट्रभाषा, अंतर्राष्ट्रीय भाषा आदि विविध भूमिकाएँ निभा रही है। इन भूमिकाओं के निर्वाह में उसके सामने कई प्रयोजन उपस्थित होते हैं। उदाहरण के लिए राजभाषा के रूप में हिंदी भाषा में प्रशासन की भाषा, विधि की भाषा आदि प्रयोजनपरक रूप विकसित हुए हैं। इन प्रयोजनपरक भाषा रूपों को हम प्रयुक्तियाँ कहते हैं। प्रयुक्तियाँ आधुनिक युग में भाषिक संप्रेषण की विशिष्ट स्थितियाँ है।

इकाई 2 से 5 में भाषाविज्ञान के उद्‌भव और विकास का अति संक्षिप्त परिचय दिया गया है। वैसे भाषाविज्ञान अपने में व्यापक विषय है। इन इकाइयों का यही लक्ष्य है कि आप समझें कि भाषाविज्ञान भाषाओं के अध्ययन की क्या दृष्टि अपनाता है। *इकाई-2 भारत में भाषा चिंतन* में आधुनिक भाषाविज्ञान से पहले भारत में भाषा चिंतन का परिचय देता है। संस्कृत के भाषा चिंतकों ने संस्कृत भाषा के लिए उन्नत व्याकरण ही नहीं तैयार किया, बल्कि अर्थ की सत्ता आदि के संदर्भ में तत्व चिंतन किया। उनकी विश्लेषण पद्धति और दार्शनिक चिंतन आज भी प्रासंगिक है। *इकाई-3 भाषाविज्ञान की पाश्चात्य परंपरा* में आधुनिक भाषाविज्ञान के उद्‌भव और प्रारंभिक विकास की चर्चा की गई है। भाषाविज्ञान में विद्वानों की रुचि तब बढ़ी जब उन्होंने भाषाओं में समान तत्व देखे, समान रचनाएँ देखीं और भाषओं की संबद्धता की खोज शुरू की। संस्कृत, लैटिन, ग्रीक आदि भाषाओं की संबद्धता में रुचि के कारण विद्वानों ने इनकी तुलना की और तुलनात्मक भाषाविज्ञान को जन्म दिया। इससे भाषा में परिवर्तनों की तलाश करते ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का प्रणयन हुआ।

भाषा की संरचना को हमें इतिहास से हटाकर एक ही काल के संदर्भ में देखना होगा, जिससे हम भाषा का स्पष्ट वर्णन कर सकें। इस उद्देश्य से ऐतिहासिक भाषाविज्ञान की जगह समकालिक भाषाविज्ञान की स्थापना हुई, जिसे आप *इकाई-4 संरचनात्मक भाषाविज्ञान* में पढ़ सकते हैं। समकालिक भाषाविज्ञान को संरचनात्मक भाषाविज्ञान भी कहा जाता है। यह भाषा का समकालिक, वर्णनात्मक व्याकरण प्रस्तुत करता है। संरचनात्मक भाषाविज्ञान व्यवहारवादी सिद्धांत पर आधारित है, जो मन की सत्ता को नकारकर भाषिक व्यवहार को ही अध्ययन का आधार बनाता है। चॉम्स्की ने व्यवहारवाद को ठुकराकर मनोवादी विश्लेषण की प्रक्रिया की स्थापना की। उनके अनुसार व्यवहारवादी उपागम केवल वाक्य के सतही स्तर का ही अध्ययन करता है और यह अध्ययन पूर्ण नहीं है। भाषिक

संरचना को हम वाक्यों के आंतरिक विश्लेषण से ही समझ सकते हैं। आंतरिक संरचना को हम भाषा प्रयोग की मन की क्षमता से ही समझ सकते हैं। इसीलिए इसे मनोवादी दृष्टि कहा जाता है। चॉम्स्की के मनोवादी उपागम के बारे में आप *इकाई–5 चॉम्स्की तथा रूपांतरण-निष्पादन व्याकरण* में अध्ययन करेंगे।

ये इकाइयाँ संक्षेप में ही विषय को प्रस्तुत करती हैं। अगर आप आगे अध्ययन करना चाहें, तो खंड के अंत में दिए गए ग्रंथों का अवलोकन कर सकते हैं।

पाठ्यक्रम परिचय

भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा नामक यह पाठ्यकम एम.ए. हिंदी का अनिवार्य पाठ्यक्रम है। भारत में एम.ए हिंदी के कार्यक्रमों में छात्रों को अनिवार्य रूप से भाषा का एक पाठ्यक्रम लेना होता है, क्योंकि यह माना जाता है कि भाषा के सम्यक् ज्ञान के अभाव में साहित्य का अध्ययन भी अधूरा ही होता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि साहित्य के अध्ययन में भाषा, उसकी संरचना, भाषा की आर्थी संरचना आदि का ज्ञान अत्यंत उपयोगी है।

एम.ए. पाठ्यक्रम में भी भाषा संबंधी अध्ययन को दो आयामों को जोड़ा गया है। पाठ्यक्रम एम एच डी-6 में हिंदी भाषा के इतिहास संबंधी दो खंड हैं। उन खंडों में विश्व की समस्त भाषाओं के संदर्भ में हिंदी भाषा की स्थिति और संदर्भ बताया गया और भारत के संदर्भ में संस्कृत से हिंदी तक के ऐतिहासिक विकास क्रम को स्पष्ट किया गया है। भाषा के विकास का ऐतिहासिक क्रम साहित्य के इतिहास तथा साहित्य की अन्य प्रवृत्तियों को समझने में सहायक हो सकता है।

प्रस्तुत पाठ्यक्रम में तीन खंड हैं। आगे हम इन खंडों की वस्तु का परिचय दे रहे हैं।

खंड-1 : भाषाविज्ञान : इस खंड में भाषाविज्ञान की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा भाषाविज्ञान की प्रमुख अवधारणाओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। भारत में भाषा संबंधी चर्चा वेदों जैसी पुरानी है। वेदों के प्रणेता अपने कृतित्व के संदर्भ में अभिव्यक्ति पक्ष को पुष्ट करने के लिए भाषा के महत्व से परिचित थे। छह वेदांगों में उच्चारण, शब्दार्थ, छंद आदि विविध भाषिक तत्वों की चर्चा है। भारतीय मनीषियों ने भाषा के आर्थिक और दार्शनिक पक्ष पर गंभीर रूप से चर्चा की है। प्राचीन युग में व्याकरणों ने अपनी-अपनी भाषाओं की संरचना के आधार पर व्याकरण तैयार किया, लेकिन भाषामात्र के वर्णन विश्लेषण के लिए सार्वभौम रूप से भाषाविज्ञान नामक विषय की कल्पना आधुनिक युग की ही देन है। इस खंड में प्रमुख रूप से प्राचीन भाषिक चिंतन के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक युग में भाषाविज्ञान के आविर्भाव की चर्चा की गयी है और भाषा विश्लेषण की प्रविधि का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

खंड-2 : हिंदी संरचना : खंड 1 में भाषाविज्ञान के जिन सिद्धांतों की चर्चा की गई उन्हीं के आधार पर खंड 2 में हिंदी भाषा की ध्वनि संरचना, रूप तथा शब्द संरचना, वाक्य संरचना आदि घटक व्यवस्थाओं की चर्चा की गई है। एम.ए. के स्तर हमारा इस पाठ्यक्रम के निर्माण में यह उद्देश्य रहा है कि आप भाषा विश्लेषण की प्रक्रिया से परिचित हों और आपको विश्लेषण के समय उपस्थित समस्याओं की भी जानकारी हो। इसलिए हमने ध्वनि संरचना आदि प्रकरणों में सिर्फ़ संरचना का वर्णन ही नहीं किया है, बल्कि संरचना के संदर्भ में उठी समस्याओं पर विद्वानों के मत-मतांतर को भी शामिल किया है।

खंड-3 : अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान : हम भाषाविज्ञान का अध्ययन क्यों करते हैं? लेखक अपनी अभिव्यक्ति को माँजने के लिए भाषाविज्ञान का सहारा ले सकता है। यह हम सबकी आवश्यकता है, इसलिए हम सबको भाषाविज्ञान न सही, कम-से-कम व्याकरण पढ़ना पड़ता है। इसी तरह भाषा से संबंधित कुछ क्षेत्रों में काम करनेवाले भाषाविज्ञान के सिद्धांतों का अपने क्षेत्र में अनुप्रयोग करते हैं, जैसे भाषा के अध्यापक और भाषा शिक्षण से संबद्ध अन्य कई विद्वान, अनुवादक, साहित्य की भाषा-शैली का अध्ययन करने वाले कोशकार आदि। इस कारण इनके विषय क्षेत्र को अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान (Applied Linguistics) की संज्ञा दी जाती है। अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का क्षेत्र आजीविका का क्षेत्र है। इस प्रकार इस क्षेत्र के अध्ययन से दो लाभ हो सकते हैं। (क) भाषा के अनुप्रयोग को समझ लें, तो हम

इन कार्यों का बखूबी निर्वाह कर सकते हैं। (ख) इनमें से किसी क्षेत्र में आपकी रुचि जाग जाए, तो आप उसको आजीविका की दृष्टि से या आत्म संतोष हेतु अपना सकते हैं।

इस तरह इस पाठ्यक्रम में हमने हिंदी भाषा के संदर्भ में तीन महत्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डालने का यत्न किया है। भाषाविज्ञान क्या है, हिंदी भाषा की रचना को इन सिद्धांतों के आधार पर कैसे वर्णित करें और हिंदी भाषा के अध्यापन या उसके अनुवाद में हम भाषाविज्ञान के सिद्धांतों का कैसे और कहाँ तक उपयोग कर सकते हैं।

पाठ्यक्रम के तीन खंडों के अतिरिक्त पाठ्य सामग्री के रूप में हमने भाषाविज्ञान और हिंदी-संरचना विवेचना नामक अतिरिक्त आलेख संग्रह भी तैयार किया है। हम चाहते हैं कि एम.ए. के स्तर पर विषय के संदर्भ में में आपमें चिंतन का विकास हो। हमने इस आलेख संग्रह में हिंदी के भाषावैज्ञानिकों के कुछ आलेखों को सम्मिलित किया है, जो आपको पाठ्यक्रम के विवेच्य विषय के अतिरिक्त पहलुओं की जानकारी देते हैं। यह भी हमारा उद्देश्य रहा है कि इन आलेखों के माध्यम से आप भिन्न विचारों से भी परिचित हों। अगर आपको आगे अध्ययन करने की इच्छा हो तो आप तीनों खंडों के अंत में दिये गये संदर्भ ग्रंथों का अध्ययन कर सकते हैं।

पाठ्यक्रम की इकाइयों के साथ अभ्यास प्रश्न दिये गये हैं। आपने पाठ की वस्तु को आत्मसात कर किया है तो इन प्रश्नों का उत्तर आसानी से दे सकते हैं। आप यह यत्न करें कि प्रश्नों के उत्तर की योजना बनाएँ, निश्चित करें कि आप क्या कहना चाहते हैं और अपने शब्दों में प्रश्नों के उत्तर दें। पाठ्य सामग्री को यथावत् उत्तर पुस्तका में उतारना लाभप्रद नहीं है। उत्तर देने से पहले आप इकाई के संबंधित अंशों को देख सकते हैं, उनके प्रमुख विचारों का मन में क्रम बना सकते हैं। लेकिन उत्तर अपने ही शब्दों में दें।

पाठ्यक्रम के साथ दो सत्रीय कार्य हैं। अगर आपने पाठगत अभ्यास ठीक से कर लिये हों, तो सत्रीय कार्यों का उत्तर देना आसान होगा। अगर आप सत्रीय कार्य ठीक से कर लें, तो अंतिम परीक्षा की अच्छी तैयारी हो जाएगी।

हम आशा करते हैं इस पाठ्यक्रम के अध्ययन से आपको भाषाविज्ञान का सामान्य, विशद परिचय मिलेगा और आप हिंदी संरचना के महत्वपूर्ण तत्वों को समझ पाएँगे। आप भाषा के विभिन्न प्रयोजनपरक संदर्भों को भी वैज्ञानिक ढंग से समझ पाएँगे। भाषा से संबंधित यह आधारभूत जानकारी भाषा, साहित्य, संचार आदि क्षेत्रों में आपके अध्ययन में सहायक होगी।

शुभकामनाओं सहित

संपादक

इकाई 1 भाषा और संप्रेषण

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 संप्रेषण क्या है?
1.3 संप्रेषण का स्वरूप
1.4 संप्रेषण साधना
1.5 संप्रेषण का तकनीकी पक्ष
1.6 संप्रेषण का सामाजिक परिप्रेक्ष्य
1.7 संप्रेषण के बढ़ते चरण
1.7.1 सूचना समाज (The information Society)
1.7.2 संचार (Communication)
1.7.3 संप्रेषण और संचार में अंतःसंबंध
1.8 भाषा शिक्षण में संप्रेषण का उपागम
1.9 सारांश
1.10 अभ्यास प्रश्न

1.0 उद्देश्य

अर्थ संप्रेषण का सबसे प्रमुख कार्य है। सवाल यह है कि 'अर्थ' क्या है? संप्रेषण/संचार (communication) नामक विषय क्षेत्र भाषा को संप्रेषण/संचार के साधन के रूप में देखता है और जीवन के विविध संदर्भों में मानव व्यवहार के रूप में व्यक्त संदेश को, संप्रेषित वस्तु के रूप में परिभाषित करता है। इस अर्थ में संदेश का संदर्भ भाषा के अर्थ (शब्दार्थ या वाक्यार्थ) से अधिक व्यापक है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- संप्रेषण का तात्पर्य समझा सकेंगे,
- सामाजिक/सांस्कृतिक संदर्भ में संप्रेषण का स्वरूप स्पष्ट कर सकेंगे,
- संप्रेषण और संचार का अंतःसंबंध समझा सकेंगे,
- विकसित समाज में संप्रेषण के महत्व की चर्चा कर सकेंगे,
- आधुनिक सूचना समाज में संचार और संप्रेषण के स्थान की व्याख्या कर सकेंगे, और
- संचार और संप्रेषण के क्षेत्र में आगे की संभावनाओं की प्राक्कल्पना कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

भाषा का एक आंतरिक पक्ष है। भाषा एक रचना है। भाषा की व्याकरणिक रचना मन के जटिल भावों को एक-दूसरे पर प्रकट करने में सहायक है। इस दृष्टि से विचारों की अभिव्यक्ति यानी संप्रेषण की प्रक्रिया में भाषा की संरचना साधन का काम करती है।

भाषा का एक बाह्य पक्ष है। भाषा का सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ ही भाषा के संप्रेषण का प्रयोजन है। यह भाषा का अर्थ पक्ष है। अर्थ के संदर्भ में हम सूचनाओं के आदान-प्रदान में योगदान करते हैं। जनसंचार तथा दूर संचार के माध्यम से व्यापक संप्रेषण संभव हो पाया था। अब वह युग आ गया है जब संचार और संगणन (Computing) एक साथ मिलेंगे और संप्रेषण को सुदृढ़ बनाएँगे।

भाषाविज्ञान संबंधी पाठ्यक्रम में हम विषय प्रवर्तन के रूप में संप्रेषण की चर्चा से कर रहे हैं। इसका एक कारण है। भाषा के बारे में लोग यही सोचते थे कि भाषा एक व्याकरणबद्ध व्यवस्था है और दो लोगों के बीच विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम है। लेकिन धीरे-धीरे भाषा की संकल्पना और भाषा के बारे में अध्ययन की दृष्टि में विस्तार होता गया। जहाँ पहले लोग बोलियों को भाषा का विकृत तथा तिरस्कृत रूप मानते थे, आज हम समाजभाषा विज्ञान के अंतर्गत भाषा के विविध रूपों की जीवंतता की चर्चा करते हैं। भाषा पूरे समाज के विविध संदर्भों में संप्रेषण का माध्यम है।

इसी तरह भाषा अध्ययन के विविध संदर्भों में दृष्टि परिवर्तन दिखाई देता है। प्रैग्मैटिक्स नामक भाषाविज्ञान की नई शाखा में हम कोशीय अर्थ से हटकर भाषा व्यवहार में निहित संप्रेषण को समझने का यत्न करते हैं। इस नई दृष्टि का प्रभाव अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के विविध क्षेत्रों पर भी पड़ा है। भाषा शिक्षण अब मात्र संरचनाओं को कंठस्थ कराने का यत्न नहीं करता, बल्कि संप्रेषण के स्तर पर भाषिक क्षमता के विकास करने का यत्न करता है। इस परिप्रेक्ष्य में संप्रेषण से चर्चा शुरू करना भाषाविज्ञान की अधुनातन प्रवृत्ति को जानने का आधार बन सकता है।

भाषा के कार्य को केवल शब्दार्थ या वाक्यार्थ तक सीमित नहीं कर सकते। संप्रेषण का दायरा भाषिक अर्थ से ही ज्यादा विस्तृत है। हमारी संस्कृति, साहित्य और वाड्.मय, आचार-विचार सभी संप्रेषण की प्रक्रिया से ही संभव हैं, सुरक्षित हैं।

मानव की भाषा प्रारंभ में संभवतः सिर्फ़ आवश्यकताओं की पूर्ति के संप्रेषण मात्र का साधन थी। भाषा के इस्तेमाल के पिछले कुछ सहस्राब्दियों में मानव ने संप्रेषण के इस साधन को माँजकर संपन्न बनाया है और संप्रेषण के विविध संदर्भों और रूपों का विकास किया है। इस दीर्घकालीन परंपरा के कारण हमारे पास ज्ञान-विज्ञान तथा साहित्य के विविध कोष उपलब्ध हैं। इसी को हम व्यापक अर्थ में सांस्कृतिक संप्रेषण की संज्ञा दे सकते हैं। लेखन के आविष्कार से भाषिक संप्रेषण को स्थायित्व मिला। आज भी हम शिक्षा के माध्यम से संप्रेषण को सुदृढ़ करने का यत्न कर रहे हैं।

मनुष्य का प्रारंभिक संप्रेषण व्यक्तिशः होता था। प्रायः दो लोगों की बातचीत, सामूहिक चर्चा तथा यदा-कदा अपने वर्ग को संबोधित करना संप्रेषण के रूप थे। आधुनिक युग में प्रौद्योगिकी के विकास के कारण संचार के क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रांति आई। संचार के साधनों ने संप्रेषण का स्वरूप ही बदल दिया है। अब हम व्यक्तिशः संप्रेषण से हटकर जनसंचार (mass communication) के युग में पहुँचे हैं। जनसंचार वास्तव में जनता के व्यापक संप्रेषण का ही दूसरा नाम है। इस तरह संचार और संप्रेषण दोनों एक सिक्के के दो पहलुओं की तरह जुड़े हैं। शायद यही कारण है कि अंग्रेज़ी में दोनों के लिए एक ही शब्द है।

वर्तमान युग में कंप्यूटरों ने सूचना समाज के निर्माण में योगदान किया है। कंप्यूटर सूचनाओं का त्वरित गति से संसाधन ही नहीं करते, बल्कि इंटरनेट तथा नेटवर्क के जरिए संप्रेषण का संदेश इसी लक्ष्य की पूर्ति में व्यक्त होता है।

1.2 संप्रेषण क्या है?

संप्रेषण एक परस्पर क्रिया है, जिसमें एक पक्ष संदेश का संप्रेषण करता है, दूसरा पक्ष उस संदेश को ग्रहण करता है। संप्रेषण हर जीवित प्राणी का गुणधर्म है। चींटियाँ गंध द्वारा अपने समाज के अन्य प्राणियों को शिकार या खाद्यपदार्थ या शत्रु का संदेश देती हैं। मधुमक्खियाँ अपने साथियों को 'नाच' द्वारा संदेश संप्रेषित करती हैं। घोड़ा, कुत्ता आदि जानवर ध्वनियों

के माध्यम से संप्रेषण करते हैं। लेकिन इनका संप्रेषण कथ्य, परिवेश तथा काल की दृष्टि से अति सीमित हैं। इनके मुकाबले मनुष्य की भाषा बसे उन्नत और जटिल संप्रेषण व्यवस्था है, जो काल, परिवेश की सीमाओं के बाहर जटिल से जटिल विषयों के प्रतिपादन में सक्षम है। भाषा की वस्तु के संदर्भ में हम भाषा के सामाजिक-सांस्कृतिक पक्ष के प्रकरण में विचार करेंगे और उसकी जटिलता के बारे में उसके रचना पक्ष की चर्चा में व्याख्या करेंगे।

मानवों के संप्रेषण के संदर्भ में भी दो पहलू हैं। मनुष्य दो प्रकार से संप्रेषण करता है। भाषिक संप्रेषण में हम उच्चरित या लिखित भाषा के माध्यम से संप्रेषण करते हैं। भाषा-इतर संप्रेषण में मनुष्य इंगित द्वारा, हाव-भाव के माध्यम से अपने विचार संप्रेषित करते हैं। संप्रेषण के ये दोनों माध्यम परिपूरक भी हो सकते हैं, याने व्यक्ति दोनों का एक साथ भी उपयोग कर सकता है।

मानवों के संप्रेषण का एक अन्य आयाम स्थानापन्न संप्रेषण है। मूक-बधिर व्यक्तियों की संकेत भाषा (sign language), व्यापारी आदि की गुप्त भाषा (secret language) आदि वास्तव में मानव की उच्चरित या लिखित भाषा के प्रतिरूप हैं।

इस चर्चा के संदर्भ में कह सकते हैं कि उन्नत संप्रेषण व्यवस्था का सबसे अच्छा उदाहरण मानवों की भाषा है। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि भाषा संप्रेषण का सबसे अच्छा माध्यम है। भाषा की परिभाषा देते हुए कहा जाता है कि भाषा विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम है। यानी भाषा के इस्तेमाल में वक्ता और श्रोता (या लेखक और पाठक) ये दो पक्ष अनिवार्य हैं। भले ही हम अपने मन में (अपने आपसे) बातचीत कर लें, भाषा के व्यहवार के लेए दो पक्ष चाहिए ही। परस्पर व्यवहार में दोनों व्यक्ति क्रम से एक दूसरे को किसी व्यवहार के लिए प्रेरित करते हैं। यानी वाक् व्यापार परस्पर व्यवहार का आधार बनता है। अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन ही भाषिक संप्रेषण का लक्ष्य है। संप्रेषण का संदेश इसी लक्ष्य की पूर्ति में व्यक्त होता है। इस तरह परस्पर व्यहवार के लिए संदेश के उचित संप्रेषण की अनिवार्यता है। इस परस्पर भाषिक व्यवहार का माध्यम जो भी हो (पत्र लेखन, रेडियो प्रसारण, टेलीफ़ोन पर बातचीत) या उसका स्वरूप जो भी हो (लेखन, बातचीत, संकेत, हाव-भाव), कुल मिलाकर संदेश संप्रेषण ही हमारा प्रमुख ध्येय है। इस तरह संप्रेषण का केंद्र बिंदु संदेश है।

1.3 संप्रेषण का स्वरूप

संप्रेषण की प्रक्रिया को समझने के कई ढंग हैं। फ्रेडेरिक विलियम्स (1984 : पृ. 24) कहते हैं कि निम्नलिखित पाँच दृष्टियों से हम संप्रेषण का अध्ययन कर सकते हैं :

(1) संप्रेषण व्यवस्था का सबसे प्रमुख उपभोक्ता मनुष्य है। इस संदर्भ में हम जान सकते हैं कि मानवों की संप्रेषण व्यवस्था यानी भाषा का स्वरूप क्या है, उससे हम क्या और कैसे संप्रेषण करते हैं। हम आपसी संबंध संप्रेषण से कैसे स्थापित करते हैं, हम भाषा के माध्यम से संप्रेषण का विस्तार कैसे करते हैं आदि। भाषाविज्ञान के विविध रूप इस अध्ययन क्षेत्र में आते हैं।

(2) हम संप्रेषण के सामाजिक संदर्भों की चर्चा कर सकते हैं जैसे व्यक्तिगत संप्रेषण (चिंतन), व्यक्तिशः संप्रेषण (वार्तालाप), समूह, संगठन तथा सार्वजनिक स्तर पर संप्रेषण।

(3) हम संप्रेषण के प्रकार्यों और प्रभाव की चर्चा कर सकते हैं। उदाहरण के तौर पर यह शोध कर सकते हैं कि संप्रेषण किस हद तक मनोरंजन का साधन है, संप्रेषण

से हम जन मानव में व्यवहार परिवर्तन कैसे ला सकते हैं या उन्हें सामाजिक-राजनीतिक संदेश कैसे दे सकते हैं।

(4) संप्रेषण की वस्तु क्या है यह भी चर्चा का विषय है। संदेश संप्रेषण का केंद्र बिंदु है। हम यह देखना चाहेंगे कि संप्रेषण में संदेश का क्या स्थान है।

(5) हम संप्रेषण के व्यवहार की जीवंत प्रक्रिया का अध्ययन कर सकते हैं। उदाहरण के तौर पर बातचीत और रेडियो प्रसारण संप्रेषण की भिन्न स्थितियाँ हैं। स्रोत, माध्यम, संदेश, प्राप्तिकर्ता आदि दृष्टियों से इनमें अंतर होगा।

इस तरह जीवन में भाषा के उपयोग के सभी संदर्भ संप्रेषण के संदर्भ हैं। इस दृष्टि से भाषा और संप्रेषण की अभिन्नता परिलक्षित होती है। इस अभिन्नता का कारण दोनों के स्वरूप की विशेषता है। भाषा ध्वनि, लिपि आदि बाह्य तत्वों से निर्मित व्यवस्था है, जिसमें उन तत्वों का काम केवल भाषिक तत्वों को पहुँचाना है। भाषा की व्यवस्था वह चैनल है जो अर्थ का वहन करता है। भाषा द्वारा संप्रेषित अर्थ वह संदेश है जो वक्ता भाषा के माध्यम से दूसरों (श्रोताओं) तक पहुँचाता है। संप्रेषण में भी समान स्थिति है जिसे निम्नलिखित प्रकार से एक आरेख से दिखा सकते हैं :

वक्ता ⟶	माध्यम (चैनल) ———————— संदेश	⟶ श्रोता

वक्ता और श्रोता संदेश संप्रेषण के लिए संप्रेषण भाषा का उपयोग करते हैं। संप्रेषण के इन आयामों की विशिष्ट चर्चा तीन विशिष्ट अध्ययन क्षेत्रों में होती है।

(i) संप्रेषण का एक **भाषिक पक्ष** है, जिसका अध्ययन भाषाविज्ञान के अंतर्गत होता है। भाषा के माध्यम से हम विचारों का आदान-प्रदान कैसे करते हैं, कैसे एक दूसरे को समझते हैं आदि इसके विषय क्षेत्र में आते हैं। अच्छा संप्रेषण वक्ता को अपने लक्ष्य की सिद्धि में मदद देता है। अगर आप किसी प्रयोजन वे किसी को पत्र लिखें, लेकिन अपना अभीष्ट अर्थ संप्रेषित न कर पाएँ, तो पत्र लिखने का प्रयोजन सिद्ध नहीं हाता। खराब विज्ञापन बिक्री में बढ़ोतरी नहीं कर सकता, ठीक से तैयार न किया गया जीवन वृत्त नौकरी पाने में मदद नहीं कर सकता। इन सब स्थितियों में संप्रेषण का भाषिक पक्ष महत्वपूर्ण है। इस तथ्य से अवगत होने के कारण आजकल संस्थाओं और संगठनों में लोगों के लिए संप्रेषण के विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है। विश्वविद्यालयों में प्रशासनिक संप्रेषण (office communication), व्यावसायिक संप्रेषण (business communication) आदि प्रयोजनमूलक पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाता है।

(ii) संप्रेषण का एक **भौतिक पक्ष** है, जिस अर्थ में हम हिंदी में 'संचार' शब्द का व्यवहार करते हैं। संचार चैनलों के माध्यम से होता है। अगर ये चैनल ठीक से काम न करें, तो संदेश सही ढंग से नहीं पहुँचेगा। इस विषय क्षेत्र में हम यह अध्ययन करते हैं कि संचार माध्यम कितने सक्षम हैं और संदेश वाहन में कहाँ तक कारगर हैं। दूसरी तरफ़ हम यह भी अध्ययन करते हैं कि विभिन्न प्रकार के संप्रेषणों के आयोजन में हम किस प्रकार के संचार माध्यम का उपयोग करते हैं। उदाहरण के लिए टेलीकांफ्रेंसिंग आधुनिक युग में सामूहिक संप्रेषण का एक सशक्त संदर्भ है, जिसमें संसार के हर कोने के लोग भाग ले सकते हैं। यह संप्रेषण तभी संभव होगा, जब संदेश के प्रसारण के लिए उपग्रह संचार की सुविधा मिल जाए। संचार में प्रौद्योगिक विकास की स्थिति से हम संप्रेषण की क्षितिज रेखा बढ़ाते जा रहे हैं।

(iii) संप्रेषण का एक **सामाजिक पक्ष** है। यह भाषा के अर्थ पक्ष के समान है। हम संप्रेषण के माध्यम से क्या संदेश देते हैं? सबसे प्रमुख संदेश आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया गया संभाषण है। जैसे :

ग्राहक : साबुन है? दुकानदार : हाँ, है।
ग्राहक : एक दीजिए।

आवश्यकताओं की पूर्ति वाला यह संप्रेषण प्राणिमात्र की विशेषता है और रचना की दृष्टि से जटिल नहीं है। मनुष्य का भाषा के माध्यम से संप्रेषण इससे कहीं व्यापक है, अत्यंत जटिल है। हम भाषा के माध्यम से अपेक्षित व्यवहार ही नहीं व्यक्त करते, बल्कि श्रोता के साथ अपने संबंधों को भी प्रकट करते हैं। इस तरह 'चुप बैठ', 'ज़रा बैठ जाइए', 'विराजिए', 'तशरिफ़ रखिए' आदि प्रयोग मूलतः बैठने के व्यापार की अपेक्षा करते हैं, साथ में श्रोता की स्थिति, उसका वक्ता से संबंध आदि संदर्भों का भी संप्रेषण करते हैं।

संस्कृति मानवों की विशेषता है, जिसे मानव समुदाय पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाते हैं। इसको हम अगली पीढ़ी तक का सांस्कृतिक संप्रेषण कह सकते हैं। इस संप्रेषण में भाषा की लेखन परंपरा की महत्वपूर्ण भूमिका है। जिन संस्कृतियों में लेखन की व्यवस्था नहीं है, उनमें वाचिक परंपरा (oracy) ज्ञान के भंडार को सुरक्षित रखने और आगे बढ़ाने में योगदान करती है।

1.4 संप्रेषण साधना

संप्रेषण के बारे में हमने चर्चा की कि इसके दो प्रमुख पात्र हैं – वक्ता और श्रोता। जब तक दोनों में संदेश के आदान-प्रदान की सक्रिय सहभागिता न हो, सफल संप्रेषण नहीं हो सकता। इसके भी दो पहलू हैं जो सफल संप्रेषण में सहयोगी हैं।

सफल संप्रेषण का एक आधार भाषाई दक्षता है। वक्ता को संदर्भ के अनुसार उचित भाषा का उपयोग करना चाहिए। विचारों का तार्किक क्रम, वक्ता के कथन के संदर्भ में सही प्रतिक्रिया, अपने वक्तव्य के संदर्भ में अपने मनोभावों को यथोचित ढंग से व्यक्त करने के लिए सही शब्दावली और उपयुक्त भाव-भंगिमा का प्रदर्शन, वक्तव्य की स्पष्टता आदि विशेषताएँ संप्रेषण को प्रभावपूर्ण बनाती हैं। इसी को हम वक्तृत्व क्षमता की संज्ञा देते हैं।

संप्रेषण का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है कि हम जानें कि संदेश अभिप्रेत या अभीष्ट रूप में श्रोता तक पहुँच गया है या नहीं। आपने अनुभव किया होगा कि कभी आप गंभीरता से कोई बात कहते हैं और श्रोता समझता है कि आपने मज़ाक किया है। अक्सर आपने लोगों को यह कहते सुना होगा – 'भई, मैं तो मज़ाक कर रहा था, आप तो ख़ाम ख़्वाह नाराज़ हो गए।' इन स्थितियों में दोनों को संप्रेषण के चैनल को साधना होता है। इसके लिए दोनों अक्सर संप्रेषण के तार जोड़ने का यत्न करते हैं जिसे निम्नलिखित कथनों/उक्तियों से समझा जा सकता है। 'मेरी बात समझ गये न?', 'मेरा कहने का मतलब है....', 'अगर दूसरे शब्दों में कहूँ...'। इन उक्तियों से समझ सकते हैं कि वक्ता और श्रोता दोनों संवाद की स्थिति में आश्वस्त होना/करना चाहते हैं कि संदेश ठीक से पहुँच रहा है या नहीं। संप्रेषण की विविध विधाओं में हम संप्रेषण की कुशलता या संप्रेषणीयता को सुनिश्चित करने के लिए विविध युक्तियों का उपयोग करते हैं। **भाषण** में वक्ता किन्हीं बातों पर बल देते हुए स्वर ऊँचा करते हैं जिससे मालूम हो सके कि वह महत्वपूर्ण बात है, श्रोताओं का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहते हैं 'समझ रहे हैं', 'आप तो जानते ही हैं' आदि, अपनी बातें दुहराते हैं तथा दुहराव की सूचना भी देते हुए कहते हैं – 'मैं फिर यह बात दुहराना चाहता हूँ।'

लेखन में शीर्षक देना, शब्दों को रेखांकित करना आदि भौतिक युक्तियों के साथ कथनों के माध्यम से भी संप्रेषणीयता सुनिश्चित किया जाता है। 'संक्षेप में.... ', 'दूसरे शब्दों में .... ', 'उल्लेखनीय है..... ', 'खास बात यह है ..... ' आदि उक्तियाँ संदेश को संप्रेषणीय बनाने के उद्देश्य से व्यवहार में लायी जाती हैं। संवाद में इस तरह की उक्तियाँ हैं – 'मैं जो कह रहा हूँ उसे ज़रा ध्यान से सुनिए', 'शायद आपका कहने का मतलब यह है...', 'मैं यह तो नहीं कह रहा था.... '

1.5 संप्रेषण का तकनीकी पक्ष

संप्रेषण को समझने के लिए 'कोड' (code) शब्द को समझना आवश्यक होगा। आप सब तार के लिए व्यवहृत मोर्स कोर्ड से परिचित ही हैं। इसमें अंग्रेज़ी के अक्षरों के लिए ध्वनि संकेतों (signals) का प्रयोग कर मोर्स के चिह्न (sign) निर्मित किए जाते हैं। अंग्रेज़ी वर्तनी को चिह्नों में बदलने की प्रक्रिया को हम कोड़बद्ध करना (encoding) कहते हैं और प्राप्त ध्वनियों से मूल शब्द शब्दों को पहचानने की क्रिया कोड खोलना (decoding) कहलाती है। भाषा के मुकाबले 'कोड' शब्द का प्रयोग इसी कारण सार्थक है कि हम इस कोड का प्रयोग किसी भी भाषा के लिए कर सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम निश्चित करें कि संदेश को किन नियमों से कोडों में बाँधें। अगर व्यक्ति उन नियमों से अपरिचित हो,तो वह संदेश तक नहीं पहुँच सकता। इस दृष्टि से भाषा भी एक कोड व्यवस्था है। हम यह निश्चित करते हैं कि उच्चरित ध्वनियों से बने प्रतीकों (शब्दों) को किन व्याकरणिक नियमों से संदेश के संप्रेषण के लिए कोड व्यवस्था का रूप देते हैं।

भाषा बोलते समय हमारे मन में विचार हैं, जो संप्रेषणीय संदेश हैं।। इन्हें हम किन्हीं नियमों के अधीन भाषिक उक्तियों रूप में व्यक्त करते हैं। यह कोडबद्ध करने की प्रक्रिया है। सुनने वाला कोड की व्यवस्था को उन्हीं नियमों के अधीन खोलता है और संदेश तक पहुँचता है। इस तरह वक्ता और श्रोता दोनों कोड के संसाधन (processing) द्वारा संदेश देने और लेने की प्रक्रिया (यानी संप्रेषण) से गुज़रते हैं। उसी तरह जैसे तार बाबू कोड पहचानकर संदेश (यानी तार का पाठ) लिख लेता है। अंतर यही है कि तार का संदेश बहुत सरल रचना है, भाषा के स्वाभाविक संप्रेषण की रचना बहुत जटिल है, जिसकी चर्चा आगे करेंगे। संप्रेषण की स्थिति में कोड में व्यवधान (noise) भी आता है जो संदेश को समझने में बाधा पहुँचाता है। व्यवधान का एक सरल, समझ में आने वाला उदाहरण है वर्तनी का दोष। कभी एक गलती भी हो तो संदेश को समझने में कुछ कठिनाई होती है। अगर हमें संदेश का पूर्वानुमान हो, तो हम अंदाज़ से संदेश को समझ लेते हैं। यह भी संप्रेषण के संसाधन की एक प्रक्रिया है। अगर एक वाक्य में कई गलतियाँ हों, तो संदेश (अर्थ) को समझने में बड़ी कठिनाई होती है। भाषा में लगभग हर स्तर पर ऐसे व्यवधान की संभावना रहती है, जैसे उच्चारण, वाक्य विन्यास, शब्द प्रयोग, शैली आदि। व्यक्ति जब तक भाषा का सही प्रयोग न करे,तो भाषा के माध्यम से संप्रेषण सफल नहीं होता। इसलिए भाषा शिक्षणविद् भाषा के सहज संप्रेषण पर बल देते हैं।

संप्रेषण की दृष्टि से व्यवधान (noise) दो तरह के हैं। एक व्यवधान को हम भौतिक अर्थ में 'शेर' ही कह सकते हैं। उदाहरण के तौर पर अगर दो व्यक्ति भरे बाज़ार में खड़े हों और बात कर रहे हों तो उन्हें एक दूसरे को समझने में कठिनाई हो सकती है, क्योंकि चारों तरफ़ शोरगुल का वातावरण है। हालांकि उनके कोड में कोई दोष नहीं है। इस तरह के व्यवधान को हम माध्यम का व्यवधान (Channel noise) कहते हैं। भाषा के संदर्भ में हमें अक्सर माध्यम व्यवधान के बीच में से अर्थ ग्रहण करना पड़ता है। ऐसे उदाहरण हैं शोर वाला रेडियो कार्यक्रम, भीड़भाड़ में बातचीत, टेलीफ़ोन पर बातचीत जहाँ आवाज़ स्पष्ट नहीं है, जहाँ चार-पाँच लोग एक साथ बोल रहे हो, या जब व्यक्ति बीमारी या खुमारी की वजह

से ठीक से बोल न पा रहा हो। इन सब स्थितियों में भाषा को समझने का अभ्यास भी भाषा अध्ययन का अंग होना चाहिए। दूसरी स्थिति वर्तनी दोष, वाक्य संरचना दोष आदि हैं जो कोड को भी प्रभावित करते हैं। इन्हें हम कोड का व्यवधान (code noise) कहते हैं। संप्रेषण से जुड़े हुए व्यक्तियों को यह सुनिश्चित करना होगा कि वे माध्यम के व्यवधान में भी किस तरह संदेश पहुँचा या प्राप्त कर सकते हैं। प्रभावी संप्रेषण के लिए यह भी आवश्यक है कि हम संप्रेषण में कोड के व्यवधान (या भाषा दोषों) का परित्याग करें जिससे संदेश विकृत न हो।

1.6 संप्रेषण का सामाजिक परिप्रेक्ष्य

आमतौर पर यह कहा जाता है कि जनजातियों की भाषाएँ अविकसित होती हैं। यह भी माना जाता है कि उनकी भाषा का कोई व्याकरण नहीं होता। यह भ्रमपूर्ण कथन है हम संप्रेषण संदर्भ में जानते हैं कि हर भाषा या बोली अपने में स्वायत्त स्वयंपूर्ण व्यवस्था होती है। यह भी हम जानते हैं कि भाषा एक कोड है और उसके संकोडीकरण और विकोडीकरण में निश्चित व्यवस्था होती है। अगर कोड नियमबद्ध न हो तो किसी भी भाषा में संप्रेषण संभव नहीं हो सकता है। विकसित भाषा में और जनजातियों की (अविकसित) भाषाओं में अंतर व्याकरणिक व्यवस्था के कारण नहीं है बल्कि संप्रेषण के अन्य साधनों के कारण है।

विकसित भाषाओं में हम भाषा के परिमार्जन की योजना बनाते हैं और भाषा में काम करने के लिए सहायक संदर्भ ग्रंथ और साधन जुटाते हैं। समाज भाषावैज्ञानिक इस प्रक्रिया को कोड विस्तार की संज्ञा देते हैं। कोड विस्तार की संज्ञा पर विविध विषयों में भाषा में काम करने के लिए पारिभाषिक शब्द बनते हैं और अभिव्यक्तियों का भंडार एकत्र होता है। इन्हीं सहायक सामग्रियों को हम शब्दकोष, व्याकरण आदि संदर्भ ग्रंथों के रूप में उपलब्ध कराते हैं। यू कह सकते हैं कि विकसित और मौखिक भाषाओं के अंतर कोड व्यवस्था के कारण नहीं है बल्कि कोड विस्तार की प्रक्रिया के कारण है। यह बात सही है कि लिखित भाषाओं में लेखन की दीर्घकालीन परंपरा के कारण कोड विस्तार संभव हो पाता है जबकि भाषा की भाषिक परंपरा में कोड विस्तार नहीं हो पाता। इस दृष्टि से ये भी सही है कि जिन भाषाओं को हम अविकसित कहते हैं उनमें विविध विषयों में काम करने की क्षमता कम होती है। संक्षेप में, जनजातियों की भाषाएँ उनकी अपनी संस्कृति की अभिव्यक्ति के लिए सक्षम हैं लेकिन व्यापक वैशविक ज्ञानार्जन के लिए उनकी क्षमता कम है।

यह भी अक्सर कहा जाता है कि जनजातियों की संस्कृतियाँ मुख्यधारा से हटी हुई हैं। लेकिन यह भ्रमपूर्ण कथन भी सुनने में आता है कि जनजातियों की संस्कृतियाँ दृष्टि से पिछड़ी हुई हैं। जिस तरह से कोई मानव समाज भाषाविहीन नहीं हो सकता उसी तरह कोई मानव समाज संस्कृतिविहीन नहीं हो सकता। अंतर अगर है तो, संस्कृति के स्वरूप के सवाल के कारण। आदिम संस्कृतियाँ व्यक्तियों के व्यवहार के नियंत्रक-नियोजक के रूप में काम करती हैं। लेकिन ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में अनभिज्ञ होने के कारण यह संभव है कि उनकी कुछ मान्यताएँ या विचार तर्कसंगत न हों। लेकिन इससे किसी संस्कृति को अविकसित नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक ज्ञान-विज्ञान के व्यवहार का सवाल हैं आदिम संस्कृतियों में भी कुछ ऐसी ज्ञान राशियाँ हैं जो तथाकथित वैज्ञानिक समाज के पास भी नहीं हैं। लेकिन विकसित और अविकसित समाजों में सांस्कृतिक स्वरूप के अंतर का क्या कारण है? जिस तरह भाषा के क्षेत्र में लेखन की व्यवस्था के कारण ज्ञानराशि जुड़ती गई उसी तरह सांस्कृतिक दृष्टि से विकसित समाज में ज्ञान का भंडार जुड़ता गया है। यह ज्ञानराशि (Body of Knowledge) विकसित भाषाओं का प्रमुख अभिलक्षण है। धर्म दर्शन के ग्रंथ, हजारों वर्षों से संचित साहित्यिक कृतियाँ, चिकित्साविज्ञान, अर्थशास्त्र आदि विविध अध्ययन क्षेत्रों में उपलब्ध वाङ्.मय हर विकसित समाज में सांस्कृतिक धरोहर हैं। इस ज्ञानराशि की उपलब्धि में उस संस्कृति के लिखित संप्रेषण का बहुत बड़ा योगदान है। दूसरे

शब्दों में कह सकते हैं कि विकसित भाषाओं में कोड विस्तार और ज्ञान विस्तार साथ-साथ चलते हैं जबकि कम विकसित समाजों में कोड और वांड़्मय का प्रभाव क्षेत्र सीमित होता है। इस दृष्टि से संप्रेषण विशेषकर लिखित संप्रेषण, समाज और संस्कृति के विकास के प्रमुख कारक तत्व हैं।

1.7 संप्रेषण के बढ़ते चरण

प्रारंभिक युगों में संप्रेषण व्यक्तिगत संपर्क का दूसरा नाम था। मानव संस्कृति के विकास के साथ संप्रेषण में व्यापकता आती गई। लेखन के कारण लोगों के विचार काल और समय से परे संप्रेषित हो सके। आधुनिक युग में संचार साधनों के विकास के कारण संप्रेषण ने संचार का रूप धारण किया और संप्रेषण सामूहिक सहभागिता के संदर्भ में जन संचार के रूप में व्यवहार में आया। आज कंप्यूटरों के कारण संप्रेषण में अभूतपूर्व क्रांति आयी है। चूँकि हम संचार साधनों के माध्यम से व्यापक स्तर पर संप्रेषण करते हैं, हमारे लिए आवश्यक हो जाता है कि हम सही ढंग से संदेश संप्रेषित करें।

1.7.1 सूचना समाज (The information society)

सभ्यता के आरंभ से अब तक के मनुष्य के इतिहास का वर्णन करते हुए उसे तीन विशिष्ट युगों में बाँटा जाता है। सबसे पहला युग था कृषि प्रधान समाज का। उसके बाद युग था औद्योगिक विकास के समाज का। आज के युग में सूचना समाज की प्रधानता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सूचना ने कृषि या उद्योगों को स्थानापन्न कर दिया हो। कृषि प्रधान समाज में सारे लोग कृषि पर आधारित थे। औद्योगिक विकास के युग में कृषि का विकास और विस्तार हुआ, फिर भी समाज के कुछ ही लोग कृषि कार्यों में लीन थे। शेष उद्योगों की स्थापना करने लगे। इसी तरह सूचना युग में सूचना प्रौद्योगिकी के कारण कृषि और उद्योगों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई, लेकिन इनमें पहले के मुकाबले में कम लोग लगे हैं, शेष सूचना प्रौद्योगिकी को समुन्नत करने में लगे हैं।

जिस समाज में सूचना और संचार का महत्व अधिक हो, वहाँ कृषि कैसे उन्नत हो सकती है? संचार के कारण अब लोगों के पास कृषि के तरीकों के बारे में अच्छी जानकारी है। इसलिए वे कम समय में अच्छे तरीके से अपना काम कर पाते हैं। एक मिलता-जुलता उदाहरण लीजिए। कृषि प्रधान समाज में एक एकड़ ज़मीन को जोतने में कई व्यक्ति, हफ़्तों लगकर काम करते थे। औद्योगिक विकास के कारण अब यह काम एक व्यक्ति ट्रैक्टर की सहायता से एक दिन में करता है। इस तरह नये साधन और नयी जानकारी लोगों के काम को आसान बना देते हैं। आज सूचना संचार 'ज्ञान का उद्योग' (knowledge industry) कहलाता है, जो अन्य उद्योगों से कम महत्वपूर्ण नहीं है।

इस सूचना समाज के क्रांतिकारी आविर्भाव में दो प्रमुख कारक तत्व हैं। एक, कंप्यूटर, जो सूचनाओं के कच्चे माल को ग्रहण करता है और संसाधित कर उसे उपभोक्ताओं लायक 'ज्ञान' में बदलकर प्रस्तुत करता है। दूसरे, उपग्रह संचार आदि संचार के उन्नत तरीके, जो उस ज्ञान को विश्व के कोने-कोने में पहुँचाते हैं।

अब हम संप्रेषण के माध्यमों के संदर्भ में संचार के विविध रूपों की चर्चा करेंगे और देखेंगे कि आने वाले युग में भाषा के क्षेत्र में संचार के कितने नए आयाम खुलते हैं और भाषा के अध्ययन में रत व्यक्तियों के लिए कितने नये कार्य क्षेत्र खुलते हैं।

संचार के युग में व्यवहृत नई तकनीकों और सुविधाओं से आप अपरिचित नहीं हैं। आज हर पढ़ा-लिखा व्यक्ति कंप्यूटर के कार्यों और इंटरनेट की संभावनाओं से अपरिचित नहीं हैं। इसी तरह दूर संचार में भी अभूतपूर्व क्रांति हुई है और लोग अपनी जेब में मोबाइल फ़ोन

लेकर चलते हैं, मानो वे अपना टेलीफ़ोन एक्सचेंज अपने साथ लेकर चल रहे हों। लोगों के साथ संप्रेषण के दूसरे छोर पर जो लोग हैं वे अपने पाठकों और श्रोताओं तक हर पल पहुँचने में सफल हुए हैं। टी.वी. पर विज्ञापन, इंटरनेट पर विज्ञापन, मोबाइल पर खबरें, 24 घंटे के समाचार चैनल, वीडियो टेक्स्ट आदि आक्रामक रूप से श्रोताओं तक पहुँचते हैं। वाणिज्य-व्यापार, प्रशासन/प्रबंध, शिक्षा आदि कई क्षेत्रों में इस संचार क्रांति के दूरगामी परिणाम परिलक्षित हो रहे हैं। हम आगे कुछ प्रमुख क्रांतिकारी प्रयत्नों की चर्चा करेंगे।

1.7.2 संचार (Communications)

To Communicate का तात्पर्य है संदेश देना। इस अर्थ में व्यक्तिगत वार्तालाप संप्रेषण का एक प्रमुख रूप है, क्योंकि इसमें हम एक-दूसरे के साथ संदेशों का आदान-प्रदान करते हैं। क्षेत्र का विस्तार करते हुए हम रेडियो, अखबार आदि के माध्यम से भी संदेश संप्रेषित करते हैं। अखबार आदि के माध्यम से भी संदेश संप्रेषित करते हैं। माध्यम के महत्व के कारण इस तरह के संप्रेषण को संचार कहा जाता है। रेडियो, टेलीफ़ोन आदि संचार के साधन हैं। इस प्रकार अंग्रेज़ी शब्द Communication के लिए हिंदी में दो शब्द हैं संप्रेषण और संचार। संदेश देने के अर्थ में संप्रेषण व्यापक शब्द है। संप्रेषण की कुछ विशिष्ट स्थितियों को संचार की संज्ञा दी जाती है। अखबार, टेलीविजन आदि संचार के माध्यम भी संदेश संप्रेषित करते हैं।

दूर संचार (Tele-Communications)

व्यक्तिशः संप्रेषण की स्थिति के अतिरिक्त हम टेलीफ़ोन आदि की सहायता से दूर तक संदेश संप्रेषित करें तो यह दूर संचार कहलाएगा। इस शब्द से संदेश की अपेक्षा चैनल का प्रकार्य प्रमुख है। टेलीफ़ोन, टेलेक्स, टेलीप्रिंटर आदि दूर संचार के साधन हैं। प्रौद्योगिकी विशेषज्ञ यह बात जानना चाहते हैं कि किस तरह बिना व्यवधान के, सही ढंग से संदेश इन माध्यमों से संप्रेषित हो पाता है। अगर माध्यम ठीक से काम न करे तो, संदेश स्पष्ट नहीं होगा, यानी संप्रेषण सफल नहीं होगा। अतः संदेश की प्रकृति के अनुसार माध्यम को कारगर बनाना आज की प्रौद्यागिकी का लक्ष्य है।

जन संचार (Mass Communication)

व्यक्तिगत संप्रेषण में व्यक्ति संदेश देने के लिए एक व्यक्ति को या एक विशाल जन सभा को संबोधित कर सकता है। यह संप्रेषण क्षेत्र, समय तथा श्रोतागण की दृष्टि से सीमित है। हम लेखन के माध्यम से इन तीनों सीमाओं को लाँघ सकते हैं और माइक की सुविधा से लाखों की संख्या में लोगों को संबोधित कर सकते हैं। पुस्तक लेखन या लाउड स्पीकर से संबोधन दोनों व्यक्तिगत संप्रेषण ही कहलाएँगे।

इसकी तुलना में जन संचार एक अतिविकसित आधुनिक संप्रेषण व्यवस्था है, जिसमें संदेश प्रसारण करने वाला एक व्यक्ति नहीं, पूरा समाज है और संदेश प्रसारण पूरे समाज के लिए है। इस तरह यह सामाजिक संप्रेषण है, जो जन संचार के साधनों से ही संभव हो पाया है। रेडियो, टेलीविज़न, पत्रकारिता इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इनमें संदेश एक व्यक्ति का नहीं, बल्कि अनेकों व्यक्तियों का समन्वित संप्रेषण है, जो सारी जनता के लिए है। माध्यम को महत्व देने के कारण इसे जन संचार कहा जाता है (जो mass communiction का सहज अनुवाद लगता है), वास्तव में प्रयोजन की दृष्टि से यह जन संप्रेषण है।

संचार माध्यमों ने लेखन में कई नई विधाओं को जन्म दिया, जैसे रेडियो रूपक, रिपोर्ताज, परिचर्चा आदि। संचार साधनों के कारण टेलीकांफ्रेंसिंग, दूर संचार के साधनों का उपयोग करते हुए श्रोताओं के सक्रिय सहयोग से भेंट वार्ता आदि नये कार्यक्रम विकसित हुए। जन संचार की व्यापक पहुँच के कारण व्यापारिक/व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिए विज्ञापन का विकास हुआ और जनतांत्रिक रूप से जनमत के संग्रह के शोधपरक आयाम खुले। इस

तरह जन संचार ने आधुनिक जीवन के हर पहलू को प्रभावित किया है। इस अर्थ में भी सूचना समाज की संज्ञा सार्थक लगती है।

इस व्यापक पहुँच के कारण जन संचार लोगों की सोच, व्यवहार तथा कार्यविधि पर प्रभाव डालता है। अक्सर यह कहा जाता है कि यौन तथा हिंसा की घटनाओं से भरी फिल्मों के कारण बच्चों में नकारात्मक गुण पैदा हो जाते हैं। जन संचार के वैश्विक स्वरूप के कारण घटनाओं और विचारधाराओं का सारे विश्व पर प्रभाव पड़ता है। समाजशास्त्री यह जानने के लिए उत्सुक हैं कि आगे के युग में सूचना संचार का विश्व पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

1.7.3 संप्रेषण और संचार में अंतःसंबंध

हम आधुनिक युग में समाज पर संचार के बढ़ते प्रभाव के संदर्भ में चर्चा करते हैं। अक्सर हम चर्चा सुनते हैं कि सिनेमा, टेलीविज़न जन संचार के माध्यमों के कारण युवाओं में सेक्स तथा हिंसा के प्रति रुझान होता जा रहा है। इसी तरह यह भी चर्चा सुनने में आती है कि भारतीय जनता पश्चिम के कार्यक्रमों के कारण भारतीय परंपरा और मूल्यों से विमुख होते जा रहे हैं। इस प्रकार की चर्चा का आधार क्या है?

सिनेमा, टेलीविज़न, पत्र-पत्रिकाएँ आदि केवल जन संचार के माध्यम हैं और समाज ही उनके संदेश का निर्धारण करता है। आजकल भारत में भक्ति, साधना, स्वास्थ्य संबंधी पत्रिकाओं का बढ़ता मार्केट है। इसकी तुलना में यह भी उल्लेख कर सकते हैं कि पश्चिम के समाज ने संघर्ष करके यौन स्वच्छंदता की पत्रिकाओं के प्रकाशन की स्वतंत्रता हासिल की है। इस तरह हम संचार माध्यमों से किस संदेश का संप्रेषण कर रहे हैं या करना चाहते हैं यह समाज सापेक्ष है। इसका सीधा संबंध सामाजिक मूल्यों से है। मूल्यों की भिन्नता के कारण ही विदेशी कार्यकमों के अवांछित प्रभाव की बात कही जाती है। एक तरफ़ हम विदेशी कार्यक्रमों के प्रतिबंध, सेंसर द्वारा काट-छाँट आदि की बात सोच सकते हैं। दूसरी ओर यह भी कहा जा सकता है कि हम विदेशी संस्कृति को विदेशी ही मानकर ग्रहण करें और अपनी परंपराओं से नाता जोड़े रखें।

1.8 संप्रेषण का उपागम

भाषा शिक्षण के क्षेत्र में 40 के दशक से वाक्य संरचना पर आधारित उपागम (approaches) अपनाये गये। सामाजिक संदर्भ से कटे वाक्यों का अर्जन अधिक आकर्षक नहीं लगा। 60 के दशक में भाषा शिक्षणविदों ने प्रयोजनपरक भाषा शिक्षण का उपागम अपनाया। उस समय English for Specifial Purposes के नाम से वैज्ञानिकों के लिए अंग्रेज़ी पाठ्यक्रम, वाणिज्य-व्यापार के लिए अंग्रेज़ी पाठ्यक्रम आदि विशिष्ट प्रयोजनों वाले पाठ्यक्रमों का सिलसिला शुरू हुआ। इन दोनों ही उपागमों में भाषा की उपलब्धि का स्तर संतोषजनक नहीं था, क्योंकि अध्येता का ध्यान रचना या प्रयोजन पर केंद्रित हो जाता है और वे भाषा में सहज संप्रेषण नहीं कर पाते हैं। इसलिए 8वें दशक में संप्रेषणपरक भाषाशिक्षण का प्रवर्तन हुआ।

संप्रेषणपरक शिक्षण का उपागम यह मानकर चलता है कि भाषा मूलतः संप्रेषण की वस्तु है। इस कारण भाषा का उचित रूप से अर्जन तभी होता है जब संप्रेषण द्वारा सहज संप्रेषण के लिए भाषा सीखी जाए। सवाल यह उठता है कि संप्रेषण द्वारा सीखने का तात्पर्य क्या है? बेमेल वाक्य साँचे रटने में सार्थकता नहीं आती, क्योंकि संदर्भ से कटा कोई वाक्य बोध की परिधि में नहीं आता। संदर्भ में भाषा के संप्रेषण के कुछ प्रयोजन होते हैं। हम दुकान में *मोलभाव* के प्रयोजन से बातचीत करते हैं, अध्यापक छात्रों से सही व्यवहार *समझाने* के उद्देश्य से बात करते हैं। रेलगाड़ी में पास बैठे अपरिचित व्यक्ति से 'आज बड़ी गर्मी है' कहने का उद्देश्य है परिचय बढ़ाना, दोस्त से 'यह साड़ी कहाँ से ली?' पूछने का प्रयोजन

है तारीफ़ करना। ऐसे हर संप्रेषण की स्थिति का अपना एक गठन होता है। जैसे मोलभाव की स्थिति में 'दाम ज्यादा है', 'नहीं एक दाम है', 'कुछ कम करो', 'नहीं पूरा नहीं पड़ता ' आदि उक्तियाँ व्यवहृत होती हैं। भाषा शिक्षक यह कोशिश करता है कि ऐसे संप्रेषण की आवश्यकताओं (Communictive needs) को ध्यान में रखकर अध्यापक परिवेश का निर्माण करे और परिवेश के अनुरूप उक्तियाँ बोलने का अभ्यास कराए। इसी को हम संप्रेषणपरक भाषा शिक्षण कहते हैं। यह उपागम भाषा अर्जन में सहजता और स्वाभाविकता लाने की कोशिश करता है, जो हर संप्रेषण की स्थिति का सहज गुण है।

1.9 सारांश

भाषा संप्रेषण का साधन है अर्थात् दो व्यक्ति भाषा के माध्यम से विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। जब व्यक्ति माइक का इस्तेमाल करता है, तो संप्रेषण का क्षेत्र बढ़ जाता है; जब व्यक्ति लेखन का उपयोग करता है, तो उसका पाठक वर्ग क्षेत्र और काल की दृष्टि से विस्तृत हो जाता है। इस तरह विज्ञान में उन्नति और प्रौद्योगिकी के विकास के कारण संप्रेषण का विस्तार होता गया।

हम जिन माध्यमों से संप्रेषण करते हैं उन्हें संचार साधन कहते हैं और वह संप्रेषण भी आधुनिक संदर्भ में संचार कहा जाता है। यह रोचक तथ्य है कि अंग्रेज़ी में संप्रेषण, संचार दोनों के लिए एक ही शब्द है - Communication। हिंदी में भाषिक व्यापार संप्रेषण है, संप्रेषण के साधनों के संदर्भ में भौतिक संदेश संप्रेषण संचार है।

संप्रेषण के तीन पक्ष हैं – संप्रेषित करने वाला (वक्ता या लेखक), संदेश जो संप्रेषित किया जाता है और संदेश ग्रहण करने वाला (श्रोता या पाठक)। भाषा की दृष्टि से संदेश की संप्रेषणीयता का सवाल आता है। उस दृष्टि से भाषा एक कोड है, अर्थ की वाहिका है। अगर कोड त्रुटिपूर्ण हो तो संदेश संप्रेषित नहीं होगा। इस कारण शुद्ध उच्चारण, सही लेखन, उपयुक्त शब्दों का प्रयोग, व्याकरण सम्मत वाक्यों की रचना संप्रेषण के लिए आवश्यक है। यह संप्रेषण का भाषा वैज्ञानिक पक्ष है।

भाषिक संप्रेषण में दोनों पक्षों में परस्परता (interactivity) एक प्रमुख लक्षण है। इस कारण वक्ता और श्रोता (या लेखक और पाठक) यह सुनिश्चित करते हैं कि संदेश उचित ढंग से संप्रेषित हो रहा है या नहीं। संप्रेषण को साधना एक अनिवार्य कौशल है, जिसकी झलक संप्रेषण की स्थितियों में देखी जा सकती है। संप्रेषण के औपचारिक संदर्भ है जैसे पत्र लेखन, भाषण, साक्षात्कार, कार्यालय की बैठक आदि। उन संदर्भों में विचारों के संप्रेषण को औपचारिक रूप में निश्चित किया गया है। जैसे पत्र लेखन में संबोधन, विषय प्रवर्तन, स्वलेख, भेजने वाला का पता आदि लेखन को संदेश की दृष्टि से सुनिश्चितता प्रदान करते हैं। इस तरह विविध विधाओं की भाषा, शब्दावली, अभिव्यक्तियाँ आदि विधागत भाषिक अभिलक्षण हैं, जो संप्रेषणीयता सुनिश्चित करते हैं।

संचार का संदर्भ भौतिक साधनो से है। आधुनिक युग में दूर संचार, उपग्रह संचार, इंटरनेट आदि साधन विकसित हुए हैं, जिनसे संप्रेषण के नये आयाम खुले हैं। टेलीकांफ्रेंसिंग एक नया संप्रेषण है, जिसमें विश्व भर के विद्वान पूरी परस्परता के साथ विचार-विमर्श में भाग ले सकते हैं। यह भौतिक संप्रेषण के कारण ही संभव हुआ है।

जन संचार (mass communication) उधार-अनुवाद को प्रक्रिया से बना शब्द है। वास्तव में यह संप्रेषण का एक नया आयाम है जिसमें पूरा समाज संदेश देने और लेने का काम करता है। रेडियो, पत्रकारिता, टेलीविज़न आदि में परस्परता के अभाव में भी लोगों की

व्यापक प्रतिभागिता रहती है। वैसे संचार साधनों के विकास के कारण इनमें परस्परता भी बढ़ी है। जन संचार ने इस बदलती परिस्थिति में कई नई विधाओं को भी जन्म दिया है। जन संचार के साधन केवल सूचनाओं का ही प्रसारण नहीं करते, बलकि वैचारिक धरातल पर भी समाज दूसरे समाजों को अपने संदेश से प्रभावित कर सकते हैं। इसे लोग संस्कृति पर प्रभाव के रूप में देखते हैं और इसकी उपादेयता या अवांछनीयता के बारे चिंताशील है।

1.10 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न
   (1) संचार और संप्रेषण की संकल्पनाएँ स्पष्ट कीजिए।
   (2) संप्रेषण के स्वरूप की विवेचना कीजिए।
   (3) संचार साधनों के संदर्भ में सूचना समाज की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

2. टिप्पणियाँ
   (1) संचार और संप्रेषण का अंतःसंबंध
   (2) संप्रेषण का सामाजिक पक्ष
   (3) सूत्रता समाज
   (4) भाषा शिक्षण में संप्रेषण का महत्व
   (5) जनसंचार

इकाई 2 भारत में भाषा चिंतन

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 वाक्
2.3 वाक्य
2.4 क्रिया की संकल्पना
  2.4.1 काल
  2.4.2 वाक्य प्रकार
  2.4.3 कारक
2.5 पद विचार
2.6 ध्वनि विवेचन
2.7 सारांश
2.8 अभ्यास प्रश्न

2.0 उद्देश्य

भाषाविज्ञान आधुनिक युग की देन माना जाता है। लेकिन भाषा चिंतन ..रत में वेदों की रचना के साथ-साथ शुरू हुआ, जहाँ वेदांगों में उच्चारण, शब्दार्थ, छंद आदि संबद्ध विषयों पर गहरी चर्चा हुई है। आधुनिक भाषाविज्ञान ने पाणिनि प्रभुति भारतीय मनीषियों के विचारों से प्रभाव ग्रहण किया है। इस समृद्ध परंपरा का ज्ञान आधुनिक भाषाविज्ञान को समझने में उपयोगी हो सकता है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- वाक् की संकल्पना स्पष्ट कर सकेंगे,
- भाषा में ध्वनि, अर्थ तथा संरचना के संबंध में भारतीय दृष्टि की व्याख्या कर सकेंगे,
- वाक्य का केंद्र तत्व-क्रिया-का महत्व समझा सकेंगे, और
- आधुनिक भाषाविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में भारतीय भाषा चिंतन के महत्व की चर्चा कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

मानव प्रकृति से ही एक जिज्ञासाशील प्राणी है। यों तो मानवेतर प्राणी में भी कुतूहलता होती है, किंतु वह साक्षात् सामने उपस्थित भौतिक घटना के प्रति होती है और वह भी क्षणिक। पर मानव के समक्ष आरंभ से ही ये प्रश्न घुमड़-घुमड़ कर आते थे कि मैं कौन हूँ, यह नवजात शिशु कहाँ से आया है, मेरे दिवंगत पिताश्री कहाँ चले गए हैं, इस सृष्टि का सर्जनहार कौन है, आदि। ये 'कौन', 'कहाँ', 'कब' आदि की जिज्ञासाएँ फिर भी उतनी सार्थक नहीं थीं जितनी कि 'क्यों', 'कैसे' वाली जिज्ञासाएँ। पेड़ से सेब नीचे क्यों गिरा, आकाश में बादल क्यों उमड़ते हैं, सूर्य प्रकाश के साथ-साथ ऊष्मा क्यों देता है आदि प्रश्नों ने अनेकानेक वैज्ञानिक सिद्धांतों एवं आविष्कारों को जन्म दिया। भाषा के प्रति भी इसी प्रकार की जिज्ञासा मानव के लिए सहज थी। इस सत्ता (वस्तु) को इस ध्वनि संयोजन से क्यों पुकारते हैं, इस ध्वनि संयोजन के सुनते ही क्यों इस सत्ता का बिम्ब मनःपटल पर खिंच जाता है, आदि कुछ चिरंतन प्रश्न आज भी मानव शिशु के मन को आलोड़ित करते हैं जिस तरह आदि मानव की संस्कृति के समय करते थे। इन्हीं यक्ष प्रश्नों से भाषा चिंतन का श्रीगणेश हुआ था।

ये भाषाई प्रश्न इस प्रकार नैसर्गिक तो हैं किंतु मातृभाषियों के लिए जो समाज में रहते हुए सहजतः भाषा कौशल प्राप्त करते हैं, ये कुतूहलता मात्र उत्पन्न करते हैं। ये चिंतन का विषय तब बनते हैं जब कोई भाषा कालतः, देशतः या संस्कृतितः उनसे दूरस्थ हो। ऐसी द्विभषिकतावत् स्थिति में अनेक प्राचीन सभ्यताओं में न्यूनाधिक भाषाचिंतन हुए थे। किंतु भारत में भाषाचिंतन के मूल में कोई बौद्धिक विलासिता नहीं थी बल्कि एक ठोस अनिवार्यता थी। भारतीयों के जीवन में वैदिक मंत्रों का व्यवहार एवं प्रयोग अपरिहार्यता रही है। यह हमारी संस्कृति ही है जहाँ मनुष्य के जन्म के पूर्व से उसके संस्कार आरंभ हो जाते हैं और निधन के पश्चात् अंत्येष्टि संस्कार और उसके बाद श्राद्ध, पितृतर्पण आदि अनेक संस्कार होते रहते हैं – और इन सब संस्कारों में वैदिक मंत्रों का ही प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त भारतीयों का अंतिम लक्ष्य मोक्ष अर्थात् जीवन मरण से मोक्ष है और मोक्ष का एक सरल उपाय 'यज्ञ' आदि करना है जिनमें मंत्रों को यदि शुद्ध रूप से उच्चरित न किया जाए अथवा बिना सही अर्थ जाने किया जाए तो सारा प्रयास विफल हो जाता है। इसके लिए प्राचीन ऋषियों से लेकर, जो स्वयं 'मंत्रदृष्टा' मात्र थे (रचयिता नहीं), वैदिक भाषा कालतः एक दूरस्थ या अतिदूरस्थ भाषा थी और उसके प्रगाढ़ परिचय के लिए उस वैदिक भाषा का अतिगंभीर और व्यापक चिंतन-मनन अतिआवश्यक था। यही कारण है कि छह वेदांगों में से चार – शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त तथा छन्दस् – का प्रत्यक्ष संबंध भाषा से है।

2.2 वाक्

ऋग्वेद संहिता से लेकर 'भाषा' के लिए सर्वाधिक प्रयुक्त शब्द 'वाक्' है। वाक् की संकल्पना भारतीय चिंतन में बड़ी विचित्र है। वाक् नित्य है, वाक् ब्रह्म है, 'वाग् वै विराट्, वाग् वै सरस्वती, ... वाग् वै मतिः, वा वै धीः .....' और वाक् के तीन स्तरों के रूप में द्युलोक, अंतरिक्ष और पृथ्वी की कल्पना की गई है। वाक् ही देवताओं की धारिका और प्रेरिका शक्ति है।

वाक् हमारी भाषाई अभिव्यक्ति शक्ति है, यह वह नैसर्गिक शक्ति है जिससे हम कोई वाचिक अभिव्यक्ति कर सकते हैं। वाक् के कई पर्याय मिलते हैं किंतु आगे चलकर 'भाषा' शब्द भाषा विशेष (जैसे, संस्कृत, यवन, म्लेच्छ भाषा आदि) के लिए सीमित हो गया और 'वाणी' शब्द बहिः निःसृत वाचिक अभिव्यक्ति के लिए, विशेषतः उच्चारण गुणताओं के वैचित्र्य के लिए, सीमित हो गया।

वाक् विषयक उल्लेखनीय भाषा चिंतन है वाक् के चार रूप या चार अवस्थाएँ मानना। ऋग्वेद में ही इस ओर विशेष इंगित है :

> चत्वारि वाक् परिमिता पदानि, तानि विदुर्ब्राह्मणा मे मनीषिणः।
> गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति, तुरीयं वाचो मनुष्याः वदन्ति।।

(1-164-45)

इस मंत्र में विद्वानों द्वारा जानने योग्य चार रूप बताए गए हैं – इनमें तीन तो गुफ़ा में छिपे रहते हैं, चौथा रूप मनुष्य बोलते हैं। सायण, गौडपाद और भर्तृहरि के अनुसार ये रूप हैं – परा, पश्चयंती, मध्यमा और वैखरी। सायण ने इसकी व्याख्या इस प्रकार है :

> "एका एव नादात्मिका वाङ् मूलाधाराद् उदिता सती *परा* इतिह उच्यते। नादस्य च सूक्ष्मत्वेन दुर्निरूपत्वात् सा एव हृदय गामिनी *पश्यंती* इति उच्यते योगिभिः द्रष्टुं शक्यत्वात्। सा एव बुद्धिं गता विवक्षां प्राप्ता *मध्यमा* इति उच्यते, मध्ये हृदयाख्य उदीयमानत्वात् मध्यमायाः। अथ यदा सा एव वक्त्रे स्थिता तालु-ओष्ठ-आदि व्यापारेण बहद् निर्गच्छति तथा *वैखरी* इति उच्यते।"

यदि विपरीत क्रम से चलें तो मुखोच्चरित ध्वनियों के माध्यम से बाहर आने वाली भाषा 'वैखरी' है। **वैखरी** वाक् का वह रूप है, जिसे हम सुनते या बोलते हैं। भर्तृहरि द्वारा इसका स्वरूप इस प्रकार वर्णित है :

स्थानेषु विधृते वायौ कर्तृवर्ण परिग्रहा।
वैखरी वाक् प्रयोक्तृणां प्राणवृत्ति निबंधना।।

[वैखरी भाषा विभिन्न उच्चारण स्थानों में वायु के अवरोध से उत्पन्न होती है। इसमें वर्णों की पृथक्-पृथक् सत्ता रहती है और इसका संबंध सीधा वक्ता की श्वास प्रक्रिया से होता है।]

किंतु मुख से बाहर आने वाली भाषा ही मनुष्य की भाषा का एकमात्र रूप नहीं है। हमारा मस्तिष्क कुछ-न-कुछ सोचता रहता है और वह भाषा के माध्यम से ही सोचता है। इस आंतरिक मनोगत भाषा को **मध्यमा** कहा गया है। मध्यमा का लक्षण भर्तृहरि ने इस प्रकार बताया है :

केवलं बुद्ध्युपादाना क्रम रूपानु पातिनी।
प्राणवृत्ति मतिक्रम्य मध्यमा वाक् प्रवर्तते।।

[मध्यमा भाषा के केवल प्रयोक्ता की बुद्धि में रहती है। उसकी आंतरिक भाषा ध्वनियों में क्रम रहता है और वह व्यक्ति की श्वास प्रक्रिया का अतिक्रमण कर जाती है।]

इस आंतरिक भाषा मध्यमा में भी कर्ता, कर्म, क्रिया आदि उसी क्रम में रहते हैं जिस क्रम में वैखरी में, अंतर केवल यह है कि मध्यमा में श्वास प्रक्रिया से कोई संबंध नहीं होता है। इस प्रकार मध्यमा मनोगत वाक् है। जब हम बोलते हैं तो उसके ठीक पहले मनोगत भाषाबंध तैयार हो जाता है जो हमारे तंत्रिका तंत्र (नर्वससिस्टम) को प्रेरित कर वैखरी अवस्था पर वाक् को ले जाता है।

पश्यंती मध्यमा से पूर्व की वाक् अवस्था है। भर्तृहरि के अनुसार :

अविभागा तु पश्यंती सर्वतः संगतक्रमा।
स्वरूप ज्योति रेवान्तः सूक्ष्मा वागनपायिनी।।

[भाषा की पश्यंती अवस्था में उसकी ध्वनियों या पदों में कोई क्रम नहीं रहता, इसलिए उसका किसी भी दृष्टि से विभाजन या विश्लेषण संभव नहीं है। पश्यंती भाषा की अवस्था में मनुष्य को अपना आंतरिक ज्योतिर्मय स्वरूप उपलब्ध हो जाता है। भाषा का यह सूक्ष्म रूप अविनाशी है।]

पश्यंती एक – भाषाहीनता की स्थिति है। 'ध्यान' की स्थिति में यही वाक् रूप व्यवहृत होता है। पश्यंती हृदय गामिनी है, सूक्ष्मस्वरूप है, और केवल योगियों द्वारा देखी जा सकती है। यह वैखरी तथा मध्यमा की भांति भाषा विशेष से तो बद्ध नहीं है किंतु 'भाषा' (सार्वत्रिक भाषा) से मुक्त नहीं मिली है। यह संप्रत्ययात्मक (conceptual) भाषा स्थिति है।

किंतु वाक् का चौथा रूप **परा** पूर्णतया सबसे मुक्त है। सायण के अनुसार यह 'एका' है, नादात्मिका (नादरूपा) है, मूलाधार में उदित होती है, और 'परा' है। यह वागद्वैतवाद का अनुपम उदाहरण है – यहाँ न कोई देखने वाला है, न दिखाई पड़ने वाला वस्तु; न कोई ज्ञाता है, न जानने योग्य कोई वस्तु। यहाँ नामरूपात्मक सृष्टि का भी भेद नहीं है। यहाँ तक कि ज्ञाता का व्यष्टिपरक रूप भी नहीं रहता है। आचार्य भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में कहा है :

भेदोद्ग्राहविवर्तन-लब्धाकारपरिग्रहा।
आम्नाता सर्व विद्यासु वागेव प्रकृतिः परा।।

[वाक् रूपी शक्ति के विवर्त के कारण ही सृष्टि विभिन्न आकार-रूप में दिखाई पड़ती है। इसीलिए सब शास्त्रों में वाक् को ही पराप्रकृति कहा गया है।]

इस प्रकार से वाक् के चारों रूपों का एक छोर 'वैखरी' हमें समाज से जोड़ता है तो दूसरा छोर 'परा' संपूर्ण सृष्टि की सत्ता से जोड़ता है। इसी तथ्य की ओर भर्तृहरि ने निम्नलिखित से इंगित किया है :

अनादि निधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यद्क्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः।।

अर्थात् भाषा प्रक्रिया के मूल में ही ब्रह्म है जिसके विवर्त के कारण शब्दों के अर्थ के रूप में जगत् के विभिन्न पदार्थों की प्रतीति होती है।

2.3 वाक्य

भारतीय चिंतन में वाक् का एक पर्यायवत् पद 'शब्द' है। इसे भी ब्रह्म माना जाता है अर्थात् शब्द ब्रह्म के समान अंतिम और मौलिक यथार्थ है, जिसके विवर्त या परिणाम के रूप में यह संपूर्ण सृष्टि है। 'शब्द' आत्मा या जीव या व्यक्ति-चेतना के लिए प्रयुक्त होता है और इस प्रकार व्यक्ति की भाषा उसकी संपूर्ण चेतना या उसके संपूर्ण 'स्व' की अभिव्यक्ति है। भर्तृहरि ने इसका विस्तार से विवेचन किया है (जिसका संक्षिप्त उल्लेख पिछले अनुच्छेदों में किया गया है) कि सूक्ष्मवाक् कैसे वैखरी में परिवर्तित होती है। सूक्ष्म वाक् अपने स्वरूप की अभिव्यक्ति के लिए 'शब्द' रूप मे विवर्तित होता है।

'अथायमान्तरो ज्ञाता सूक्ष्मवागात्मना स्थितः।
व्यक्तये स्वस्य रूपस्य शब्दत्वेन विवर्तते।।

इसी प्रक्रिया को और स्पष्ट करते हुए भर्तृहरि ने बताया है कि सर्वप्रथम अंतर ज्ञाता (अंतःकरण), अर्थ बोधन की इच्छा (विवक्षा) से युक्त मन के रूप को प्राप्त करता है तथा जठराग्नि से पाक को प्राप्त कर प्राण वायु को ऊपर की ओर प्रेरित करता है तथा प्राण वायु मन का आश्रय और तद् धर्म प्राप्त कर 'शब्द' रूप में अभिव्यक्त होती है।

इस प्रकार 'शब्द' अभिव्यक्ति की परम इकाई है : वह वक्ता के द्वारा एक समय में दिया अखंड संदेश है और इस दृष्टि से शब्द ही आधुनिक भाषाविज्ञान का डिस्कोर्स् (प्रोक्ति) और भाषाविश्लेषण करते समय वही आधुनिक भाषाविज्ञान का टेक्स्ट (पाठ्य) है।

वैयाकरणों ने शब्द की अखंडता पर सर्वत्र ज़ोर डाला है। पूरा+कथन (=शब्द) अखंड होता है। उसका वाक्यों में विखंडन और वाक्य का पदों में विखंडन और पदों का प्रकृति-प्रत्ययों में विखंडन केवल भाषा-विश्लेषक द्वारा सुविधार्थ अपनाई गई प्रक्रिया है, यथार्थ नहीं। श्रोता तो पूरे संदेश को अखंड रूप से ग्रहण करता है और शब्द बोध में पूर्वापर-क्रम होते हुए भी विच्छिन्नता कहीं नहीं होती।

शब्द (=प्रोक्ति) की लघुतम इकाई वाक्य है। यह भी अपने स्तर पर अखंड है यद्यपि भाषाविश्लेषण की दृष्टि से वाक्य को पदों का (पद वाक्य के विखंडन से प्राप्त भाषिक इकाई है) समूह कहा गया है। प्रसिद्ध उक्ति है, 'आकांक्षा योग्यता सन्निधिश्च वाक्यार्थ ज्ञान हेतु पद समूहो वाक्यम्'। वाक्य पदसमूह है, पदों के माध्यम से ही वाक्यार्थ ज्ञान होता है

और पदों को आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि की कसौटियों पर खरा उतरना पड़ता है, अन्यथा पदसमूह न होकर वह पदों का ढेर है और वाक्य की सत्ता को नहीं प्राप्त कर सकता।

वाक्य की आंतरिक रचना के संबंध में पतंजलि की एक प्रसिद्ध उक्ति है 'एक तिङ्. वाक्यम्' (भूवाद्यो धतवः सूत्र का भाष्यवार्तिक)। क्रिया पद और कारक पदों से युक्त अर्थात् तिङ.न्त और सुबन्त पद आदि अनेक पदों के समूह को वाक्य कहा गया है। तिङ.न्त रूप तो केवल एक होता है किंतु सुबन्त पद, जो एकाधिक कारकों में होते हैं, अनेक होते हैं। किंतु इन पदों को आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि की कसौटी पर खरा उतरना होता है।

वाक्य के आंतरिक विश्लेषण का आरंभ 'तिङ.ज्ञ' से होता है। स्थूलतः तिङ्. वे प्रत्यय हैं जो धातु प्रकृति में लगते हैं, जैसे 'पठति' में 'पठ्+ति', किंतु इनसे क्या बोध होता है, यह भारतीय भाषा चिंतक की एक महत्वपूर्ण खोज है। 'तिङ्.' से क्रिया के आश्रय 'कर्ता' और 'कर्म' का तथा 'संख्या', 'काल' और 'भाव' का बोध होता है। पाणिनि के सूत्र 'लः कर्मणि च भावे चार्कर्मकेभ्यः' (3-4-49) से तिङ्. प्रत्यय सकर्मक धातुओं से विहित होने पर 'कर्ता' और 'कर्म', तथा अकर्मक धातुओं से विहित होने पर 'कर्ता' और 'भाव' अर्थ को अभिहित करता है : 'संख्या' अर्थ का अन्वय तिङ.र्थ के कर्ता होने पर उस से, तथा कर्म होने पर कर्म से होता है? 'काल' का अन्वय सदा धात्वर्थ-व्यापार से होता है। तिङ्. के विपरीत धातु-अंश कर्ता-कर्म से भिन्न सभी कारकों को नियमित करता है, यह नियमन कुछ अवयव पदों से भी होता है, जैसे 'सूर्याय स्वाहा' में स्वाहा द्वारा सूर्य की चतुर्थी विभक्ति का नियमन।

2.4 क्रिया की संकल्पना

वाक्य रचना समझने के लिए क्रिया की संकल्पना सही-सही जानना बहुत आवश्यक है। क्रिया की स्थूल संकल्पना प्रायः सभी के पास है – 'बच्चा दूध पी रहा है' में बच्चा 'पीने' की क्रिया कर रहा है, 'मोहन खाना खा रहा है' में मोहन 'खाने' की क्रिया कर रहा है। किंतु जितनी गहराई से भारत के प्राचीन भाषा चिंतकों ने विवेचना की है, उसके पास आज के पाश्चात्य चिंतक अब पहुँच रहे हैं।

पहली महत्वपूर्ण संकल्पना यह है कि वाक्य में धातु से निर्दिष्ट 'क्रिया' अनेक आनुक्रमिक क्रियाओं के समुच्चय का संघ है अर्थात् प्रत्येक क्रिया अनेक अवयवभूत या गौण क्रियाओं से मिलकर बनती है। उदाहरणार्थ कोई सज्जन खाना खा रहे हैं। क्रिया विश्लेषणार्थ चल कैमरे से एक वीडियो रील तैयार की जा रही है। कोई उस रील को फ्रेम दर फ्रेम देखे तो उसे दिखाई पड़ेगा कि वे रोटी तोड़ रहे हैं (तोड़ना) या दाल-सब्जी में उसे डुबो रहे हैं (डुबोना) : मुँह के पास कौर पहुँचा रहे हैं (कौर डालना) : दाँतों से चबा रहे हैं (चबाना) : कुछ द्रवित कर कंठ एवं भोजन नालिका से जठर में पहुँच रहे हैं (निगलना)। किंतु इन फ्रेमों को धाराप्रवाह से देखें तो पूरी प्रक्रिया के लिए कहेंगे 'खाना'। भर्तृहरि ने 'बुद्ध्या प्रकल्पिताभेदः क्रयेति व्यपदिश्यते' द्वारा इसे स्पष्ट किया है। उनके अनुसार प्रत्येक क्रिया वस्तुतः अनेकानेक उपक्रियाओं अथवा गौण क्रियाओं का समूह है। उपक्रियाएँ क्रमशः एक के बाद एक निष्पत्ति को प्राप्त करती हैं और अंत में मुख्य क्रिया निष्पन्न होती है। किंतु सामान्य व्यक्ति इन सब उपक्रियाओं अथवा गौण क्रियाओं की भिन्नताओं की उपेक्षा करता है और अभेद करते हुए एक मुख्य क्रिया का नाम देता है।

एक अन्य महत्वपूर्ण संकल्पना यह है कि क्रियाओं की दो स्थितियाँ होती हैं। ये हैं – साध्या और सिद्धा। सिद्धा स्थिति वह स्थिति है जब क्रिया व्यापार निष्पन्न हो चुका है, किंतु सिद्धा

स्थिति के पूर्व एक कालव्यापी साध्या स्थिति है। यास्क ने (और बाद में भर्तृहरि आदि ने भी) इस साध्या स्थितिगत क्रिया के छह भाव गिनाये हैं – 'जायते ऽ स्ति विपरणमते वर्धते ऽ पक्षीयते विनश्यति' । क्रिया उत्पन्न या आरंभ होती है, क्रिया अपरिवर्तित रूप में कुछ क्षण विद्यमान रहती है, क्रिया में फिर परिवर्तन होना शुरू हो जाता है, फिर क्रिया में वृद्धि आती है, वृद्धि के शिखर पर पहुँचने के बाद वह ढलने (कम होने) लगती है, और अंत में क्रिया समाप्त, विरामावस्था या विनाश को प्राप्त होती है। सभी क्रियाएँ इस प्रकार छह स्थितियों से गुजरती हैं।

प्राचीन मनीषियों ने सभी धातुओं के मूल में तीन धातुएँ मानी हैं। ये समावेशी धातुएँ हैं – 'अस भुवि', 'भू सत्तायाम्', और 'डुकृञ् करणे'। यदि 'सः पठति' कहते हैं तो उसका अर्थ होता है, 'सः पठनं करोति', यदि 'सः उत्पद्यते' कहते हैं तो उसका अर्थ होता है, 'स : उत्पन्नो भवति'; और यदि 'धनं क्षीयते' कहते हैं, तो उसका अर्थ होता है 'धनस्य क्षतिरस्ति'। इन तीनों, से व्यक्त आज के 'एक्शन', 'प्रासेस' और 'स्टेट' धातुओं की संकल्पना प्राचीन काल में भी उपस्थित थीं, यह हमारे चिंतन की श्रेष्ठता का नमूना है।

एक अन्य महत्वपूर्ण संकल्पना 'फल' और 'व्यापार' की है। प्रत्येक धातु के 'फल' और 'व्यापार' दो अर्थ होते हैं। सामान्य भाषा में 'फल' वह है जिसकी प्राप्ति का उद्देश्य बनाकर व्यक्ति किसी कार्य में प्रवृत्त होता है। और इस फल की प्राप्ति के लिए व्यक्ति जो-जो कार्य करता है वह क्रिया व्यापार है। व्याकरण में भी कुछ सीमा तक यही अर्थ है। 'व्यापार' क्रिया की साध्यावस्था से जुड़ा है और 'फल' क्रिया की सिद्धावस्था से। कभी-कभी ऐसा होता है कि 'व्यापार' तो एक ही है किंतु फल की भिन्नता से पृथक्-पृथक् धातुओं का प्रयोग होता है। 'मोहन आगरा से दिल्ली जा रहा है' में आगरा से वियोग और दिल्ली से संयोग व्यापार का फल है, किंतु 'आगरा से निकल रहा है' में 'निकलना' वियोग -फल है और 'दिल्ली पहुँच रहा है' में 'पहुँचना' संयोगफल है। वैयाकरणों का कहना है कि 'व्यापाराश्रय' कर्ता है और 'फलाश्रय' कर्म है। साथ ही साथ यह भी कहा गया है कि प्रत्येक 'व्यापार' का 'फल' अवश्य होता है। अतएव तर्कतः यह स्वीकार करना पड़ेगा कि वाक्य में कर्म अवश्य होगा। और तब सभी वाक्य सकर्मक हो जाएँगे। इसका उत्तर यह है कि सामान्यतया सामान्य वाक्य कर्मयुक्त होता है किंतु जब धातु ऐसी हो कि कर्ता ही व्यापाराश्रय हो और फलाश्रय भी कर्ता हो तो वाक्य अकर्मक बन जाता है। जैसे, 'मोहन सोता है' में मोहन 'सोना' क्रिया का व्यापार भी करता है और 'सोना' क्रिया का 'फल' भी भोगता है। पाश्चात्य चिंतन में 'व्यापार', 'फल', 'व्यापाराश्रय', 'फलाश्रय' जैसी संकल्पनाएँ नहीं हैं और इस कारण अकर्मक-सकर्मक का भेद स्पष्ट करने में वे असमर्थ रहते हैं।

2.4.1 काल

काल अर्थात् समय पर बहुत प्राचीन काल से भारतीय दर्शन में चिंतन होता आ रहा है। वेदांत के अनुसार क्रमता (जो कि काल का मूल लक्षण है) ब्रह्म में नहीं होती है। अतएव काल वास्तविक सत्ता नहीं है, प्रातिभासिक सत्ता है। फिर भी इस अयथार्थ प्रातिभासिक सत्ता पर विचार करते हुए योगदर्शन संकेत करते हैं कि एक परमाणु पूर्व स्थान को छोड़ बाद वाले स्थान के साथ जब संयोग करता है उस काल (कालावधि) को 'क्षण' कहते हैं और 'क्षण' के निरंतर प्रवाह को 'क्रम' कहते हैं। कालावधि और क्रमता काल की जीवनी संकल्पना है।

वस्तुतः काल एक नित्य और विभु शक्ति है, अतएव काल का कोई भेद तत्वतः नहीं होता है। जगत् में व्यवहार में सुविधा के लिए भेद किये जाते हैं। दर्शन के अनुसार काल की प्रकाशिका (दिखाई पड़ने वाली) और अप्रकाशिका (दिखाई न पड़ने वाली) शक्तियाँ मानी जाती हैं। प्रकाशिका के अंतर्गत 'वर्तमान' आता है और अप्रकाशिका के अंतर्गत 'अतीत'

और 'अनागत' आते हैं। काल-प्रवाह के कारण अनागत (भविष्य) का एक क्षण वर्तमान होते हुए अतीत बन जाता है। इसी कारण भूत-भविष्य-वर्तमान परस्पर अटूट रूप से जुड़े हुए हैं।

भूत (अतीत) : अतीत की अत्यंत वैज्ञानिक परिभाषा है 'आरब्ध परि समाप्तत्वम्'। यदि कोई क्रिया आरंभ होकर समाप्त हो गई हो अर्थात् वर्तमान में चल नहीं रही है तो भूत काल है। संस्कृत व्याकरण में इसके अद्यतन, अनद्यतन और परोक्ष तीन भेद किए गए हैं।

वर्तमान काल : जो क्रिया आरंभ होकर अभी समाप्त नहीं हुई है या पूर्ण नहीं हुई है या समाकलीन है, वह वर्तमान काल की कही जाती है। इसकी परिभाषा यों दी है : 'प्रयोग समकालीनत्वम् आरब्धापरिसमाप्तत्वं वा'।

भविष्यत् काल : वर्तमान काल से उत्तरवर्ती काल भविष्यत् काल है। भर्तृहरि ने इसके चार भेद किये हैं : सामान्य भविष्यत्, अद्यतन भविष्यत्, अनद्यतन भविष्यत्, अद्यतनानद्यतन भविष्यत्।

विधि

उपरिलिखित काल-विवेचन का प्रतिज्ञाप्त्यात्मक (प्रकथनात्मक) वाक्यों से संबंध होता है। विधि के वाक्य काल के क्षेत्र के बाहर होते हैं। इन विध्यात्मक वाक्यों के अंतर्गत सबसे व्यापक क्रिया व्यापार 'प्रवर्तना' है। जहाँ एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को कार्य विशेष के लिए प्रेरित करता है, चाहे आदेश देकर, चाहे प्रार्थना करके या चाहे औचित्य बताकर। इनके लिए संस्कृत में लोट् और लिङ् लकार बहुलता से लगते थे।

2.4.2 वाक्य-प्रकार

पाणिनि ने वाक्य के प्रकारों का विस्तार से, किंतु सूत्रात्मक रीति से, विवेचन किया है। सामाजिक भाषा व्यवहार में प्रयुक्त ये वाक्य प्रकार विशिष्ट लकार लगाने से, विशिष्ट अव्यय लगाने से और विशिष्ट स्वरगुणों (उदात्त, अनुदात्त, त्वरित, प्लुत आदि) को लगाने से अभिव्यक्त होते थे। विद्या निवास मिश्र ने इसको 'भारतीय भाषाशास्त्रीय चिंतन' ग्रंथ में विस्तृत रूप से समझाया है। यहाँ नीचे संक्षेप में भाषाव्यवहार के परिप्रेक्ष्य में उनके नामों का उल्लेख किया जा रहा है।

वार्तालाप के प्रारंभ में (अभ्यादान वाक्य), सीधे प्रश्न के लिए (प्रश्न वाक्य), 'हाँ' उत्तर की अपेक्षा रखने वाले प्रश्न के लिए (प्रत्यारंभ वाक्य), प्रश्न के उत्तर के लिए (पृष्ट प्रतिवचन वाक्य), अभिवादन के उत्तर के लिए (प्रत्याभिवादन वाक्य), प्रश्न के द्वारा समर्थन के लिए (सम्प्रश्न वाक्य), दूर से पुकारने के लिए (दूराह्वान वाक्य), आज्ञा विधि के लिए (विधि वाक्य), आदेश के लिए (प्रैष वाक्य), अनेक कार्यों के लिए एक साथ आदेश के लिए (विनियोग वाक्य), निवेदन के लिए (प्रार्थना वाक्य), अनुमति लेना के लिए (अनुक्षैषणा वाक्य), मनचाही करने की आज्ञा लेने के लिए (अतिसर्ग वाक्य), आदर के लिए (अधीष्ट वाक्य), अपने उद्देश्य प्रकट करने के लिए (कामप्रवेदन वाक्य), विशेष कार्य के लिए न्यौतना (नियंत्रण वाक्य), अनेक विकल्प के साथ-न्यौतना (आमंत्रण वाक्य), वादा करने के लिए (प्रति श्रवण वाक्य) आदि अनेक वाक्यों का उल्लेख पाणिनीय अष्टाध्यायी के 3.3, 3.4, 8.1, 8.2 में बहुलता से है। आज के पाश्चात्य संप्रेषणात्मक व्याकरण के परिप्रेक्ष्य में आप इनकी श्रेष्ठता देख सकते हैं।

2.4.3 कारक

क्रिया की निष्पत्ति स्वयं नहीं हो सकती है। उसके लिए कोई-न-कोई प्रवर्तक होना चाहिए जो उस क्रिया का आरंभ कर सके, उसके लिए कोई-न-कोई साधन होना चाहिए जिससे वह क्रिया निष्पन्न हो सके, और उसके लिए कोई-न-कोई आधार (अधिकरण) होना चाहिए

जहाँ वह निष्पादित हो सके। क्रिया के निष्पादन में उपरिलिखित तथा अन्य समानधर्मा तत्व या घटक जो 'साधन' रूप में आते हैं उन्हें 'कारक' कहते हैं।

'साधन' की परिभाषा यों दी गई है – 'साध्यते ऽ नेन क्रिया इति साधनम्' अर्थात् साधन वह है जिसके द्वारा क्रिया सिद्ध या निष्पन्न हो सके। साधन को गुणसमुदाय या शक्तिसमुदाय भी कहा गया है – इस प्रकार वे सभी 'शक्तियाँ' या 'गुण' जो क्रिया की सिद्धि में निमित्त हैं, 'साधन' कहे जाते हैं और साधन का ही दूसरा नाम कारक है।

दूसरे शब्दों में 'क्रियाजनकत्वं कारकत्वम्' अर्थात् क्रिया के 'जनकता-रूपधर्म' से युक्त को 'कारक' कहते हैं। 'जनकता' कारणता-स्वरूप ही होती है और कारणता को ही दूसरे शब्दों में उत्पादकता या निष्पादकता कहते हैं। 'क्रिया निष्पादकत्वं कारकत्वम्' उक्ति भी कारक की प्रकृति को स्पष्ट करती है। उदहारणार्थ 'चावल पक रहा है' की स्थिति पर विचार करें। कौन पकाता है, क्या (किसे) पकाता है, किसके लिए पकाता हैं, किसके द्वारा या माध्यम या प्रयोग से पकाता है, किसमें पकाता है इत्यादि अनेक कार्यों के आश्रय रूप में कारक के अनेक भेद – कर्ता, कर्म आदि – संभव हैं, ये अवांतर व्यापक किसी-न-किसी रूप में प्रधान क्रिया की निष्पत्ति के कारण बनते हैं और इस कारण इनको 'कारक' कहते हैं।

संस्कृत व्याकरण के परिप्रेक्ष्य में जहाँ क्रिया, धात्वर्थ, विभक्तयर्थ सुब् विभक्ति, तिङ् विभक्ति, अन्वय आदि तकनीकी शब्द हैं, 'विभक्त्यर्थ द्वारा क्रियान्वयित्वं कारकम्' कहा गया है, अर्थात् 'विभक्ति के अर्थ द्वारा क्रिया के साक्षात् प्रत्यक्ष रूप से अन्वित होना ही कारकत्व है।' ध्यान दें कि क्रिया का जब विभक्त्यर्थ के साथ अन्वय होता है तब क्रिया का अर्थ प्रधान होता है। जैसे 'चैत्रो गच्छति' वाक्य में 'चैत्र' के बाद आने वाली प्रथम विभक्ति का अर्थ और 'गम्' धातु के बाद आने वाली '-ति' विभक्ति का अर्थ दोनों अर्थ अभिन्न होकर 'गमन' क्रिया में अन्वित होते हैं। अतः यहाँ गमन क्रिया की प्रधानता मानी जाती है। किंतु जब विभक्त्यर्थ का नामार्थ (नाम=संज्ञा आदि) के साथ अन्वय होता है तब विभक्ति का (न कि धातु का) अर्थ प्रधान होता है, जैसा कि षष्ठी विभक्ति में। (इसीलिए षष्ठी कारक नहीं है)।

कारक के भेद

यों तो कर्तृत्व (कारकत्व) आंतरिक रूप में सर्वत्र एक है अर्थात् वाक्य में प्रयुक्त सभी कारक मिल कर एक ही कर्तृत्व का सृजन करते हैं : किंतु इन्हें विभक्त करके देखने पर हम विभक्ति आदि के द्वारा बँटा हुआ पाते हैं और उनके भेद मान सकते हैं।

> 'अपादान–सम्प्रदान–करणाधार–कर्मणाम्।
> कर्तुश्च भेदतः षोढा कारकं परिकीर्तितम्॥'

के अनुसार कम प्रधान से अधिक प्रधान क्रम में छह कारक अपादान, संप्रदान, करण, अधिकरण, कर्म और कर्ता हैं। नीचे इनका विवेचन प्रधानता के क्रम से अर्थात् कर्ता, कर्म, अधिकरण, करण, संप्रदान, अपादान के क्रम में किया जा रहा है।

कर्ता

कर्ता की परिभाषा 'स्वतंत्रः कर्ता' सूत्र (अष्टाध्यायी 1-4-24) से पाणिनि ने की है। 'क्रियायां स्वातंत्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्' के अनुसार कर्ता क्रिया का स्वतंत्र, मुख्य और अ-पराश्रित स्रोत है। 'तथा हि स्वतंत्रः कर्ता। स्वातंत्र्यश्च धात्वर्थ व्यापाराश्रयत्वम्'। उदाहरणार्थ– 'चावल पक रहा है' इस स्थिति में ये सभी कथन सत्य हैं – देवदत्तः पचति, स्थाली (बर्तन जिसमें चावल पकते है) पचति, अग्निः पचति, एधांसि (लड़कियाँ) पचन्ति, तण्डुल (चावल) पच्यते। ऐसी सर्वत्र कर्तृता स्थिति में भाष्य में कहा गया है कि 'कथं पुनः

ज्ञायते कर्ता प्रधानमिति यत्सर्वेषु साधनेषु सन्निहितेषु कर्ता प्रवर्तयिता भवति।" अर्थात् कर्तृत्व की संकल्पना के अनुसार देवदत्त के अतिरिक्त स्थाली, अग्नि, एधांसि, तण्डुल सभी में कर्तृत्व विद्यमान है, तो कैसे जाना जा सकता है कि 'कर्ता'

कौन है। उत्तर यह है कि कर्ता स्वतंत्र है, वह प्रवृत्ति (क्रियारंभ) या निवृत्ति (क्रिया समाप्ति) करने के लिए दूसरे पर निर्भर नहीं है। सभी कारकों (कर्तृताशक्ति वालों) के होते हुए भी कार्य (क्रिया, क्रिया व्यापार) तब तक नहीं होता जब तक इन कारकों के कार्य करने के लिए कोई प्रेरक न हो – इस कारण कर्ता प्रधान है और चेतनता उसकी आवश्यकता है। चेतनता के कारण वह अपने यत्न-प्रयास (तकनीकी वैयायिक पद 'कृति') कर सकता है और कृतिमान् बन सकता है।

सूक्ष्मतः कर्ता के दो भेद हैं – (1) स्वतंत्र या शुद्ध कर्ता (पाणिनि के 'स्वतंत्रः कर्ता' द्वारा प्रतिपादित) जिसका उदाहरण है 'देवदत्तः ओदनं पचति, और (2) हेतु या प्रेरक कर्ता (पाणिनि के 'तत्प्रयोजको हेतुः' द्वारा प्रतिपादित) जिसका उदाहरण है 'कृष्ण देवदत्तेन ओदनं पाचयति'। दूसरे शब्दों में मूलधातु के प्रधान व्यापार के आश्रय को शुद्ध कर्ता तथा प्रेरणार्थक धातु के प्रधान व्यापार के आश्रय को प्रयोजक या हेतु कर्ता कहते हैं। एक तीसरा भेद भी माना जा सकता है, वह है 'कर्मकर्ता', जैसे, 'देवदत्तो यज्ञदत्तं गोकुलं गमयति' में देवदत्त प्रयोजक कर्ता है और वास्तविक क्रिया करने वाला इस वाक्य का कर्म यज्ञदत्त है।

कर्म

भारतीय प्राचीन भाषा चिंतन में धातु के 'व्यापार' और 'फल' दो अर्थ होते हैं। 'व्यापार' का आश्रय 'कर्ता' होता है और उस व्यापार से उत्पन्न 'फल' का आश्रय 'कर्म' होता है। उदाहरणार्थ, 'देवदत्तः ओदनं पचति' (देवदत्त चावल पकाता है) में धात्वर्थ फल विक्लित्ति (चावल का फूलना-पकना) है और इस विक्लिति का आश्रय (कौन फूल रहा है, कौन पक रहा है इसका उत्तर) 'ओदन' है। 'देवदत्तः घटं करोति' (देवदत्त घड़ा बनाता है) में धात्वर्थ फल 'उत्पत्ति' (उत्पन्न होना) है और इस उत्पन्न होने का आश्रय (कौन उत्पन्न हो रहा है इसका उत्तर) 'घट' है।

कर्म की सामान्य व्युत्पत्ति मूलक आख्या 'क्रियते यत् तत् कर्म' है (कर्ता अपनी क्रिया से जिसे करता है वह कर्म है)। पाणिनि ने 'कर्तु-रीप्सततमं कर्म' (1-4-40) सूत्र द्वारा कर्म को परिभाषित किया है। इसे दूसरे शब्दों में कह सकते हैं –'कर्तुः क्रियया आप्तुं इष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्' (कर्ता का अपनी क्रिया द्वारा प्राप्त करने का इष्टतम कारक कर्म है)। शास्त्रों में यह शंका उठाई गई कि इष्टतम क्यों कहा, केवल इष्ट क्यों नहीं। उत्तर में यह उदाहरण दिया गया – 'पयसा ओदनं भुङ्क्ते' (दूध के साथ चावल खा रहा है)। यहाँ खाने वाला दूध भी ले रहा है और चावल भी, दोनों इष्ट हैं, किंतु 'चावल' मुख्य है और इष्टतम भी।

संस्कृत व्याकरण में कर्म के कई प्रकार से भेद किये गये हैं। वाक्यपदीय के अनुसार :

निवर्त्यं च विकार्यं च प्राप्यं चेति त्रिधा मतम्।
तच्चेप्सिततमं कर्म चतुर्धाऽन्यत्तु कल्पितम्।।
औदासीन्येन सत् प्राप्यं यच्च कर्तुरनीप्सतम्।
संज्ञान्तरैरनाख्यातं यद् यच्चाप्यन्य पूर्वकर्म।।

(3-45 और 46)

(i) निवर्त्य : 'देवदत्तः घटं करोति'। घट क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है। पहले नहीं था।

(ii) **विकार्य :** 'काष्ठं भस्म करोति'। काष्ठ, भस्म क्रिया के फलस्वरूप नष्ट या अस्तित्वहीन हो गया। 'सुवर्णं कुण्डलं करोति' स्वर्ण, क्रिया के बाद स्वर्ण न रहकर कुंडल हो गया।

(iii) **प्राप्य :** 'रूपं पश्यति'। रूप देखने के पहले भी था और बाद में भी है। 'वाराणसी गच्छति' में वाराणसी जाने के पहले भी था और बाद में भी है।

(iv) **उदासीन :** कर्ता की न इच्छा है, न अनिच्छा। 'ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति' में तृण उदासीन कर्म है क्योंकि तिनका छूने की न इच्छा थी और न अनिच्छा।

(v) **अनीप्सित :** 'ओदनं भुंजामो विषं भुङ्क्ते' (चावल खाते-खाते विष खा गया) में विष खा तो लिया गया पर वह अनचाहा था।

(vi) **अनाख्यात :** पाणिनि ने इसे अकथित कहा है। कुछ इनी-गिनी क्रियाओ के अपादानादि कारक विशेषों के साथ यह आता है। जैसे 'गाय दुहना' = 'गाय से दूध दुहना'।

ये ऊपर के छह भेद प्रायः सार्वत्रिक (यूनीवर्सल) हैं। इनके अतिरिक्त एक (vii)'अन्यपूर्वक' संस्कृत भाषा के विशिष्ट रूपों को स्पष्ट करने का प्रयास है।

अधिकरण

क्रिया निष्पादकों (=साधकों, करणों) में से एक आधार देने वाला करण होता है उसे 'अधिकरण' कहते हैं। पाणिनि ने 'आधारोऽधिकरणम्' सूत्र से बताया है। एक दृष्टि से अधिकरण 'कारक' नहीं है क्योंकि इसका क्रिया से प्रत्यक्ष संबंध नहीं है – यह या तो 'कर्ता' का स्थल (लोकेशन) बताता है या 'कर्म' का। फिर भी भर्तृहरि के अनुसार :

कर्तृ कर्म व्यवहिताम साक्षात् धारयत् क्रियाम्/
उपकुर्वत् क्रियासिद्धौ शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम्।। (3-148)

अर्थात् अधिकरण की कर्ता अथवा कर्म के आश्रय के रूप में क्रिया-संपन्नता के कार्य में उपकारी (उपकुर्वन्) होने के कारण क्रिया की सिद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका है–यदि स्थाली न हो तो चावल पकेगा किस में।

आधार को प्रायः तीन भेदों में विभाजित किया जाता है – औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक। औपश्लेषिक में दो वस्तुओं का उपश्लेष (=संयोग, आधार-आधेय संबंध) होता है, जैसे 'करे शेते' (चटाई पर सोता है)। वैषयिक में विषयता (=विषय में, विषय के बारे में) संबंध होता है, जैसे 'मोक्षे इच्छा अस्ति', 'गमने रुचिः न अस्ति' आदि। अभिव्यापक में अभिव्याप्ति (अलग न होने वाली व्याप्ति) होती है, जैसे 'तिलेषु तैलम्', तिलों में से तेल को अलग कर लेने के बाद फिर से उन्हीं तिलों में उस तेल को भरा नहीं जा सकता, जब कि चटाई पर फिर से सोया जा सकता है और मोक्ष की फिर से इच्छा की जा सकती है।

करण

कोई भी व्यक्ति किसी क्रिया व्यापार को तब तक संपन्न नहीं कर सकता जब तक उसके पास उस क्रिया की साधक वस्तुएँ न हों, चावल तब तक नहीं पकेगा जब तक पात्र और ईंधन न हो। इन साधकों को 'करण' कहते हैं और पाणिनि के 'साधकतमं करणम्' सूत्र के अनुसार जो करण (=साधक) प्रकृष्ट रूप से क्रिया संपन्न करने वाला है वह 'करण' कारक है। यह प्रकृष्टता इस बात की है कि "बिना किसी व्यवधान के अर्थात् प्रत्यक्ष एवं अविलंब वह 'फल' को उत्पन्न करता है।" भर्तृहरि के शब्दों में :

क्रिया याः परिनिष्पत्तिर्यद् व्यापारादनन्तरम्।
विवक्ष्यते यदा यत्र करणं तत्तदा स्मृतम्।।

संप्रदान एवं अपादान

कर्ता, कर्म, अधिकरण, करण सभी क्रियाओं के साथ आते हैं। अब दो कारकों की चर्चा की जा रही है जिनका प्रयोग विशिष्ट प्रकृति रखने वाली क्रियाओं के साथ होता है।

क्रिया का कर्ता अपनी क्रिया के फलाश्रय कर्म को जिससे विशेष संबंध स्थापित करता है, वह उद्देश्य भूत अर्थ संप्रदान कारक कहा जाता है। पाणिनि ने 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' (1-4-32) सूत्र से यही बात कहीं है। दूसरे शब्दों में कर्ता जन जिस 'अर्थ' के साथ कर्म या क्रिया के माध्यम से संबंध करना चाहेगा, तब उसे 'अर्थ' की संप्रदान संज्ञा होगी। सामान्य उदाहरण है – ब्राह्मणाय गां ददाति।

अपादानकारक का पाणिनीय सूत्र 'ध्रुवमपाये ऽ पादानम्' (1-4-24) यह बताता है कि किसी सापेक्षिक रूप से अचर स्थिति से किसी का स्थितिच्युत हो जाना अपादान (हट जाना) है। क्रिया के परिणामस्वरूप कोई किसी से अलग दूर विश्लिष्ट होता है। सामान्यतया यह विलगन स्थान या काल के किसी बिंदु से होता है किंतु कभी-कभी यह भावात्मक एवं बौद्धिक भी हो सकता है – मोहन घर से स्कूल जा रहा है, सुबह से पढ़ रहा है, शेर से डरता है।

अन्य कारकों की प्रथमा विभक्ति

इतना निर्विवाद है कि सभी कारक क्रिया के निष्पादन में कुछ-न-कुछ भूमिका निभाते हैं। प्राचीन भाषा चिंतकों का यह मत था कि वक्ता अपनी विवक्षा के अनुसार किसी भी कारक को 'प्रधान' (स्वतंत्र) तथा गौण (परतंत्र) बना सकता है (विवक्षातः कारकाणि भवन्ति)। मान लीजिए रोटी बनाने में वक्ता बेलन के किसी विशेष अन्यत्र दुर्लभ गुण को उच्च प्रकाश में लाना चाहता है तो कहेगा कि 'यह बेलन बहुत पतली रोटी बनाता है'। या कोई पतीली बहुत जल्दी गर्म हो जाती है किंतु तले के मोटेपन के कारण चावल जलने नहीं पाता है तो कहेंगे कि 'यह पतीली बहुत फूले-फूले चावल बनाती है।' ऐसी स्थितियों में प्रधान चेतन कर्ता क्षीणकर्तृत्व हो जाता है और वाक्य में अभिव्यक्त तक नहीं होता और ये गौण साधक जिनकी कर्तृता बढ़कर बतायी जाती है कर्ता बनकर प्रथमा विभक्ति में आते हैं। विवक्षा से कारक होते हैं यह भारतीय चिंतन इस दृष्टि से अति उल्लेखनीय है।

2.5 पद विचार

वाक्य की प्रकृति स्पष्ट करते हुए यह संकेत दिया गया था कि 'शब्द' अखंड है फिर भी विश्लेषण सौकर्य के लिए वाक्य – पद – प्रकृति प्रत्ययों की संकल्पना की जाती है। पदों का समूह वाक्य बनाता है किंतु पद स्वयं प्रकृति प्रत्ययों से बनते हैं।

पाणिनीय सूत्र 'सुप्तिड.न्तं पदम्' पद के स्वरूप को स्पष्ट करता है। सभी पद विभक्ति-प्रत्यन्त होते हैं – पदों में एक अंश 'प्रकृति' कहा जाता है, और दूसरा अंश प्रत्यय (विभक्ति-प्रत्यय)। यदि प्रकृति 'धातु' है तो 'तिड.' प्रत्यय लगते हैं, यदि प्रकृति 'धातु भिन्न' (जैसे, संज्ञा, सर्वनाम आदि) है तो 'सुप्' प्रत्यय लगते हैं। धातु भिन्न प्रकृति को प्रातिपदिक कहते हैं।

संस्कृत व्याकरण में पाणिनीय सूत्र 'विभक्तिश्च' (1-4-104) के द्वारा सुप् और तिड्. प्रत्ययों को विभक्ति कहते हैं। सुप् प्रत्यय जिस प्रकृति में लगता है वह 'प्रातिपदिक' कहा जाता है जिसकी परिभाषा पाणिनीय सूत्र 'अर्थवत्अधातुः प्रत्ययः प्रातिपदिकन्' (1-2-45) द्वारा दी गई। यह मूल (सरल) या यौगिक हो सकता है। यौगिकता का माध्यम है – कृदन्त, तद्धितान्त या समास से समस्त पद बनना।

इन कृदन्त, तद्धित, समास आदि की संकल्पनाएँ पाठक के लिए पूर्णतया सुपरिचित है, इसलिए विस्तारभय से इनका विवेचन नहीं किया जा रहा है।

व्युत्पत्ति निरुपण

व्युत्पत्ति निरूपण के क्षेत्र में जितना व्यापक एवं गंभीर चिंतन-मनन प्राचीन भारतीय मनीषियों द्वारा हुआ है उतना किसी भी देश या भाषा में आज तक नहीं हुआ है। इस अध्ययन कार्य में कोई बौद्धिक विलासिता नहीं है अपितु एक व्यावहारिक अनिवार्यता है। बिना 'अर्थ' समझे यज्ञ-यागादि का फल नहीं मिलता है और सही-सही अर्थ जानना ऋषियों के लिए भी एक दुष्कर कार्य था। 'मंत्रदृष्टारः' ऋषिगण भी कालतः दूरस्थ या अतिदूरस्थ थे। इस कारण एक पूरे-के-पूरे वेदांग 'निरुक्त' को यह दायित्व सौंपा गया। सर्वप्रथम निघण्टु में कठिन और अपरिचित शब्दों के सही-सही अर्थ ढूँढ़ निकालने का प्रयास किया गया और आगे चल कर नैरुक्तों ने अर्थ निर्वचन की जटिल प्रक्रिया विकसित की।

निरुक्त ज्ञान-विज्ञान की वह शाखा थी जो शब्दों की व्याख्या अथवा निर्वचन करती थी। निर्वचन के दो पक्ष होते हैं –'शब्द' और 'अर्थ'। शब्द का, व्युत्पत्ति-नियमों के द्वारा प्रकृति और प्रत्ययों में विभाजन किया जाता है और तत्पश्चात् वेद मंत्रानुकूल अर्थ स्पष्ट किया जाता है।

निरुक्त के परास में वे शब्द नहीं आते हैं जिनका अर्थ स्वयं प्रकृति–प्रत्यय विभाजन से ही पारदर्शी रीति से निकल आता है वे शब्द कभी-कभी आ जाते हैं जिनके अर्थ, प्रकृति-प्रत्यय विभाजन मात्र से ही स्पष्ट नहीं हो जाते हैं और निर्वचन का आश्रय लेना पड़ता है, और वे शब्द निरुक्त के क्षेत्र के ही हैं जिनकी व्युत्पत्ति अस्पष्ट और अनुमान गम्य नहीं है। इस तीसरी कोटि के शब्दों का विवेचन (i) इनसे मिलते-जुलते अर्थ वाले शब्दों के माध्यम से किया जाता है और यहाँ अर्थ एवं ध्वनियों के साम्य को विवेचन का आधार बनाया जाता है। 'अर्थ साम्य' के निश्चय के लिए दो बातों पर ध्यान देना आवश्यक है – (i) विवेच्य शब्द की प्रसंगानुकूलता और (ii) विवेच्य शब्द और जिस शब्द के साथ उसका संबंध स्थापित किया जा रहा है उन दोनों के बीच किसी अर्थ वैशिष्ट्य की समानता। ध्वनि-साम्य के निश्चयन के लिए विवेच्य शब्द और जिस शब्द के साथ उसका संबंध स्थापित किया जा रहा है उनमें किंचित् ध्वनि समानता होनी चाहिए। यदि ध्वनि समानता स्पष्ट नहीं है तो ध्वनि रूपांतरणों के विचित्र रीति से खोज नियमों के अनुसार उनमें ध्वनि साम्य संबंध विद्यमान होना चाहिए। ये ध्वनि रूपांतरण, अभी हाल के 'जनरेटिव फोनालोजी' के ध्वनि रूपांतरणों से कहीं अधिक प्रयोज्य एवं संगत हैं। नीचे इन ध्वनि रूपांतरणों के नियमों का कुछ संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

यास्क ने ध्वनि विकार की जिन प्रमुख दिशाओं का उल्लेख किया है, वे हैं – वर्णलोप, वर्णागम, वर्णविपर्यय और वर्णविकार।

(1) **वर्णलोप :** आदि लोप (स्कम्भ > कम्भन्), मध्यलोप (प्रत्यञ्च् > प्रतीच, उपधालोप (अञ्ज् > आंज्य), टिलोप (मनस् > ईषिन् > मनीषिन्, अन्तलोप (ध्वंस् > ध्वान्त)

(2) **वर्णागम :** पृथ्वी > पृथिवी, जन्मन् > जनिमन्

(3) **वर्णविपर्यय :** श्चुत् > स्तोक

(4) **वर्ण विकार :** यह ध्वनि विकार यदि पास की किसी अन्य ध्वनि के प्रभाव से होते है तो उसे 'परतंत्र विकार' कहते हैं और यदि ध्वनिविकार का संबंध अन्य ध्वनि से नहीं है तो उसे 'स्वतंत्र विकार' कहते हैं।

(क) **स्वर परतंत्र विकार :** दिन् > द्यु, पी > पयस्, गुह् > गूढ, कृ > चक्रि, तृ > तीर्ण

(ख) **व्यंजन परतंत्र विकार :**

(i) चवर्ग > कवर्ग – वच्+क्त > वूक्त, भज्+क्त > भक्त, उज्+र > उग्र

(ii) चवर्ग > ऊष्म – राज् + त्र > राष्ट्र

(iii) तवर्ग > चवर्ग – द्युत > ज्योतिष्

(iv) घोष > अघोष – दभ्+स > दिप्स

(v) कंठ घोष महाप्राण (ह) > मूर्धन्यीकरण–गुह > गूढ

(ग) **स्वर स्वतंत्र विकार :** ✓ पा > पितु, ✓ सि > सेतु, श्रु > श्लोक

(घ) **व्यंजन स्वतंत्र विकार :** ✓ मन्द् > मण्ड्क, वि+रुह् > वीरुध्, पच् > पाक, कित् > चित्र

आरंभ में व्युत्पत्ति के कुछ संप्रदाय यह मानकर चलते थे कि प्रत्येक शब्द 'धातुज' होता है अर्थात् उसके मूल में कोई-न-कोई धातु होगी। इस संप्रदाय वालों को नाना प्रकार के प्रत्ययों तथा ध्वनि-अंतरणें की कल्पना करनी पड़ती थी। पाणिनि ऐसा नहीं मानते थे, यह बात दूसरी है कि उन्होंने भी उणादि सूत्रों द्वारा नाना प्रकार के प्रत्ययों की कल्पना की। व्युत्पत्ति निरूपण बाद में लौकिक संस्कृत में लिखे महाकाव्यादि को समझने के लिए भी महत्वपूर्ण बना रहा क्योंकि सभंगश्लेष और अभंगश्लेष से उत्पन्न अर्थ वैचित्र्य व्युत्पत्ति-विशेषज्ञ ही निकाल सकता था।

2.6 ध्वनि विवेचन

ध्वनि विज्ञान का जितना गंभीर और व्यापक अध्ययन भारत में हुआ है उतना निश्चयतः अन्यत्र नहीं हुआ है और इसको पाश्चात्य विद्वानों ने निर्विवाद माना है। छह वेदांगों में एक 'शिक्षा' का विषय ध्वनिविज्ञान है। शिक्षा और प्रातिशाख्य ग्रंथों में, आज से लगभग दो-ढाई हजार साल पहले बोलने की प्रक्रिया, उच्चारण-अवयव, उच्चारण प्रक्रिया, ध्वनियों का वर्गीकरण, उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न, मात्रा-काल, स्वराघात, स्वरसंधि के अतिरिक्त वैदिक ऋचाओं की वाचन रीति तथा उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के साथ-साथ हस्तसंचालन के संबंध में विशद विवेचन है।

ध्वनि वर्गीकरणर

पाणिनीय शिक्षा के अनुसार 64 (या 63) वर्ण हैं :

स्वर : अ, आ, आ^3 इ, ई, ई^3; उ, ऊ, ऊ^3; ऋ, ॠ, ऋ^3 ; लृ, लृ^{3}; ए, ए^3; ओ, ओ^3; ऐ, ऐ^3; औ, औ^3; (योग 22)

स्पर्श : क ख ग घ ङ; च छ ज झ ञ; ट ठ ड ढ ण; त थ द ध न; प फ ब भ म (25)

अंतःस्थ : य, र, ल व (4)

ऊष्म : श, ष, स, ह (4)

अयोगवाह : अनुस्वार, विसर्जनीय, जिह्वामूलीय, उपाध्मानीय (4)

यम : कुं खुं गुं घुं (4)

दुःस्पृष्ट : ळ (एक)

कुछ लोगों के अनुसार जो 'ळ' नहीं मानते या 'लृ³' नहीं मानते वर्णों की संख्या 63 है। वर्णों का ऐसा वैज्ञानिक ध्वनिशास्त्रानुसारी क्रमीकरण संसार की किसी भाषा में नहीं है।

ध्वनि-उत्पादन

ध्वनि कहाँ से उत्पन्न होती है, उसमें कौन-कौन से अवयव किस प्रकार आपरिवर्तन करते हैं यह सब आज के स्वनविज्ञान के अध्ययनों में मिलता है किंतु प्राचीन भारतीय चिंतकों ने और भी गहराई से इसको जाना है। पाणिनीय शिक्षा के निम्नलिखित श्लोक इस पर प्रकाश डालते हैं :

> आत्मा बुद्ध्या समेत्यर्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया।
> मनः कायाग्निं आहान्ति स प्रेरयति मारुतम्।।
> मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्र जनयति स्वरम्।
> . . . .
> सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः।
> वर्णाञ्जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः।।
> स्वरतः कालतः स्थानान्प्रयत्नानु प्रदानतः।

आत्मा बुद्धि के द्वारा संदेशार्थ को इकट्ठा करती है, उन्हें कहने की इच्छा से मन को लगाती है। तब मन, इच्छा से युक्त, जठराग्नि को जगाती है। यह जठराग्नि अग्नि को और अग्नि वायु को प्रेरित करती है। यह वायु उरस्थल में विचरण करती हुई ध्वनि उत्पन्न करती है। यह कण्ठ प्रदेश में, फिर शिरोभाग में, फिर वहाँ से टकरा कर लौट कर मुख रन्ध्र से बाहर निकलती है। मुख विवर में ही विभिन्न प्रक्रियाओं के योग से वायु वर्णों को जन्म देती है, जिन्हें हम पाँच वर्णों में बाँट सकते हैं। स्वर, काल, स्थान, प्रयत्न और अनुप्रदान के वैभिन्य के कारण ये वर्ण भिन्न-भिन्न होते हैं।

आत्मा-बुद्धि-अर्थ-मन-इच्छा-अग्नि-वायु-नाद – यह पूरी प्रक्रिया ध्वनि उत्पादन में अवश्य होती है किंतु इतनी सारी प्रक्रियाओं का मनुष्य को आभास नहीं होता है। कमल के सौ दलों को सूई एक साथ इतना शीघ्र भेद देती है कि पूरी प्रक्रिया केवल एक प्रतीत होती है (उत्पल पत्र शत सूची भेद न्याय)। उसी प्रकार यहाँ भी होता है।

उच्चारण-वाचन शुद्धता

भारतीय मनीषियों ने वैदिक मंत्रों के अतिरिक्त काव्यादि वाचन तथा सामाजिक भाषा में प्रयुक्त वार्तालाप में उच्चारण शुद्धता पर गहरा विचार किया है। पाणिनीय शिक्षा की निम्नलिखित पंक्तियाँ बहुधा उद्धृत की जाती हैं :

> शंकितं भीतमुद्धृष्टं अव्यक्तं अनुनासिकम्।
> काकस्वरं शिरसि गतं तथा स्थान विवर्जितम्।।
> उपांशुदष्टं त्वरितं निरस्तं विलंबितं गद्गदितं प्रगीतम्।
> निष्पीडितं ग्रस्तपदाक्षरं च वदेन्न दीनं न तु सानुनास्यम्।।

अर्थात् (1) शंकित होकर, (2) डरकर, (3) ज़ोर से चिल्लाकर, (4) अस्पष्टतापूर्वक, (5) नाक से नकिया कर, (6) कौए के स्वर जैसा, (7) मूर्धा पर जीभ को अनावश्यक मोड़ देते हुए, (8) निश्चित ध्वनि स्थान को छोड़ कर भिन्न स्थान से, (9) मुँह में ध्वनि या शब्द को काटते हुए, (10) तेज गति से, (11) मानो फेंक रहे हों, (12) अधिक रुक-रुक कर, (13) गद्गद स्वर से, (14) गाते हुए स्वर से, (15) शब्दों को चबाते हुए, (16) दीनता के साथ रिरियाते हुए, (17) अनावश्यक अनुनासिकता के साथ – इस प्रकार अक्षर और पदों का उच्चारण नहीं करना चाहिए।

याज्ञवल्क्य शिक्षा में 'व्याघ्री यथा हरेत्' आदि श्लोक हैं। उनके अनुसार वर्ण, पद, वाक्य को स्पष्ट, मधुर और पूरा-पूरा उच्चरित करना चाहिए। जैसे मस्त हाथी एक-एक पैर रखता हुआ सुस्थिर गति से आगे बढ़ता है वैसे ही वक्ता को एक-एक पद स्पष्टतया स्थिरगति से बोलना चाहिए।

अर्थ विचार

अर्थ विचार की दिशा में भी प्राचीन भारतीय भाषा चिंतकों का अनुपम योगदान है जिसे सभी पाश्चात्य विद्वानों ने स्वीकार किया है। अर्थ की प्रकृति, अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया, अनेकार्थता की स्थिति में अर्थनिनिश्चय, आदि अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियों का विशद विवेचन इकाई-14 (अर्थ संरचना) में किया जा रहा है।

2.7 सारांश

भारतीय मनीषियों ने वाक् को उच्चारित भाषा से अधिक व्यापक अर्थ में लिया है। वाक् के चार रूप हैं – परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी। इनमें केवल वैखरी प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ने वाली भाषा है, शेष सबका संबंध मन में विचारों के प्रस्फुटन से है। इस तरह उन्होंने वाक् को व्यापक, दार्शनिक धरातल पर प्रस्तुत किया है। वाक् को 'शब्द' भी कहा जाता है और भारतीय चिंतक शब्द को ब्रह्म कहते हैं। इस अर्थ में भाषा केवल विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि संपूर्ण सृष्टि तथा चेतना की अभिव्यक्ति है।

भारतीय भाषा चिंतकों ने क्रिया की चर्चा करते हुए कार्य व्यापार की सत्ता को वस्तु जगत् के सत्य से जोड़ा है। कारकों के माध्यम से उन्होंने यह दिखाने का यत्न किया है कि क्रिया के निष्पादन में वे किस तरह साधन के रूप में काम करते हैं।

पद की संकल्पना भारतीय भाषा चिंतन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। पदों की रचना 'प्रकृति' और 'प्रत्यय' के योग से होती है। इस संदर्भ में प्रातिपदिक, कृदंत, समास आदि संकल्पनाएँ भारतीय भाषा चिंतन की देन है।

भारतीय मनीषियों ने निरुक्त में व्युत्पत्ति निरूपण की चर्चा की और यंत्रों की सहायता के बिना ही ध्वनियों का वैज्ञानिक ढंग से वर्गीकरण प्रस्तुत किया। ये सब बताते हैं कि किस तरह भाषा चिंतन के क्षेत्र में पूर्ववर्ती चिंतकों ने विश्लेषण की गहराई तथा वर्णन की वैज्ञानिकता का परिचय दिया है।

अर्थ विचार संबंधी भारतीय चिंतन को आप आगे की इकाई 15 में पढ़ेंगे।

मध्यकालीन भाषाओं – पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में भी अनेक महत्वपूर्ण व्याकरण कृतियाँ मिलती हैं। पालि के कच्चायन और मोग्गलयन रचित, प्राकृत के वररुचि रचित और अपभ्रंश के हेमचंद्र रचित व्याकरण अति प्रसिद्ध हैं। किंतु ये पाणिनीय सूत्रनिरूपण शैली में रचित हैं और भाषा चिंतन भी न्यूनाधिक पाणिनीय है। हेमचंद्र ने कुछ चिंतन-मौलिकता दिखाई है। और विद्वानों ने भी भाषादर्शन का स्वरूप विकसित किया किंतु सब संस्कृत भाषा के माध्यम से ही।

द्रविड भाषाओं में सर्वाधिक विशिष्ट भाषा चिंतन 'तोलकाप्पियम्' में मिलता है जिसकी रचना संभवतः ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में हुई थी। तेलुगु का प्रथम व्याकरण ग्रंथ 'आंध्र शब्द चिंतामणि' नन्नय भट्टार (ग्यारहवीं सदी) का है, कन्नड़ का नागवर्मा रचित व्याकरण

बारहवीं सदी का है और मलयालम का प्राचीनतम उपलब्ध व्याकरण चौदहवीं सदी का है – किंतु ये सब काव्य रचना शिक्षण ग्रंथ अधिक हैं व्याकरण कम।

वर्तमान काल में, पिछले 50 सालों में, भाषाविषयक चिंतन करने वाले अनेक भारतीय मनीषी दिखाई पड़े हैं। ये अधिकांश भारतीय चिंतन और पाश्चात्य चिंतन के तुलनात्मक अध्येता भी हैं और इन्होंने भारतीय चिंतन को दृढ़ता के साथ पाश्चात्य भाषा चिंतकों के समक्ष रखा है। इन विद्वानों में अग्रगण्य हैं – विद्यानिवास मिश्र, रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, वी.रा. जगन्नाथन, कपिलदेव द्विवेदी, सत्यकाम वर्मा, अनिल विद्यालंकार, कृष्णस्वामी आयंगार, न.वी. राजगोपालन, माणिकलाल चतुर्वेदी। पाठ्यक्रम में भारतीय भाषा चिंतन के पठन-पाठन को प्रतिष्ठित करने वाली प्रमुख संस्थाएँ हैं, केंद्रीय हिंदी संस्थान, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय और महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय। ये संस्थाएँ तथा विद्वान हिंदी के माध्यम से भारतीय भाषा चिंतन को समुन्नत कर रहे हैं, इनके प्रयास स्तुत्य हैं।

2.8 अभ्यास प्रश्न

1. **निबंधात्मक**
   (1) संस्कृत में कारक संबंधी विवेचन की व्याख्या कीजिए।

2. **टिप्पणियाँ**
   (1) वाक् की संकल्पना
   (2) संस्कृत में क्रिया की संकल्पना

इकाई 3 भाषाविज्ञान की पाश्चात्य परंपरा

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 भाषाविज्ञान का सूत्रपात
3.3 तुलनात्मक भाषाविज्ञान
  3.3.1 भाषाओं का वर्गीकरण
  3.3.2 ध्वनि परिवर्तन और नियम
3.4 ऐतिहासिक भाषाविज्ञान
3.5 भाषा परिवर्तन
  3.4.1 ध्वनि परिवर्तन
  3.4.2 अर्थ परिवर्तन
  3.4.3 संरचना परिवर्तन
3.6 सारांश
3.7 अभ्यास प्रश्न

3.0 उद्देश्य

आधुनिक युग तक वैयाकरण अपनी अपनी भाषाओं का विशद, वैज्ञानिक अध्ययन करते रहे और पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' जैसे अत्यंत सुगठित व्याकरण ग्रंथों की रचना हुई। आधुनिक युग में विभिन्न भाषाओं के ज्ञान के साथ उनकी तुलना करने की जिज्ञासा पैदा हुई जिससे उनकी संबद्धता का विश्लेषण किया जा सके। इससे भाषाओं के इतिहास को जानने की जिज्ञासा पैदा हुई जिससे भाषा में हुए परिवर्तनों को समझा जा सके। फिर विद्वान भाषाओं की रचना के विश्लेषण की ओर बढ़े, जिससे विश्व की भाषाओं के अध्ययन का एक वैज्ञानिक ढाँचा तैयार किया जा सके।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- आधुनिक युग में भाषा अध्ययन के प्रति उन्मुखता का विवरण दे सकेंगे,
- तुलनात्मक भाषाविज्ञान की संक्षिप्त रूपरेखा दे सकेंगे,
- भाषाओं के वर्गीकरण का आधार समझा सकेंगे,
- ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का परिचय दे सकेंगे,
- भाषा में हुए परिवर्तनों की दिशा और कारण बता सकेंगे, और
- संरचनात्मक भाषाविज्ञान की ओर प्रस्थान का वर्णन कर सकेंगे।

3.1 : प्रस्तावना

आधुनिक युग वैज्ञानिक अध्ययन का युग है। पूर्व युग में चिंतकों और विचारकों ने विविध विषयों पर चिंतन-मनन किया। आधुनिक युग में ही समाजविज्ञान, इतिहास, मनोविज्ञान आदि विशिष्ट अध्ययन क्षेत्रों की नींव पड़ी, जिससे विशेषज्ञता के अनुरूप विषय का विधि विज्ञान तैयार किया जा सके। इसी सिलसिले में भाषाओं के अध्ययन के लिए भाषाविज्ञान का निर्माण हुआ।

वैसे तो भाषाओं की रचना और प्रकार्यों में चिंतकों की रुचि आदि काल से रही है, लेकिन उस समय उनका ध्यान एक ही भाषा तथा उसके मानक रूप पर ही रहा। भाषा मात्र के अध्ययन के लिए, विशेषकर भाषाओं के अध्ययन के लिए एक संरचनात्मक ढाँचे के निर्माण

1. भारोपीय परिवार
   - यूरोपियन भाषाएँ
   - भारत–ईरानी
     - ईरानी वर्ग
     - दरद (कश्मीरी)
     - भारतीय आर्य भाषाएँ (हिंदी, गुजराती, नेपाली आदि)

2. द्रविड भाषा परिवार
   - उत्तरी शाखा – कुड़ख, गोंडी आदि
   - मध्य शाखा – तेलुगु
   - दक्षिणी शाखा – तमिल, कन्नड, मलयालम, तुकु, कोडगु आदि

3. आस्ट्रिक परिवार – खासी, मुंडा भाषाएँ (संताली, खड़िया, हो, मुंडारी आदि)

4. चीनी-तिब्बती परिवार – मिज़ो, नागा भाषाएँ, मणिपुरी, नेवारी आदि।

अब सवाल यह है कि भाषाओं के पारिवारिक वर्गीकरण का आधार क्या है? हम परिवार की शाखाओं, उपशाखाओं की पहचान कैसे करते हैं? एक परिवार की भाषाएँ किसी एक मूल भाषा से विकसित होती हैं और विभिन्न परिवर्तनों के कारण उस परिवार की भाषाओं में भेद बढ़ते जाते हैं। फिर भी उनमें मूल तत्व सुरक्षित रहते हैं, जिन्हें हम तुलना से पहचान पाते हैं। निम्नलिखित मूल तत्व प्रायः समान होते हैं :

(i) आधारभूत शब्दावली (हाथ, संख्या 2 आदि, जल, चंद्र आदि)

(ii) ध्वनियाँ (अ, आ, क, ख़ आदि), ध्वनि की संबद्धता

(iii) लिपि

(iv) रूप (बहुवचन प्रत्यय, भूतकाल का प्रत्यय आदि)

(v) परसर्ग (को, में आदि) तथा प्रकार्यात्मक शब्द (और आदि)

भिन्न परिवारों की भाषाओं में इन तत्वों में लगभग कोई समानता नहीं मिलती। एक परिवार की भिन्न शाखाओं में समान तत्व या संबद्धता के स्थल कम होते हैं।
विस्तृत अध्ययनों के आधार पर भाषावैज्ञानिकों ने विश्व की भाषाओं को दस प्रमुख परिवारों में बाँटा है। ये हैं :

1. भारोपीय परिवार (हिंदी, अंग्रेज़ी, रूसी, संस्कृत आदि)
2. द्रविड परिवार (तमिल, तेलुगु आदि)
3. चीनी-तिब्बती (चीनी भाषा)
4. मलय-पालिनेशियन (मलय भाषा, भारत की आस्ट्रिक भाषाएँ)
5. सामी-हामी (अरबी, हीब्रू, उत्तर अफ्रीकी भाषाएँ)
6. दक्षिण अफ्रीकी (बांटू आदि)
7. जापानी-कोरियन
8. यूरल-अलटाइक (तुर्की, हंगेरी, फ़िनिश)
9. अमेरिकी भाषाएँ (एस्किमो, एज़टेक आदि)

इस वर्गीकरण में कई मतभेद हैं और कई भाषाओं के बारे में अब भी कोई निश्चित मत नहीं है।

आकृतिमूलक वर्गीकरण

हमने उल्लेख किया था कि एक परिवार की भाषाओं में रचना के समान तत्व मिलते हैं। भिन्न तत्व ही भिन्न परिवार सूचित करते हैं। इसी संदर्भ में हम भाषाओं को संरचना के आधार पर वर्गीकृत करते हैं, जिसे आकृतिमूलक वर्गीकरण कहा जाता है। आकृतिमूलक वर्गीकरण का आधार भाषा परिवारों की संकल्पना है। निम्नलिखित आरेख में इस वर्गीकरण की झलक मिल सकती है।

- भाषाएँ
  - अयोगात्मक (चीनी भाषा) isloating
  - योगात्मक
    - अश्लिष्ट (द्रविड, यूरल-अल्टाइक) agglutinative
    - श्लिष्ट (भारोपीय, सामी) inflectional
      - संश्लिष्ट (संस्कृत) synthetic
      - विश्लिष्ट (हिंदी) analytic
    - प्रश्लिष्ट (अमेरिकी भाषाएँ) polysynthetic

आकृतिमूलक वर्गीकरण

इससे आप जान सकते हैं कि एक परिवार की भाषा की आकृति की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं, जो उस परिवार की सभी भाषाओं में दिखाई देती हैं।

3.3.2 ध्वनि परिवर्तन और नियम

भारोपीय परिवार की भाषाओं में ध्वनियों की संबद्धता पर अध्ययन में भाषावैज्ञानिकों की रुचि बढ़ी। उन्होंने अनुभव किया कि कुछ ध्वनि परिवर्तन बड़े ही व्यवस्थित ढंग से विश्लेषित किये जा सकते हैं। उदहारण के लिए संस्कृत के व्यंजन और अंग्रेज़ी के व्यंजनों में नियमित रूप से बदलते हैं। जैसे :

		संस्कृत		अंग्रेजी
महाप्राण से अल्पप्राण	भ	भ्राता	ब	brother
	ध	बंध	t	bind
घोष से अघोष	द	दंत	t	teeth
	ग	ज्ञान	क	know
स्पर्श से संघर्षी	त	माता		mother
	प	पिता	f	father

ऐसी ही संबद्धताओं को ध्यान में रखते हुए ग्रिम नामक जर्मन भाषावैज्ञानिक ने घोषित किया कि किस तरह एक भाषा की ध्वनियाँ दूसरी भाषाओं में बदल जाती हैं। उनके विचारों को ग्रिम नियम (Grimm's Law) की संज्ञा दी जाती है। इसे उन्होंने बड़े 'वैज्ञानिक' तथा रोचक ढंग से एक सरल आरेख के रूप में प्रस्तुत किया।

अघोष
अल्पप्राण

घोष
अल्पप्राण

घोष
महाप्राण

(नोट : यहाँ संघर्षी को महाप्राण का ही दूसरा रूप गिना गया है।)

नियम की घोषणा के साथ ही विद्वानों ने अपवादों की सूची देना शुरू कर दिया। हम देखते हैं कि /बंध/bind, /दुहिता/daughter के प्रारंभिक व्यंजन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। ऐसे अपवादों के विराकरण के लिए अतिरिक्त नियम बनाए जाते रहे। 19वीं शताब्दी में भाषावैज्ञानिकों ने नियमों को ढूँढ़ने और माँजने में बड़ा परिश्रम किया।

इसी शृंखला में वेर्नर नामक जर्मन भाषावैज्ञानिक ने अपवादों के स्पष्टीकरण स्वरूप अन्य नियम बनाए जिन्हें वेर्नर नियम की संज्ञा दी जाती है। फिर भी वे सारे ध्वनि परिवर्तनों के लिए समाधान नहीं दे पाए। विद्वानों ने अनुभव किया कि भाषा नियमों से बँधकर नहीं चलती। नियम शब्द से ही लोग असंतुष्ट हो गए। दूसरी तरह कुछ भाषावैज्ञानिकों ने 'नियम' की संभावना से आश्वस्त थे। वेर्नर ने जब किन्हीं प्रमुख अपवादों का समाधान प्रस्तुत किया तो इससे नियमों में विद्वानों आस्था बढ़ी। उन्होंने घोषणा की कि ध्वनि संबंधी नियम अपवाद रहित हैं। अन्य विद्वानों ने व्यंग्य में उन्हें 'नव्य वैयाकरण' (neogrammarians) की संज्ञा दी और उनकी खिल्ली उड़ाई।

इसी खींचातानी में तुलनात्मक भाषाविज्ञान इतिश्री हो गई। लेकिन तुलनात्मक अध्ययन के सिलसिले में विद्वानों ने बहुत-सी भाषाओं के आंतरिक ध्वनि परिवर्तनों के ऐतिहासिक क्रम संबंधी विस्तृत जानकारी प्राप्त कर ली थी। सहज ही, वे प्रस्तुत सामग्री के आधार पर भाषाओं के ऐतिहासिक विकास, ध्वनि, अर्थ आदि में परिवर्तन तथा परिवर्तन के कारण आदि में रुचि लेने लगे। इससे ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का श्रीगणेश हुआ।

3.4 ऐतिहासिक भाषाविज्ञान

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के प्रादुर्भाव का आधार है भाषा में होने वाले परिवर्तनों का एहसास। कालक्रम के साथ भाषा के स्वरूप में निरंतर परिवर्तन होता है, जिसकी तुलना नदी के प्रवाह के साथ की जाती है। नदी का अस्तित्व नित्य है, लेकिन उसकी स्थिति और स्वरूप में बराबर परिवर्तन होता है। भाषा के संदर्भ में 'सरित प्रवाह', 'बहता नीर' आदि उक्तियाँ इसी का इंगित करती हैं। परिवर्तन के वैज्ञानिक विश्लेषण तथा विवरण से भाषा के इतिहास (यानी क्रमिक विकास) का ज्ञान मिलता है। इस तरह भाषा में परिवर्तनों का अध्ययन ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का सबसे प्रमुख लक्ष्य है।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान वैसे तो एक ही भाषा के इतिहास और उसमें हुए परिवर्तनों का अध्ययन करता है। इससे मिले तथ्यों का तुलनात्मक भाषाविज्ञान में फिर उपयोग किया जाता हे। इस तरह बाद में दोनों मिलकर समान लक्ष्य की खोज में कार्य करते हैं। इस कारण दोनों को मिलाकर तुलनात्मक-ऐतिहासिक विश्लेषण नामक समन्वित अध्ययन का क्षेत्र विकसित किया गया।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान अपने में उपयोगी अध्ययन क्षेत्र है। विद्वानों ने इसके अनुप्रयोगों की परिकल्पना की और भाषा के मूल उत्स तक पहुँचने का प्रयास किया। हम जानते हैं कि संस्कृत, लैटिन, ग्रीक भगिनी भाषाएँ हैं। इस बात की भी संभावना की जा सकती है कि ये भाषाएँ किसी एक मूल भाषा से परिवर्तनों के कारण अलग हुई हों। परिवार की सभी भाषाओं के इतिहास क्रम से हम संभवतः अनुमानित रूप से उस पूर्ववर्ती (कल्पित) भाषा का पुनर्निर्माण कर सकते हैं, जिसका कोई प्रमाण या ऐतिहासिक प्रलेख उपलब्ध नहीं है। इस अध्ययन की शाखा को पूर्वरूप निर्धारण (glottochhronology) की संज्ञा दी जाती है। उदाहरण के तौर पर भाषावैज्ञानिक भारोपीय परिवार के संदर्भ में किसी प्राक् भारोपीय भाषा (Proto-Indo European) की कल्पना करते हैं, उसके स्वरूप का निर्धारण करते हैं और उससे संस्कृत आदि भाषाओं के ऐतिहासिक क्रम का अनुमान करते हैं।

भाषा के पूर्व रूपों के अध्ययन के लिए ऐतिहासिक भाषाविज्ञान ने कई प्रविधियों का विकास भी किया है। शब्दावली सांख्यिकी (Lexicostatistics) इसी प्रकार का एक साधन है जो भाषाओं के अलग होने के समय को ठीक से बताने का दावा करता है। हम जानते हैं कि भाषाओं में ध्वनि परिवर्तन कम ही होते हैं और शब्दों की तुलना से उन्हें ढूँढ़ा जा सकता है। इसी तरह भाषा के आधारभूत शब्दों में बहुत कम परिवर्तन होते हैं। ऐतिहासिक भाषावैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि हजार वर्ष में आधारभूत शब्दावली में लगभग 4.5% शब्द बदल सकते हैं। इस तरह दो भाषाओं की आधारभूत शब्दावली में अंतर के आधार पर उनके अलगाव की गणना की जा सकती है। यूरोपीय भाषाविदों ने गणना की है कि अंग्रेज़ी और जर्मन भाषाएँ पहले एक थीं और आज से लगभग 1600 साल पहले ई. 400 के आसपास अलग हुईं।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के और भी कई अनुप्रयोग हैं। न केवल हम भाषा के क्रमिक विकास का इतिहास लिख सकते हैं, इस अध्ययन से प्राप्त सूचनाओं को शब्दकोश में समाविष्ट कर सकते हैं। भाषा का इतिहास पूर्ववर्ती साहित्य के अध्ययन के लिए भी आवश्यक है।

भाषा परिवर्तन ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का प्रमुख लक्ष्य है। हम भाषा परिवर्तनों के बारे में विस्तार से अगले प्रकरण में पढ़ेंगे।

3.5 भाषा परिवर्तन

भाषाएँ प्राणी की तरह जीवंत व्यवस्थाएँ हैं – जन्म लेती हैं, बढ़ती हैं, विकास करती हैं और अस्तित्वविहीन भी हो जाती हैं। जिस तरह जीवित प्राणी में परिवर्तन अवश्यंभावी है, भाषाओं में भी परिवर्तन सहज और स्वाभाविक हैं। जिस तरह शरीर के विभिन्न अंगों में परिवर्तन होते हैं, भाषा के विभिन्न तत्वों यथा ध्वनि, शब्दावली, शब्दार्थ, रूप, वाक्य संरचना आदि में परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों के प्रकार और कारणों के बारे में आगे अध्ययन करेंगे।

3.5.1 ध्वनि परिवर्तन

ध्वनि परिभाषा के विकास का सबसे प्रमुख अभिलक्षण है। भाषा में नई ध्वनियाँ आ जाती हैं, पुरानी ध्वनियाँ खत्म हो जाती हैं, नये संयुक्ताक्षर बनते हैं या पुराने संयुक्ताक्षर टूटते हैं। भाषा के इतिहास से ही हमें इन परिवर्तनों के बारे में पता चलता है।

ध्वनि परिवर्तन की दिशाएँ निम्न प्रकार से हैं :

1) **संगम** (Merger) : इसमें दो ध्वनियाँ मिलकर एक हो जाती हैं। जैसे हिंदी में /श/ तथा /ष/ का उच्चारण एक हो गया है।

2) **विच्छेद** (Split) : इसमें एक ध्वनि परिवर्तन के कारण दो ध्वनियों में बदल जाती है। हिंदी /ड/ का विकास के कारण /ड/ तथा /ड़/ दो ध्वनियाँ अस्तित्व में आईं।

3) **आगम** (Epenthesis) : इसमें शब्द के आदि, मध्य या अंत में स्वर या व्यंजन का आगम होता है। जैसे स्टेशन → इस्टेशन (हिंदी), शर्म → शरम, स्टेशन → सटेशन (पंजाबी), लिस्ट → लिस्टु (तेलुगु)।

4) **लोप** (Loss) : इसमें शब्द के आदि, मध्य या अंत में स्वर या व्यंजन का लोप हो जाता है। जैसे, अंग्रेजी कमान्ड → हिंदी कमान, अढ़ाई → ढाई, खरीददार → खरीदार।

5) **विपर्यय** (Transposition) : इसमें शब्द में आए दो स्वर या व्यंजन आपस में स्थान परिवर्तन कर लेते हैं! जैसे, लखनऊ → नखलऊ, पागल → पगला, यहाँ → ह्याँ (बोलियों में)।

6) **परिवेश पर आधारित ध्वनि परिवर्तन** : (क) समीकरण (assimilation) – विषय ध्वनियों का समान बनना। मकुट→मुकट, अष्ट→अट्ठ, (ख) विषमीकरण (dissimilation) – समान ध्वनियों का भिन्न (विषम) होना। काक - काग, कंकण - कंगन, (ग) तालव्यीकरण – कै→चेय् (हाथ - तेलुगु), (घ) घोषीकरण - शती→सदी, (ङ.) महाप्राणीकरण - हस्त→हाथ, अष्ट→आठ, (च) दीर्घीकरण – सत्य→सच्च→साँच आदि।

ध्वनि परिवर्तन सिर्फ़ उच्चारण को ही प्रभावित नहीं करता, बल्कि भाषा की ध्वनि व्यवस्था में भी परिवर्तन लाता है। इस व्यवस्था परिवर्तन में एक से अधिक परिवर्तन की दिशाएँ काम करती हैं। उदाहरण के लिए पंजाबी भाषा से घोष महाप्राण ध्वनियों का लोप हुआ। स्वर मध्य में अल्पप्राणीकरण की प्रक्रिया आई। 'आधार' शब्द का उच्चारण /आदार/ हुआ [लिपि में परिवर्तन नहीं है, केवल उच्चारण में है]। शब्दारंभ में अघोषीकरण की प्रक्रिया दिखाई देती है। घर का उच्चारण /खर/ हुआ। दोनों स्थितियों में महाप्राण के स्थान पर तान (tone) का आगम हुआ। इस तरह भाषाओं में ध्वनि परिवर्तन नई व्यवस्थाओं को जन्म देता है।

ध्वनि परिवर्तन के कारण कई हैं। ध्वनि परिवर्तन के दो प्रमुख कारक तत्व हैं – सादृश्य (analogy) तथा प्रयत्न लाघव (मुखसुख) यानी उच्चारण की सहजता। अज्ञान, विदेशी भाषाओं की ध्वनियों का आगमन, विदेशी ध्वनियों के उच्चारण की अक्षमता आदि की ध्वनि परिवर्तन के अन्य कारण हैं।

3.5.2 अर्थ परिवर्तन

भाषा में शब्दों के अर्थ में निरंतर परिवर्तन होता है। इससे भाषा की शब्दावली (lexicon) में भी परिवर्तन आता रहता है। अर्थ परिवर्तन के कई कारण हैं। हम नई संकल्पनाओं के लिए पुराने प्रचलित शब्दों का इस्तेमाल करते हैं। जैसे 'पैर' शब्द का उपयोग कई भाषाओं में फर्नीचर के पायों के लिए होता हे। यह सादृश्यमूलक अर्थ विस्तार है। लोगों या विचारों के प्रति हमारा दृष्टिकोण भी प्रमुख कारण है। 'पुंगव' एक युग में पंडित, ज्ञानी के अर्थ में प्रयुक्त होता था। लेकिन ढोंगी विद्वानों के लिए मज़ाक में इस शब्द का प्रयोग हुआ, तो पोंगा (ध्वनि परिवर्तित रूप) बाद में अविवेकी व्यक्ति के लिए भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होने लगा! हम सामाजिक व्यवहार में अमंगलसूचक या अशोभनीय शब्दों का प्रयोग नहीं करते, उनकी जगह भिन्न शब्दों का प्रयोग करते हैं। 'मरना' के लिए 'स्वर्ग सिधारना' उदात्तीकरण के कारण है। भय के कारण साँप को 'कीडा' कहना लघुता लाने का प्रयास है। इसके अन्य उदाहरण हैं विधवा होने पर 'सिंदूर पूछना' कहना या चेचक की बीमारी को 'शीतला' कहना। मल विसर्जन के लिए 'नित्य कर्म' या 'दिशा जाना' या 'शौच जाना' (शुचि-शुद्धता) शोभनीय तथा सभ्य अभिव्यक्ति के लिए है।

अर्थ परिवर्तन की तीन प्रमुख दिशाएँ हैं :

1) **अर्थ विस्तार** : इसमें शब्द के मूल अर्थ का विस्तार होता है और शब्द का अर्थ व्यापक संदर्भ में प्रयुक्त होता है। 'तेल' का मूल अर्थ था तिल से प्राप्त तैल। अब हम इसका प्रयोग सभी तेलों के लिए करते हैं। आज पेट्रोल भी 'तेल' कहा जाता है। इस तरह के अन्य शब्द देखिए (कोष्ठकों में क्रमशः मूल अर्थ और वर्तमान विस्तृत अर्थ दिये गये हैं) – कुशल (कुश लाने में होशियार व्यक्ति, हर काम में

निपुण व्यक्ति), स्याही (काली स्याही, सब रंगों की स्याही), पशु (गोधन, सभी जानवर), प्रवीण (वीणा बजाने में कुशल, हर कार्य में कुशल)। भाषा के मुहावरेदार प्रयोग अर्थ विस्तार के ही उदाहरण हैं। अब हम कार्यालय के head की बात करते हैं। मंत्रालय के स्कंध, खिड़की का पल्ला, बैंक की शाखा आदि शब्द विस्तृत अर्थ में मुहावरेदार प्रयोग हैं। हम सहज ही ऐसे सैकड़ों शब्दों का निर्माण करते हैं।

2) **अर्थ संकोच :** इस प्रक्रिया में मूल अर्थ सिकुड़कर सीमित अर्थ देता है। संस्कृत में 'मृग' का अर्थ था प्राणी, जानवर। इसी अर्थ में हम सिंह को 'मृगराज' कहते हैं। आज यह अर्थ सीमित ढंग से केवल 'हिरन' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अंग्रेज़ी में meat खाद्य पदार्थ का अर्थ देता था, अब केवल 'मांस' का अर्थ देता है। ऐसे अन्य कुछ उदहारण देखिए – धान (< धान्य) (अनाज, चावल की फ़सल)। अर्थ संकोच का एक प्रमुख कारण है। जब विदेशी भाषाओं से शब्द आते हैं, तो भाषा में दो पर्याय हो जाते हैं। उस स्थिति में उनमें अक्सर अर्थ बँट जाते हैं या संदर्भ अलग हो जाते हैं। अब हम डॉक्टर और वैद्य में अंतर करते हैं। 'दरिया' का मूल अर्थ 'नदी आदि जलाशय' था लेकिन आज इसे हम सिर्फ़ 'सागर' के अर्थ में प्रयुक्त करते हैं।

3) **अर्थादेश :** इस शब्द का अर्थ है 'अर्थ बदल जाना'। संस्कृत में 'दुहिता' का अर्थ था 'गाय दुहने वाली'। अब यह 'पुत्री' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अक्सर शब्द का विपरीत अर्थ में भी प्रयोग होने लगता है। संस्कृत में असुर का अर्थ था 'देव', अब वह दानव का अर्थ देता है और सादृश्य के कारण उससे 'सुर' शब्द बना लिया गया है। 'राग' का अर्थ प्रेम है, बांगला में वह 'क्रोध' का अर्थ प्रकट करता है।

अर्थ के परिवर्तन को विद्वान अर्थोत्कर्ष (उत्कृष्ट अर्थ देना) और अर्थापकर्ष (निकृष्ट अर्थ देना) जैसे मूल्यपरक प्रक्रियाओं से भी व्यक्त करते हैं। संस्कृत में 'साहस' का अर्थ था 'अनाचार'। आज उसके अर्थ में उत्कर्ष हुआ है और 'साहस' एक गुण है। हिंदी में पोंगा, लुच्चा (< लुंचित व्यक्ति, मुनि) अर्थापकर्ष के उदाहरण हैं।

3.5.3 संरचना परिवर्तन

संरचना परिवर्तन में रूप, पदबंध, वाक्य संरचना आदि सभी व्याकरणिक इकाइयों में परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। संस्कृत से हिंदी तक के विकास क्रम में संज्ञा, क्रिया आदि की रूपावलियों में व्यापक परिवर्तन हुए। इस संदर्भ में आप हिंदी के विकास के बारे में एम एच डी-6 के सातवें खंड में पढ़ चुके हैं।

आज भी भाषा में धीरे-धीरे परिवर्तन हो रहे हैं जिसके हम प्रत्यक्षदर्शी हैं। मुझे के स्थान पर 'मेरे को' का प्रयोग, 'मैंने कह दिया है/मैंने कह रखा है' के स्थान पर 'मैंने कहा हुआ है' आदि परिवर्तन के सूचक हैं। हिंदी में ही लगभग 100 साल पहले लेखक 'कहने नहीं पाया', 'करने नहीं सकता' का प्रयोग करते थे। आज 'कह नहीं पाया', 'कर नहीं सकता' परिवर्तन के उपरांत स्थिर हो चुके हैं।

3.6 सारांश

आधुनिक युग में भाषाविज्ञान के प्रादुर्भाव से पहले भाषिक अध्ययन का लक्ष्य था किसी भाषा का व्याकरणिक विश्लेषण। इस लक्ष्य की पूर्ति में भी पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' जैसे विख्यात व्याकरण ग्रंथ लिखे गए। पाणिनि, पंतजलि तथा यास्क जैसे व्याकरण ग्रंथ लिखे गए। पाणिनि, पंतजलि तथा यास्क जैसे व्याकरणों ने संस्कृत भाषा के संदर्भ में दार्शनिक चिंतन किया और अर्थ की सत्ता, वाक् आदि संकल्पनाओं पर विस्तृत चर्चा की। आधुनिक

काल तक ये कार्य भाषा विशेष तक ही सीमित रहे। आधुनिक युग में विश्व स्तर पर देश एक दूसरे के निकट आए और एक दूसरे की भाषाओं को जाना। भाषाओं की सम्बद्धता तथा परस्पर आदान-प्रदान को जानने की रुचि पैदा हुई। इस रुचि के कारण भाषाओं की तुलना का कार्य शुरू हुआ जिस हम तुलनात्मक भाषा विज्ञान कहते हैं। तुलनात्मक भाषाविज्ञान एक परिवार की भाषाओं में ध्वनि, रूप, शब्द, वाक्य आदि इकाइयों में सम्बद्धता ढूँढ़ने का यत्न करता है और उनमें अंतर के कारणों का पता लगाता है। तुलनात्मक भाषाविज्ञान की शुरूआत प्रारंभ में भारोपीय परिवार की भाषाओं के संदर्भ में हुई। लेकिन बाद में विश्व के अनेक भाषाओं की सम्बद्धता के अध्ययन के फलस्वरूप भाषा का पारिवारिक वर्गीकरण तुलनात्मक अध्ययन का एक उपयोगी परिणाम सिद्ध हुआ। परिवारों की सम्बद्धता उनकी रचना या आकृति पर आधारित होता है। एक परिवार की भाषा में रचना की कई विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। इस तरह पारिवारिक वर्गीकरण से आगे भाषाओं के आकृतिमूलक वर्गीकरण की स्थापना हुई। हम आज भी सार्वभौम व्याकरणों की तलाश में भाषाओं की संरचनाओं के समान तत्व ढूँढ़ते हैं। एक परिवार की भाषाएँ किसी मूल रूप से विकसित होकर तब अलग होती हैं जब उनमें अंतर बढ़ता है। इस अंतर का प्रमुख कारण यह है कि भाषा निरंतर परिवर्तनशील होती है। आंतरिक और बाह्य कारणों से भाषा में परिवर्तन निरंतर होते हैं। ऐतिहासिक भाषा विज्ञान, तुलनात्मक भाषाविज्ञान का परिवर्तित रूप है जो भाषा के परिवर्तन के क्रम को भाषा के इतिहास के रूप में देखता है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान भाषा के इतिहास क्रम को जानने के प्रयत्न में कुछ ऐसे उपादान भी ढूँढ़ता है जो भाषिक अध्ययन को वैज्ञानिक ढंग से खोज का क्षेत्र बनाता है। भाषाओं में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर यह भाषा परिवार के पूर्वरूप का अनुमान कर सकता है और उसका पुनर्निर्माण कर सकता है। इसी तरह परिवर्तन के अनुपात का अंदाज़ हो तो हम यह बता सकते हैं कि किस समय दो भाषाएँ अलग हुई होंगी। इस तरह ऐतिहासिक भाषाविज्ञान हमें भाषा के अध्ययन के अन्य आयाम देता है।

भाषा के वर्तमान स्वरूप के अध्ययन में भाषाविज्ञान की रुचि शताब्दी के आरंभ में जागी। भाषावैज्ञानिक यह जानना चाहते थे कि क्या एक सार्वभौम व्याकरण तैयार किया जा सकता है जो संसार की सभी भाषाओं के अध्ययन में सहायक हो। इस नई खोज की प्रवृत्ति के कारण ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में लोगों की रुचि घटी और संरचनात्मक भाषाविज्ञान अस्तित्व में आया। इसके बारे में आप अगली इकाई में पढ़ेंगे।

3.7 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

(1) तुलनात्मक भाषाविज्ञान का प्रारंभ कैसे हुआ और उसका क्या योगदान है?

(2) ऐतिहासिक भाषाज्ञान का विषय क्षेत्र क्या है?

(3) विश्व की भाषाओं का वर्गीकरण किन आधारों पर किया जाता है?

2. टिप्पणियाँ

(1) ध्वनि परिवर्तन, दिशाएँ और कारण

(2) अर्थ परिवर्तन, दिशाएँ और कारण

(3) भारत के भाषा परिवार

इकाई 4 संरचनात्मक भाषाविज्ञान

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 फर्दिनांद द सस्युर (1857-1913)
4.3 लियोनार्ड ब्लूमफ़ील्ड (1887-1949)
4.4 संरचनात्मक भाषाविज्ञान में विश्लेषण की प्रक्रिया
4.5 टैग्मीमिक्स और सिस्टिमिक व्याकरण
4.6 सारांश
4.7 अभ्यास प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में 20वीं सदी के आरंभ में यूरोप तथा अमेरीका में संरचनात्मक भाषाविज्ञान के आविर्भाव तथा व्यापक प्रसार की चर्चा की जा रही है। संरचनात्मक अध्ययन व्यवहारवादी मनोविज्ञान पर आधारित है, जो केवल प्रत्यक्ष व्यवहार की प्रक्रिया को अध्ययन की वस्तु मानता है और उसके पीछे निहित मानसिक आधार को नकारता है क्योंकि मन की बातों को हम नहीं जान सकते। यह भाषाविज्ञान भाषा के विश्लेषण का एक ढाँचा भी उपस्थित करता है जिससे हम संसार की विभिन्न भाषाओं का समान धरातल पर अध्ययन कर सकें।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- संरचनावाद को परिभाषित कर सकेंगे,
- प्रख्यात भाषावैज्ञानिक सस्युर तथा ब्लूमफ़ील्ड के विचारों की व्याख्या कर सकेंगे,
- संरचनात्मक भाषाविज्ञान के अभिलक्षण बता सकेंगे,
- संरचनात्मक भाषाविज्ञान के सिद्धांतों के आधार पर अपनी भाषा का विश्लेषण कर सकेंगे,
- पाइक के टैग्मीमिक्स तथा हैलिडे के सिस्टिमिक व्याकरण की मान्यताओं का वर्णन कर सकेंगे, और
- भाषाशिक्षण आदि क्षेत्रों में संरचनात्मक भाषाविज्ञान के प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

हमने पिछली इकाइयों में पढ़ा कि आधुनिक युग में तुलनात्मक भाषाविज्ञान के कारण भाषाओं के परस्पर संबंध को समझने का आधार मिला। भाषाओं में अंतर के कारण ढूँढ़ते-ढूँढ़ते ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का आविर्भाव हुआ। 20वीं सदी के साथ-साथ संरचनात्मक भाषाविज्ञान का उदय हुआ जिसके प्रवर्तक फ्रांस के भाषावैज्ञानिक सस्युर हैं और संरचनात्मक भाषाविज्ञान को विश्लेषण के तौर पर रूप देने वाले अमेरिकी भाषावैज्ञानिक ब्लूमफ़ील्ड हैं।

संरचनावाद आधुनिक युग में वैज्ञानिक अध्ययन का आधार माना जाता है। इस उपागम का प्रारंभ यूरोप में समाजविज्ञान के अध्ययन से शुरू हुआ। मनोविज्ञान का व्यवहारवाद इसका सहयोगी सिद्धांत है। इसके अनुसार जो प्रत्यक्षतः सामने हो उसी का विश्लेषण और वर्णन करना वैज्ञानिक दृष्टि है, अपनी ओर से उसमें व्याख्या के तौर पर कुछ नहीं जोड़ा जाना चाहिए। 19वीं शताब्दी में फ्रैन्ज़ बाओज़ (Franz Boas) तथा उनके शिष्य एडवर्ड सपीर ने

इसी दृष्टि से नृतत्त्वशास्त्र के अध्ययन की शुरुआत की और संस्कृतियों के अध्ययन के साथ सहज ही उनका ध्यान भाषा के अध्ययन पर गया।

एडवर्ड सपीर (1884-1939)
आपका जन्म यूरोप में हुआ और अपने माँ-बाप के साथ आप 1889 में अमेरिका में जा बसे। आप मूलतः नृतत्त्वविज्ञानी हैं और फ्रैन्ज़ बाओज़ के शिष्य रहे हैं। बाद में आपने नृतत्त्वविज्ञान के सिद्धांतों को भाषा के विश्लेषण पर लागू किया। नृतत्त्वविज्ञान के अध्ययन के संदर्भ में आपने अमेरिकी भाषाओं के बोलने वाले सहयोगियों के साथ संयुक्त रूप में कई अमेरिकी (Red Indian) भाषाओं का विश्लेषण किया और हर भाषा का व्याकरण और शब्दकोश तैयार किया।

1921 में आपने Language : An Introduction to the Study of Speech नामक ग्रंथ प्रकाशित किया। इस ग्रंथ में स्वनिम तथा रूप स्वनिमिकी का समावेश किया और अपनी ओर से भाषा विश्लेषण का एक प्रदर्श (model) प्रस्तुत किया। लेकिन इस ग्रंथ की विशेषता इस बात में है कि आपने भाषा और संस्कृति के संबंध पर बल दिया तथा भाषा के रूप पक्ष (form) के वर्णन में सौंदर्य और सुघड़ता का समावेश किया।

आगे चलकर ब्लूमफ़ील्ड ने इस अध्ययन को रूप दिया। इसका अध्ययन आगे करेंगे।

4.2 फर्दिनांद द सस्युर (1857-1913)

सस्युर का जन्म 1857 मे जेनेवा में हुआ था। आपने अपने जीवन काल में कोई ग्रंथ नहीं लिखा था। उन्होंने जेनेवा विश्वविद्यालय में तीन सत्रों में सामान्य भाषाविज्ञान की कक्षाओं में जो व्याख्यान दिये, उन व्याख्यानों के क्लास नोट्स को उनके सहयोगियों और छात्रों ने संगृहीत किया और 1916 में, उनके निधन के बाद पुस्तकाकार प्रकाशित किया। उस ग्रंथ का नाम था Cours de linguistique général. शुरू में उनके ग्रंथ की पहुँच सीमित थी और उसका व्यापक असर भी नहीं हुआ। 1928 से लेकर उस ग्रंथ का अब तक अंग्रेज़ी सहित लगभग 12 भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। उस ग्रंथ ने भाषाविज्ञान के क्षेत्र में क्रांति सी ला दी। सस्युर को अपने योगदान के संदर्भ में संरचनावाद (structuralism) का जनक माना जाता है।

1. समकालिक भाषा अध्ययन की स्थापना
सस्युर के समय तक भाषाविज्ञान के क्षेत्र में अधिकतर ऐतिहासिक भाषाविज्ञान पर ही काम हुआ था। (संदर्भ के लिए पिछली इकाई को देखें) लिखित भाषा के आधार पर भाषाओं में परिवर्तन, ध्वनि संरचना तथा रूप संरचना के आधार पर भाषाओं का अंतःसंबंध और पारिवारिक वर्गीकरण, बोलियों का अध्ययन आदि उस युग के अध्ययन के प्रमुख क्षेत्र थे। दूसरी ओर, हमबोल्ट, स्टाइनटाल, वुन्ट आदि भाषावैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान का सहारा लेकर भाषा के सार्वभौम रूप की संकल्पना स्थापित की। इसी युग में सस्युर ने भाषाविज्ञान की नींव डाली।

अगर हम सस्युर को आधुनिक युग के प्रथम भाषा वैज्ञानिक कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। उनसे पहले के भाषा वैज्ञानिक अधितर ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक भाषाविज्ञान के क्षेत्र में ही कार्य करते थे। ग्रिम और वर्नर के बाद नव वैयाकरणों का संप्रदाय ध्वनि परिवर्तन के नियमों तथा दो भाषाओं की संबद्धता को स्पष्ट करने में लगा था। विश्व की भाषाओं को पारिवारिक दृष्टि से वर्गीकृत करने की दिशा में काफी काम हुआ था। लेकिन भाषा के अध्ययन के लिए सैद्धांतिक आधार निश्चित करने का कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं उठा था।

19वीं शताब्दी में विवियम डवाइट हिवटने (1827-1894) ने इस संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण कार्य किया था।

सस्युर का जन्म पेरिस में हुआ था। आपका भाषा विज्ञान के साथ विविध स्तरों पर लंबे समय तक संपर्क रहा। उन्होंने जर्मन परिवार की भाषाएँ पढ़ायीं, तुलनात्मक व्याकरण तथा संस्कृत पढ़ायी और दस वर्ष तक (1881-1891) पेरिस के भाषाविज्ञान समाज के सा५व के पद पर रहे। इस अनुभव के साथ आपने पेरिस विश्वविद्यालय में 1906 से 1911 तक की अवधि में तीन वर्ष सामान्य भाषाविज्ञान नामक विषय पढ़ाया। विषय पढ़ाने के साथ-साथ ही आपने भाषाविज्ञान में मौलिक चिंतन के आधार पर कई नयी मान्यताओं की स्थापना की। उनके विचारों के साथ ही आधुनिक भाषाविज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ। सस्युर ने अपनी ओर से भाषाविज्ञान पर कोई ग्रंथ नहीं लिखा। कक्षाओं में उनके व्याख्यानों का सार ही मरणोपरांत 1915 में 'कोर्स इन जनरल लिंग्विसटिक्स' शीर्षक ग्रंथ के रूप में छपा।

सस्युर ने भाषा विज्ञान की मूल्य संकल्पनाअ। के संदर्भ में कुछ वैपरीत्यों को प्रस्तुत किया। ये हैं :

1. भाषा (Language) बनाम वाक् (parole)
2. समकालिकता (Synchrony) तथा ऐतिहासिकता (Diachrony)
3. संरचनागत (Syntagmatic) तथा रूपावलीगता (Paradigmatic) संबंध
4. संकेतक (Signifier) तथा संकेतित (Signified)
5. घटक (Constituent) तथा संरचना (Construction)

भाषा विज्ञान के क्षेत्र में सस्युर की देन अत्यंत महत्वपूर्ण है। अपने ग्रंथ में उन्होंने कई महत्वपूर्ण सिद्धांत प्रस्तुत किये हैं। यहाँ हम उन्हीं नये सिद्धांतों की चर्चा करेंगे।

वे ग्रंथ के आरंभ में भाषा विज्ञान के अध्ययन के उद्देश्यों की चर्चा करते हुए उसके व्यक्तिगत प्रयोग के पक्ष और अभिव्यक्ति के स्तर पर सामाजिक प्रयोग के पक्ष पर दल देते हैं। भाषा (Language) स्वतःपूर्ण व्यवस्था है। वह मनुष्य के वाक् व्यवहार (Lang age) का ही एक अंश है। भाषा वाक् व्यवहार की क्षमता से उत्पन्न सामाजिक वस्तु है, जिसमें समाज द्वारा व्यक्तियों के वाक् व्यहवार के लिए अपनायी गयी परंपराएँ भी जुड़ी हुई हैं। उच्चारण के स्तर पर, समझने के स्तर पर वाक् व्यवहार में अंतर रहने पर भी, समाज भाषा की रचना में सामाजिक मान्यता स्थापित करता है, जिससे सभी व्यक्तियों के लिए भाषा समान हो – समान विचारों के लिए समान प्रतीक व्यवस्था। यद्यपि वाक् व्यवहार व्यक्तिगत कौशल भी है और सामाजिक धरातल पर व्यवहृत व्यवस्था भी है, वह बहुआयामी, विविधरूपा है। उसमें हम भाषा की एकात्मकता (unity) के दर्शन नहीं कर सकते। वास्तव में अध्ययन की दृष्टि से वाक्-व्यवहार हमारे लिए महत्वपूर्ण नहीं है – महत्वपूर्ण है भाषा की व्यवस्था स्थापित करने की मनुष्य की शक्ति। वही शक्ति या क्षमता भाषा की रचना में दिखायी पड़ती है। भाषाविज्ञान इस भाषिक रचना का ही अध्ययन करता है।

इसी संदर्भ में सस्युर वाक् (Parole) की संकल्पना को प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि भाषा का एक व्यक्तिगत पक्ष होता है और एक सामाजिक अनुबंधन का पक्ष, जिसके द्वारा समाज भाषा की व्यवस्था को कायम करता है, भाषा का प्रचालन (Execution) या उत्पादन व्यक्तिगत होता है। व्यक्ति ही भाषा का उत्पादन या अभिव्यक्ति करता है। अभिव्यक्ति सामूहिक नहीं हो सकती। सस्युर उसी व्यक्तिगत क्षमता को वाक् (Parole) कहते हैं। एक भाषा समुदाय के सारे व्यक्तियों के मन में अंकित व्यवस्था की सामूहिक राशि ही भाषा है। उस राशि से समाज के सदस्य वाक् व्यवहार के अर्जित कौशल द्वारा अपने मस्तिष्क में भाषिक व्यवस्था को अंकित करते हैं। किसी एक व्यक्ति में पूरी भाषा नहीं होती, क्योंकि

भाषा समाज की वस्तु है। इसकी तुलना में एक व्यक्तिगत क्षमता है – स्वैच्छिक तथा व्यक्तिगत प्रतिभा से पूरित। वाक् के अध्ययन में यही देखना होगा कि व्यक्ति किस तरह भाषिक व्यवस्था के आधार पर अपने विचारों को अभिव्यक्ति देता है।

भाषा, वाक् व्यवहार तथा वाक् को इस चर्चा के उपरांत सस्युर सार रूप में इन्हें निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत करते हैं :

1. भाषा वाक व्यवहार के विविध तथा व्यापक नमूनों के बीच से प्रकट सुनिश्चित व्यवस्था है। भाषा सामाजिक वस्तु है और व्यक्ति भाषा को बना या बदल नहीं सकता। व्यक्ति समाज में व्यवहार द्वारा भाषा को अर्जित करता है।
2. हम भाषा का ही अध्ययन कर सकते हैं, वाक व्यवहार का नहीं।
3. भाषा प्रतीकों की व्यवस्था है, जिसमें अर्थ और ध्वनि-बिंबों का संयोजन है।
4. भाषा मूर्त है – इंद्रियगोचर वाक व्यवहार की तरह क्योंकि इसमें भाषिक प्रतीकों का अध्ययन होता है। ये प्रतीक भी अमूर्त नहीं हैं, बल्कि समाज ने यादृच्छिक रूप से इन्हें अर्थ प्रदान किया है। हम ध्वनि बिंबों को भी इसी तरह दृश्यमान बिंबों (लिखित भाषा) के रूप में मूर्त रूप से दिखा सकते हैं। इस कारण ही भाषा का अध्ययन करना हमारे लिए संभव होता है।

2. समकालिक (Synchronic) तथा ऐतिहासिक (Diachronic) भाषाविज्ञान

सस्युर ने ही सबसे पहले भाषा के समकालिक अध्ययन और ऐतिहासिक क्रम में परिवर्तन आदि को ध्यान में रखते हुए भाषाविज्ञान की दो विशिष्ट शाखाओं का प्रवर्तन किया। समकालिक अध्ययन के लिए उन्होंने भाषास्थिति (एक निश्चित तथा संक्षिप्त कालावधि) जिसमें भाषा को लगभग स्थायी मानकर अध्ययन किया जा सके) का सहारा लिया।

इकाई (Unit) : समकालिक भाषाविज्ञान में प्रतीकों तथा उनके संबंधों का अध्ययन किया जाता है। भाषिक प्रतीक उभयांगी हैं – हर प्रतीक का एक ध्वनि बिंब होता है और प्रत्यय (Concept) भाषा प्रतीकों की व्यवस्था (शृंखला आदि) ही भाषा है। हमें भाषा की इकाइयों को अलग करना होगा, जिससे भाषा का अध्ययन कर सकें। जैसे, उक्ति अपने में मात्र उच्चरित ध्वनियों की शृंखला है। लैकिन इन उच्चारण खंडों को कैसे पहचानें, अलग करें? हम सिर्फ़ भौतिक आधार पर ध्वनियों को अलग नहीं कर सकते। ध्वनियों को इकाइयों में खंडित करने के लिए अर्थ और प्रकार्य का सहारा लेना होगा। ध्वनियों के परिवेश के कारण हम उच्चारण की शृंखला में प्रकार्यात्मक खंडों को पहचान सकते हैं। इसी तरह उच्चारण खंड 'कर रहा हूँ' में हम 'खा रहा हूँ' की तुलना से 'कर', 'खा' को अलग कर सकते हैं। 'हा हूँ' अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि खाता हूँ की तुलना से हम जानते हैं कि 'हा हूँ' का भाषिक मूल्य नहीं है।

मूल्य (Value) : इसी चर्चा के उपरांत हम मूल्य की संकल्पना को ले सकते हैं। भाषा के दो पक्ष हैं – ध्वनि-बिंब तथा कथ्य। दोनों अविभाज्य हैं – एक सिक्के के दो पक्षों की तरह। दोनों के संयोजन से भाषिक 'रूप' बनता है। हर भाषिक रूप का अपने परिवेश में मूल्य होता है। हिंदी का बहुवचन संस्कृत बहुवचन के समान नहीं है। चूँकि संस्कृत में द्विवचन भी है, दोनों के मूल्यों में अंतर होगा। पूरी व्यवस्था के संदर्भ में ही मूल्य के तात्पर्य को समझा जा सकता है। सस्युर ने मूल्य को व्याख्यायित करते हुए एक महत्वपूर्ण सिद्धांत दिया जो परवर्ती संरचनात्मक भाषाविज्ञान का आधार बना। यह है व्यतिरेक। /त/ का उच्चारण वक्ता /t/ की तरह से करे तो भी उसका मूल्य वही होगा – स्वनिम /त/ का जो अन्य स्वनिम /ट/, /ल/ आदि के संदर्भ में प्रकार्यात्मक है। स्वनिम (Phoneme) की स्थापना करके सस्युर ने भाषा व्यवस्था के विश्लेषण के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने रूपिम (morpheme) का उल्लेख नहीं किया है, लेकिन रूप से लेकर वाक्य तक को

इकाइयों को उन्होंने प्रतीक (sign) के व्यापक संदर्भ में देखा था। 'भाषा की प्रविधि' (Mechanisms of Language) 'व्याकरण तथा उसके अंग' शीर्षक अध्यायों में उन्होंने समकालिक भाषाविज्ञान के अंतर्गत भाषा की संरचना के अध्ययन का विस्तृत विधिविज्ञान प्रस्तुत किया है।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान शीर्षक भाग में सस्युर ने भाषा परिवर्तन के सादृश्य आदि कारण, भाषा विभेद के भौगोलिक आधार, पूर्व भाषा (Proto type) तथा भाषा पुर्नगठन (Reconstruction) आदि संकल्पनाओं की चर्चा तो की ही है, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के अध्ययन के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण योगदान भी किया है। आपके अनुसार ध्वनिगत परिवर्तन मात्र उच्चारण में परिवर्तन नहीं है। मूल्य आदि पहले कही नयी मान्यताओं के संदर्भ में कह सकते हैं कि ध्वनि परिवर्तन भाषा की व्यवस्था या संरचना में परिवर्तन कर देता है।

संरचनात्मक एकात्मकता : जब हम 'बचपन' कहते हैं तो दो किन्हीं खंडों को साथ नहीं रखते, बल्कि एक बृहत् संरचना के दो घटकों को देखते हैं जहाँ दोनों का अर्थ एक दूसरे पर निर्भर है और कुल मिलाकर संरचना का एक अर्थ भी है। इसी को सस्युर संरचनात्मक एकात्मकता (Syntagmatic Solidarity) कहते हैं। इस तरह संरचना-घटक को एकात्मकता न केवल शब्दों में, बल्कि भाषा की समस्त संरचनाओं में देखी जा सकती है।

वे कुल मिलाकर भाषा को संरचनागत संबंधों और रूपावलीगत संबंधों के उत्पाद (Product) के रूप में देखते हैं। एक तरफ मस्तिष्क में विभिन्न संरचना प्रकार हैं और दूसरी तरफ संरचना के घटकों में वैकल्पिक रूप में आने वाले शब्द या रूपावलियाँ (Paradigms) हैं। हर स्थिति में व्यक्ति दोनों प्रकार के व्यतिरेकों के संदर्भ में सही संरचना और घटक तत्व चुनता है।

3. संरचनागत (Syntagnatic) तथा रूपावलीगत (Associative) संबंध

जब हम भाषा बोलते हैं तो ध्वनियों और शब्दों को एक शृंखला के रूप में उच्चारित करते हैं। यह एक संरचना (Syntagm) है। संरचना में दो या अधिक भाषिक रूप या इकाइयाँ होती हैं। 'समता' में 'सम', 'ता' दो रूप हैं, 'अच्छा लड़का' में दो शब्द हैं, 'अगर तुम आ ओगे, तो हम साथ चलेंगे' में दो उपवाक्य हैं। ये तीनों अलग-अलग स्तरों पर संरचनाएँ हैं। संरचना में आने वाले हर घटक या इकाई का व्यतिरेक से मूल्य है। जैसे 'समता' में 'सम' का मूल्य परवर्ती 'ता' के व्यतिरेक के कारण है। साथ ही संरचना के घटकों का दूसरे घटकों से रूप संबंध भी होता है। जैसे समता से हम 'समत्व' 'समभाव' आदि शब्दों की बात सोच सकते हैं या 'ममता, लघुता' आदि की याद कर सकते हैं। इस तरह का संबंध शृंखला में नहीं होता, बल्कि मन में होता है। सस्युर रूपावलीगत के अंतर्गत सहसंबंध को भी लेते हैं और रूपावलीगत (Paradigmatic) संबंध को भी।

संरचनागत संबंध पूरी रचना के संदर्भ में है, जो उच्चरित वाक्य में प्रकट होता है। क्या उच्चारण के स्तर पर या वाक् व्यवहार के स्तर पर उच्चरित वाक्य में हम भाषा की रचना ढूँढ़ सकते हैं? इस संदर्भ में ही सस्युर ने भाषा की संरचनाओं के प्रकारों (types) की चर्चा की है। हम उच्चरित वाक्यों को भाषा के किन्हीं सीमित, पूर्व निर्धारित रचना-प्रकारों में देख सकते हैं। यही भाषा अध्ययन का विषय बनती है। वे प्रकारों से भिन्न वैयक्तिक उक्तियों के महत्व को भी स्वीकार करते हैं।

4. सस्युर के अनुसार भाषा प्रतीकों की व्यवस्था

हर प्रतीक के दो अंग होते हैं – ध्वनि-बिंब तथा अर्थ। भाषा एक सामाजिक संस्था है अर्थात् समाज इन प्रतीकों से वाक व्यवहार द्वारा संप्रेषण करता है। इन प्रतीकों के बारे में अध्ययन करने वाले विज्ञान को प्रतीक विज्ञान (Semiology) कहा जा सकता है। अगर हम

प्रतीकविज्ञान का आरंभ सस्युर से मानें तो गलत नहीं होगा। वे भाषाविज्ञान को प्रतीकविज्ञान के अंतर्गत रखते हैं। भाषाविज्ञान का संबंध समाजविज्ञान से है, प्रतीकविज्ञान का मनोविज्ञान से। लेकिन दोनों विज्ञान कुल मिलाकर अर्थ संप्रेषण की रचना तथा प्रक्रिया पर प्रकाश डालेंगे।

हम प्रतीकों की रचना के बारे में पढ़ेंगे, जिससे अर्थ के संबंध में सस्युर की मान्यताओं का परिचय मिल सके। प्रतीक मनोवैज्ञानिक वस्तु है जिसके दो अंग हैं – प्रत्यय (concept) या संकेतित (Signifier), ध्वनि-बिंब (Sound image) या संकेतक (Signified) वे इसे ध्वनियाँ नहीं, ध्वनि-बिंब कहते हैं, क्योंकि हम बिना उच्चारण ये भाषा में चिंतन करते हैं।

प्रतीक यादृच्छिक होता है। अर्थात् ध्वनि-बिंब और प्रत्यय का संबंध यादृच्छिक होता है। प्रत्यय से नया ध्वनि-बिंब अस्तितव में आ सकता है, ध्वनि-बिंब से नया प्रत्यय सूचित हो सकता है। सस्युर चूँकि पूरी भाषा को प्रतीकों को व्यवस्था कहते हैं, यादृच्छिकता का सिद्धांत समस्त भाषा के परिवर्तनों की व्याख्या में सहायक है। यादृच्छिकता का तात्पर्य व्यवहार में व्यक्ति की स्वच्छंदता नहीं है। यादृच्छिकता उस सामाजिक बंधन का ही दूसरा नाम है जिसेस भाषा सामाजिक वस्तु बनती है। जब कि भाषा में ऐसी यादृच्छिकता नहीं है, बल्कि तार्किक संगति और संगठित व्यवस्था है। इन दोनों के कारण ही भाषा में कई शताब्दियों तक भी अधिक परिवर्तन नहीं होता।

लेकिन जो परिवर्तन होता है, वह यादृच्छिकता के क्षेत्र में अधिक (स्पष्ट शब्दों में, भाषा की शब्दावली में अधिक) और व्यवस्था में कम होता है। इसका कारण यह है कि भाषा समुदाय सामाजिक स्तर पर भाषा को सुरक्षित रखने का कार्य करता है और पीढ़ी दर पीढ़ी उसे आगे बढ़ाता है। मनोवैज्ञानिक स्तर पर हर भाषा समुदाय तार्किक दृष्टि से भाषा को हमेशा और व्यवस्थितं करने का यत्न करता रहता है। इन दो प्रवृत्तियों के बीच भाषा धीरे-धीरे बदलती जाती है। लेकिन यह परिवर्तन आकस्मिक नहीं हो सकता। समय की गति के साथ ही हो सकता है।

5. घटक तथा रचना के संबंध के बारे में हम ऊपर देख चुके हैं।

4.3 लियोनार्ड ब्लूमफ़ील्ड (1887-1949)

ब्लूमफ़ील्ड संरचनात्मक भाषाविज्ञान के प्रवर्तक हैं, जो भाषाविज्ञान के क्षेत्र में 1930 से 1960 तक स्थापित था। वे व्यवहारवादी (Behaviorist) हैं और भाषा को समाज का उत्पाद मानते हैं। भाषा के अध्ययन के लिए उन्होंने प्रेरणा (stimulus) और प्रतिक्रिया (response) को आधार बनाया और भाषा विश्लेषण के लिए मन के पक्ष यानी भाषा के आर्थिक पक्ष को अनुपयुक्त बताया। किसी भाषाई वस्तु का सही परिप्रेक्ष्य में वांछित प्रतिक्रिया प्राप्त होना ही उसका वास्तव में अर्थ है। इसलिए उन्होंने भाषिक इकाइयों के अर्थ को विश्लेषण का आधार बनाना आवश्यक नहीं समझा।

ब्लूमफ़ील्ड उन अमेरिकी भाषावैज्ञानिकों की परंपरा में आते हैं जो नृतत्व विज्ञान (Anthropology) को नयी धारा के संदर्भ में अज्ञात संस्कृतियों तथा भाषाओं के अध्ययन के लिए एक नयी पद्धति की खोज में थे। मनोविज्ञान का व्यवहारवाद (Behaviourism) तथा दर्शन का प्रत्यक्षवाद (Empiricism) इस नये अध्ययन का आधार बना। जो प्रत्यक्षतः सामने है उसी को अध्ययन का आधार मानना तथा उसी के संदर्भ में वर्णन प्रस्तुत करना इस पद्धति का लक्ष्य है। इस मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक आधार पर भाषाओं तथा समाज

विज्ञान आदि क्षेत्रों में अध्ययन की एक नयी शाखा खुली जिसे संरचनात्मक उपागम (Structuralistic approach) कह सकते हैं। संरचनात्मक अध्ययन प्रत्यक्ष तथ्यों का ही विश्लेषण करता है और प्राप्त सामग्री के आधार पर वर्णन प्रस्तुत करता है।

ब्लूमफ़ील्ड ने 1933 में भाषा (Language) नामक ग्रंथ का प्रणयन किया। उनका भाषिक वर्णन उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक आधार पर प्राप्त (प्रेक्षणीय) भाषिक तथ्यों को प्रस्तुत करता है। यह सिद्धांत पूर्ववर्ती भाषावैज्ञानिक चिंतन से एकदम भिन्न और नया है। इस कारण इस चिंतन का लगभग 25 वर्ष तक विकास हुआ। भाषा की रचना के संदर्भ में उन्होंने सस्युर से कई मान्यताएँ भी ग्रहण कीं।

ब्लूमफ़ील्ड का भाषा विश्लेषण इस आधार पर शुरू होता है कि भाषा मूलतः उच्चरित है। लिखित रूप भाषा नहीं है, बल्कि उच्चरित भाषा को दृश्य रूप प्रदान करने का एक तरीका है। अतः भाषाविज्ञान का अध्ययन उच्चरित भाषा का होगा। भाषा का मानक या सभ्य समाज में व्यवहृत रूप किन्हीं सामाजिक परिस्थितियों के कारण उत्पन्न स्थिति है। वही एकमात्र भाषा नहीं है। सामान्य परिस्थितियों में होने वाला कोई भी वाक् व्यापार भाषा के अध्ययन का विषय हो सकता है।

भाषा समाज में विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम है। भाषा एक सामाजिक व्यवहार है। यह व्यवहार अन्य व्यवहारों से भिन्न नहीं है। भाषा-इतर व्यवहार भी संप्रेषण में काम आते हैं। आपको प्यास लगी है। आप 'पानी चाहिए' कह सकते हैं या इशारा कर सकते हैं। श्रोता (या द्रष्टा) 'अभी देता हूँ' कह सकता है या बिना बोले पानी लाकर दे सकता है। इस तरह यह सामान्य व्यवहार है और इसका आधार भाषिक है या भाषेतर। हम व्यवहार के रूप में भाषा को देख सकते हैं और अध्ययन कर सकते हैं।

हमने इस बात की चर्चा की थी कि ब्लूमफ़ील्ड के अनुसार भाषा के अध्ययन के लिए मन में अंकित अर्थ को जानने की आवश्यकता नहीं क्योंकि हम नहीं जानते कि मन में क्या होता है। मन की प्रक्रिया हमारे निरीक्षण और विश्लेषण के बाहर की चीज़ है। लेकिन भाषा का व्यवहार हमारे लिए निरीक्षणीय वस्तु है, दृश्यमान या श्रव्यमान है। इसीलिए वे प्रत्यक्ष (उच्चरित) भाषा वस्तु को ही अपने अध्ययन का विषय मानते हैं।

सामान्य व्यवहार में दो घटनाएँ एक घटना क्रम में देखी जा सकती हैं। पानी के लिए इशारा करना पहली घटना या व्यापार है, दूसरे व्यक्ति का पानी ला देना प्रभावित व्यापार है। पहला व्यापार प्रेरण है, दूसरा प्रतिक्रिया। इसी तरह एक वाक्य व्यापार को देखिए

क. आपका नाम क्या है?
ख. मेरा नाम .... है।

इसमें पहली उक्ति प्रेरणा है दूसरी प्रतिक्रिया। दूसरे कथन से प्रभावित एक और उक्ति हो सकती है।

क. आपके नाम का अर्थ क्या है?

यहाँ दूसरे व्यक्ति की प्रतिक्रिया पहले व्यक्ति के लिए प्रेरणा बनी। इस तरह एक लंबा वार्तालाप प्रेरणा और प्रतिक्रिया की शृंखला के रूप में देखा जा सकता है

प्रेरणा ⟶ प्रतिक्रिया
प्रेरणा ⟶ प्रतिक्रिया
प्रेरणा ⟶ प्रतिक्रिया आदि।

प्रेरणा की सहज प्रतिक्रिया ही उसका वास्वतिक अर्थ है। जैसे. 'आपका नाम क्या है' का उत्तर 'मेज़ पर एक किताब है' नहीं हो सकता। अर्थात् हम भाषा के अर्थ या प्रकार्य को सही अभिव्यक्तियों में ही देख सकते हैं। बालक सही स्थिति में सही प्रतिक्रिया को देखता है और भाषा सीखता है। इस व्यवहार को भाषावैज्ञानिक देखता है और भाषा का विश्लेषण करता है।

सामान्य व्यवहारों की तुलना में भाषा व्यवहार की कुछ विशेषताएँ हैं। यहाँ संकेत उच्चरित ध्वनियों से बने हैं। अर्थात् भाषावैज्ञानिक के लिए निरीक्षण योग्य वस्तु मात्र उच्चरित ध्वनियाँ हैं। ध्वनियाँ प्रेरणा नहीं है, बल्कि ध्वनियों से निर्मित उक्तियाँ संकेत व्यवस्था में सार्थक हैं। किस तरह ध्वनियों से अर्थ देने वाली उक्तियों का निर्माण होता है, यह देखना ही भाषा के अध्ययन का लक्ष्य है। प्राणी भी ध्वनियों से अर्थ (लेकिन उनके संकेतों और अर्थों में एक-एक का संबंध है) संप्रेषण करते हैं। ये संकेत सीमित होते हैं अतः अर्थ भी सीमित होते हैं। मनुष्य सीमित ध्वनियों से अत्यंत जटिल या अमूर्त विषय पर भी सूक्ष्मता से अर्थ की अभिव्यक्ति करता है। यह भाषा की जटिल व्यवस्था के कारण ही संभव है। यह व्यवस्था ही भाषा का विज्ञान है। न केवल मनुष्य भाषा का अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग करता है, बल्कि भाषा के अन्य कई अभिलक्षण हैं। भाषा वस्त जगत से अलग होती है। भूख़ न हो तो भी व्यक्ति 'भूख लगी है' कहता है। इस कथन की भी सार्थकता है। भाषा संदर्भ से अलग होती है। आप सिर्फ एक श्रोता को ही नहीं, पूरे देश को संबोधित कर सकते हैं। भाषा वास्तविक व्यवहार से अलग हो सकती है। भाषा में चिंतन इसका उदाहरण है। कोई व्यक्ति बिना कार्य किये उसके पक्ष-विपक्ष पर विचार करके निर्णय कर सकता है। इस दृष्टि से भाषा न केवल व्यवस्था में जटिल है, बल्कि व्यवहार में बहुमुखी है।

भाषा सामाजिक वस्तु है। एक भाषा समुदाय के लोग विचारों के संप्रेषण के लिए एक भाषा का प्रयोग करते हैं। उस समुदाय के व्यक्ति उस भाषा का समान ज्ञान रखते हैं। अर्थात् सभी व्यक्ति समान ध्वनियों के द्वारा समान अर्थ का संप्रेषण करते हैं। निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि भाषा समुदाय का हर व्यक्ति उस भाषा का सही प्रतिनिधि होता है।

भाषा की परिभाषा तथा प्रकृति की इस महत्वपूर्ण तथा युग प्रवर्तक चर्चा के बाद ब्लूमफ़ील्ड का दूसरा महत्वपूर्ण योगदान है भाषा की संरचना या व्यवस्था की चर्चा। उन्होंने ध्वनियों से लेकर वाक्य तक संरचना का एक अधिक्रम स्थापित किया जिसमें अधिक्रम के स्तर पर भाषिक रूपों से भाषिक संरचनाएँ निर्मित होती हैं। इसे हम उत्तराधिक्रमीय (Taxonomical) भाषाविज्ञान कह सकते हैं। ब्लूमफ़ील्ड ही इस संरचनात्मक भाषाविज्ञान के जनक हैं।

स्वन भाषा की आधार वस्तु है। इसका अध्ययन उच्चारण, हवा में प्रारण या श्रवण के आधार पर होता है। लेकिन स्वन भाषा की रचना की इकाई नहीं है। रचना की इकाई स्वनिम है, जो दो शब्दों में भेदक इकाई है। इसी से भिन्न अर्थ वाले दो शब्द अलग से पहचाने जाते हैं। स्वनिमविज्ञान भाषा की संरचना के अध्ययन का एक पक्ष है जिसमें वाक स्वनों को स्वनिम नामक अर्थभेदक इकाइयों में व्यवस्थित किया जाता है।

लेकिन स्वनिम सार्थक इकाई नहीं है। भाषा की लघुतम सार्थक इकाई रूप है। रूपिम विज्ञान रूपों को पहचानने, वर्गीकृत करने तथा रूपों से शब्दों से निर्माण का अध्ययन करता है। वाक्य विज्ञान में शब्दों से पदबंध की रचना, पदबंधों से उपवाक्यों की रचना और उपवाक्यों से वाक्यों की रचना का अध्ययन किया जाता है। इस तरह स्वनिम विज्ञान, रूप तथा वाक्य विज्ञान कुल मिलाकर भाषा का व्याकरण कहे जाते हैं। इसे उत्तराधिक्रमीय व्याकरण या भाषावैज्ञानिक व्याकरण कह सकते हैं।

4.4 संरचनात्मक भाषाविज्ञान में विश्लेषण की प्रक्रिया

हर भाषा में भाषिक रूप (Linguistic forms) होते हैं। ये भाषिक रूप अर्थभेदक इकाई स्वनिमों से निर्मित होते हैं। भाषिक रूप के उच्चारण द्वारा वक्ता श्रोता को किसी स्थिति में किसी विशिष्ट प्रकार की प्रतिक्रिया के लिए प्रेरित करता है। वह स्थिति या प्रसंग तथा वह प्रक्रिया -- ये ही दोनों उक्त भाषिक रूप के भाषिक अर्थ (Linguistic meaning) हैं। दो भिन्न रचनाओं में समान प्रकार्य वाला अंश एक भाषिक रूप हैं, जैसे 'पढ़ा', 'देखा' में /आ/ है। वह एक भाषिक रूप है। वैसे कुछ भाषिक रूप (कपड़ा, लड़का) आदि किसी बृहत्तर रचना में हमेशा न आएँ, तो इन्हें रूप-वर्ग के सिद्धांत से पहचान सकते हैं। इस तरह हर भाषिक रूप को हम ऊपर के स्तर की रचना का घटक (Constituent) मान सकते हैं। इस अधिक्रम को हम निम्नलिखित आरेख द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं :

अधिक्रम

	वाक्य		
संरचना स्तर ↑	उपवाक्य– पदबंध		वाक्यविज्ञान (syntax)
	शब्द रूप	–	रूपविज्ञान (Morphology)
	↑		
वस्तु स्तर	स्वनिम	–	स्वनिमविज्ञान (Phonology)

हर स्तर पर संरचना होती है। अर्थात् वाक्य एक या एक से अधिक उपवाक्यों से निर्मित होता है। यहाँ वाक्य संरचना है, उपवाक्य घटक। हर उपवाक्य एक या अधिक पदबंधों से निर्मित होता है। यहाँ उपवाक्य और पदबंध क्रमशः संरचना और घटक हैं। इसी तरह रूप से लेकर वाक्य तक संरचना का एक अधिक्रम है।

ब्लूमफ़ील्ड भाषिक, व्याकरणिक तथा शाब्दिक (Lexical) तीन स्तरों पर रूपों तथा उनके अर्थ को निम्नलिखित ढंग से प्रस्तुत करते हैं :

	भाषिक	**व्याकरणिक**	**शाब्दिक**
लघुतम अर्थ भेदक इकाई	फ़ोनीम	टैक्सीम	स्वनिम
अन्य सार्थक इकाई	ग्लासीम	टैग्मीम	रूपिम
(उसका अर्थ)	(नोईम)	(एपीसेमीम)	(सेमीम)
अन्य संरचित इकाइयाँ	भाषिक रूप	व्याकरणिक रूप	शाब्दिक रूप
(उनका अर्थ)	(भाषिक अर्थ)	(व्याकरणरिक अर्थ)	(शाब्दिक अर्थ)

भाषा की रचना में रूपों के संदर्भ में वे दो परिभाषाएँ प्रस्तुत करते हैं – व्याकरणिक प्रकार्य और रूप वर्ग। हर शाब्दिक इकाई की अपनी व्याकरणिक संरचना भी होती है। अर्थात् वाक्य में या किसी संरचना में उसका अपना व्याकरणिक प्रकार्य होता है। जैसे कोई संज्ञा शब्द वाक्य में कर्ता या कर्म के स्थान पर आता है। जो शाब्दिक रूप समान व्याकरणिक प्रकार्य रखते हैं, एक रूप-वर्ग (form class) में रखे जा सकते हैं। जैसे सारे सर्वनाम शब्द एक वर्ग में आएँगे और ये अन्य संज्ञा शब्दों के साथ मिलकर एक बृहत्तर वर्ग 'संज्ञादि' (Substantives) में आएँगे। हर रूप वर्ग का अपना वर्गाथ (Class Meaning) होता है। परंपरात्मक व्याकरण इस वर्गार्थ से ही व्याकरण की व्याख्या करने का यत्न करते हैं। जैसे 'संज्ञा किसी व्यक्ति या स्थान या वस्तु का नाम है' आदि। लेकिन वर्गार्थ बहुत स्पष्ट रूप से

हमेशा बताया नहीं जा सकता। वर्गार्थ के साथ रचनाओं के प्रकार्य को भी जानना भाषा के सही विश्लेषण के लिए आवश्यक है।

प्रकार्य और रूप वर्ग की संकल्पनाओं के बाद वे स्थानापत्ति (Substitution) की संकल्पना प्रस्तुत करते हैं। किसी रचना में कोई शाब्दिक या व्याकरणिक रूप दूसरे वर्गीय रूपों को स्थानापन्न करता है। जैसे 'राम काम करता है' में 'वह' आ सकता है। समान वर्गार्थ वाले शब्द स्थानपत्ति वर्ग में आते हैं। स्थानापत्ति से हम भाषा में विभिन्न रूपों को पहचान सकते हैं।

व्याकरणिक व्यवस्था शाब्दिक व्यवस्था के अतिरिक्त हैं। सिर्फ़ रूपों से हम वाक्य को कई व्याकरणिक विशेषताओं की सूचना देते हैं। ब्लूमफ़ील्ड व्याकरणिक संरचना में निम्नलिखित चार टैक्सीमों की कल्पना करते हैं। (1) क्रम (order) : किसी रचना में इकाइयाँ किस क्रम में आ सकती हैं और क्रम परिवर्तन से क्या अर्थ भेद होता है। अंग्रेज़ी वाक्य देखें – (John hit Bill, Bill hit John)। क्रम के कारण इनका अर्थ एकदम विपरीत हो जाता है। (2) अनुतान (Modulation) : हर उच्चारण के साथ अनुतान की विशेषता रहती है। जैसे : राम! (बुलाना) राम ...... (शक, शायद राम हो) राम। (उत्तर)। (3) संधि (Phonetic Modification) : हम बोलते समय रूपों को मिला देते हैं (जैसे कर – लिया → कल्लिया) या रूपों में ध्वनि परिवर्तन कर देते हैं। (उत्+तर → उत्तर), उद्+दंड → उद्दंड)। यह रूपों को पहचानने और विश्लेषित करने के लिए उपयोगी है। (4) चयन (Selection): यह व्याकरणिक इकाइयों में सबसे महत्वपूर्ण है। पूरी रचना का अर्थ इकाई के चयन के कारण बदल जाता है। जैसे (आप) किताब लाइए, (आपको) किताब चाहिए। यहाँ दोनों क्रियाओं में व्याकरणिक अंतर है, जिस कारण कर्ता, शब्द का उचित चयन करना पड़ता है। चयन की संकल्पना से जुड़ी हुई एक महत्वपूर्ण संकल्पना है सन्निकट घटकों की (Immediate Constituents) ।

मैं शाम को घर जा रहा हूँ						
मैं	शाम को घर जा रहा हूँ					
मैं	शाम को		घर जा रहा हूँ			
मैं	शाम को		घर	जा रहा हूँ		
मैं	शाम को		घर	जा	रहा हूँ	
मैं	शाम	को	घर	जा	रहा	हूँ

रचना स्तर पर हम चयन के सिद्धांत के आधार पर 'को घर', 'मैं शाम' आदि को एक संरचना नहीं मानते। सन्निकट घटक रचनाओं के विभिन्न स्तरों को पहचानने में हमारी मदद करता है। स्थानापत्ति और चयन दोनों घटकों के विश्लेषण में सहायक है।

ब्लूमफ़ील्ड मानते हैं कि भाषा की कोई भी रचना हो, व्याकरणिक इकाइयों के तथा शाब्दिक इकाइयों के विश्लेषण से हम भाषा की हर रचना का विश्लेषण कर सकते हैं। इसके लिए मन में अंकित (या उक्ति के मूल में विद्यमान) अर्थ को जानने की आवश्यकता नहीं (और यह संभव भी नहीं) बल्कि उक्ति के भाषाई, व्याकरणिक तथा शाब्दिक अर्थ तथा उक्ति की रचना से हम वाक्य का विशेषण कर सकते हैं। ब्लूमफ़ील्ड का भाषा की रचना के संदर्भ में सस्युर से विचार साम्य हैं। प्रमुख अंतर व्यवहारवादी सिद्धांत के कारण है, जहाँ ब्लूमफ़ील्ड उक्ति के अर्थ को भाषा के विश्लेषण से बाहर निकाल देने पर बल देते हैं। लेकिन ब्लूमफ़ील्ड का सिद्धांत अपने मनोवैज्ञानिक आधार के कारण नहीं, बल्कि भाषा की रचना के विश्लेषण की सूक्ष्मता और निश्चितता के कारण बहुत प्रचलित हुआ। उनकी

परंपरा में ज़ेलिग हैरिस, ग्लीसन आदि विद्वानों ने ब्लूमफ़ील्ड के सिद्धांत को अत्यंत वैज्ञानिक आधार पर बढ़ाकर संरचनात्मक भाषाविज्ञान की परंपरा स्थापित की।

4.5 टैग्मीमिक्स और सिस्टिमिक व्याकरण

ध्वनि से वाक्य तक के रचनागत अधिक्रम या ऊर्ध्वाधर क्रम (hierarchy) वाले व्याकरणों को taxonomic grammar कहा जाता है। इसी परंपरा में ब्लूमफ़ील्ड के व्याकरण में सुधार करते हुए दो और विद्वानों ने अपने ढंग से व्याकरण की रूपरेखा प्रस्तुत की।

टैग्मीमिक्स : अमेरिकी वैज्ञानिक केनेथ एल. पाइक (Kenneth L. Pike) ने टैग्मीमिक्स (Tagmemics) नामक उपागम का प्रवर्तन किया। उदाहरण के तौर पर जहाँ ब्लूमफ़ील्ड उपवाक्य को केवल पदबंध के घटकों में विभाजित करते हैं, पाइक पदबंधों को उस जगह आने वाले प्रकार्यात्मक शब्दों की सूची के साथ सूचित करते हैं। जैसे :

कर्ता : संज्ञा पदबंध + *कर्म* : संज्ञा पदबंध + *विधेय* : क्रिया पदबंध

इस तरह स्थान तथा उसमें आने वाले पद (या अन्य भाषिक इकाई) के योग को वे tagmeme कहते हैं। इसी कारण रचना तत्व को स्पष्ट करते हुए वे टैग्मीमीम को एक ओरख में दिखाते हैं जैसे :

Slot	Class
Role	Cohesion

(हिंदी में)

स्थान	वर्ग
प्रकार्य	संगति

स्थान का तात्पर्य है संरचना का वह स्थान जहाँ संरचना का घटक आता है जो संरचना का प्रकार्य सूचित करता है।

वर्ग उन इकाइयों का समूह है जो उस स्थान पर आता है, जैसे कर्ता (संज्ञा पदबंध) स्थान पर संज्ञा शब्द।

प्रकार्य उस घटक (जैसे कर्ता) की भूमिका की आर्थी सूचना देता है जैसे 'खाया' का कर्ता actor है, 'पाया' का कर्ता beneficiary (प्राप्तकर्ता) है।

संगति में अन्विति आदि वाक्यगत विशेषताएँ सूचित की जाती हैं।

पाइक भाषाविज्ञान को वाक्य विश्लेषण से व्यापक मानते हैं। उनके अनुसार भाषा विश्लेषण के तीन स्तर हैं – स्वनिमविज्ञान; व्याकरण, जो वाक्य से ऊपर की संरचनाओं (संवाद, भाषण, स्वगत भाषण, पाठांश, पैरा आदि) को भी विश्लेषण में शामिल करता है; और संदर्भ जिसमें परस्पर संप्रेषण, व्यंजित अर्थ, घटना क्रम, अस्मिता आदि कारक जुड़ जाते हैं।

सिस्टमिक व्याकरण (Systemic grammar)

यह भाषाविज्ञान की यूरोपीय शाखा की उपज है, जिसके प्रवर्तक हैलिडे (M.A.K. Halliday) हैं। इस शाखा के मूल स्रोत हैं फर्थ (J.R. Firth) जो भाषा को बहु-प्रकायार्त्मक व्यवस्था मानते हैं। हैलिडे मानते हैं कि भाषा के विश्लेषण में संदर्भ का महत्व है क्योंकि अर्थ संदर्भ का ही प्रकार्य है। इसलिए भाषा के अध्ययन में विविध संदर्भों का अध्ययन आवश्यक है और संदर्भों में भाषा के प्रकार्यों को भी अध्ययन का लक्ष्य बनाया जाना चाहिए। इस संदर्भ में वे अपने व्याकरण का सिस्टमिक – प्रकार्यात्मक व्याकरण भी कहते हैं। हैलिडे भाषाविज्ञान की यूरोपीय शाखा प्रकार्यात्मक व्याकरण (Functional Grammar) के भी स्तंभ हैं। 8

वे भाषा के तीन प्रमुख प्रकार्य मानते हैं :

(i) वैचारिक प्रकार्य (ideational function) : हम भाषा के माध्यम से वस्तुजगत का ज्ञान प्राप्त करते हैं। संरचना भी वास्तविकता को प्रतिबिंबित करती है। अभिकर्ता (agent), अधिकरण आदि कारक इसी वास्तविकता के सूचक हैं। यही भाषा का अनुभवगत/experiential) प्रकार्य भी हैं।

(ii) परस्परता का प्रकार्य (interpersonal fuction) : इससे भाषा के प्रयोग का संदर्भ सूचित होता है। हम उक्ति से सूचना भी दे सकते हैं, आदेश भी।

(iii) पाठगत प्रकार्य (fextnal fuction) : इसके अनुसार वाक्य संदेश संप्रेषण की संरचना है। हम नई सूचना दे रहे हैं या पूर्व सूचना को आधार बनाकर अपनी बात कहते हैं; हम किस बात पर बल दे रहे हैं आदि की चर्चा इसमें होती है।

रूप से वाक्य तक की संरचना का प्रारूप लगभग ब्लूमफ़ील्ड के विवेचन के समान है। हैलिडे मानते हैं कि हर वाक्य के विश्लेषण में उपर्युक्त तीनों प्रकार्यों का विवेचन होना चाहिए।

4.6 सारांश

संरचनात्मक भाषाविज्ञान (structural linguistics) भाषा के अधिक्रमीय (taxonomic) विश्लेषण का प्रमुख उपागम है। इसका लक्ष्य केवल वर्तमान में मौखिक रूप से प्रस्तुत भाषा का अध्ययन है, जो विश्लेषण के लिए न ऐतिहासिक साक्ष्य पर निर्भर है, न मानसिक रूप से निहित कारणों का सहारा लेता है। एक ही काल की भाषा के स्वरूप का अध्ययन करने के कारण इसे एककालिक या समकालिक (synchronic) भाषाविज्ञान कहा जाता है। भाषा का यथातथ्य वर्णन करने के लिए इस उपागम ने एक ढाँचा प्रस्तुत किया है। अपेक्षा की जाती है कि सारी भाषाओं का अध्ययन इसी अधिक्रमीय पद्धति से किया जाए। इसलिए इसे वर्णनात्मक भाषाविज्ञान (descriptive linguistics) भी कहा जाता है। इस पद्धति से लिखे गये भाषा के विश्लेषण को वर्णनात्मक व्याकरण (descriptive grammar) की संज्ञा दी जाती है।

संरचनात्मक भाषाविज्ञान का आविर्भाव सस्युर के ग्रंथ के प्रकाशन से माना जाना चाहिए – लगभग 1915 के आसपास। लेकिन यह 1933 में ब्लूमफ़ील्ड की पुस्तक 'भाषा' के प्रकाशन के साथ ही पूर्ण प्रकाश में आया। तब से लेकर लगभग 1965 तक संरचनात्मक भाषाविज्ञान का ज़ोर था। विश्व की कई भाषाओं का वर्णनात्मक व्याकरण लिखा गया। भाषा को आदत (व्यवहार) मानने तथा आदत द्वारा भाषा सीखने की मान्यता के कारण संरचनात्मक भाषाविज्ञान ने भाषा शिक्षण को भी बहुत प्रभावित किया।

अब हम संक्षेप में इसकी प्रमुख मान्यताओं और कार्यविधि की चर्चा करेंगे।

सस्युर की मान्यताएँ

1. वे संकेतिक अर्थ तथा शब्द (signifier) की इकाई को प्रतीक मानते हैं। भाषा का प्रकार्य प्रतीकों के माध्यम से अर्मूत अर्थ को मूर्त रूप देना है।

2. वे भाषा (Language) तथा वाक् (parole) में अंतर करते हैं। समाज में समस्त व्यक्ति भाषा बोलते हैं, जो वैयक्तिक अंतरों के बावजूद नियमबद्ध रूप में विश्लेषित की जा सकती है। लोगों की उक्तियाँ वाक् के उदाहरण हैं, जो वास्तविक घटना है। वाक् के आधार पर भाषावैज्ञानिक भाषा की व्यवस्था ढूँढ़ते हैं। वाक्य भाषा की इकाई है, उक्ति वाक् की।

3. वे ऐतिहासिक तथा समकालिक भाषाविज्ञान में संबंध देखते हैं।

4. भाषा की रचना के संदर्भ में वे अभिरचनात्मक (syntagmatic) तथा रूपावलीपरक (paradigmatic) संबंधों की चर्चा करते हैं।

ब्लूमफ़ील्ड की मान्यताएँ

1. ब्लूमफ़ील्ड व्यवहारवादी मनोविज्ञान से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। उनके अनुसार भाषा सामाजिक व्यवहार की वस्तु है। भाषा की उक्तियाँ सामाजिक व्यवहार की तरह वाक् व्यापार (speech events) हैं।

2. हर वाक् व्यापार को हम प्रेरण और प्रक्रिया की शृंखला के रूप में देख सकते हैं। प्रेरणा और प्रक्रिया भौतिक हो सकती है या वाचिक।

3. भाषा का विश्लेषण उक्त व्यापारों के निरीक्षण तथा विश्लेषण के आधार पर हो सकता है। अध्ययन का क्षेत्र सिर्फ़ वाक् व्यापार है। उक्त विश्लेषण और भाषा के वर्णन की प्रक्रिया ही संरचनात्मक या वर्णनात्मक भाषाविज्ञान है।

4. वे वाक्य के अर्थ को सिर्फ इकाइयों की तुलना आदि के संदर्भ को महत्व देते हैं अर्थ का विश्लेषण नहीं करते। उनके अनुसार अर्थ मन में हैं, इस मन के कार्य को नहीं जानते। जो वाक् व्यापार प्रत्यक्षतः सामने है, उसी का अध्ययन हो सकता है। साथ ही, वे सस्यूर के सिद्धांत को मानते हैं।

संरचनात्मक भाषा विज्ञान के गुणधर्म

1. भाषा उच्चरित है। लेखन इसका विस्तार है।

2. भाषाविज्ञान वर्णनात्मक अध्ययन है, प्रमाण सिद्ध है। यह निर्देशात्मक अध्ययन नहीं।

3. भाषाविज्ञान भाषा मात्र का अध्ययन है। विश्लेषण की प्रविधि किसी भी भाषा के अध्ययन के लिए प्रारूप है।

4. भाषा का वर्णन समकालिक है। भाषा का हर वक्ता भाषा का प्रतिनिधि है। किसी एक वक्ता की भाषा का वर्णन भाषा का प्रतिनिधि वर्णन है।

5. भाषा एक व्यवस्था है। इसे वक्ता अभ्यास द्वारा अर्जित करते हैं।

6. भाषा विश्लेषण की प्रविधि की माँग है कि विश्लेषण स्वनों से वाक्य तक जाए।

7. व्यवस्था के रूप में सभी भाषाएँ समान हैं। लेकिन भाषा की व्यवस्था अपनी है।

भाषाओं में व्यवस्था का साम्य-वैषम्य है, लेकिन व्यवस्था की सार्वभौमिकता नहीं है।

संरचनात्मक भाषाविश्लेषण की प्रविधि

1. भाषाई इकाइयों या घटकों से संरचना का निर्माण होता है। इकाइयों से बनी अभिरचना में अभिरचनात्मक (syatapnetic) संबंध है, अभिरचना के स्थानों में इकाइयों में रूपावलिपरक (paradigmatic) संबंध हैं।

2. इकाइयों के वितरण की व्यवस्था निम्न प्रकार हैं :

   (क) एक अभिरचना में एक स्थान पर आने वाली इकाइयों में व्यतिरेकी वितरण है और इनसे भिन्न संरचनाएँ निस्पन्न होती हैं।

   (ख) एक इकाई के दो भिन्न रूप हों और उनसे अभिरचना में स्थान निश्चित (और भिन्न) हों तो यह परिपूरक वितरण (complementary distribution) है।

   (ग) एक इकाई के भिन्न रूप एक ही स्थान में आए और रचना न बदले तो वह मुक्त वितरण है।

3. संरचना के विभिन्न स्थानों में आने वाली इकाइयों को संग्चना वर्गों में विभाजित किया जाता है, जैसे पदबंध स्तर पर संज्ञा पदबंध, क्रिया पदबंध आदि। इनके आपस के संबंधों तथा आंतरिक संरचना आदि का विश्लेषण उस रचना को स्पष्ट करता है। रचना के एक स्थान पर आने वाला इकाई के विभिन्न तत्व रूप वर्गों (form classes) में विभाजित किया जाता है। जैसे कर्ता में संज्ञा तथा सर्वनाम दो रूप वर्ग हैं। यहाँ चयन या स्थानापत्ति के आधार की चर्चा कुछ रचना के संदर्भ में की जाती है।

4. अपने उपागम के कारण संरचनात्मक भाषाविज्ञान अधिक्रमिक (taxonomic) है। भाषा की रचना स्तरित है। और हर स्तर की रचना ऊपर की स्तर की रचना construction के लिए संरचक या घटक है। रूप के घटक अर्थ स्तर पर कोई नहीं, वस्तु (substance) के स्तर पर स्वनिम हैं। वाक्य भाषा की सबसे बड़ी इकाई है, यह किसी अन्य रचना का घटक नहीं है।

इस अधिक्रम को निम्नलिखित आरेख द्वारा समझ सकते हैं :

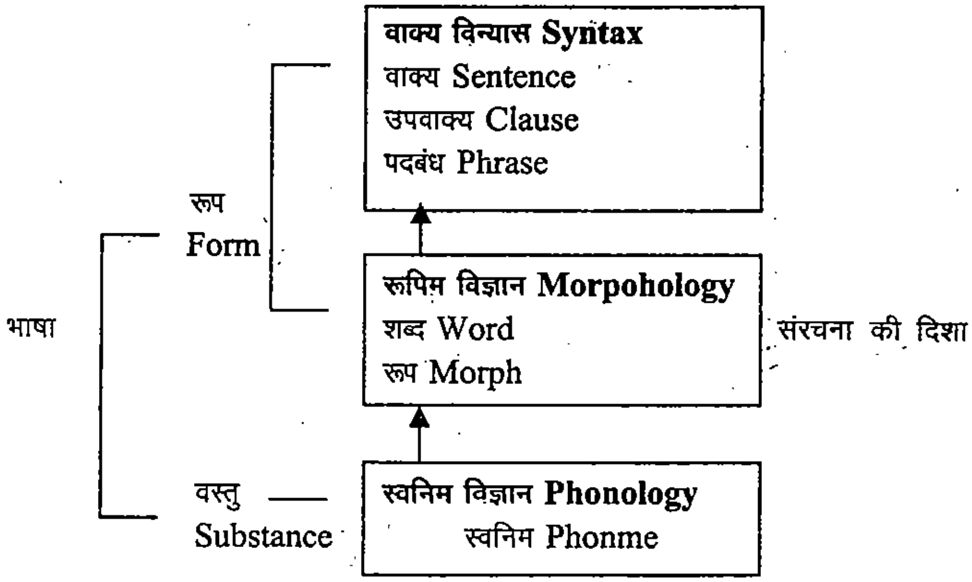

5. यद्यपि अधिक्रम के संदर्भ में हम स्वनिम से वाक्य तक जाते हैं, आधारभूत साँचों की पहचान के लिए रचना के मूल तक पहुँचने के लिए सन्निहित घटक विश्लेषण का आधार लेते हैं।

4.7 अभ्यास प्रश्न

1. **निबंधात्मक प्रश्न**
   (1) संरचनात्मक भाषाविश्लेषण की प्रविधि समझाइए।
   (2) सस्युर की मान्यताओं की चर्चा कीजिए।
   (3) ब्लूमफ़ील्ड ने भाषा की परिभाषा कैसे की तथा भाषा विश्लेषण की कौन-सी प्रविधि सुझाई?

2. **टिप्पणियाँ**
   (1) संरचनात्मक भाषाविज्ञान के अन्य नाम
   (2) अधिक्रमीय (taxonomic) व्याकरण का तात्पर्य
   (3) संरचनात्मक भाषाविज्ञान का भाषा शिक्षण पर प्रभाव

इकाई 5 चॉम्स्की तथा रूपांतरण – निष्पादन व्याकरण

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 भाषा और व्याकरण की संकल्पना
5.3 रूपांतरण – निष्पादन व्याकरण के अध्ययन की प्रविधि
5.4 रूपांतरण – निष्पादन व्याकरण के दो चरण
 5.4.1 1957 का मॉडल
 5.4.2 1965 का मॉडल
5.5 रूपांतरण – निष्पादन व्याकरण की अद्यतन स्थिति
5.6 सारांश
5.7 अभ्यास प्रश्न

5.0 उद्देश्य

ब्लूमफ़ील्ड के 'भाषा' नामक ग्रंथ के प्रवर्तन से संरचनात्मक भाषाविज्ञान की प्रतिष्ठा हुई, जो भाषा के प्रत्यक्षतः देखे गये मौखिक रूप के आधार पर भाषाओं के वैज्ञानिक विश्लेषण और वर्णन पर बल देता है। चॉम्स्की व्यवहारवादी सिद्धांत का खंडन करते हुए मनोवादी (mentalistic) उपागम पर बल देते हैं, क्योंकि उनके अनुसार भाषा जन्मजात प्रवृत्ति है, मन और विचार से उसका गहरा संबंध है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- मनोवादी भाषा विश्लेषण के अभिलक्षण बता सकेंगे;
- चॉम्स्की के योगदान और मान्यताओं की व्याख्या कर सकेंगे;
- रूपांतरण – निष्पादन व्याकरण की प्रविधि समझा सकेंगे;
- व्यवहारवाद तथा मनोवाद में अंतर बता सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

चॉम्स्की रू–नि व्याकरण के प्रवर्तक हैं। वे भाषा को आदत नहीं मानते, क्योंकि भाषा सिर्फ़ आदत होती तो तोता हमारी तरह भाषा बोलता। भाषा के व्यवहार की क्षमता केवल मनुष्यों में है, प्राणी मात्र ध्वनि संकेतों से संप्रेषण करते हैं। मनुष्य भाषा को नियमबद्ध व्यवहार के रूप में अर्जित करता है और नियमों के आधार पर वाक्य बनाकर बोलता है। शिशु (या अध्येता) समाज में भाषा सुनते हैं, उसकी रचना का मन में विश्लेषण करते हैं और उन नियमों को मन में आत्मसात करते हैं। इस तरह भाषा (किसी विशेष भाषा) की दक्षता जन्मजात नहीं है, हमें भाषा को समाज से अर्जित करना होता है। लेकिन भाषा को अर्जित करने की प्रवृत्ति जन्मजात (innate) है, मनुष्यमात्र की विशेषता है।

चॉम्स्की (1935-) पोलेंड मूल के अमेरिकी भाषावैज्ञानिक हैं। आपने भाषाविज्ञान का अध्ययन संरचनात्मक भाषाविज्ञान की परंपरा में ही शुरू किया। लेकिन वे संरचनात्मक अध्ययन से विमुख होते गए। गणित, तर्कशास्त्र का अध्ययन, यूरोप के मध्य युग के मनोवादी संप्रदाय का ज्ञान, भारतीय भाषाविज्ञान की परंपरा आदि से परिचित होने के कारण उन्होंने पाया कि संरचनात्मक विश्लेषण केवल वाक्य संरचनाओं में प्राप्त सतही समता को

पकड़ पाता है, लेकिन समान दीखने वाले लेकिन आंतरिक रूप से भिन्न संदिग्ध वाक्यों की व्याख्या नहीं कर पाता। जैसे :

मोहन सोहन को मूर्ख लगता है।	(मोहन मूर्ख है)
मोहन सोहन को मूर्ख समझता है।	(सोहन मूर्ख है)

उनके अनुसार हम मन में निहित अपने अभीष्ट अर्थ के संदर्भ में ही इन वाक्यों में अंतर कर सकते हैं, ऊपरी संरचना के आधार पर नहीं। इसके लिए हमको मन का आधार लेना पड़ेगा। चॉम्स्की ने 1957 में (Syntactic Structures) नामक युग प्रवर्तक ग्रंथ का प्रणयन किया। ब्लूमफ़ील्ड व्यवहारवादी है. तो चाम्स्की मनोवादी। वे भाषा की आदत और अर्थ से पृथक रचना विश्लेषण के विरोधी हैं। वे भाषा का अस्तित्व वक्ता के मस्तिष्क में मानते हैं। उनका व्याकरणिक सिद्धांत रूपांतरण–निष्पादनात्मक व्याकरण (Transformational generative grammar) कहलाता हैं। उनका व्याकरण ब्लूमफ़ील्ड की लगभग सारी मान्यताओं का खंडन करता है और भाषा के विश्लेषण, अर्जन आदि के संदर्भ में भाषा की नयी व्याख्या प्रस्तुत करता है।

भाषा की आदत या व्यवहार द्वारा अर्जन के विरोध में चॉम्स्की भाषा की सृजनात्मकता (Creativity) पर अधिक बल देते हैं। यह सृजनात्मकता मात्र निरीक्षण द्वारा प्राप्त नहीं हो सकती। सृजनात्मकता मन की क्षमता है, जो किन्हीं नियमों के अंतर्गत अब तक न सुनी गयी रचनाओं को भी पहचानता है और नये-नये वाक्यों का उत्पादन (निष्पादन) करता है। कुछ बहुप्रचलित उक्तियों को छोड़कर हम हमेशा, हर बार अपने ढंग से नये वाक्य की रचना करते हैं। भाषा के कुल वाक्यों की संख्या अनंत है, असीमित है। व्यक्ति इन सब वाक्यों को सुनकर भाषा की सही, ग्रहणीय उक्तियों को पहचानता है यह क्षमता उसमें कहाँ से आती हैं?

5.2 भाषा और व्याकरण की संकल्पना

चॉम्स्की तथा उनके संप्रदाय के विद्वानों का कहना है कि भाषा जन्मजात (Innate) गुण है, जो सिर्फ़ मानवों की विशेषता है। यह मानव के विकसित मस्तिष्क के कारण है। अतः किसी और प्राणी में भाषा की प्रवृत्ति नहीं दिखायी पड़ती। बच्चा पैदा होने के बाद से ही भाषा द्वारा संप्रेषण और सीखने की प्रवृत्ति प्रदर्शित करता है। संसार में कोई मानव समाज नहीं है जो भाषा का प्रयोग न करता हो, संसार में कोई सामान्य (normal) व्यक्ति नहीं है जो भाषा का व्यवहार न करता हो। इस तरह भाषा व्यवहार तथ भाषा सीखने की प्रवृत्तिं सार्वभौम (Universal) है। इस कारण हमें भाषा में कई सार्वभौम तत्व मिलते हैं। जैसे सभी भाषाओं में संज्ञा और क्रिया शब्दों का होना। इन सार्वभौम तत्वों के कारण भाषाओं के विश्लेषण की एक सामान्य रूपरेखा स्थापित की जा सकती है, जो वास्तव में भाषा की रचना को नहीं, बलकि भाषा बोलने की मानव की क्षमता तथा सर्जनात्मक शक्ति को उद्‌घाटित करे। चूँकि ब्लूमफ़ील्ड भाषा को एक भाषा के समुदाय के व्यवहार की वस्तु मानते हैं, उनके सिद्धांत में कहीं भाषा के पीछे की मानसिक क्षमता का स्थान नहीं है, न ही इस कारण भाषाओं के सार्वभौम तत्वों का। ब्लूमफ़ील्ड के अनुसार हर भाषा की व्यवस्था अपने में पूर्ण है। ब्लूमफ़ील्ड का भाषाविज्ञान कई भाषाओं की व्यवस्थाओं के अध्ययन के आधार पर निर्मित है। भाषाओं में जितने वाक्य प्रकार मिलते हैं, वे उनके व्याकरण का कलेवर बनते हैं। वह प्रदत्त (Data) पर आधारित है, जबकि चॉम्स्की का सिद्धांत प्रदत्त पर आधारित नहीं, व्यक्ति की क्षमता पर आधारित है। इसी संदर्भ में चॉम्स्की व्याकरणिकता (grammaticalness) तथा ग्रहणीयता (acceptability) की चर्चा करते हैं। Colourless green ideas sleep furiously यह वाक्य व्याकरणिक है, लेकिन अग्राह्य है। इसका निर्णय भाषा भाषी अपनी भाषा की जन्मजात क्षमता के आधार पर करता

है। चॉम्स्की के अध्ययन का आधार वे संगठित (well formed) वाक्य हैं जो व्याकरणिक भी हों और ग्राह्य भी हों। ऐसे वाक्यों का निर्णय व्यक्ति किस आधार पर और किस तरह से करता है?

ब्लूमफ़ील्ड के अनुसार भाषा आदतों का समुच्चय (A set of habits) है। चॉम्स्की के अनुसार भाषा सीमित नियमों का समुच्चय है, जिनसे व्यक्ति भाषा के असीमित वाक्यों का उत्पादन करता है। इस कारण भाषा मात्र व्यवहार नहीं, नियमबद्ध व्यवहार है (Rule governed behaviour)। ये नियम वक्ता तक कैसे पहुँचते हैं? व्याकरण ग्रंथों से? नहीं। व्यक्ति भाषा सीखने की अपनी जन्मजात प्रवृत्ति के कारण भाषा को सुनता है, भाषा का मन में विश्लेषण करता है और भाषा के नियमों को आत्मसात (Internalise) करता है। इन्हीं मन में अंकित नियमों के आधार पर वह भाषा के सही और ग्राह्य वाक्यों का उत्पादन करता है और पहचानता है। चॉम्स्की इन अंकित नियमों को आंतरिक व्याकरण (inbuilt grammar) कहते हैं। इस आंतरिक व्याकरण के संदर्भ में कहा जा सकता है कि वक्ता स्वयं इन नियमों को नहीं जानता, न उद्घाटित कर सकता है। वह भाषा के प्रयोग में मात्र इनका उपयोग करता है। आंतरिक व्याकरण से भाषा के वाक्यों के उत्पादन की शक्ति ही व्यक्ति की उत्पादक या निष्पादक क्षमता (Generative capacity) है। चॉम्स्की के भाषाविज्ञान का एक मुख्य उद्देश्य है इन आंतरिक नियमों को व्याकरण के क्रमिक नियमों के समुच्चय (ordered set of rules) के रूप में दिखाना, जिससे हम व्याकरण के सहारे या संगणक आदि मशीनों के प्रयोग से सही तथा ग्राह्य वाक्यों का निष्पादन कर सकें। इसी कारण चॉम्स्की का व्याकरणिक संप्रदाय निष्पादन व्याकरण या निष्पादन मॉडल कहा जाता है। अगर हम ब्लूमफ़ील्ड के संप्रदाय के अनुसार प्रेक्षणीय (Observable) व्यवहार के रूप में भाषा को मानें, तो भाषा के अनंत वाक्यों की रचना के विश्लनेषण का हमारे पास आधार नहीं है।

नियमबद्ध व्यवहार के रूप में भाषा को देखने के कारण ही हम व्यक्ति की इस सर्जनात्मक शक्ति का स्पष्टीकरण दे पाते हैं। इस दृष्टि से सर्जनात्मकता तथा निष्पादन क्षमता (Generative Capacity) दोनों शब्द समान अर्थ देते हैं। यह ध्यान रखना होगा कि सर्जनात्मक शक्ति मन या मस्तिष्क का गुणधर्म है। निष्पादन क्षमता व्यक्ति में तो है ही, नियमों के स्पष्ट विवरण के साथ यह क्षमता व्याकरण में भी आ जाती हैं। चॉम्स्की भाषाविज्ञान के लक्ष्य की चर्चा करते हुए कहते हैं कि भाषाविज्ञान के सिद्धांत को हमें व्याकरणों की खोज के लिए यांत्रिक ढंग से प्रविधि देने वाला अध्ययन नहीं मानना चाहिए ब्लूमफ़ील्ड आदि के व्याकरणों में (चॉम्स्की के मंतव्य के अनुसार) भाषा विश्लेषण का यह यांत्रिक उपागम दिखायी पड़ता है। व्याकरण क्या होना चाहिए। इस संबंध में उन्होंने पर्याप्तता ' का सिद्धांत प्रस्तुत किया है। सबसे पहले है प्रेक्षण की पर्याप्तता (Observational adequacy) – किस जगह कौन-सा प्रयोग होता है इसकी सूचना व्यकारण से मिल जाए। उनके अनुसार संरचनात्मक भाषाविज्ञान में यह गुण तो है। दूसरी है वर्णन की पर्याप्तता (Descriptive adequacy) – व्याकरण न सिर्फ प्रयोगों का औचित्य स्पष्ट करे, बल्कि वक्ता के आंतरिक व्याकरण या भाषा बोलने की क्षमता का भी वर्णन कर सके यह गुण पूर्ववर्ती व्याकरणों में नहीं है। यह पर्याप्तता चॉम्स्की के मॉडल में है। यह व्याकरण न सिर्फ भाषा की रचना की विशेषताएँ स्पष्ट करता है, बल्कि इससे भाषा बोलने वालों के मन की प्रक्रिया पर भी प्रकाश पड़ता है। चॉम्स्की संप्रदाय के कारण भाषा अर्जन, भाषा दोषों का विश्लेषण आदि विषयों क्षेत्रों में भी नये युग का सूत्रपात हुआ। पहले माना जाता था कि व्यक्ति आदत के रूप में व्यवहार द्वारा भाषा सीखता है। इस संप्रदाय ने बच्चों के भाषा अर्जन के संदर्भ में सिद्ध कर दिया कि बच्चे नियनबद्ध व्यवहार के रूप में भाषा सीखते हैं। हर बच्चे का भाषा सीखने का एक निश्चित क्रम होता है। (जैसे पहले एक शब्द, बाद में दो शब्दों के कुछ वाक्य प्रकार आदि, पहले विवृत स्वर, बाद में संवृत स्वर आदि)।

यह क्रम सार्वभौम भी होता है। छह साल तक सभी बच्चे अपनी मातृभाषा में दक्ष हो जाते हैं। भाषा के अर्जन और व्यवहार में जैविक और मानसिक आधार इस संप्रदाय का प्रमुख अभिलक्षण हैं। तीसरी है विश्लेषण की पर्याप्तता (Explantory adequacy)। यह मान सकते हैं कोई भी व्याकरण सार्वभौम भाषावैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुसार खरा भी होना चाहिए। चॉम्स्की खुद मानते हैं कि ऐसा व्याकरण अभी निर्मित होना संभव नहीं है।

भाषा के सही, गलत आदि के निर्णय में आत्मसात् किये हुए नियम (आंतरिक क्षमता) काम करते हैं। इसी को हम व्यक्ति का अंतर्ज्ञान (intuition) कह सकते हैं। यह ज्ञान वाचकीय या अमूर्त वस्तु नहीं है। यह एक निश्चित जानकारी है। यह भाषा की रचना की जानकारी है। चॉम्स्की इसे दक्षता (competence) का नाम देते हैं। इसी तरह भाषा के व्यवहार्य या ग्राह्य होने का ज्ञान व्यवहार (performance) है। वाक्य की रचना दक्षता का क्षेत्र है, उक्तियों का अध्ययन व्यवहार का।

चॉम्स्की के अनुसार भाषा विश्लेषण का आधार भाषा का वह आदर्श वक्ता-श्रोता है, जो एक समरूप (homogenous) भाषा समुदाय का सदस्य हो और भाषा को अच्छे ढंग से जानता हो। उसका भाषा का ज्ञान ही उसकी भाषिक दक्षता है। भाषा के व्यवहार में चूक, विस्मृति आदि कारणों से उत्पन्न दोष, रुचि और अवधारणा में परिवर्तन के कारण उत्पन्न अंतर आदि दिखायी पड़ते हैं। ये व्यवहार की विशेषताएँ हैं, दक्षता के अंग नहीं। भाषावैज्ञानिक का काम है व्यवहार में व्यक्त भाषिक सामग्री में से वास्तविक भाषा दक्षता के अंतर्निहित नियमों की व्यवस्था को ढूँढ़ निकालना-वास्तविक, प्रत्यक्ष व्यवहार में से भाषा व्यवस्था नामक मानसिक सत्य का अन्वेषण करना। यह सहज ही देखा जा सकता है कि ब्लूमफ़ील्ड सिर्फ प्रत्यक्ष व्यवहार को ही महत्व देते हैं, चॉम्स्की प्रत्यक्ष व्यवहार को मात्र भाषिक दक्षता से उत्पन्न (किंचित दोषपूर्ण या अगानक) व्यापार मानते हैं।

यह सवाल उठता है कि क्या हम वास्तविक, प्रत्यक्ष व्यवहार को ही सिद्धांत की आधार वस्तु नहीं बना सकते। हमने दो तरह के कारक निश्चित किये – व्याकरणिकता और ग्राह्यता। व्याकरणिकता दक्षता की विशेषता है, जब कि ग्राह्यता व्यवहार की। कभी-कभी अव्याकरणिक वाक्य भी व्यवहार में ग्राह्य हो जाता है। जैसे, 'वह लड़का, हाँ, वही जो उस दिन समझ गये न जिसको आपने मतलब आपके कार्यालय ने भेजा था।' कभी-कभी व्याकरणिक वाक्य भी अग्राह्य हो जाता है – 'जैसे राम के भाई के साले के दोस्त के पिता जी के पड़ोसी के लड़के के ....।' व्यवहार के धरातल पर हमें इस वाक्य को भिन्न प्रकार से व्यक्त करना होगा। इसका कारण हम भाषा के सिद्धांत में नहीं, मनुष्य की कार्य क्षमता, मानसिक क्षमता आदि में देखेंगे लेकिन चॉम्स्की के अनुसार व्यवहार की इन विशेषताओं को जानने के लिए दक्षता का अध्ययन आधार है। अकेले व्यवहार पर आधारित व्याकरण की कल्पना असंगत है।

5.3 रूपांतरण – निष्पादन व्याकरण के अध्ययन की प्रविधि

चॉम्स्की के रू–नि व्याकरण के दो निश्चित युग हैं – उनका 1957 का मॉडल, जो सिन्टैक्टिक स्टक्चर्स नामक ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया था और 1965 का मॉडल जो एस्पेक्ट्स आफ़ दि थ्योरी ऑफ़ सिन्टैक्स नामक ग्रंथ में संशोधित रूप में प्रस्तुत किया गया था। पहली पुस्तक में उन्होंने इस व्याकरण के तीन प्रकार के नियमों की संकल्पना प्रस्तावित की :

पदबंध रचना नियम (Phrase structure rules या P.S. Rules)
रूपांतरण नियम (Transformation rules या T Rules)
8 रूप स्वनिमिक नियम (Morpho phonemic rules या M Rules)

पदबंध रचना नियम : रू–प्र व्याकरण में विश्लेषण वाक्य से शुरू होता है। सही तथा स्वीकार्य वाक्यों को घटकों में दिखाया जाता है। जैसे :

वा → सप + क्रिप ($S \rightarrow NP + VP$)

अर्थात् वाक्य को हम संज्ञा पदबंध तथा क्रिया पदबंध के रूप में दिखाते हैं। इस तरह हर एक रचना को हम घटकों के रूप में लिखते हैं। अतः इन्हें पुनर्लेखन नियम (Rewrite rules) भी कहा जाता है। यहाँ हम एक वाक्य के पदबंध रचना नियम देखेंगे।

वाक्य : राम स्कूल गया।

वा → सप + क्रिप	पुनर्लेखन नियम
सप → संज्ञा	
क्रिप → संज्ञा + क्रि	
संज्ञा → राम, स्कूल	शब्द लेखन नियम
क्रि → गया	

इसी वाक्य को हम एक वृक्ष चित्र (Tree diagram) से भी दिखा सकते हैं।
[नोट : यहाँ आये पदबंध शब्द को पूर्णतः संरचनात्मक भाषाविज्ञान का पदबंध न मानें। दोनों में अंतर है।]

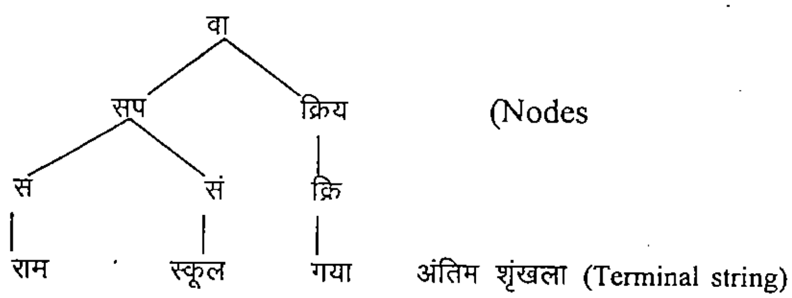

आप देखते हैं कि वाक्य के बाद रचनाओं को दिखाने के लिए (Nodes) आते हैं, जो रचना के द्योतक चिह्न हैं। अंतिम शृंखला में शब्द आते हैं। अन्य शब्द दें तो हम इस पदबंध रचना नियम से सैकड़ों वाक्य निर्मित कर सकते हैं। जैसे :

राम	स्कूल	गया
रहीम	बाज़ार	
जोसफ	स्टेशन	

यह पदबंध रचना नियम को जानने के लिए एक सरलतम उदाहरण था। लेकिन इसमें कई समस्याएँ हैं। राम के साथ सर्वनाम (वह) भी आ सकता है। लेकिन राम, वह आदि 'स्कूल' के स्थान पर नहीं आ सकते। क्रिया में दो कठिनाइयाँ हैं –'सीता' के साथ 'गयी' आएगा। साथ में, गया, जाएगा, जाता है आदि विभिन्न क्रिया रूपों को भी दिखाना होगा। इन सबके संदर्भ में पदबंध रचना लिखने के अन्य कई तकनीक हैं। हम यहाँ उनके विस्तार में नहीं जाएँगे।

रूपांतरण नियम : चॉम्स्की के व्याकरण में रूपांतरण नियम दो प्रकार के हैं। (क) पदबंध रचना नियमों के संदर्भ में हमें व्युत्पन्न वाक्य 'नहीं कर सकते' प्राप्त होता है, लेकिन हिंदी में 'कर नहीं सकते' भी संभव है। ये रूपांतरण नियम से दिखाए जा सकते हैं। दूसरे तरह के रूपांतरण नियम निष्पन्न वाक्यों की रचना के लिए हैं। एक उदाहरण देखें :

मूल वाक्य :	राम	काम	करता	है
	1	2	3	

व्युत्पन्न वाक्य :	राम से	काम	किया जाता है	
	1	2	3	(वाच्य क्रिया)
रू. नियम	1	2	3	1 से 2 3 (वाच्य क्रिया)

इस प्रकार हम मूल (Kernel) वाक्यों से संबद्ध कई वाक्यों को रूपांतरण नियमों द्वारा व्युत्पन्न करते हैं। इन व्युत्पन्न वाक्यों को पदबंध रचना के नियमों द्वारा अलग से दिखाने की आवश्यकता नहीं है।

रूपस्वनिमिक नियम : हमने ऊपर चर्चा की कि 'गया' के साथ-साथ 'जाता है' आदि को भी दिखाना पड़ता है। पदबंध रचना नियम में क्रिया के अतिरिक्त हमें 'जा' से 'ग–' को व्युत्पन्न करने के लिए भी नियम देने पड़ेंगे। शब्दों के रूपों से संबंधित ये नियम ही रूपस्वनिमिक नियम कहलाते हैं।

5.4 रूपांतरण निष्पादन व्याकरण के दो चरण

चॉम्स्की ने 1957 के ग्रंथ में तीन तरह के नियम बताये और पदबंध संरचना में शब्द देकर विभिन्न वाक्यों की रचना करने की बात कही। इसमें कई समस्याएँ आईं। हम 'पत्थर ने सोचा', 'आम ने बच्चा खाया' जैसे असंगत वाक्य भी निष्पन्न कर सकते हैं। इन्हें रोकें कैसे? चॉम्स्की ने 1965 की पुस्तक Aspects of the Theory of Syntax में अर्थ तत्व को आंतरिक संरचना के विश्लेषण में स्थान देने की बात कही। यहाँ हम दोनों मॉडलों की विशेषताओं को देखेंगे।

5.4.1 1957 का मॉडल

Syntactic Theory के अनुसार भाषा के वर्णन के तीन तरह के नियम हैं :

(1) **पदबंध रचना नियम** Pharase Structure Rules (Ps Rules) (**प.र. नियम**)

-S → NP + VP
NP → N
VP → NP + V
N → राम, लड़का, वह, घर, बाज़ार आदि
V → गया, पहुँचा, लौटा, आया आदि

इसी को एक वाक्य के वर्णन के संदर्भ में एक वृक्ष चित्र द्वारा प्रकट कर सकते हैं:

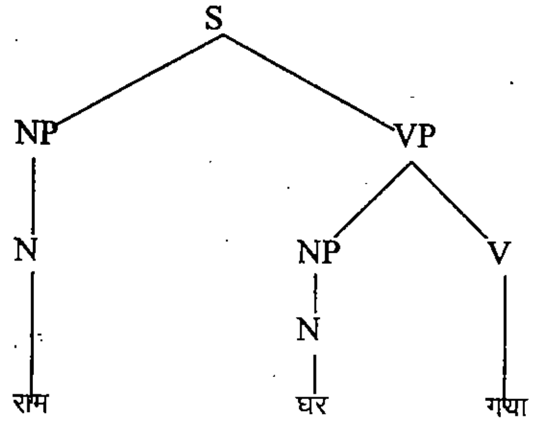

इस प्रकार इस पदबंध नियम से सैकड़ों वाक्यों का निष्पादन होता है।

(2) **रूपांतरण नियम** Transformation Rules (R. Rules) (**रू. नियम**)

हम अकेले पदबंध रचना नियमों से भाषा के सभी वाक्यों का निष्पादन नहीं कर सकते। इनकी अपनी सीमाएँ हैं। प.र. नियमों में एक चिह्न दो चिह्नों में लिखे जाते हैं, जबकि रू. नियम में चिह्नों की शृंखला दूसरी शृंखला में बदली जाती है। जैसे वाक्य रूपांतरण :

चॉम्स्की तथा रूपांतरण–निष्पादन व्याकरण

NP_1 + NP_2 + V NP_1 + से + NP_2 + V + जा (Passive)
उसने काम किया

जहाँ V + जो को पुनः अन्य रूपांतरण नियमों से किया जा में बदला जाएगा।

दो तरह के रू. नियम – निहित रचना से अंतिम वाक्य तक पहुँचने के लिए अनिवार्य (जैसे V + जा) तथा एक प्रकार के वाक्य से दूसरे तक पहुँचने के लिए ऐच्छिक (जैसे वाच्य, निषेध, प्रश्न आदि)। यहीं चॉम्स्की नाभिकीय या बीज वाक्यों (kervel sentences) की चर्चा करते हैं। ऐच्छिक रू. नियम नाभिकीय वाक्यों में होते हैं, जो प्रायः सरल, सकर्मक तथा निश्चयार्थक होते हैं (जिनमें पदक्रम, अन्विति आदि के अनिवार्य रू. नियम लागू होंगे)। रू. नियम नाभिकीय वाक्य पर नहीं लागू होते, बल्कि उनकी अंतर्निहित रचना में लगते हैं।

(3) रूप स्वनिमिक नियम (Morphophonemic rules) (M. Rules)

ये उपर्युक्त दोनों नियमों के बाद निष्पन्न रचना को सामान्य वाक्य के उच्चारण के रूप में बदलते हैं।

जैसे : जा + भूतकाल → /गया/
(सम्+सार) संसार → /sansar/
हो +भूतकाल → /हुआ/ आदि

5.4.2 1965 का मॉडल

हम पहले दोनों मॉडलों की तुलना कर लें।

1957	1965	
—	अर्थ तत्व (component)	
प. नियम	वाक्यविन्यासीमा तत्व	आधार नियम
रू. नियम		रू. नियम
रूपस्वनिमिक नियम	स्वनिक तत्व	

Aspects (1965) के आधार नियमों में एक तरफ प.र. नियम हैं और साथ में शब्दावली (lexicon) है। शब्दावली 'मैंने चाय खायी' जैसी 'गलत' रचनाओं के निष्पादन को रोकती है। उनका 1965 का प्रदर्श निम्न प्रकार से है :

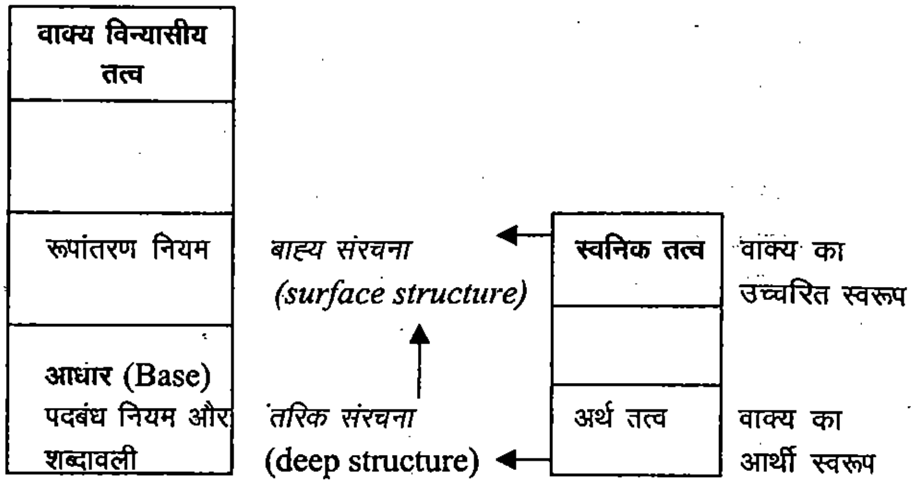

दोनों संरचनाओं के संबंध को निम्न प्रकार से देख सकते हैं :

समान वाह्य रूप, भिन्न आंतरिक संरचना :

John is eager to please
John is easy to please
मोहन सोहन को मूर्ख समझता है।
मोहन सोहन को मूर्ख लगता है।

भिन्न वाह्य रूप, समान् आंतरिक संरचना :

The room has two windows.
There are two windows in the room.
हमारा जाना ठीक नहीं
यह ठीक नहीं कि हम जाएँ।

संदेहास्पद रचनाओं को (मैंने भागते चोर को पकड़ा) हम आंतरिक संरचना से स्पष्ट कर सकते हैं।

5.5 रूपांतरण – निष्पादन व्याकरण की अद्यतन स्थिति

1957 में रू–प्र व्याकरण से जो आशाएँ जगीं, वे पूरी नहीं हो पाईं। चॉम्स्की ने कहा था कि भाषा उन सीमित नियमों का समुच्चय है जिनसे हम अनगिनत वाक्यों का निष्पादन करते हैं। लेकिन अभी तक वे गिने-चुने नियम हाथ नहीं लगे। जो थोड़े-से नियम बने, उनमें भी कई अपवाद सामने आए। एक उदाहरण लीजिए। अंग्रेज़ी वाक्य में प्रश्न के निमार्ण के लिए वाक्य के शुरू में Do/Did का उपयोग करते हैं। 'कौन' वाला प्रश्न बनाने के लिए 'who' का उपयोग करते हैं फिर यह who वाक्य के प्रारंभ में चला जाता है।

निश्चयार्थ वाक्य You saw x.
प्रश्नार्थ वाक्य You saw who?
रूपांतरित वाक्य Who did you see –?

(नोट : (–) वह ट्रेस है जहाँ से who का संचरण हुआ है)

लेकिन ये नियम निम्नलिखित वाक्य पर लागू नहीं होंगे, जिनमें दो कर्म पदबंध हैं।

मूल वाक्य You saw x and talked to y.
संचरित वाक्य *Who did you saw x and talk to–?

ऐसे संदर्भों के निवारण के लिए वैयाकरणों ने इन नियमों के नियंत्रण के लिए और नियम बनाए।

इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए चॉम्स्की ने रूपांतरण के नियमों को ही तिलांजलि दे दी और नये ढंग से वाक्य विश्लेषण के संशोधित उपागम का प्रवर्तन किया, जिसकी चर्चा आगे करेंगे। यहाँ हम उनकी नई मान्यताओं की चर्चा कर रहे हैं।

(1) **वे अपने नये सिद्धांत को तत्व और विशिष्टता सिद्धांत** (Principles and Parameter Theory) : कहते हैं। हम यह मानते हैं कि दुनिया की सभी भाषाओं में वाक्य में कर्ता और क्रिया होती है। लेकिन इनका क्रम भाषाओं की अपनी विशिष्टता है। इस तरह हम भाषा की अपनी विशेष रचना के बावजूद सार्वभौम व्याकरण की कल्पना कर सकते हैं।

हर भाषा में कुछ सार्वभौम तत्व होते हैं। जैसे प्रक्षेपण तत्व (Projection Principle) भाषाओं में सामान्य रूप से पाया जाता है। उदाहरण के लिए *राम पसंद करता है गलत वाक्य है, क्योंकि 'पसंद कर' के साथ कर्म का होना अनिवार्य है। प्रक्षेपण तत्व यह कहता है कि शब्दों के कुछ अभिलक्षण वाक्य की रचना में प्रक्षेपित हो जाते हैं। यह विचार सभी भाषाओं पर समान रूप से लागू होता है। इस तरह चॉम्स्की का नया उपागम भाषा-विशिष्ट नियमों की अपेक्षा सार्वभौम व्याकरणिक संरचना के तत्वों की खोज करता है।

(2) **एक्स-बार वाक्यविन्यास** (x - Syntax) : पुराने पदबंध रचना नियमों की जगह वाक्य विन्यास के अध्ययन के लिए प्रवर्तित नयी प्रविधि को एक्स-बार वाक्य विन्यास कहा जाता है। पदबंध रचना नियमों को वृक्ष आरेख से दिखाया जाता था और वैयाकरण अपनी इच्छा से वृक्ष में शाखाएँ और टहनियाँ जोड़ देते थे। वे नियम भाषा विशेष पर ही लागू होते थे और एक भाषा के नियम को दूसरी भाषा पर उसी रूप में लागू नहीं किया जा सकता था। एक्स-बार वाक्य विन्यास सार्वभौम सिद्धांत है, क्योंकि यह nodes के नामकरण पर आधारित नहीं है, रचनाओं की त्रिस्तरीय व्यवस्था पर आधारित है। उदाहरण के लिए :

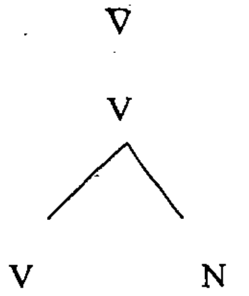

यहाँ V क्रिया पदबंध है,
V मध्यवर्ती रचना है और
V क्रिया शब्द है।
क्रिया पदबंध के भीतर संज्ञा पदबंध
(N) का स्थान है। यह विश्लेषण सभी भाषाओं पर
समान रूप से लागू किया जा सकता है।

(3) चॉम्स्की रूपांतरण निष्पादन नियमों की जगह अपने नये उपागम की घोषणा अपनी नई पुस्तक Lectures in Government and Binding (1981) के माध्यम से करते हैं। उनके नये सिद्धांत में रूपांतरण नियमों की जगह संचरण (movement) के वर्णन का महत्व है। भाषा के दो स्तर हैं – आंतरिक स्तर, जहाँ वाक्य का मूल रूप एक्स-बार वाक्यविन्यास के नियमों के अनुसार रूप लेता है। लेकिन बाह्य संरचना में कई परिवर्तन आ जाते हैं।

मूल रचना : He did see what yesterday.
(tense)

पहला संचरण :Did he t_1 see what yesterday?

दूसरा संचरण :What did he t_1 see t_2 yesterday.

[नोट : t का तात्पर्य है trance]

इस तरह के संचरण के नियम कई वाक्यों के रूपांतरणों को स्पष्ट रूप से समझा सकते हैं, जो सामान्य रूपांतरण नियमों से संभव नहीं है। जैसे :

I expect that he will go.
I expect him to go.
He is expected t to go

(4) **चॉम्स्की के 1981 के अनुशासन और अनुबंध सिद्धांत की प्रमुख विशेषताएँ हैं :** अ–अ सिद्धांत यह मानता है कि भाषा के वर्णन में एक्स-बार सिद्धांत, कारक सिद्धांत आदि कई उप-सिद्धांत काम करते हैं। प्रेक्षण तत्व आदि मूलभूत विचार आदि भी हैं। ये सब उप-सिद्धांत और व्यवस्थाएँ कुल मिलाकर भाषाविज्ञान के इस नये सिद्धांत का निर्माण करते हैं।

इस नई व्यवस्था को हम निम्नलिखित अनुसार एक आरेख से दिखाएँगे, जिसमें आप विभिन्न सिद्धांतों या व्यवस्थाओं के अंतःसंबंध को जोड़ने वाली रेखाओं से जान सकते हैं।

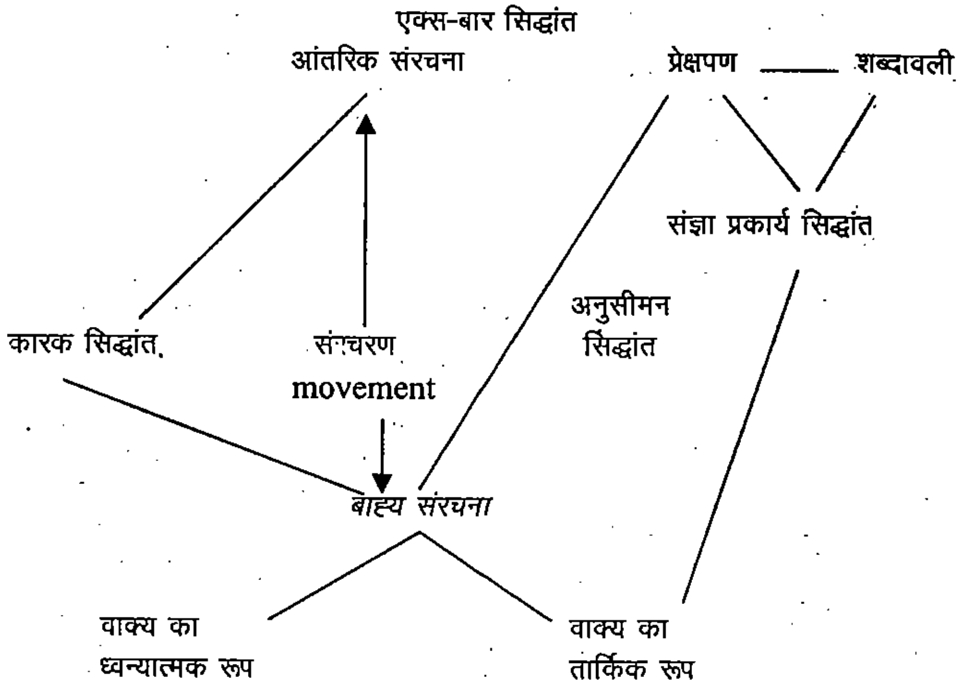

स्रोत : V.J. Cook Chowmsky's Universal Grammar, Basil Blackwell, 1988.

एक्स-बार सिद्धांत से आंतरिक संरचना का निर्माण होता है। इस प्रक्रिया में शब्दावली प्रक्षेपण सिद्धांत के आधार पर वाक्य की विशेषताएँ सुनिश्चित होती हैं। प्रक्षेपण के प्रभाव को हम वाक्य के बाह्य (उच्चरित) रूप में कारक सिद्धांत तथा शब्द के वाक्य के भीतर संचरण से वाक्य की बाह्य संरचना (उच्चरित रूप) निश्चित होती है। अनुसीमन सिद्धांत यह सूचना देता है कि कौन-सा शब्द कहाँ तक जा सकता है। बाह्य संरचना के दो तत्व हैं -- ध्वनि तत्व शब्दों के रूप की व्याख्या करता है। तार्किक रूप वाक्य की अर्थगत संगति का निर्धारण करता है। संज्ञा प्रकार्य सिद्धांत (thematic theroy/ θ - theroy) शब्दों के प्राप्तिकर्ता, अनुभवकर्ता आदि प्रकार्य निश्चित करता है, जो अर्थ तत्व को समझने में सहायक है। ये सब सिद्धांत या व्यवस्थाएँ भाषा के वाक्यों की रचना को समझने तथा व्याख्यायित करने में हमारी सहायता करते हैं।

इस आरेख के अतिरिक्त दो और शब्द हैं जिनसे इस उपागम का नाम सर्जित हुआ है। अनुशासन (government) यह बताता है कि कौन-से घटक किन अन्य घटकों की रचना

को नियंत्रित करते हैं। अनुशासन का एक सामान्य उदाहरण अन्विति है जिसमें संज्ञा का लिंग-वचन क्रिया या विशेषण के रूप को प्रभावित करता है। दूसरा प्रमुख उदाहरण परसर्ग है, जिसके कारण संज्ञा या सर्वनाम शब्द का रूप तिर्यक बनता है। जैसेः

वह + को – उसको

लड़का + को – लड़के को

अनुबंध (binding) वाक्य स्तर से ऊपर शब्दों के अंतःसंबंध को परिभाषित करता है। सर्वनाम और उसका पूर्ववर्ती संदर्भ (संज्ञा) वाक्य को समझने के लिए आवश्यक हैं। उदहारण के लिए :

राम अपने को दोष दे रहा है।

राम उसको दोष दे रहा है।

यहाँ 'अपना' का संबंध 'राम' से है, लेकिन 'उस' का संबंध राम से भिन्न किसी अन्य संज्ञा से है, जिसे पूर्व संदर्भ में देखना होगा। चॉम्स्की अपने इस उपागम को इसी संदर्भ में अनुशासन-अनुबंध सिद्धांत (Government and Binding Theroy) की संज्ञा देते हैं।

5.6 सारांश

चॉम्स्की की रू–नि व्याकरण के संदर्भ में हमने अब तक जो चर्चा की उससे यह बात स्पष्ट होगी कि इस उपागम या भाषा विश्लेषण का संप्रदाय पिछले 45 वर्षों में विकसित होता हुआ हमारे सामने उपस्थित है और आज भी इसमें नई तकनीकें जुड़ती जा रही हैं। लेकिन आरंभ से अब तक इस व्याकरणिक संप्रदाय की एक विशेषता अंतः सूत्र की तरह इसमें व्याप्त है। यह संरचनात्मक भाषाविज्ञान की तुलना में ऊपरी तौर पर व्यक्त संरचनाओं का रचना के स्तर पर विश्लेषण नहीं करता, बल्कि हर वाक्य को भाषिक क्षमता के आधार पर उसकी अंतर्निहित रचना के आधार पर देखने का यत्न करता है। इस कारण इस अध्ययन क्षेत्र में वाक्यों के अंतःसंबंधों को शब्द के संचरण के संदर्भ में व्याख्यायित करने पर बल दिया जता है।

इस उपागम में विकास का एक प्रमुख कारण है। प्रारंभ में यह सोचा गया था कि भाषिक संरचनाओं को रूपांतरण के नियमों से निरूपित किया जा सकता है। लेकिन नियमों की दुर्वह बाढ़ के कारण छोड़ देना पड़ा। हर नियम के साथ उठ खड़े हुए अपवादों और वृक्ष आरेख तैयार करते समय उत्पन्न व्यक्तिनिष्ठ अवधारणाओं के कारण यह स्पष्ट हो चला था कि समस्त भाषाई संरचनाओं को नियमों में बाँध पाना असंभव-सा है। इसी कारण चॉम्स्की ने नियमों के व्याकरण की जगह सिद्धांतों और उप-व्यवस्थाओं की प्रविधि का निर्माण किया, जिसे वे अनुशासन-अनुबंध सिद्धांत कहते हैं। उनकी मान्यता यह है कि नियम निर्धारण की अपेक्षा वाक्य निर्माण की प्रक्रिया को निहित कारणों के संदर्भ में व्याख्यायित करना अधिक उपादेय है। ऐसी व्याख्याएँ सार्वभौम व्याकरण के निर्माण में सहयोगी होती हैं।

5.7 अभ्यास प्रश्न

1. **निबंधात्मक प्रश्न**
   (1) भाषा के बारे में चॉम्स्की के विचारों का विवेचन कीजिए।
   (2) रूपांतरण-निष्पादन व्याकरण की प्रविधि के विकास पर प्रकाश डालिए।

2. **टिप्पणियाँ**
   (1) सार्वभौम व्याकरण
   (2) भाषाई दक्षता और भाषा व्यवहार
   (3) अनुशासन-अनुबंध सिद्धांत

इकाई 6 समाजभाषाविज्ञान : भाषा और समाज

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 समाजभाषाविज्ञान

- 6.2.1 भाषा वैविध्य
- 6.2.2 भाषा और बोली
- 6.2.3 भाषा के सामाजिक स्तर भेद

6.3 संपर्क में भाषाएँ

- 6.3.1 बहुभाषिता और द्विभाषिता के विविध रूप
- 6.3.2 कोड–अंतरण और मिश्रण
- 6.3.3 बहुभाषिता में जन्मी पिजिन, क्रियोल और मिश्रित भाषाएँ

6.4 भाषा : क्षरण, अनुरक्षण और संघर्ष

6.5 भाषा और सामाजिक संदर्भ

- 6.5.1 संबोधन के शब्द
- 6.5.2 नाते–रिश्तेदारों के लिए प्रयुक्त संबोधन
- 6.5.3 रंगों के शब्द

6.6 हिंदी में भाषा वैविध्य

6.7 सारांश

6.8 अभ्यास प्रश्न

6.0 उद्देश्य

भाषा और समाज का गहरा संबंध है। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि भाषा के माध्यम से ही समाज का गठन, अपने वर्तमान रूप में संभव हुआ है। भाषा संप्रेषण की वस्तु है और आप भाषा के संप्रेषण के बारे में पहली इकाई में पढ़ चुके हैं। सामाजिक व्यवहार वास्तव में सामाजिक संप्रेषण है जो भाषा की संप्रेषणीयता के कारण संभव हो पाया है। भाषा की संरचना में हम सामाजिक संरचना का भी पुट देख सकते हैं। हम जीवन में किसी को 'तुम' से संबोधित करते हैं, किसी को 'आप' से। यह केवल भाषा की संरचना की विशेषता नहीं है, बल्कि समाज में व्यक्तियों के परस्पर संबंध और आपस के व्यवहार पर निर्भर करता है। इसी कारण समाजभाषाविज्ञान का ज्ञान भाषा के अध्ययन के लिए अनिवार्य पृष्ठभूमि है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भाषा क्षेत्र की तथा भाषा और बोलियों के अंतःसंबंध की व्याख्या कर सकेंगे;
- विश्व कुटुंब की संकल्पना के परिप्रेक्ष्य में बहुभाषिकता और द्विभाषिकता का स्वरूप स्पष्ट कर सकेंगे;
- एक ही भाषा क्षेत्र में सामाजिक और भाषिक परिस्थितियों के कारण उत्पन्न भाषा वैविध्य को परिभाषित कर सकेंगे;
- भाषा के प्रयोग में, जैसे संबोधन और रिश्ते की शब्दावली के संदर्भ में सामाजिक संरचना का आधार स्पष्ट कर सकेंगे;
- कुल मिलाकर समाजभाषाविज्ञान की संकल्पना को व्याख्यायित कर सकेंगे; और
- हिंदी के भाषा वैविध्य का विवरण दे सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

भाषाविज्ञान का आमतौर पर यह अर्थ किया जाता है कि वह भाषा की संरचना, प्रकार्य आदि का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। हम भाषाविज्ञान के साथ ऐतिहासिक अध्ययन

जोड़ लें तो ऐतिहासिक भाषाविज्ञान का निर्माण होता है। हम भाषाविज्ञान के सिद्धांतों के अनुप्रयोगों को अपने कार्य के संदर्भ में देखें तो अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान (applied linguistics) की सृष्टि होती है। इन सभी अध्ययन क्षेत्रों में भाषा की रचना ही हमारा लक्ष्य होता है।

आधुनिक युग में भाषा के विविध रूपों के कारण हम समझ पाए कि भाषा की संरचना एकीकृत व्यवस्था (monolithic structure) नहीं है। वास्तव में भाषा की संरचना भी एक अमूर्त संकल्पना है, क्योंकि हम किसी समाज में या किसी व्यक्ति में भी भाषा का एक स्थिर, सुनिश्चित रूप नहीं देखते। तब भाषा के बारे में हमारी मान्यता में भी परिवर्तन आया। हम समाज के सभी, विविध रूपों के समावेश को ही 'भाषा' की संज्ञा देते हैं और हर स्थिति में व्यवहृत विविध रूपों को बोली, प्रयुक्ति, शैली आदि नामों से विहित करते हैं। इस तरह समाज में भाषा की विविधता के अध्ययन के फलस्वरूप समाजभाषाविज्ञान की स्थापना हुई।

आधुनिक युग वास्तव में बहुभाषिकता का युग है। एक ही समाज में कई भाषाओं का व्यवहार होता है। आधुनिक व्यक्ति आमतौर पर द्विभाषी है, एक से अधिक भाषाएँ जानता है। समाजभाषाविज्ञान में इस बात का भी अध्ययन होता है कि दो भाषाओं के समाज या व्यक्ति के स्तर पर संयोग के क्या परिणाम होते हैं। समाज में भाषाओं के बीच अस्तित्व के लिए संघर्ष हो सकता है, व्यक्ति दोनों भाषाओं के प्रयोग में एक दूसरे पर प्रभाव की स्थिति पैदा कर सकता है। समाज में दो भाषाओं के योग से एक तीसरे रूप का जन्म हो सकता है।

भाषा और समाज अन्योन्याश्रित हैं, एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। इस इकाई में यह भी चर्चा की गई है कि किस तरह हम संबोधन, रिश्ते के शब्द आदि से सामाजिक संगठन को द्योतित करते हैं।

6.2 समाजभाषाविज्ञान

भाषा से इतर समाज और समाज से इतर भाषा के अस्तित्व की कल्पना की ही नहीं जा सकती। फिर भी ये दोनों ही काफ़ी समय से स्वतंत्र शोध के विषय रहे हैं और इन्हें जोड़कर देखने का प्रयास पिछले कुछ वर्षों में ही हुआ है। सर्वप्रथम जे.आर. फ़र्थ नामक भाषावैज्ञानिक ने 1957 में पहली बार इन दोनों को जोड़कर 'समाजभाषाविज्ञान' जैसी शब्दावली का प्रयोग किया था।

हम सभी जानते हैं कि भाषा का प्रयोग संप्रेषण को लिए होता है। भाषा से हम अपने अस्तित्व की ही नहीं बल्कि अपनी अस्मिता की भी पहचान बनाते हैं। परंतु प्रश्न यह उठता है कि इस भाषा का प्रयोग होता कहाँ है? समाज में ही न, जहाँ हम अपने मित्रों, बंधुओं रिश्तेदारों और अन्य स्वजनों के साथ रहते हैं। क्या हम हर व्यक्ति से, जो हमारे संपर्क में आता है, एक ही तरह से बातचीत करते हैं? नहीं न! किसी व्यक्ति से आदर-सूचक शब्दों के साथ और किसी से तू-तड़ाक के शब्दों के साथ और अन्य किसी से स्नेह और प्यार भरे शब्दों के साथ वार्तालाप करते हैं। कहने का आशय यह है कि हमसे सम्पर्क रखने वाले हर व्यक्ति के लिए वार्तालाप के नियम भिन्न हैं, क्योंकि बातचीत में प्रयोग होने वाली भाषा और उसके विभिन्न रूपों का प्रयोग करने के कुछ विशेष नियम हैं। ये विशेष नियम हमारे समाज की संरचना और हमारे आपसी संबंधों की संरचना से निर्धारित होते हैं। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि भारतीय भाषाएँ तीन तरह के द्वितीय पुरुष सर्वनाम 'तू', 'तुम' और 'आप' में भेद रखती है, परंतु अंग्रेज़ी में सब सिर्फ़ एक शब्द You 'यू' का रूप लेते हैं। या फिर हिंदी और अन्य कई मिलती-जुलती भाषाओं में क्रिया के आखिरी चरण से सम्मान की झलक दीखती है, जैसे कि 'बैठ' -'बैठो'- 'बैठिए' वगैरह। या फिर संस्कृत और मराठी में

पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के अतिरिक्त नपुंसक लिंग भी होता है, क्योंकि ये दो भाषाएँ बोलने वाला समाज वस्तुओं को तीन भिन्न दृष्टि से देखता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कौन, कब, क्यों और क्या बोलता है - यह जानने की उत्सुकता हम सबको होती है। भाषाविज्ञान का जो रूप इन प्रश्नों के उत्तर की खोज में लगा रहता है, वही समाजभाषाविज्ञान है।

समाजभाषाविज्ञान (स.भा.वि.) वह विज्ञान है जो समाज के परिप्रेक्ष्य में प्रयोग होने वाली भाषा/भाषाओं के रूप या रूपों का नियमित रूप से अध्ययन एवं विश्लेषण करता है। समाजभाषाविज्ञाना की परिभाषा श्रीवास्तव ने (1994) यूँ की है :

> 'समाजभाषाविज्ञान भाषावैज्ञानिक अध्ययन का वह क्षेत्र है जो भाषा और समाज के बीच पाए जाने वाले हर प्रकार के संबंधों का अध्ययन-विश्लेषण करता है। वह भाषा की संरचना और प्रयोग और उन सभी पक्षों एवं संदर्भों का अध्ययन करता है जिनका संबंध सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रकार्य के साथ होता है। अतः इसके अध्ययन क्षेत्र के भीतर विभिन्न सामाजिक वर्गों की भाषिक अस्मिता, भाषा के प्रति सामाजिक शैलियाँ, बहुभाषिकता का सामजिक आधार, भाषा नियोजन आदि भाषा अध्ययन के सभी संदर्भ आ जाते हैं, जिनका संबंध सामाजिक संस्थान से रहता है।' (श्रीवास्तव 1994 : 72)

समाजभाषाविज्ञान की यह कोशिश रहती है कि वह यह जान पाए कि किसी भी समाज में भाषाई संप्रेषण होता कैसे है? वे कौन से भाषिक नियम हैं जो समाज में रहने वाले स्त्री-पुरुष, बड़े और बच्चे बिना किसी गलतफहमी के पूर्ण संप्रेषण के लिए प्रयोग कर पाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि समाजभाषाविज्ञान यह मानकर चलता है कि मात्र भाषा के 'व्याकरण' का ज्ञान काफ़ी नहीं है, परंतु उस भाषा के प्रयोग के नियम जो कि एक विशेष सामाजिक संदर्भ में अपनाए जाते हैं - का जानना ही सही मायनों में भाषा के व्याकरण को जानना है। इस विज्ञान की धारणा है कि कोई भी उच्चरित वाक्य बिना किसी सामाजिक संदर्भ के नहीं होता। अतः समाजभाषाविज्ञान किसी भी समाज में संप्रेषण के लिए प्रयोग में आने वाली भाषा/ भाषाओं का नियमित रूप से अध्ययन करता है। यही कारण है कि इस विज्ञान का सारा ज़ोर चॉम्स्कीय 'भाषा दक्षता' की अपेक्षा 'संप्रेषण की दक्षता' पर है इसकी चर्चा हम इकाई 5 में कर चुके हैं। सन् 1972 में अमरीका के प्रख्यात समाजभाषाविज्ञान डेल हाइम्ज़ ने चॉम्स्की द्वारा की गई 'आदर्श वक्ता-प्रवक्ता' की परिकल्पना पर आघात किया था और कहा था कि भाषा व्यवहार के विशेष सिद्धांत हैं। अतः वे कहते हैं - 'हमें इसकी विवेचना करनी होगी कि क्यों एक सामान्य बच्चा न केवल व्याकरण गत वाक्यों का बल्कि उचित वाक्यों का ज्ञान भी प्राप्त कर लेता है। वह यह दक्षता भी अर्जित करता है कि वाक्यों को कब बोलना है, और कब नहीं, किससे बोलना है और किससे नहीं, कहाँ बोलना है और कहाँ नहीं और क्या बोलना है और क्या नहीं। संक्षेप में, मानवीय बालक भाषा कर्म (speech act) के ऐसे भाषा कोष (repertoire) पर बहुत जल्दी अधिकार जमा लेता है, जिससे वह न केवल तमाम भाषा-घटनाओं (speech events) में भाग ले पाता है वरन् दूसरों द्वारा बोले गए वाक्यों का सही-सही मूल्यांकन भी कर लेता है। अतः हाइम्ज़ भाषा दक्षता की एक व्यापक परिभाषा की वकालत करते हैं और इसे 'संप्रेषण दक्षता' (communicative competence) कहते हैं। समाजभाषाविज्ञान इस 'संप्रेषण दक्षता' के नियमों के अध्ययन और विश्लेषण को ही अपना ध्येय मानता है। मोटे तौर पर यूँ कहें तो असंगत नही होगा कि यदि भाषाई संप्रेषण है तो समाज है और यदि भाषाई संप्रेषण नहीं है तो समाज का अस्तित्व भी नहीं के बराबर है। इस तरह भाषाविज्ञान की जो शाखा एक समाज में प्रयुक्त भाषा के प्रयोग और संप्रेषण के नियमों का अध्ययन करे, वही समाजभाषाविज्ञान है।

चलते-चलते आपको यह बता दें कि समाजभाषाविज्ञान या समाजोन्मुख भाषाविज्ञान और भाषा समाजशास्त्र (जिसकी चर्चा आजकल काफ़ी हो रही है) में अंतर है। भाषा के वे तमाम

पहलू जिनका संबंध समाज के संस्थान एवं संचालन से जुड़ता है वे ही 'भाषा का समाजशास्त्र' के अंतर्गत आते हैं। उदाहरणतया, राजभाषा, राष्ट्रभाषा या शिक्षा को लिए उचित एक भाषा विशेष का चयन। या फिर त्रिभाषा के अंतर्गत किन्हीं विशेष तीन भाषाओं का चयन। मातृ भाषाओं का जनगणना रिपोर्ट (census report) में दर्शाये जाने का विकल्प आदि।

6.2.1 भाषा वैविध्य

वैविध्य याने विविधता! भाषा समाज में विविध रूपों में हमारे सामने आती है। शायद ही संसार की कोई भाषा हो जो सिर्फ़ एक निश्चित रूप में प्रकट होती हो। भाषा वैविध्य का अध्ययन समाजभाषाविज्ञान का प्रमुख उद्देश्य है।

शायद आप सब इस कहावत से परिचित हैं – 'चार कोस पर बदले पानी आठ कोस पर बानी।' यानी भौतिक दूरी के कारण भाषा के रूप में परिवर्तन समाजभाषाविज्ञान का बुनियादी सिद्धांत है। इस संदर्भ में भाषाविज्ञान (याने भाषा के व्याकरण) और समाजभाषाविज्ञान में मूलभूत अंतर है। भाषाविज्ञान भाषा के एक कल्पित मानक रूप का वर्णन करने का यत्न करता है। भाषा की विविधता को एक ही व्याकरण में समेटना व्याकरण के लिए असंभव है। विख्यात भाषावैज्ञानिक चॉम्स्की कहते हैं कि एक आदर्श मातृभाषी के मन में स्थित भाषाई क्षमता का वर्णन-विश्लेषण ही भाषाविज्ञान का अध्ययन क्षेत्र है। इसमें उन्होंने भाषा की विविधताओं को समेटने का कोई उपक्रम नहीं किया।

समाजभाषाविज्ञान, इसके विपरीत 'भाषा' को व्यापक पटल में, उसकी समस्त बोलियों और शैलियों के समग्र रूप में देखने का यत्न करता है। भाषा में वैविध्य के प्रमुखतः दो आधार हैं – क्षेत्रीय बोलियाँ और आयु, पेशा, लिंग आदि विभिन्न वर्गों के भाषा व्यवहार के कारण उत्पन्न सामाजिक बोलियाँ। इस प्रकार हर व्यक्ति की भाषा में उसकी क्षेत्रीयता, लिंग, आयु, पेशा आदि कारकों से हर दूसरे व्यक्ति से भिन्न भाषा रूप दिखाई देता है। समाजभाषाविज्ञान व्यक्ति के भाषा रूप को उसकी व्यक्तिबोली (idiolect) की संज्ञा देता है। यह उस व्यक्ति का अपना कोड (code) है। समाज के सभी व्यक्तियों की व्यक्तिबोलियों का समग्र ही भाषा है इसे व्यक्तिगत कोडों के समग्र के अर्थ में कोड आधात्री (code matrix) कहा जाता है जिसे निम्नलिखित तालिका से समझ सकते हैं।

व्यक्तिगत कारक ↓

	क्षेत्र	लिंग पेशा शिक्षा आयु	
व्यक्ति 1			व्यक्ति बोली 1
2			2
3			3
4			4
.			
.			

तालिका 1 : भाषा की कोड आधात्री (पूरी भाषा) : व्यक्तियोंबोलियों का समूह

व्यक्तिबोलियों का अध्ययन हमारे लिए कठिन है। लेकिन हम क्षेत्र तथा व्यक्तिगत कारकों के संदर्भ में कुछ प्रमुख भाषा रूपों का अध्ययन कर सकते हैं, जिससे भाषा को उसकी समग्रता में देख सकें। आगे हम क्षेत्रीय बोलियों और सामाजिक बोलियों के बारे में पढ़ेंगे।

6.2.2 भाषा और बोली

भाषा और बोली का प्रश्न उतना ही विवादास्पद है जितना पति-पत्नी के अधिकारों का द्वंद्व। 'भाषा' को 'सम्मानजनक' और 'बोली' को 'निम्न' मानने की प्रथा चिरकाल से चली आ

रही है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से कोई भी भाषा या उसका रूप निम्न या उच्च नहीं हो सकता। उनके मतानुसार किन्हीं दो भाषाओं अथवा भाषा रूपों में बोधगम्यता हो तो वे आपस में एक-दूसरे का विकल्प (variation) कहलाई जा सकती हैं। सब भाषाएँ एक समान हैं क्योंकि हरेक भाषा सामाजिक संप्रेषणता का गुण लिए हुए है। उदाहरण के लिए सर्वमान्य 'हिंदी भाषा' में जो 'खड़ी बोली' के रूप में जानी जाती है, तथा ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली आदि उसकी उपभाषाओं में शब्द, रूपरचना, वाक्य-रचना, अर्थ-संरचना या शुद्ध व्याकरण के आधार पर भाषा बोली का भेद करना संभव नहीं है। शुद्ध भाषिक दृष्टि से जिस प्रकार 'खड़ी बोली' भाषा है वैसे ही ये सारी उपभाषाएँ (बोलियाँ) भी 'भाषाएँ' हैं। प्रश्न मात्र राजनीति और इतिहास का है। जो कल तक 'बोली थी. वह आज भाषा हो गई और जो कल तब भाषा थी (उदाहरण के लिए 'ब्रज भाषा') वह 'बोली' कहलाती है। हाँ, समाजभाषावैज्ञानिक यह मानकर चलते हैं कि यदि भाषा और बोली में अंतर किया जा सकता है, तो यह अंतर मुख्य रूप से व्यापकता, प्रयोजन और प्रतिष्ठा के संदर्भ में देखा जा सकता है। उनके मतानुसार भाषा और बोली के निम्नलिखित भेद हैं, जो श्रीवास्तव **(1994)** ने एक तालिका के रूप में इस तरह बाँधे हैं:

	भाषा	बोली
1.	सामाजिक प्रकार्य में भाषा अध्यारोपित (superordinate) होती है।	सामाजिक प्रकार्य में बोली 'भाषा' के अधीन (subordinate) होती है।
2.	भाषा का क्षेत्रीय आधार अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत हेता है।	बोली का क्षेत्र, भाषा की तुलना में अपेक्षाकृत छोटा होता है।
3..	भाषा का प्रयुक्ति-क्षेत्र अधिक बहुमुखी होता है, क्योंकि भाषा साहित्य, शिक्षा, प्रशासन आदि अनेक व्यवहार-क्षेत्रों में प्रयुक्त होती है।	बोली का प्रयुक्ति-क्षेत्र सीमित होता है।
4.	भाषा समाज में 'प्रतिष्ठा' और 'प्रभुता' का द्योतक होती है।	'बोली समाज में प्रतिष्ठा का कारण नहीं बनती। उसका प्रयोग 'आत्मीयता' का व्यंजक होता है।
5.	भाषा का प्रयोग औपचारिक संदर्भों में होता है।	बोली का प्रयोग प्रायः अनौपचारिक संदर्भों में होता है।
6.	भाषा सापेक्षतया अधिक मानकीकृत होती है।	बोली में भाषा-विकल्पन सापेक्षतया अधिक होता है।
7.	भाषा अपनी विभिन्न बोलियाँ बोलने वालों के बीच संपर्क भाषा का भी काम करती है।	बोली प्रायः मातृभाषा के रूप में ही प्रयुक्त होती है।

स्रोत : श्रीवास्तव 'हिंदी भाषा का समाजशास्त्र' (1994 : 50)

इस तालिका में भाषा-बोली के भेद को वर्णित करने का प्रयास किया गया है, कुछ भाषावैज्ञानिकों का मत है कि सभी बोलियाँ वास्तव में अपनी-अपनी भाषा का शैली रूप हैं। भाषा एक स्थिर और बेजान वस्तु नहीं है। उसकी विविधता ही उसे संप्रेषण का माध्यम बनाती है। भाषा वैविध्य में भी एक नियमितता है। यही नहीं, उसका भी एक व्याकरण है। भाषा की यह विविधता दो विशेष आयामों पर परिलक्षित होती है। पहला तो तब जब उसके प्रयोग करने वाले दो भिन्न क्षेत्रों से होते हैं। जैसे एक क्षेत्र में 'साग' का अर्थ प्रत्येक प्रकार की सब्ज़ी से होता है और दूसरे क्षेत्र में सिर्फ़ 'हरी सब्ज़ी' से। या फिर एक क्षेत्र में 'रोटी' का अर्थ मात्र रोटी से होता है और दूसरे क्षेत्र में (उदाहरणतया दिल्ली में पंजाबी प्रभाव के कारणवश) सर्व-व्यापक 'भोजन' से। या फिर एक क्षेत्र में 'ऐ' और 'औ' ध्वनियों को मूलस्वर के रूप में बोलते हैं और दूसरे क्षेत्र में संध्यक्षर के रूप में। उदाहरणतया पैसा > पइसा ; और > अउर आदि। या फिर एक ही वस्तु दो क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारी जाए - तो भी वह बोलियों का ही परिणाम माना जाता है। उदाहरणतया, 'घिया' एक क्षेत्र में और 'लौकी' दूसरे में, या 'कद्दू' दिल्ली में और 'कुम्हड़ा' इलाहाबाद में या उत्तर प्रदेश

में 'मोज़ा' और दिल्ली में 'जुराब'। भाषा की इस तरह की वैविध्यता को हम स्थानीय/ भौगोलिक क्षेत्रीय विविधता के नाम से जानते हैं।

समाजभाषाविज्ञान के अंतर्गत बोलीविज्ञान (dialectology) नामक विषय क्षेत्र इन बोलियों का अध्ययन करता है। वह शब्दों, रूपों और वाक्य प्रकारों के प्रयोग के स्थान के आधार पर मानचित्र तैयार करता है। ये मानचित्र बोलियों को पहचानने के लिए आधार बनते हैं। जिस क्षेत्र में समान शब्दों, रूपों और संरचनाओं का गुंफन मिलता है, वह एक बोली क्षेत्र है। जैसे संज्ञाओं के रूप में ओकारांत उच्चारण (छोरो, घोड़ो) ब्रज भाषा क्षेत्र को खड़ी बोली क्षेत्र से अलग करता है।

6.2.3 भाषा के सामाजिक स्तर भेद

दूसरा आयाम जो भाषा-बोली के भेद को उजागर करता है वह है सामाजिक। जब भाषा-वैविध्य का कारण वक्ता का सामाजिक स्तर-भेद (उच्च, मध्यम एवं निम्न वर्ग), जाति-भेद, लिंग-भेद (स्त्री-पुरुष), शिक्षा (शिक्षित-अशिक्षित), या फिर उम्र-भेद हो, तब भाषा की विभिन्न शैलियों को सामाजिक बोलियों के रूप में समझा एवं देखा जाता है।

स्त्री-पुरुष : स्त्री-पुरुष की भाषाओं पर आजकल काफ़ी शोध हो रहा है और यह माना जाता है कि स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा विशेषणों का और मुहावरों का ज्यादा प्रयोग करती हैं। रंगों के विवरणों में स्त्रियों की शब्दावली रूपकों से भरी होती है - उदाहरणतया, 'चम्पई सफ़ेद', 'कत्थई भूरा', 'खूनी लाल', 'आसमानी नीला' वगैरह। वाक्यों के पीछे '-री' का प्रयोग या फिर संलग्न सवाल (tag questions) की अधिकता (आज आ रही हो न!) स्त्रियों की भाषा का महत्वपूर्ण अंग है। छोटा नागपुर (बिहार) की ओराँव जाति में (जिसे कुडुख भी कहते हैं) स्त्री और पुरुष द्वारा दो अलग-अलग क्रिया-रूपों का प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए :

	पुरुषों द्वारा प्रयुक्त	स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
बहुवचन		
'लड़के'	कुक्को-र	कुक्का खदअए
'बूढ़े'	पचगी-र	पचगी आलअए
'नृतक'	नलू-र	नलू आलअए
'लड़कियाँ'	कुक्कोए-र	कुक्कोए आलअए

अर्थात, स्त्रियों का व्याकरण भिन्न और पुरुषों का भिन्न। क्या भिन्न व्याकरण स्त्रियों की अस्मिता को भिन्न बनाता है? यह विवाद का प्रश्न है, पर निश्चय ही हमें सोचने पर मजबूर करता है।

उम्र : हमारे समाज में छोटे-बड़े एक-सी भाषा का प्रयोग नहीं करते। बच्चे बड़ों को 'आप' और बड़े बच्चों को 'तुम' कहकर संबोधित करते हैं। यही नहीं 'समझ रहे हो न! सुन रहे हो न!' जैसे वाक्य मात्र उम्र में बड़े लोग छोटों से बात करते वक्त प्रयोग कर सकते हैं। उम्र में छोटे यही वाक्य बड़ों से कहें तो अशिष्टता समझी जाएगी। भारतीय भाषाओं में 'जी' लगाकर बोलना सम्मानसूचक है, जो उम्र में बड़े व्यक्तियों के लिए प्रयोग होता है।

शिक्षा : आधुनिक हिंदी में संस्कृत की बहुलता और बातचीत में अंग्रेज़ी शब्दों की बहुलता दोनों ही शिक्षित वर्ग की पहचान है। यही नहीं, हिंदी बोलते समय कुछ परिचित अंग्रेज़ी शब्दों का बिगड़ा रूप भी शिक्षा/ अशिक्षा का परिचय दे देता है। उदाहरणतया 'स्टेशन' > इस्टेशन/ सटेशन, क्लास > किलास, स्कूल > इस्कूल/ सकूल आदि रूप अशिक्षित व्यक्ति की भाषा की पहचान है। यही नहीं बात करते-करते हिंदी से अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ी से हिंदी में कोड परिवर्तन (code switching) (विस्तृत चर्चा आगे है) प्रायः शिक्षा का द्योतक समझा गया है।

जाति भेद : हमारे समाज में उच्च और निम्न जातियों की उपस्थिति उनकी प्रयुक्त भाषाओं में भी परिलक्षित होती है। द्रविड़ परिवार की तमिल भाषा में ब्राह्मणों और गैर-ब्राह्मणों की भाषा में शाब्दिक और व्याकरणिक भेद देखा गया है। इसी तरह अंतर द्रविड़ की अन्य भाषाओं जैसे कन्नड़ और मलयालम में भी है। उदाहरणतया धारवाड़ कन्नड़ में ब्राह्मण-भाषा में कर्म और सम्प्रदान कारक चिह्न भिन्न-भिन्न हैं, परंतु हरिजनों की भाषा में यह भेद नहीं पाया जाता। देश के अन्य राज्यों में ब्राह्मण और गैर-ब्राह्मण की बोलियाँ भी बहुत भिन्न पाई जाती हैं।

सामाजिक स्तर भेद : आर्थिक रूप से सम्पन्न लोग और गरीब लोग अक्सर दो भिन्न-भिन्न बोलियाँ बोलते नज़र आते हैं। कभी-कभी यह भिन्नता इतनी होती है कि परस्पर 'बोधगम्यता' की स्थिति भी नहीं बन पाती। भारत वर्ष के शहरी समाज में आर्थिक सम्पन्नता, शिक्षा एवं उच्च वर्गीयता अक्सर साथ-साथ ही पायी जाती है - अतः इन सब कारणों से उपजी बोली निम्न वर्ग के अशिक्षित लोगों की बोली से भिन्न होती है। दिलचस्प बात यह है कि जितना ही व्यक्ति शिक्षित और उच्च वर्ग का होता है उसकी द्विभाषिता की क्षमता उतनी ही कम होती है। शहर में रहने वाले मज़दूर या गाँव में रहने वाले गरीब लोगों की द्विभाषिता की क्षमता अधिक है। वे कम से कम दो-तीन भाषाएँ तक अवश्य जानते हैं। 'बहुभाषिता' में आदिवासियों का जवाब नहीं। हाल में किए गए शोध से ज्ञात होता है कि आदिवासी क्षेत्रों में बहुभाषिता 85% है जो संपूर्ण देश की बहुभाषिता के आँकड़ों से कहीं अधिक है। (People of India Project, K.S. Singh, 1993)

शिक्षित वर्ग प्रायः 'मानक रूप' का प्रयोग करता है और 'मानक-रूप' का उद्भव उसकी भाषा-विकल्पनीयता की कमी के कारण ही होता है। यह बात अजीब तो है, पर है सत्य। 'मानकीकरण' की प्रक्रिया में भाषा के नाना-प्रकार के विकसित रूपों में से कोई एक को स्वीकार किया जाता है और परिणामतः मानक भाषा में भाषिक विकल्पन बोली की मात्रा से बहुत कम होता है। अतः हम 'भाषा' और 'बोली' की संज्ञा से उठकर यदि इसे 'भाषा वैविध्य' के नाम से पुकारें तो उचित हेगा। भाषा वैविध्य (भाषा/ बोली) को हम संक्षेप में नीचे दिए गए चित्र से समझ सकते हैं।

भाषा वैविध्य के कारण

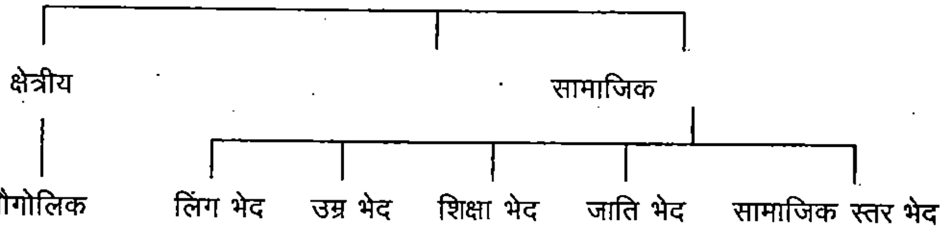

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वही दो बोलियाँ 'भाषा वैविध्य' का अंग बन सकती हैं जो आपसी बोधगम्यता को लिए हुए हों एवं एक ही भाषा-परिवार की हों। इस आधार से यदि दो बोलियाँ परस्पर बोधगम्य न हों तो उन्हें दो विशिष्ट भाषाओं के रूप में जाना जाता है।

एक बात ध्यान देने योग्य है। क्षेत्रीय कारणों से उपजी भाषाओं में कभी-कभी बोधगम्यता बहुत कम पाई जाती है, पर फिर भी उन्हें एक ही भाषा की माला में पिरोया जाता है। देखिए ध्यान से 'हिंदी क्षेत्र'। भारत सरकार द्वारा मान्य इस क्षेत्र के एक कोने में राजस्थानी, हाड़ौती जैसी भाषाएँ हैं और दूसरे कोने में मगही-मैथिली जैसी। ये सभी भाषाएँ 'हिंदी' भाषा की बोलियाँ या यूँ कहें 'विविध रूप' कहलाई जाती हैं। पर इनको एक 'भाषा' में बाँधना राजनीतिक/सरकारी कदम है – भाषावैज्ञानिक या समाजभाषावैज्ञानिक नहीं। समाजभाषावैज्ञानिक की दृष्टि से हाड़ौती, बागड़ी, मालवी-मेवाती, जयपुरी सब 'राजस्थानी' के विविध रूप हैं, जो बिहारी भाषा के मैथिली, मगही, भोजपुरी रूपों से भिन्न हैं। इस दृष्टि

से देखा जाए तो सामाजिक कारणों से उपजे भाषा-वैविध्य में भौगोलिक कारणों से उपजे भाषा-वैविध्य से कहीं अधिक बोधगम्यता पाई जाती है।

हिंदी प्रदेश का नक्शा

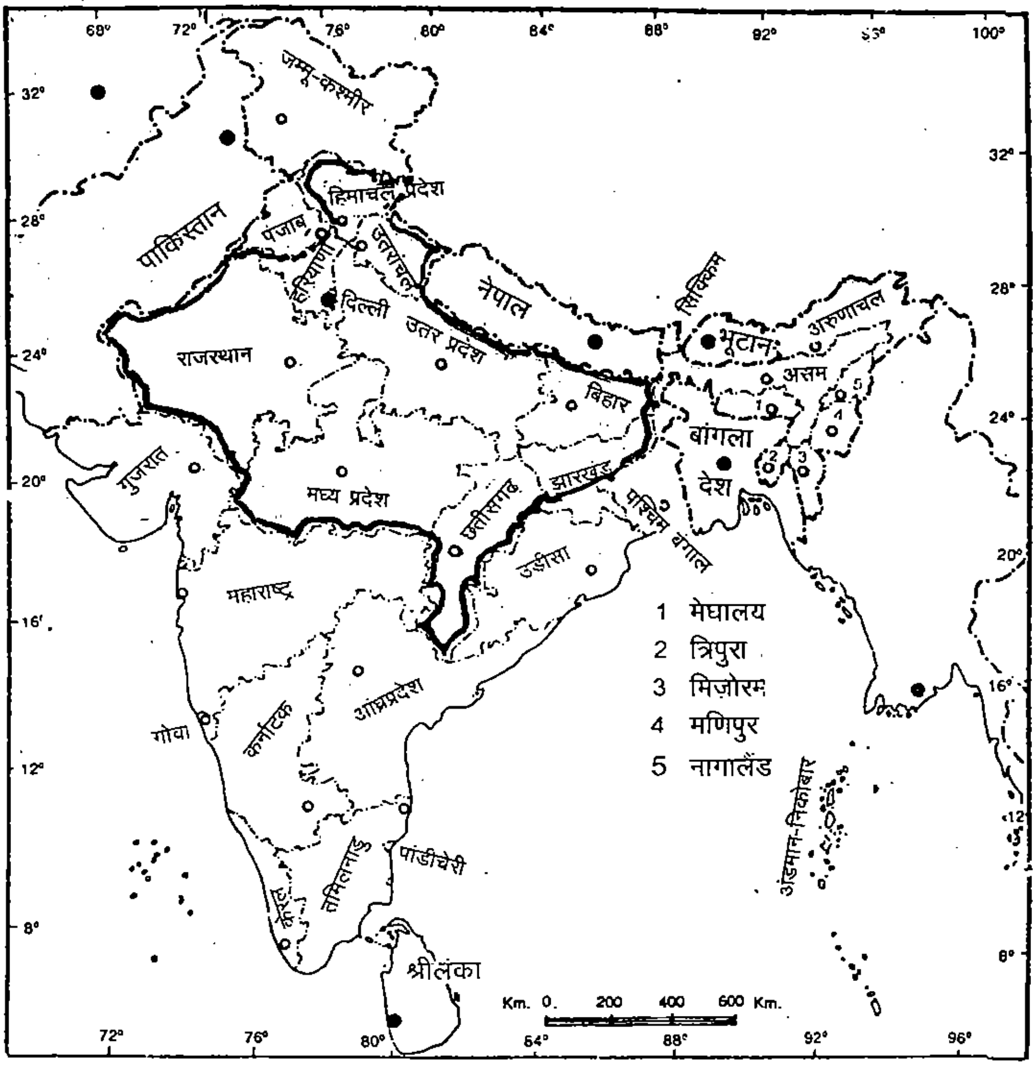

Based upon Survey of India map with the permission of the Surveyor General of India.
The territorial waters of India extend into the sea to a distance of twelve nautical miles measured from the appropriate base line.
Responsibility for the correctness of the internal details rests with the Publishers.
The External Boundary and Coast-line of India shown on this map agree with the Record copy approved by the Survey of India, Dehra Dun.
The Administrative Headquarters of Chandigarh, Haryana and Punjab are at Chandigarh.

मानचित्र 1 : भारत का हिंदी क्षेत्र

6.3 संपर्क में भाषाएँ (Languages in Contact)

अब तक हमने केवल एक भाषा के परिप्रेक्ष्य में भाषा वैविध्य की चर्चा की। लेकिन विश्व कुटुंब के इस ज़माने में कोई भी भाषा अन्य भाषाओं से अलग द्वीप बनकर नहीं रह सकती। वह कई संदर्भों में अन्य भाषाओं के संपर्क में आती है। संपर्क में आने वाली भाषाएँ एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। व्यक्ति भी एक से अधिक भाषाओं का प्रयोग करता है। इस संदर्भ में हम संपर्क की स्थिति को हम बहुभाषिकता (multilingualism) कहते हैं। भारत बहुभाषी देश है, क्योंक यहाँ कई भाषाएँ बोली जाती हैं।

द्विभाषिकता व्यक्तियों के भाषा ज्ञान को सूचित करने वाला शब्द है, भले वह एक से अधिक भाषाएँ जानता है। मान लें कि मैं हिंदी, अंग्रेज़ी और बांगला जानता हूँ। मैं हिंदी और अंग्रेज़ी के संदर्भ में द्विभाषी हूँ, मैं हिंदी बांगला के संदर्भ में द्विभाषी हूँ। दो से अधिक भाषाएँ जानने वाले को बहुभाषी (multilingual) नहीं कहा जाता। वह बहुभाषाविद् (ploygIot) कहलाता है। इस तरह बहुभाषिकता सामाजिक स्तर की संकल्पना है।

भाषाई संपर्क में कई बातें देखी जा सकती हैं :

i) द्विभाषिकता के कारण लोगों में दोनों कोड़ों (Codes) का मिश्रण आदि बातें देखी जा सकती हैं।

ii) दो भाषाओं के संपर्क से तीसरा भाषा रूप पैदा हो जाता है।

iii) दोनों भाषाओं में आदान-प्रदान की स्थिति आती है।

iv) द्विभाषी समाज में भाषाई संपर्क आदि भी होते हैं।

आगे हम इन प्रमुख परिणामों का अध्ययन करेंगे।

6.3.1 बहुभाषिता और द्विभाषिता के विविध रूप

भारत चिरकाल से बहुभाषी देश रहा है। हर प्रांत की अपनी भाषा होते हुए भी पहले संस्कृत देश को जोड़ने वाली भाषा थी, अब हिंदी देश की संपर्क भाषा के रूप में उभरी। इस कारण देश का शिक्षित वर्ग हमेशा द्विभाषी भी रहा है। आज अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा, महानगरों का उदय और दूर संचार और जन संचार माध्यमों का विकास – इन सब कारकों से लगभग हर शिक्षित व्यक्ति द्विभाषी है और एक ही समय में एक से अधिक भाषाओं का भिन्न स्तरों में प्रयोग करता है। यह भाषा वैविध्य का दूसरा आयाम है। क्या आपने कभी सोचा है कि आप दिन में कितनी भाषाओं और कितने भाषा रूपों का प्रयोग करते हैं? हम एक साथ कई भाषाओं और उनकी कई बोलियों, शैलियों और प्रयुक्तियों (प्रयोजनमूलक रूपों) का प्रयोग बड़ी सरलता से करते हैं।

द्विभाषिता की स्थिति में व्यक्ति की एक भाषा प्रमुख (dominent) होती है, दूसरी गौण। मातृभाषा के प्रदेश में मातृभाषा ही प्रमुख होती है, व्यक्ति मातृभाषा से भिन्न प्रदेश में रहे तो उसकी मातृभाषा गौण और प्रदेश की भाषा प्रमुख हो जाती है। बहुभाषिक स्थिति में व्यक्ति की द्विभाषिता के इस तरह कई रूप देखे जा सकते हैं। निम्नलिखित स्थितियाँ देखिए :

(1) **भाषा 1 + भाषा 2 :** जब वक्ता एक ही भाषा-परिवार की दो भाषाओं में दक्षता रखता हो, जैसे हिंदी एवं बंगला, अथवा मराठी एवं गुजराती। कम स्थितियों में दोनों भाषाओं में समान दक्षता होगी। प्रायः प्रदेश की भाषा प्रमुख होगी।

(2) **भाषा 1 + भाषा 3 :** जब वक्ता दो विभिन्न भाषा परिवार की भाषाओं में दक्षता रखता हो, जैसे हिंदी-तमिल या मणिपुरी-हिंदी। इसके अंतर्गत हम अंग्रेजी को भी

ले सकते हैं जो भारोपीय परिवार की है, पर अपने देश में अभी भी इसे पूर्ण रूप से भारतीय भाषाओं में नहीं गिना जाता फिर भी इसकी स्थिति जर्मन या जापानी जैसी पूर्ण विदेशी भाषा की नहीं है। इस स्थिति में मातृभाषा ही प्रायः प्रमुख होती है।

(3) **भाषा 1 + भाषा 4 :** जब वक्ता मातृभाषा के अतिरिक्त कोई एक विदेशी भाषा का प्रयोग करना भी जानता है, जैसे हिंदी एवं फ्रेंच/ जर्मन। विदेशी भाषा की दक्षता कम ही होती है।

अब तक हमने जिस द्विभाषिकता की चर्चा की, वह बाह्य है, दो भाषाओं के बीच में है। इसी तरह एक भाषिक स्थिति में भी द्विभाषिकता की बात देखी जा सकती है, जहाँ व्यक्ति भाषा की दो बोलियाँ बोले या भाषा की दो विशिष्ट शैलियों का प्रयोग करे। इसे कुछ विद्वान द्विभाषिकता मानते हैं, कुछ नहीं।

आंतरिक द्विभाषिकता के अंतर्गत उस स्थिति को लिया जाता है जब वक्ता एक ही भाषा की दो बोलियों जैसे कि हिंदी के साथ-साथ अवधी, ब्रज की दक्षता रखता हो या फिर एक मानक रूप भाषा जैसे हिंदी और एक बोली जैसे कि भोजपुरी की दक्षता रखता हो। एक और स्थिति जिसे भाषा द्वैत के नाम से जाना जाता है, का उल्लेख चार्लस् फरग्यूसन (1959) ने सबसे पहले किया था। इस स्थिति में वक्ता एक ही भाषा की दो विभिन्न शैलियों का या कोडों का प्रयोग करता है जिनमें से एक उच्च और दूसरी निम्न समझी जाती है। उदाहरणतया बंगला-समाज में 'साधु भाषा' और 'चलित भाषा' का अलग-अलग प्रयोग होता देखा गया है। कुछ-कुछ यही स्थिति तमिल भाषियों की भी है। औपचारिक तमिल में और सामान्य व्यावहारिक तमिल में काफी अंतर है। आजकल की 'सरकारी हिंदी' प्रयोग करने वाले हिंदी भाषी भी भाषा द्वैत के शिकार हैं।

द्विभाषिता के रूप – बाह्य और आंतरिक

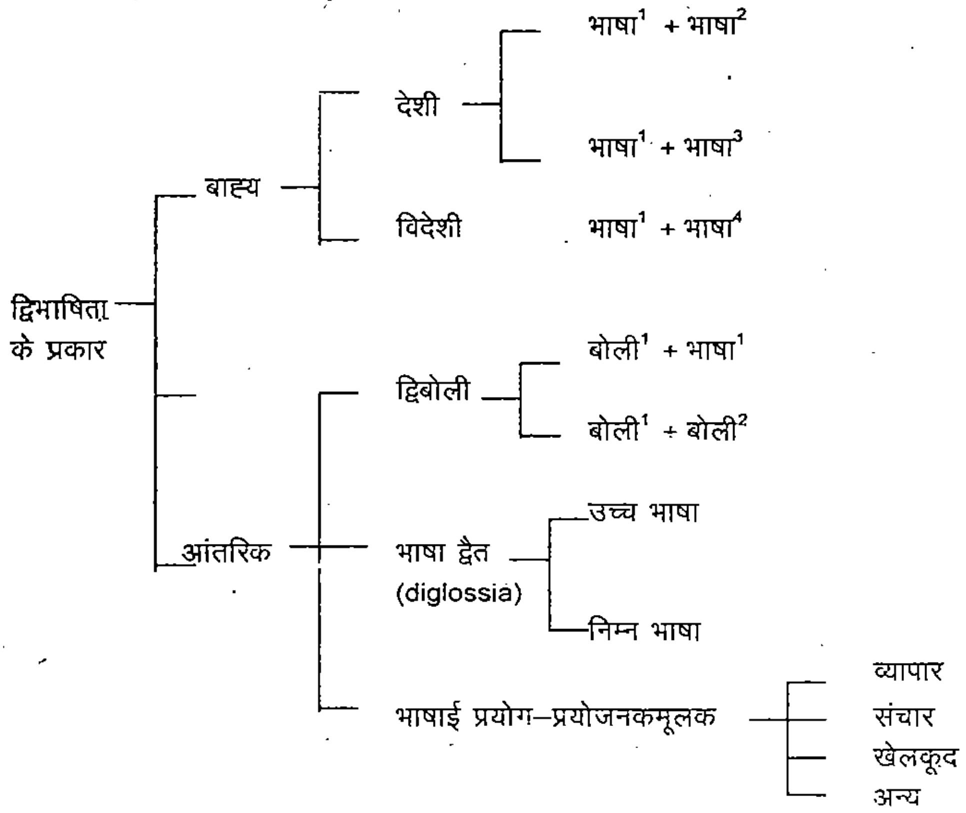

अंत में द्विभाषिता के अंतर्गत हम इन सब शैलियों को ले सकते हैं जो भिन्न-भिन्न परिवेश में उपजी और प्रयुक्त होती है। उदाहरणतया व्यापार में प्रचलित शैली या फिर विज्ञापन की शैली या फिर खेलकूद की शैली, या फिर खास किसी विशेष कोड-भरी शैली जैसे कि बनारस के पंडों की। अक्सर देखा गया है कि ये शैलियाँ एक विशेष संदर्भ में ही प्रयोग होती है और उसके बाहर नहीं। वक्ता और श्रोता दोनों ही इस शैली से भली-भाँति अवगत होते हैं। इन सब शैलियों में से विज्ञापन की शैली पर खास शोध हुआ है! आइए इस पर एक नज़र डालें।

विज्ञापन की भाषा

विज्ञापन का मुख्य उद्देश्य है वस्तु की विक्रय शक्ति को बढ़ाना। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए भाषा को नाना प्रकार से सजाकर आकर्षक बनाया जाता है। उदाहरणतया, विज्ञापनकर्ता विज्ञापन की भाषा को उपमा, अलंकार, मुहावरों, लोकोक्तियों व तुकबंदियों से सजाता है एवं कई नए-नए प्रयोग करता है। विज्ञापन की भाषा एक तरफ़ तो विशेषणों और क्रिया विशेषणों से भरी होती है और दूसरी ओर निवेदनार्थक और निश्चयार्थक भी होती है। हिंदी के 'कल' शब्द का जो कि भूत और भविष्य दोनों के लिए प्रयोग होता है। उदाहरण देखिए :

> 'कल भी, आज भी, कल भी' (यह VIP Suitcase का विज्ञापन है) बहुत ही सुंदर और संक्षिप्त।

प्रायः विज्ञापन क्रियावहीन होते हैं और इसलिए सारा जोर संज्ञा-पद पर होता है। आश्चर्य नहीं कि संज्ञा-पद अक्सर लम्बे-लम्बे होते हैं। उदाहरणतया :

1. 'फैशनेबल महिलाओं की एक ही पसंद .... विपुल साड़ियाँ'
2. 'कीमत में 20 प्रतिशत काम पर काम में वैसा ही उत्तम'
3. 'भला उसकी साड़ी मेरी साड़ी से सफेद कैसे? - सुपर रिन का कमाल'

6.3.2 कोड–अंतरण और मिश्रण

व्यक्ति द्विभाषिता की स्थिति में जिस भाषा रूप का (जैसे भाषा 1 या भाषा 2 का) उपयोग करता है, वह कोड (code) कहलाता है। द्विभाषिता के प्रभाव के कारण वह कभी दोनों कोडों का बारी-बारी उपयोग करता है जैसे :

> मैंने उनसे बात की थी। He will help you.
> आप बिल्कुल चिंता न करें।

इस प्रवृत्ति को कोड अंतरण (code transfer) कहा जाता है।

कभी आपने गौर किया है कि दूरदर्शन पर आने वाले विज्ञापन भी दो भाषाओं में किस चतुरता से बाँटे जाते हैं। कपड़े धोने के साबुन का विज्ञापन सदैव हिंदी में या अन्य किसी प्रांत की भाषा में होगा पर नहाने के साबुन का विज्ञापन प्रायः अंग्रेज़ी में ही होगा। यह अलग शोध का विषय है कि बहुभाषिक समाज में हम किस भाषा से जनता के किस भाग तक पहुँचने की कोशिश करते हैं।

विज्ञापन की भाषा की चर्चा करते समय यह जरूरी हो जाता है कि आपको यह बता दें कि आधुनिक युवा पीढ़ी एक परिप्रेक्ष्य में एक भाषा के प्रयोग करने की अपेक्षा एक ही परिप्रेक्ष्य में दो भाषाओं के बीच कोड-परिवर्तन करना अधिक पसंद करती है। उदाहरण के लिए देखिए निम्नलिखित विज्ञापन जो आज की पीढ़ी के लिए ही दूरदर्शन पर प्रसारित होता है :

> 'गोरापन without soft त्वचा?
> जैसे party without boys' (ponds cream)

कोड मिश्रण (code mixing) किन्हीं दो या तीन भाषाओं में हो सकता है। गम्पर्ज (1982 : 59) कोड-मिश्रण की परिभाषा यूँ देते हैं 'जब एक ही भाष्य (utterance) में दो विभिन्न भाषाओं के व्याकरणिक और उप-व्याकरणिक व्यवस्था का तालमेल हो'। पिछले तीस वर्षों में कोड-मिश्रण काफी शोध और चिंतन का विषय रहा है। एक ही वाक्य में क्या परिवर्तित हो सकता है और क्या नहीं, कोड-परिवर्तन क्यों होता है और इस मिश्रण के क्या आयाम हैं, या फिर समाज का कौन-सा वर्ग अधिक मात्रा में कोड-मिश्रण करता है और कौन-सा कम मात्रा में आदि ऐसे प्रश्न हैं जिनके उत्तर ढूँढने का प्रयास किया गया है। कुछ भाषावैज्ञानिक कोड-मिश्रण के लिए दो भाषाओं का होना ही आवश्यक नहीं मानते वरन् दो विभिन्न शैलियों या बोलियों के अंतर्गत हुए परिवर्तन को भी कोड-मिश्रण का ही अंग मानते हैं (रोमेन 1989 : 111)। रोमेन ने प्रवासी पंजाबियों की भाषा में संयुक्त क्रियाओं के कोड परिवर्तन पर शोध किया और इस निष्कर्ष पर पहुँची कि वाक्य का अंतिम शब्द जो कि क्रिया में अंत में होता है हमेशा पंजाबी का रहता है पर उसके पहले वाले शब्द जो संज्ञा या विशेषण हो हैं अंग्रेजी के होते हैं। यहाँ तक कि कभी-कभी पूरा-का-पूरा उपवाक्य अंग्रेज़ी से लिया जाता है, फिर अंत में पंजाबी की क्रिया लगाई जाती है। उदाहरण के लिए देखिए :

1. Parents पे depend होंदा ए
   'वे अपने माता-पिता पर निर्भर है'

2. ओ अपनी own language नूं look down upon करन।
   'वे शायद अपनी ही भाषा को नीचा देखें'

3. जित्थे वी education दी गल आंदी ए, ओ help करदे ने।
   'जब भी पढ़ाई की बात आती है, वे मदद करते हैं।'

भाषावैज्ञानिकों के लिए यह खिचड़ी बड़ी दिलचस्प होती है क्योंकि इससे संप्रेषण की गहराई तक तो पहुँचा ही जा सकता है, इसके शोध से मूलभाषा के व्याकरण की मुख्य व्याकरणिक इकाइयों के बारे में भी ज्ञान अर्जित किया जा सकता है। जैसे कि हिंदी की अनेकानेक संयुक्त क्रियाएँ (conjunct verbs) जो कि विशेषण/ संज्ञा + क्रिया से बनती हैं - बड़ी आसानी से अंग्रेज़ी की संज्ञा और उसके विशेषण से कोड परिवर्तित हो जाता हैं। उदाहरणतया :

(क) work करती हूँ। [सं. (अं.) + क्रिया (हि.)]
(ख) hard work करती हूँ। [वि., सं. (अं.) + क्रिया (हि.)]
(ग) daily hard work करती हूँ। [क्रि.वि., वि.,सं. (अं.) + क्रिया (हि.)]
(घ) exam pass करना [संज्ञा + क्रिया. (अं.) + operator (हि.)]

गौर करें, (घ) में कैसे 'करना' लगाते ही अंग्रेज़ी की क्रिया pass संज्ञा का रूप ले लेती है जिसमें हिंदी की operator क्रिया 'करना' लग सकती है।

6.3.3 बहुभाषिता से जन्मी पिजिन, क्रियोल और मिश्रित भाषाएँ

किसी भी बहुभाषा-भाषी समाज या देश में कोई न कोई भाषा ऐसी तो होती है जो संप्रेषण के धरातल पर संपर्क भाषा का काम करती है। इसे 'लिंगुआ फ्रेंका' के नाम से जाना जाता है। प्रायः यह संपर्क-भाषा मानक रूप में प्रयोग नहीं होती और उसमें प्रांतीय या क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों के पुट शामिल होते हैं। उदाहरण के लिए भारतवर्ष के अधिकांश प्रांतों में हिंदी एक संपर्क-भाषा के रूप में साधारण और रोज-मर्रा के जीवन में प्रयुक्त होती है। यह अवश्य है कि राजस्थान की संपर्क भाषा हिंदी और हिमाचल की संपर्क भाषा हिंदी एवं बैंगलोर या मुम्बई की संपर्क भाषा हिंदी की अपनी-अपनी कई विशेषताएँ हैं। जैसे जल अपना रूप बर्तन के हिसाब से बदल लेता है, गोल बर्तन में गोल, ऊँचे-लम्बे बर्तन में ऊँचा आदि आदि। उसी प्रकार संपर्क-भाषा हिंदी हर प्रांत और और प्रदेश में उस प्रांत की मुख्य भाषा के अनुरूप ढल जाती है और कुछ नई छटा लिए होती है। यह उस भाषा के

'लचीलेपन' की विशेषता के कारण है। अंग्रेज़ी आज विश्व की संपर्क-भाषा के रूप में जानी जाती है। कैनेडा में फ्रेंच और अंग्रेज़ी दोनों ही संपर्क भाषा का कार्य करती है पर यह कोई आवश्यक नहीं कि संपर्क भाषा ऐसी भाषा हो जो पहले से ही किसी समुदाय की मातृभाषा हो। व्यापारिक संदर्भों में जब व्यापार करने वाले कई भाषा-समुदाय एक साथ एक स्थान पर एकत्रित हो जाएँ तो एक नई भाषा का भी जन्म हो जाता है जिसमें शब्द व्यवस्था एक भाषा की, ध्वनि व्यवस्था और वाक्य-व्यवस्था किसी अन्य भाषा की हो सकती है। ऐसी भाषा जिसका जन्म मात्र व्यापारिक आवश्यकता के कारण हुआ हो या फिर एक समुदाय का किसी दूसरे समुदाय पर आर्थिक या राजनीतिक शासन करने की इच्छा से हुआ हो, तो उस भाषा को पिजिन कहते हैं। दो बातें विशेष ध्यान रखने योग्य हैं। प्रथम तो यह कि पिजिन किसी की मातृभाषा नहीं होती, और दूसरे यह कि पिजिन का व्याकरण दो या तीन भाषाओं के व्याकरण का साधारणीकृत रूप होता है। प्रायः इसकी शब्द सम्पदा सीमित होती है और भाषा-वैविध्य 'ना' के बराबर होता है। विश्व में अंग्रेज़ी, फ्रेंच, डच, स्पैनिश, पुर्तगाली, अरबी और स्वाहिली पर आधारित पिजिन भाषाएँ हैं। एक हवाई पिजिन अंग्रेज़ी का नमूना देखिए :

1. दा पुअर पीप्ल ऑल पोतेईतो ईत (पिजिन-रूप)
   the poor people all potato eat (अंग्रेज़ी शाब्दिक अनुवाद)
   'the poor people eat only potatoes' - अंग्रेज़ी अनुवाद
   'गरीब लोग मात्र आलू खाते हैं'

ध्यान दें कि पिजिन-भाषा में हिंदी की ही भांति क्रिया वाक्य के अंत में आ रही है क्योंकि उक्त वाक्य एक जापानी द्वारा बोला गया था और जापानी में भी क्रिया वाक्य के अंत में आती है।

जब पिजिन की अवधि इतनी लंबी हो जाए कि आगे आने वाली पीढ़ी मात्र पिजिन ही बोलती हो वह भाषा रूप उस समुदाय का मानक रूप हो जाता है और तो उनकी भाषा 'क्रियोल' कहलाती है। अर्थात् क्रियोल किसी न किसी समुदाय की मातृभाषा होती है और उसकी शब्द सम्पदा और उसका वाक्य विन्यास पिजिन की भांति सीमित और साधारणीकृत नहीं होता। क्रियोल का शब्द-भंडार काफ़ी विस्तृत होता है और व्याकरणिक नियम भी किसी अन्य सामान्य भाषा की भांति जटिल होते हैं। आस्ट्रेलिया के केप-योर्क पेनिनसुला के उत्तरी भाग में बोली जाने वाली क्रियोल [क्राओली और रिग्जबाय (1979)] के उदाहरण देखिए :

1. नो गुड 'bad' = बुरा (अं no good)
2. बैलीरन 'diarrhoea' = दस्त (अं beely un)
3. बैलीअप 'on you back' = पीठ पर (अं. belly up)
4. आई नो गुड 'blind' = अंधा (अं. eye no good)
5. तालिंगा नो गुड 'dear' = बहरा (अं. telling no good)
6. इम बीन रैन 'he ran' = वह दौड़ा (अं. him been ran)

भाषावैज्ञानिकों का मत है कि पिजिन से क्रियोल की यात्रा क्रियोल पर आकर समाप्त नहीं हो जाती वरन् क्रियोल धीरे-धीरे मानक-भाषा की तरफ़ अग्रसर होती है और अंततः किसी एक विशेष प्रांत की या समुदाय की मानक भाषा पर आकर टिक जाती है। यह चक्रीय यात्रा (बिकरटन 1975, नारो 1979 : 868) एक प्रकार से मानव-जाति के Bioprogram का परिणाम है। क्रियोल की जटिलता हमारी अंतर्निहित भाषिक क्षमता की देन है। कहने का तात्पर्य यह है कि मानव-मस्तिष्क पहले से ही इस तरह गठित है कि धीरे-धीरे भाषा के विस्तार में जटिलताओं को जन्म देता है। यह एक प्राकृतिक व्यवस्था है। राँची के बाज़ारों में

ली जाने वाली सदरी या सदनी भी एक प्रकार की पिजिन है जिसमें हिंदी, पखड़िया और रॉव का मिश्रण है। धीरे-धीरे अब इसने क्रिओल का रूप ले लिया है।

.4 भाषा : क्षरण, अनुरक्षण और संघर्ष

माजभाषाविज्ञान में भाषाओं को जीवंत संगठन माना जाता है। भाषाएँ कभी लुप्त हो जाती जिसे क्षरण कहा जाता है। अर्थात् भाषा बोलने वाले दूसरी प्रमुख क्षेत्र में रहते हुए अपनी ाषाओं को छोड़ देते हैं और दूसरी प्रमुख भाषा को अपना लेते हैं। यह बात भाषा की लियों पर भी लागू होती है। इसके विपरीत भाषाओं के संदर्भ में, विशेषकर बहुभाषिक थति में भाषाओं के अनुरक्षण (maintenance) का भी उदाहरण मिलता है। जैसे सूरत तमिलनाडु में बसे गुजरातियों ने सैकड़ों सालों से अपनी भाषा को सुरक्षित रखा है। इसे 'सौराष्ट्री' नाम देते हैं। इसी तरह तमिलनाडु से 1000 वर्ष पहले कर्नाटक में जा बसे मेलभाषियों ने तमिल को सुरक्षित रखा है जिस वे 'संकेती' कहते हैं। कुछ हद तक कह कते हैं कि भारतीय समाज की बहुभाषिकता इतनी लचीली है कि (और इसकी संस्कृति बको अपने में समेटती है कि) भाषाओं का अनुरक्षण अपने आप में हो जाता है।

हुभाषिता में भाषाओं के संघर्ष की भी स्थिति आती है, विशेषकर तब जब लोगों को अपना षिक हित प्रभावित होता दिखाई दे। यह संघर्ष आमतौर पर प्रमुख (dominant) भाषा र गौण भाषा के बीच दिखाई देता है। यहाँ भी भारतीय संस्कृति के लचीलेपन और मावेश (accommodation) की प्रवृत्ति के कारण भारतीय भाषाओं में आदान-प्रदान यादा रहा है और संघर्ष की स्थिति कम रही है।

गर आप इस संदर्भ में और जानना चाहें, तो संदर्भ ग्रंथों का अध्ययन कर सकते हैं।

.5 भाषा और सामाजिक संदर्भ

षा समाज की वस्तु है, समाज द्वारा निर्मित व्यवस्था है। इस तरह भाषा और समाज के भिन्न संबंध की बात कह सकते हैं। वैसे मानवों के अन्य सामाजिक आदि व्यवहारों की रह भाषा को भी हम व्यवहार मान सकते हैं। इस अर्थ में भाषा भी एक सामाजिक संस्था ocial institution) है। इस संदर्भ में हम भाषा के सामाजिक संदर्भ की अलग से क्यों र्चा करें?

माज का अपना संगठन है, भाषा की अपनी संरचना है। हम अक्सर देखते हैं कि माजिक संगठन के कारण भाषा के तत्व निर्मित होते हैं जैसे भारतीय परिवार के व्यवस्थित संगठन के कारण हमारे पास अंग्रेज़ी के मुकाबले अधिक रिश्ते के शब्द हैं। इस रह परस्पर जुड़े हुए कई क्षेत्र हैं, जहाँ भाषा और समाज एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। स प्रकरण में हम संबोधन की शब्दावली, रिश्ते-नाते के शब्द तथा रंगों के शब्दों की चर्चा रेंगे।

5.1 संबोधन के शब्द

र्तालाप का प्रारंभिक वाक्य बड़ा ही दिलचस्प होता है। विदेशों में मात्र प्रारंभिक वाक्यों पर हुत शोध हुआ है। भिन्न-भिन्न भाषाओं के भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रारंभिक वाक्य होते हैं र वे हमारी सामाजिक अंतःक्रिया (social interaction) की सजीव तस्वीर खींच देते हैं। भी आपने गौर किया है कि हम अपने मित्रों, स्वजनों, बच्चों, बड़ों और राह में चलते नजान व्यक्ति से क्या शब्द कहकर संबोधन करते हैं और क्यों? अनजान व्यक्ति हो तो । कुछ इस तरह के वाक्यों से उसका ध्यान अपनी ओर खींच सकते हैं :

- भई सुनना ज़रा.....
- सुनिए .....
- बहनजी, एक मिनट .....
- सुनो ......

परस्पर जानने वाले दो व्यक्तियों की इसके अतिरिक्त 'संबोधन शब्दावली' संबोधित व्यक्ति के पद, उम्र, लिंग, स्थान और आपसी अंतरंगता से निर्धारित होती है। संबोधन के रूपों को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं।

(1) प्रत्यक्ष

(क) नामों और नामों की समन्विति

(ख) नाते-रिश्तेदारों के लिए प्रयुक्त संबोधन।

(ग) द्वितीय पुरुष सर्वनाम।

(2) अप्रत्यक्ष

(क) वे संबोधन जिससे संबोधित व्यक्ति का सामाजिक संबंध संबोधन करने वाले व्यक्ति या अन्य किसी के साथ ज्ञात हो।

(ख) वे उपवाक्य जिससे संबोधित की अस्मिता का ज्ञान न हो।

यहाँ हम विस्तार से चर्चा मात्र 'प्रत्यक्ष' रूपों के (क) एवं (ख) की करेंगे।

प्रत्यक्षः (क) नामों और नामों की समन्विति जैसे कि शुभ नाम, मध्यम और जातीय नाम (surname), व्यवसायी नाम एवं आदरसूचक शब्द जो इन नामों के आगे (न. 1) और पीछे (न. 2) अथवा दोनों लग सकते हैं उदाहरणतयाः

(श्रीमती)$_1$ अनुराध कुमारी अग्रवाल (जी)$_2$

कोष्ठक में दिए गए आदरसूचक शब्द वैकल्पिक हैं क्योंकि इनके प्रयोग के पीछे दो लक्षण निहित हैं - आदर और औपचारिकता। हिंदी में कुछ आदरसूचक शब्द ऐसे भी हैं जो नामों की शृंखला के आगे या पीछे लग सकते हैं। उदाहरणतयाः बाबू, लाला। देखिएः

(बाबू/ लाला) ध्यान चन्द गोयल (बाबू/ लाला)

परंतु 'श्रीमती' 'श्री' और 'जी' का स्थान निर्धारित है। अन्य भारतीय भाषाओं में भी आदर सूचक नं. 2 प्रायः पाया जाता है, जैसे कि तेलुगु में 'सुब्बा राव गारु'।
नामों की शृंखला में हिंदी में 'पुकार नाम' का बहुत प्रचलन है जो प्रायः 'शुभनाम' के बिगड़े हुए रूप होते हैं, जैसे कि :

राजेन्द्र कुमार > राजेन्द्र > राजेन > राज > राजू।

इसके अतिरिक्त अनर्गल शब्दों से रचित शब्द भी 'पुकार-नाम' के रूप में प्रचलित होते हैं। उदाहरणतया डब्बू, पिंकी, बंटू, चुन्नू, टुनटुन आदि। कौन-सा नाम कहाँ और किस स्थिति में प्रयोग किया जाए इसके विशेष नियम हैं। अतः 'राजू' से 'श्री राजेंद्र कुमार जी' की यात्रा तभी की जा सकती है जब प्रयुक्ति नियम औपचारिकता, आदर और सम्मान जैसे लक्षण से बद्ध हों।

6.5.2 नाते-रिश्तेदारों के लिए प्रयुक्त संबोधन

हमारे रिश्ते दो प्रकार के होते हैं -पहले तो वे जो समान रक्त या वंशगत हों (non-affinal) और दूसरे जो विवाह-जन्य (affinal) हों। इन दोनों प्रकार के रिश्तों की संबोधन पद्धति चाहे एक सी हो परंतु उनकी संदर्भ शब्दावली (referenced terms) भिन्न-भिन्न होती है। उदाहरण के लिए देखिए तालिका-1.

तीसरी पीढ़ी तक आते-आते संबोधन शब्दावली प्रथम नाम तक ही सीमित रह जाती है। सम-रूपी संबंधों की संबोधन शब्दावली भी एक ही है। अतः 'साली' और 'ननद' दोनों को जीजी' के नाम से यदि वे बड़ी हैं तो, अन्यथा प्रथम नाम से संबोधित किया जा सकता है। उसी प्रकार 'जीजा' एवं 'नन्दोई' को लिए एक ही प्रकार की संबोधन शब्दावली का प्रयोग किया जा सकता है। 'जिठानी' और 'भाभी' भी इसी शृंखला में जोड़े जा सकते हैं।

प्रश्न यह उठता है कि संदर्भ शब्दावली और संबोधन शब्दावली किस स्थिति की द्योतक है? हमें इनके अध्ययन से किस प्रकार की जानकारी हासिल होती है? यदि आप ध्यान से देखें तो ज्ञात होगा कि विवाह के बाद स्त्री को और उसके बच्चों को दो-दो, भिन्न-भिन्न संदर्भ रूपों से वास्ता पड़ता है। उदाहरणतया पति का छोटा भाई 'देवर', पर बड़ा भाई 'जेठ' और पति के छोटे भाई की पत्नी 'देवरानी' पर पति के बड़े भाई की पत्नी 'जिठानी'। उसी प्रकार पिता के बड़े भाई 'ताऊ' और उनकी पत्नी 'ताई' पर पिता से छोटे भाई 'चाचा' और उनकी पत्नी 'चाची'। इस प्रकार के बड़े छोटे संबंधों के भिन्न-भिन्न रूप मायके में नहीं होते। बड़े भाई की पत्नी और छोटे भाई की पत्नी दोनों ही 'भाभी'। या फिर पत्नी के बड़े भाई और छोटे भाई दोनों ही 'साला' के नाम से ही संदर्भित होते हैं। यही स्थिति पत्नी की बड़ी एवं छोटी बहनों की है - दोनों ही 'साली' के नाम से जानी जाती हैं। इस अलग-अलग पद्धतियों का कारण है कि हिंदी-भाषी समाज पति-स्थानिक एवं पितृ-स्थानिक है। विवाह के बाद स्त्री का पूर्ण समय ससुराल में ही बीतता है। अतः उसके संबंधों की संदर्भ सूची भी विविध है। आप कल्पना कर सकते हैं कि यदि समाज 'भातृ-स्थानिक' या पत्नी-स्थानिक' हो (जैसे कि मेघालय में खासी-भाषी) तो उनकी संदर्भ शब्दावली हिंदी भाषियों से कितनी भिन्न होगी।

तालिका-1

नाते रिश्तेदारों की संबोधन एवं संदर्भ शब्दावली

वंशगत/ रक्त संबंध	**विवाह-जन्म संबंध**	
संबोधन एवं संदर्भ समरूपी	*संबोधन एवं संदर्भ भिन्न रूप*	
पूर्व पीढ़ी	संदर्भ रूप	संबोधन
	पूर्व पीढ़ी	
1. नाना	1. सास	माता जी
2. नानी	2. ससुर	पिता जी
3. दादा	समकालिक पीढ़ी	
4. दादी	3. साला	भैया, भाई साहब
5. माता (जी)	4. साली, ननद	जीजी, दीदी, बहन जी
6. पिता (जी)	5. जेठ	भाई साहब, भाई जी
7. ताऊ	6. जिठानी	दीदी, भाभी
8. चाचा	7. देवरानी	प्रथम नाम
9. मामा	8. देवर	प्रथम नाम (जी)
10. बुआ	9. भाभी	भाभी, प्रथम नाम
11. मौसी	10. नन्दोई (बड़े)	जीजा जी
समकलिक पीढ़ी	11. नन्दोई (छोटे)	प्रथम नाम+जी
12. भाई (साहब)	12. बहू	बहू
भैया (जी)	13. दामाद	दामादजी/बाबू, प्रथम नाम+जी
13. बहन (जी)	उत्तर पीढ़ी	
जीजी, दीदी	14. भतीजा	प्रथम नाम

<u>उत्तर पीढ़ी</u>		15.भतीजी	प्रथम नाम
14.बेटा		16.भानजा	प्रथम नाम
15.बेटी		17.भानजी	प्रथम नाम
		18.पोता/ पोती	प्रथम नाम
		19.नाती/ नातिन	प्रथम नाम
		20.धेवता	प्रथम नाम
		21.धेवती	प्रथम नाम

संबंधों को एक, दो या तीन बंधनों में बाँधा जाता है। जब एक व्यक्ति विशेष का किसी दूसरे व्यक्ति से ठीक सीधा संबंध हो (बिना किसी अन्य व्यक्ति के बीच में आए) तो उसे प्राथमिक संबंध कहते हैं। यदि एक व्यक्ति का संबंध किसी अन्य व्यक्ति से ठीक सीधा न होकर किसी दूसरे व्यक्ति के माध्यम से हो तो उस संबंध को द्वितीयक संबंध कहते हैं। इसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति विशेष का संबंध किसी अन्य व्यक्ति से एक नहीं वरन् दो व्यक्तियों के माध्यम से हो तो उसे तृतीयक संबंध कहते हैं। उदाहरणतया हमारा संबंध अपने माता, पिता, भाई, बहन, पुत्र, पुत्री से सीधा प्राथमिक संबंध है पर दादा, दादी, पोता, पोती वगैरह से द्वैतीयक है और परदादा, परदादी या फुफेरे भाई/ बहन, मौसेरे भाई-बहन से त्रैतीयक है। यदि हम एक गोल चिह्न को 'मैं' की संज्ञा दें तो इसे निम्नलिखित प्रकार से समझाया जा सकता है। हर (तीर) को एक संबंध मानिए जो पीढ़ी का भी हो सकता है और समकालिक भी।

प्राथमिक बंध

O → माँ = माँ/ माता

O $\xrightarrow{1}$ पुत्र/ पुत्री = बेटा/ बेटी

द्वितीयक बंध

O $\xrightarrow{1}$ पिता $\xrightarrow{2}$ पिता = दादा

O $\xrightarrow{1}$ पुत्र $\xrightarrow{2}$ पुत्र = पोता

तृतीयक बंध

O $\xrightarrow{1}$ पिता $\xrightarrow{2}$ पिता $\xrightarrow{3}$ पिता = परदादा

O $\xrightarrow{1}$ माँ $\xrightarrow{2}$ बहन $\xrightarrow{3}$ बेटी = मौसेरी बहन

अतः 'मौसेरी बहन' तृतीयक बंध का उदाहरण है क्योंकि वह मेरी (0) माँ (1) की बहन (2) की बेटी (3) है।

द्वितीयक और तृतीयक संबंधों को तालिकाओं में दिया जा सकता है। देखिए तालिका नं. 2

तालिका-2 : द्वितीयक संबंध

प्रथम बंध / द्वितीय बंध		रक्त-संबंध						वैवा. संबंध	
		पूर्व पीढ़ी		सम. पीढ़ी		उत्तर पीढ़ी		सम. पीढ़ी	
		पिता	माता	भाई	बहिन	पुत्र	पुत्री	पति	पत्नी
पूर्व पीढ़ी		पिता माता	दादा नाना	दादी नानी	ताऊ चाचा मामा	बुआ मौसी			
रक्त संबंध	समकालिक पीढ़ी	भाई बहिन				भतीजा भानजा बहनौत	भतीजी भानजी बहनौत	बहनोई	आवाज
	उत्तर	पुत्र				(पोता नाती)	पोती (नातिन)		बहू
	पीढ़ी	पुत्री				धेवता (नाती)	धेवती (नातिन)	दामाद	
वैवाहिक संबंध समकालिक पीढ़ी		पति	ससुर	सासु	जेठ देवर	ननद			
		पत्नी	ससुर	सासु	साला	साली			

तालिका के बीच में दिए गए सब संबंध नाम द्वितीयक संबंध के द्योतक हैं। तीर से दर्शाए गए सब संबंध-नाम प्राथमिक संबंध के द्योतक हैं।

इसी प्रकार तृतीयक संबंध भी एक तालिका में बाँधे और देखे जा सकते हैं। देखिए तालिका सं. 3 :

तालिका-3 : तृतीयक संबंध
(तृतीयक स्तर)

	प्राथमिक बंध / द्वितीयक बंध	रक्त-संबंध						वैवाहक संबंध	
		पिता	माता	भाई	बहिन	पुत्र	पुत्री	पति	पत्नी
	दादा	परदादा	परदादी	✓	✓				
	दादा	परदादा	परदादी	✓	✓				
र	नाना	परनाना	परनानी	✓	✓				
	नानी	परनाना	परनानी	✓	✓				ताई
क्त	ताऊ					चचेराभाई	चेचरीबहिन		चाची
	चाचा								
सं	बुआ					फुफेरा भाई	फुफेरी बहिन	फूफा	
	मामा					ममेरा भाई	ममेरी बहिन		मामी
बं	मौसी					मौसेरा भाई	मौसेरी बहिन	मौसा	
	भतीजा					✓	✓		भतीज बहू
ध	भतीजी					✓	✓	भतीज दामाद	
	भानजा								भांजा बहू
	भानजी					✓	✓		
						✓	✓	भांज दामाद	
	पोता (नाती)					पंती	पंतिन		नतबहू
	पोती (नातिन)					✓	✓	नत दामाद	
	धेवता					✓	✓		ध्यौत बहू
	धेवती					✓	✓	ध्यौत दामाद	
	भावज	✓	✓	✓	✓				
दि	बहनोई	✓	✓	✓	✓				
वा	बहू	समधी	समधिन	✓	✓				
ह	दामाद	समधी	समधिन	✓	✓				
ज	ससुर	ददिया ससुर	ददिया सासु	चचिया ससुर	फुफिया सासु				
न्य	सासु	ननिया ससुर	ननिया सासु	ममिया ससुर	मुसिया सासु				
सं	जेठ					जैठौत	जेठौत		जेठानी
बं	देवर					देवरौत	देवरौत		देवरानी
ध	ननद					✓	✓	ननदोई	
	साला					✓	✓		सहलज
	साली					✓	✓	साढ़ू	

स्रोत : भोलानाथ तिवारी, 'हिंदी भाषा की सामाजिक रचना' (1994 : 169)

6.5.3 रंगों के शब्द

हम सब जानते हैं कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ अधिक रंग पहचानती हैं, क्योंकि उन्हें वस्त्राभूषणों के संदर्भ में अधिक रंगों से वास्ता पड़ता है। इस तरह रंग की पहचान व्यक्ति सापेक्ष है, सिर्फ़ भौतिक क्षमता नहीं है।

स तरह भाषाओं में रंगों की शब्दावली समाज सापेक्ष भी होती है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि अलग-अलग समाज अलग-अलग ढंग से रंगों को पहचानता है और उनके लिए शब्द निर्मित करता है। यह भौतिक सत्य है कि रंग एक पट्टिका के रूप में क्रम से दिखाई देते हैं। भौतिक विज्ञानी इंद्रधनुष के सात रंगों की बात कहते हैं – ऊदा, indigo नीला, हरा, पीला, orange तथा लाल। इन सबके मेल से सफ़ेद बनता है, सबके अभाव में काला। आपने देखा होगा कि दो शब्दों के हिंदी रूप नहीं हैं, क्योंकि हम केवल चार या पाँच रंगों में अंतर करने के आदी हैं। संसार में ऐसी भी भाषाएँ हैं, जहाँ नीला तथा हरा को एक ही शब्द से सूचित किया जाता है, क्योंकि इनमें अंतर करना वे आवश्यक नहीं समझते।

भाषाओं में रंग संबंधी शब्दों में अंतर यह स्पष्ट करता है कि किस तरह भौतिक तथ्यों को भी हर समाज अपने ढंग से देखता और वर्णित करता है।

.6 हिंदी में भाषा वैविध्य

भारतवर्ष के लिए यह प्रसिद्ध है कि 'यहाँ' दस कोस पे पानी और बीस कोस पे बानी' बदल जाती है। इस परिप्रेक्ष्य में देखें तो वास्तव में तथाकथित 'हिंदी प्रदेश' की हिंदी भी एक-सी नहीं है। देखिए मानचित्र सं.1– भारत का हिंदी-क्षेत्र (पृ.....)। हर प्रांत की हिंदी भिन्न है। यही नहीं, जब हिंदी समूचे भारतवर्ष में जन-संपर्क की भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है तो भी कुछ भिन्नताएँ आ जाती हैं मसलन बंबइया हिंदी, कलकतिया हिंदी, हैदराबादी हिंद, दिल्ली की हिंदी आदि। आइए सर्वप्रथम देखें हिंदी प्रदेश की हिंदी और उसकी बोलियों को। 'हिंदी प्रदेश' में छह प्रांत शामिल हैं : उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, हरियाणा, राजस्थान एवं हिमाचल प्रदेश। यद्यपि विभिन्न प्रांतों की हिंदी भी भिन्न-भिन्न प्रकार की है परंतु बोधगम्यता की कड़ी उन्हें एक माला में पिरोती है। हाँ, यह अवश्य है कि यह बोधगम्यता सभी प्रांतों में एक सी नहीं है। कहीं ज्यादा और कहीं कम - प्रश्न डिग्री का है। उदाहरणतया एक राजस्थानी व्यक्ति हरियाणावासी की हिंदी को हिमाचली की हिंदी की अपेक्षा कहीं अधिक मात्रा में समझेगा। हिंदी की पाँच उपभाषाएँ हैं :

(क) पश्चिमी हिंदी
(ख) राजस्थानी हिंदी
(ग) पूर्वी हिंदी
(घ) बिहारी हिंदी
(ड.) पहाड़ी हिंदी

यहाँ यह बता देना आवश्यक होगा कि इन उप-भाषाओं का वर्गीकरण किसी व्याकरणिक दृष्टि से नहीं किया गया है। इन पाँच भागों में हिंदी भाषा का वर्गीकरण मात्र इसके प्रयोग-क्षेत्र या राजनीतिक भू-खण्ड से संबंधित है। अतः हिंदी प्रदेश के पूर्व भाग में बोली जाने वाली हिंदी 'पूर्वी हिंदी' और राजस्थान में बोली जाने वाली हिंदी 'राजस्थानी हिंदी' आदि।

(क) पश्चिमी हिंदी

इसके अंतर्गत छह प्रमख बोलियाँ आती हैं :

खड़ी बोली या कौरवी, हरियाणवी या बाँगरू, दक्खिनी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली मेरठ के आसपास बोली जाने वाली खड़ी बोली के अंतर्गत साहित्यिक हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी भी हैं। दक्खिनी, हालांकि दक्षिण में बोली जाती है पर खड़ी बोली पर आधारित होने के कारण पश्चिमी हिंदी के अंतर्गत आती है। ब्रज मथुरा-आगरा में बोली जाती है एवं भक्तिकाल के कवियों की प्रिय भाषा रही है।

(ख) राजस्थानी हिंदी

इसकी पाँच प्रमुख बोलियाँ हैं - मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती, मालवी, एवं गूजरी। पश्चिम राजस्थान में बोली जाने वाली मारवाड़ी का क्षेत्र काफी व्यापक है। यही नहीं हाल में किए

गए शोध से ज्ञात होता है कि समूचे भारत-वर्ष में हिंदी के अतिरिक्त यदि केई भाषा द्वितीय भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है तो वह है मारवाड़ी। प्रसार और साहित्य-सृजन की दृष्टि से भी इसका क्षेत्र व्यापक रहा है। मारवाड़ी में सर्वनामों की अत्यधिक विविधता है। राजस्थानी भाषा क्षेत्र के लिए देखिए मानचित्र 2.

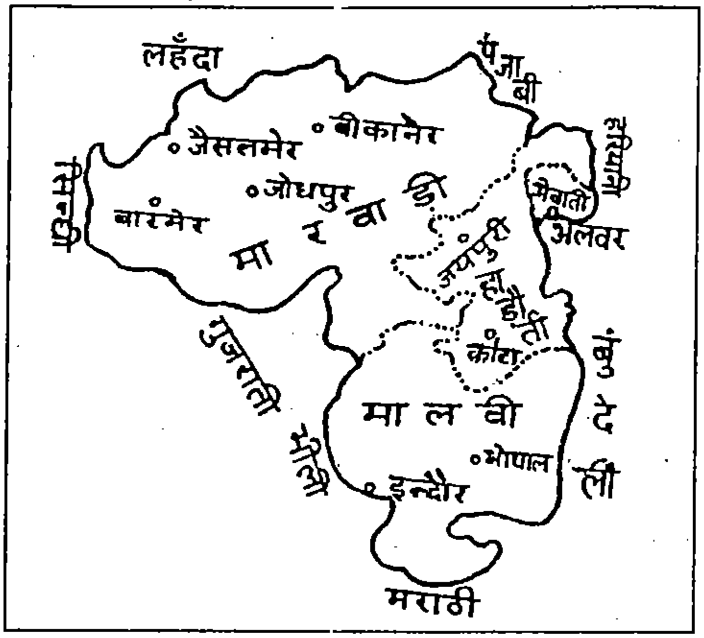

मानचित्र 2 : राजस्थानी भाषा क्षेत्र

स्रोत : दी.प. जैन एवं कै तिवारी, 1972

(ग) पूर्वी हिंदी

इसकी तीन प्रमुख बोलियाँ हैं - अवधी, बघेली एवं छत्तीसगढ़ी। साहित्य की दृष्टि से अवधी भाषा सबसे अधिक अलंकृत हुई है। सूफी काव्य एवं राम-काव्य की रचना की भाषा अवधी ही है।

(घ) बिहारी हिंदी

इसके अंतर्गत भोजपुरी, मगही और मैथिली बोलियाँ आती हैं। यूं ये तीनों बोलियाँ बिहार राज्य में बोली जाती हैं पर भोजपुरी उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिले में भी बोली जाती है। देखिए मानचित्र 3. चूँकि इन भाषाओं का जन्म मागधी अपभ्रंश से हुआ है, भाषा वैज्ञानिक मैथिली जैसी भाषाओं का बंगला, उड़िया और असमिया से संबंध जोड़ते हैं। साहित्यिक दृष्टि से मैथिली प्रमुख है।

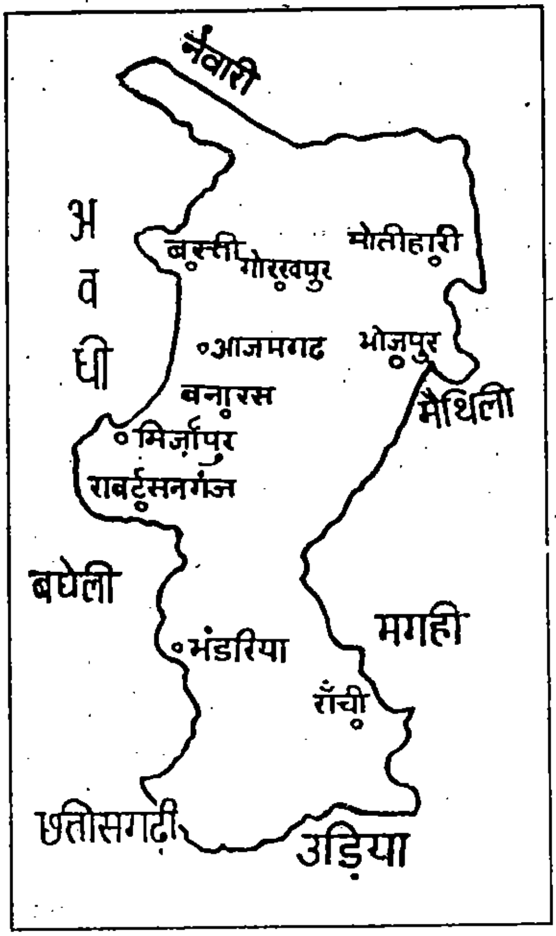

मानचित्र 3 : भोजपुरी भाषा क्षेत्र

(ड.) पहाड़ी हिंदी

इसके अंतर्गत पहाड़ी क्षेत्र (हिमाचल व उत्तर प्रदेश) की गढ़वाली और कुमायूँनी आती है। इन भाषाओं में लोक साहित्य की विपुलता है।

आइए अब संक्षेप में एक नज़र डालें हिंदी के उन विविध रूपों पर जो महानगरों में प्रयुक्त होती है।

पहले बताया जा चुका है कि हिंदी देश की जन-संपर्क की भाषा बनती जा रही है। हाल में किए गए शोध (K.S. Sing, 'people of India') से पहली बार हमारे सामने आँकड़ों में यह तथ्य उजागर हुआ है कि देश की लगभग 50 प्रतिशत जनसंख्या हिंदी का प्रयोग 'प्रथम भाषा' के रूप में करती है। यदि इसमें हम उन भाषा-भाषियों को भी जोड़ दें जो हिंदी का प्रयोग 'द्वितीय' या 'तृतीय' भाषा के रूप में करते हैं तो संख्या कहीं अधिक बैठेगी। कहने का आशय यह है कि यदि कोई एक भाषा है जो देश की राष्ट्रीय-भाषा है, जिसे जन समूह पारस्परिक संप्रेषण के लिए प्रयोग करता है तो वह है हिंदी और उसके नाना प्रकार। जब भी हिंदी भाषी हिंदी का प्रयोग पारस्परिक संप्रेषण के लिए करते हैं तब हिंदी एक नया ही रूप ले लेती है जो मानक हिंदी से काफी भिन्न व इतर होता है। इस प्रकार की स्थानीय हिंदी वहाँ की संस्कृति एवं अंतर्जातीय संपर्क का प्रतीक होती है। शैलेश मटियानी का उपन्यास 'कबूतरखाना' एवं जगदम्बाप्रसाद दीक्षित का उपन्यास 'मुरदाघर' बंबइया हिंदी के उदाहरण हैं। बंबइया हिंदी पर मराठी भाषा का प्रभाव साफ़ दृष्टिगोचर होता है। हिंदी के शब्दों में 'ह' का लोप एवं शब्द के दूसरे महाप्राण स्वन का अल्पप्राणीकरण मराठी की विशेषता है। अतः पोंचना (पहुँचना), भोत-बोत (बहुत), पेला (पहला), पेनना (पहनना), भूका (भूखा), झूटा (झूठा), धंदा (धंधा), धोका (धोखा) बंबइया हिंदी के उदाहरण हैं। सबसे रोचक भूतकाल क्रिया रूप है जैसे कियेला (किया), देखेला (देखा), पढ़ेला (पढ़ा) आदि। दूसरी

बात, परसर्ग तिर्यक रूप में नहीं प्रयुक्त होते हैं और एक अव्यय की भांति ही प्रयोग में आते हैं। अतः 'खाने का बारे में', 'लैन का बीच में' आदि। इतिवृत्तात्मक रचना मानक हिंदी से भिन्न 'बोल के' के प्रयोग के साथ होती है जैसे 'वो पूछा था तू किधर गयेला बोलके'। इसके अतिरिक्त हजारों नए शब्दों का जन्म हुआ है जो मराठी-गुजराती के करीब हैं। किसी भी बंबइया फिल्म में ऐसे शब्दों को सुना जा सकता है। उदाहरणतया बरोबर (ठीक), लफड़ा (झगड़ा), फोकट (मुफ्त), खलास (ख़त्म), बाई (औरत), बटाटा (आलू), खाली-पीली (बेकार), फोटो निकालना (खींचना), समझ पड़ना (समझ में आना) आदि। सही मायनों में देखा जाए तो सारे शब्द हिंदी शब्दकोश में होने चाहिए जो नहीं होते। (जगन्नाथन : 1981)

दिल्ली की हिंदी

यदि बंबइया हिंदी पर मराठी का प्रभाव है तो दिल्ली की हिंदी पर हरियाणवी एवं पंजाबी का। दिल्ली की हिंदी में /फ/ का लोप हो चुका है और /फ के स्थान /फ़/ का ही प्रयोग होता है। अतः सफल → सफ़ल, फिर → फ़िर, फूल → फ़ूल, फल → फ़ल आदि। मुझे और तुझे के स्थान पर 'मेरे को' अधिक प्रचलित है। और तो और पुरुष सर्वनाम 'आप ' के साथ 'आइए', 'खाए' क्रिया-रूपों का ह्रास हो गया है और 'आप आओ, आप खाओ' - का प्रचलन बढ़ गया है। ये उपवाक्य औपचारिकता और अंतरंगता के बीच की कड़ी है एवं दिल्ली-हिंदी की ही उपज है। इसी तरह पंजाबी के प्रभाव के कारण आदरणीय व्यक्ति के संदर्भ में लिंग की अन्विति भेदक लक्षण नहीं होती। 'मेरे माता जी कल कलकत्ते चले गए' जैसे वाक्य काफ़ी प्रचलित हैं। हरियाणवी के प्रभाववश 'मैंने जाना है', तैने स्कूल देखना है ' जैसे वाक्य प्रचलित हैं। 'मुझको जाना है' के स्थान पर 'मैंने जाना' संभावित भविष्य के प्रयोग हैं।

हैदराबाद की हिंदी

हैदराबादी हिंदी आज पूर्ण रूप से तेलुगु वाक्य विन्यास में ढल चुकी है। निम्नलिखित वाक्य हू-ब-हू तेलुगू वाक्य का अनुवाद लगता है :

1. 'कौन-सा बच्चा इम्तहान में फस्ट आता कि वो-इच बच्चा कू इनाम देते।'
2. 'कल आए सो आदमी का नाम क्या है?'
3. 'आए सो वो वाला आदमी।'

इसके अतिरिक्त जिन शब्दों का अंत व्यंजनों से होता है उन शब्दों के आगे 'आँ' लगाने से वे बहुबचन में परिवर्तित हो जाते हैं। उदाहरणतया : बात : बाताँ, किताब : किताबाँ, औरत : औरताँ, लोग : लोगाँ आदि। हैदराबादी हिंदी में 'ने' का प्रयोग भी बहुत कम दीख पड़ता है। अतः 'मैं काम नको करा'। यही नहीं हैदराबाद की हिंदी की काफ़ी बड़ी शब्द संपदा मानक हिंदी की शब्द संपदा से भिन्न है। उदाहरणतया - कल्ले (गाल), जुट्टू (चोटी), पोट्टी (लड़की), जास्ती (ज्यादा), घट्ट (गाढ़ा), हौं (हाँ) एवं नको (नहीं) आदि इसी शब्द संपदा के उदाहरण हैं। दक्खिन की हिंदी पर कुछ शोध हुआ है (अरोडा : 1986, रूथ स्मिथ : 1981) पर अभी बहुत बाकी है।

देश की सीमाओं से बाहर हिंदी

यह सुनने में भले ही अजीब लगे कि हिंदी देश में ही नहीं वरन् देश के बाहर भी बोली, सुनी, पढ़ी और लिखी जाती है। अठारहवीं सदी से भारतीय मज़दूरों और व्यावसायिकों के रूप में त्रिनिदाद, फिजी, गयाना, मॉरीशस, सूरीनाम एवं दक्षिण अफ्रीका जाते रहे और वहाँ बसते रहे। अपनी अस्मिता बनाए रखने की प्रक्रिया में उन्होंने हिंदी अथवा उसकी कोई न कोई क्षेत्रीय बोली न केवल जनसंपर्क की भाषा के रूप में जीवित रखी वरन् आपस में जोड़ने वाली एक सांस्कृतिक कड़ी और भावनात्मक एकता के मूल आधार के रूप में भी हिंदी जीवित रखी। आज ये प्रवासी भारतीय हिंदी या भोजपुरी का प्रयोग करते हैं। संप्रति प्रवासी भरतीयों की संख्या मॉरीशस में 64% गयाना में 55% फीजी में 50% सूरीनाम में

)% और ट्रिनीडाड में 41% है। ब्रिटेन में हिंदी भाषियों की अधिकता के कारण 'हिंदी' ब सर्वाधिक बोलने वालों की संख्या में द्वितीय स्थान पर आ गई है। यही नहीं इन देशों में माचार पत्र, मासिक पत्रिकाएँ एवं साहित्यिक कृतियाँ भी नियमित रूप से प्रकाशित होती इस संदर्भ में यह बताना आवश्यक है कि प्रवासी भारतीयों का अपना संप्रेषण-तंत्र है जो लोगों से भिन्न है। ये भी हमारी तरह दुभाषिए हैं पर जन-व्यवहार के लिए क्रियोल का हारा लेते हैं और कार्यालयों में भिन्न राजभाषा का। उदाहरण के लिए मॉरीशस में फ्रेंच धारित क्रियोल (जो कि जनभाषा है) और फ्रेंच तथा अंग्रेज़ी (राजभाषाएँ) का व्यवहार ता है। हाँ, यह बात अवश्य ध्यान देने योग्य है कि सामाजिक-सांस्कृतिक अनुष्ठानों की षा मानक हिंदी ही है, विशेषकर पत्र-पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों की। मॉरीशस में सबसे हले 1909 में 'हिंदुस्तानी' और 'मारीशस आर्य' नामक दो पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ आ था। इसी प्रकार अन्य देशों में भी कई पत्र-पत्रिकाएँ हिंदी में निकलीं और अब भी काशित हो रही हैं। संप्रति मारीशस, फीजी, सूरीनाम, ट्रिनीडाड, गयाना, म्यांमार (बर्मा), पाल, जापान, चीन, अमरीका, इंग्लैंड, कनाडा, नार्वे जैसे देशों से हिंदी में पत्रिकाएँ काली जा रही हैं।

नके अतिरिक्त आज जापान, अमरीका, इंग्लैंड एवं अन्य योरोपीय देशों में हिंदी भाषा देशी भाषा' के रूप में कई विश्वविद्यालयों के शिक्षण और शोध का विषय है। यही कारण कि पिछले तीस वर्षों में जर्मन-हिंदी, फ्रेंच-हिंदी, चैक-हिंदी, रूसी-हिंदी, हिंदी-डच, ग्रेज़ी-हिंदी कोशों की बाढ़-सी आ गयी है। इन्हीं विश्वविद्यालयों में कहीं-कहीं हिंदी की मासिक एवं वार्षिक पत्रिकाएँ भी निकलती हैं। अंततः एक और बात जो हमारा ध्यान कर्षित करती है और वह है हिंदी का योगदान बंगलादेश, श्रीलंका, इन्डोनेशिया, लेशिया, कम्बोडिया आदि देशों के लिए जहाँ हिंदी सामाजिक-सांस्कृतिक प्रेरणा प्रदान रती है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत की अनेकानेक भाषाओं में हिंदी (और उसकी लियाँ) ही एक भाषा है जो अधिक मात्रा में देश की सीमा के बाहर प्रयुक्त होती है। यही हीं वरन् हिंदी प्रवासियों के सांस्कृतिक और सामाजिक अस्मिता की पहचान भी है एवं नकी संस्कृति की अभिव्यंजना भी।

.7 सारांश

माजभाषाविज्ञान समाज में भाषा की स्थिति, सामाजिक संगठन की एक व्यवस्था के रूप भाषा के प्रकार्य तथा भाषा की संरचना के माध्यम से सामाजिक संगठन की अभिव्यक्ति ादि का अध्ययन करता है। व्यापक अर्थ में देश के लिए भाषा की नीति तय करना, देश ी भाषाओं के विकास के लिए योजनाबद्ध कार्यक्रम तैयार करना आदि भी माजभाषाविज्ञान के अंतर्गत आते हैं।

ाषा वैविध्य (याने भाषा के विभिन्न रूपों की अवस्थिति) समाजभाषाविज्ञान का प्रमुख बिंदु । हम आज यह जानते हैं कि 'भाषा' के उपलब्ध सभी प्रयोगों में से हर व्यक्ति अपनी ाजी भाषा का निर्माण करता है जिसे व्यक्तिबोली कहा जाता है। व्यक्तिबोली के भी संदर्भ अनुसार विविध रूप हैं। वह कार्य क्षेत्र के अनुसार विभिन्न प्रयुक्तियों का उपयोग करता और संदर्भ के अनुसार विविध शैलियों का प्रयोग करता है। सामाजिक स्तर पर हम त्रीय बोलियों और सामाजिक शैलियों का अवलोकन कर सकते हैं। भाषा वास्तव में एक र्त, एकीकृत व्यवस्था नहीं है, इन्हीं सब व्यक्तिबोलियों, प्रयुक्तियों, बोलियों और शैलियों ा सर्वसमावेशी रूप है।

ाधुनिक युग बहुभाषिकता का युग है। हर समाज में हम कई भाषाओं का प्रयोग देख कते हैं। समाज में इन भाषाओं के परस्पर संबंध की भी कई विशेषताएँ हैं। ये भाषाएँ एक सरे को प्रभावित करती हैं। कहीं कोई भाषा हावी हो जाती है और कमज़ोर भाषा क्षरण

की स्थिति में पहुँचती है। तब उस भाषा को बोलने वाले उसके अनुरक्षण के उपाय करने लगते हैं। बहुभाषिकता की स्थिति में अक्सर तीसरी भाषा का निर्माण हो जाता है। पिजिन दो भाषाओं के योग से बना अस्थायी रूप है, कामचलाऊ संप्रेषण माध्यम है। अगर इस तरह का संकर रूप स्थायित्व और सामाजिक स्वीकृति प्राप्त कर लें तो वह क्रियोल का दर्जा प्राप्त कर लेती है।

व्यक्ति के स्तर पर दो या अधिक भाषाओं में काम करने की स्थिति को द्विभाषिकता (Bilingualism) की संज्ञा दी जाती है। व्यक्ति इनमें किसी एक भाषा पर अधिकर रख सकता है या दोनों पर समान अधिकार। यह बात व्यवहार दोनों भाषाओं के उसके प्रकार्यों से निश्चित होती है। द्विभाषिकता की स्थिति में यह नहीं होता कि वह दोनों भाषाओं को असंपृक्त रख सके। परस्पर प्रभाव के कारण वह दोनों भाषाओं का बारी-बारी से प्रयोग कर सकता है (कोड मिश्रण की स्थिति) या उसकी एक भाषा में दूसरी भाषा के तत्व आ मिलते हैं (कोड अंतरण की स्थिति)।

इस इकाई में यह भी चर्चा की गई है कि सामाजिक संगठन भाषिक रचना को कैसे प्रभावित करता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि भाषिक प्रयोग सामाजिक संगठन पर प्रकाश डालते हैं। उदाहरण के लिए हिंदी भाँजा, भतीजा, जेठ, देवर, साला, साढ़ू आदि अनेक रिश्ते के शब्द हैं जबकि अंग्रेज़ी में इतने शब्द नहीं हैं। भारतीय पारिवारिक संगठन इसका कारण हो सकता है। इसी तरह संबोधन के शब्द सामाजिक स्तर भेद का संकेत करते हैं।

इकाई के अंत में हिंदी के भाषा वैविध्य की चर्चा की गई है। इस संदर्भ में विस्तृत चर्चा इकाई 7 में की जाएगी।

6.9 अभ्यास प्रश्न

1. **निबंधात्मक प्रश्न**
   (1) समाजभाषाविज्ञान भाषा के कितने पहलुओं का अध्ययन करता है?
   (2) बहुभाषिकता और द्विभाषिकता की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
   (3) भाषा वैविध्य की संकल्पना का हिंदी के संदर्भ में विवेचन कीजिए।

2. **टिप्पणियाँ**
   (1) कोड अंतरण और कोड मिश्रण
   (2) भाषा में क्षरण अनुरक्षण और संघर्ष की स्थिति
   (3) नाते-रिश्ते के शब्द
   (4) भाषा और बोली का संबंध
   (5) व्यक्ति बोली

काई 7 हिंदी भाषा क्षेत्र

काई की रूपरेखा

उद्देश्य
प्रस्तावना
हिंदी भाषा और उसका क्षेत्र
हिंदी की उपभाषाएँ ओर बोलियाँ
7.3.1 वर्गीकरण
7.3.2 हिंदी और बोलियों का पारस्परिक संबंध
हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी
7.4.1 हिंदी-उर्दू
7.4.2 हिंदी-हिंदुस्तानी
हिंदी के विविध संदर्भ
7.5.1 राष्ट्रीय संदर्भ
7.5.2 संपर्क भाषा
7.5.3 हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय महत्व
सारांश
अभ्यास प्रश्न

0 उद्देश्य

इकाई में आप 'हिंदी भाषा' से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण बातें, उसका क्षेत्र, बोलियाँ-भाषाएँ तथा विविध संदर्भ पढ़ सकेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- 'हिंदी भाषा' किसे कहते हैं और उसका क्या क्षेत्र है, यह जान सकेंगे;
- हिंदी भाषा की बोलियों/उपभाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे;
- हिंदी का उर्दू तथा हिंदुस्तानी से क्या संबंध है, इसका विवरण दे सकेंगे;
- राष्ट्रीय संदर्भ में हिंदी की क्या-क्या भूमिकाएँ हैं, यह समझ सकेंगे;
- राजभाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की स्थिति स्पष्ट रूप से समझा सकेंगे;
- यह जान सकेंगे कि भारत में संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की क्या स्थिति है; और
- वर्तमान में हिंदी की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति क्या बन चुकी है, यह स्पष्ट कर सकेंगे।

1 प्रस्तावना

से पहले आप इस खंड में भारतीय भाषा क्षेत्र से परिचय प्राप्त कर चुके हैं। इस इकाई हम **हिंदी भाषा** के बारे में चर्चा कर रहे हैं जो भारतवर्ष की अनेक भाषाओं में से एक धिक महत्वपूर्ण भाषा है। इसका क्षेत्र भी बड़ा विस्तृत है जिसमें अनेक लियाँ/उपभाषाएँ हैं। कह सकते हैं कि अनेक बोलियों/उपभाषाओं का समूह **हिंदी भाषा** है। भारत में संपर्क भाषा के रूप में पिछली अनेक शताब्दियों से विकसित हुई है। ट्रभाषा' के रूप में भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के साथ जुड़ी रही और स्वतंत्रता प्राप्ति बाद भारत के संविधान में इसको राजभाषा का पद प्राप्त हुआ है। आज विश्व एक इकाई गया है। प्रवासी भारतीय द्वारा पहले से अनेक देशों में हिंदी पढ़ी/समझी जाती थी पर महत्व के कारण विश्व के शताधिक विश्वविद्यालयों/संस्थानों में हिंदी का पठन-पाठन या जा रहा है। इस तरह इस इकाई में आपको हिंदी भाषा का क्षेत्र, उसकी लियों/उपभाषाओं के बारे में जानकारी मिलेगी साथ ही, उसके राष्ट्रभाषा, राजभाषा, र्क भाषा तथा अंतर्राष्ट्रीय रूपों का परिचय मिलेगा।

7.2 हिंदी भाषा और उसका क्षेत्र

हिंदी का प्रचलन शताब्दियों से चला आ रहा है। संस्कृत शब्द 'सिंधु' से संबद्ध किया जाता है। 'सिंधु' नदी का कोई-न-कोई नाम उस पार के व्यक्ति प्रयोग में लाते होंगे। 'हिंदी' का मूल अर्थ 'हिंदी का' या 'भारतीय' हुआ। विशेषण के अतिरिक्त 'हिंदी' शब्द संज्ञा रूप में प्रयोग भी अनेक भिन्न अर्थों में मिलता है। 'हिंदी' में ईरानी का विशेषण 'ईक' जुड़कर 'हिंदीक' व्यवहार में आया जो ग्रीक में 'इंदिके' व 'लैटिन में 'इंदिओ' हुआ। पंचतत्र का अनुवाद जब फारसी में हुआ तो उसे 'जबाने हिंदी' से किया हुआ बताया गया। भाषा के अर्थ में सर्वप्रथम प्रयोग तैमूर के पोते के समय (1424 ई.) में लिखे ग्रंथ 'जफ़रनामा' में किया गया। भारत में तो मात्र 'भाषा' का ही प्रयोग किया गया।

हिंदी भाषा क्षेत्र

शब्दार्थ की दृष्टि से 'हिंदी' का अर्थ 'हिंद का' होते हुए भी इसका प्रयोग उत्तर भारत के मध्य में बोली जाने वाली भाषा के लिए होता है। हिंदी भारत के सबसे अधिक लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। व्यवहार में हिंदी उस बड़े भू-भाग की भाषा मानी जाती है जिसकी सीमा पश्चिम में जेसलमेर, उत्तर-पश्चिम में अंबाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल के पूर्वी छोर तक के पहाड़ी प्रदेश, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण-पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में खंडवा तक पहुँचती है। इस विशाल भू-भाग के निवासियों के साहित्य, पत्र-पत्रिका, शिक्षा-दीक्षा, आपस में वार्तालाप आदि की भाषा 'हिंदी' है, जिसमें स्थानीय बोलियों की छाया ज़रूर मिली रहती है। शिष्ट बोलचाल के अतिरिक्त स्कूलों-विद्यालयों में शिक्षा की भाषा एकमात्र खड़ी बोली है। यही भाषा 'हिंदी' है यद्यपि कुछ स्थानों पर प्रारंभिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा का माध्यम स्थानीय बोलियाँ/उपभाषाएँ भी हैं। इस कारण इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। आज जिसे हम 'हिंदी भाषा का क्षेत्र' कहते हैं, उसमें अनेक प्रमुख राज्य आते हैं :

प्रमुख राज्य हैं : उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल बिहार, झारखंड मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ राजस्थान, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश और दिल्ली।
संघशासित राज्य : चंडीगढ़ और अंडमान-निकोबार द्वीप समूह।

जिसे हम 'हिंदी क्षेत्र' कहते हैं, उसमें सामान्य जनता इस क्षेत्र में बोली जाने वाली बोलियों का व्यवहार करती है। राजस्थान में बोली जाने वाली उपभाषाओं के समूह को 'राजस्थानी' कहते हैं जिसमें मारवाड़ी, मेवाड़ी, जयपुरी, मालवी, हाड़ौती आदि बोलियाँ हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश व बिहार में बोली जाने वाली उपभाषाओं का समूह 'बिहारी' है जिसमें भोजपुरी, मगही, मैथिली आदि समाहित होती हैं। इसी प्रकार उत्तर में पहाड़ी प्रदेशों की बोलियों/उपभाषाओं के समूह को 'पहाड़ी' कहते हैं जिसमें पश्चिम में हिमाचल प्रदेश की बोलियाँ, मध्य में उत्तर प्रदेश की गढ़वाली-कुमाऊँनी तथा पूर्व में नेपाली है। 'नेपाली' पृथक स्वतंत्र राष्ट्र नेपाल की भाषा तो है ही, भारतवर्ष में भी उत्तरी बंगाल, सिक्किम, नेपाल की तराई प्रदेश आदि में बोली जाने के कारण अब संविधान में अष्टम अनुसूची में मान्यता प्राप्त कर चुकी है।

उक्त तीनों समूहों के मध्य जो क्षेत्र है, वह भौगोलिक दृष्टि से दो भागों में विभाजित है :
पश्चिमी हिंदी : खड़ी बोली, ब्रज, कन्नौजी, बुंदेली, बांगरू इन पाँच प्रमुख बोलियों का समूह।

पूर्वी हिंदी : अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, इन तीन बोलियों का समूह।

'हिंदी भाषा' का क्षेत्र केवल हिंदी भाषी क्षेत्रों तक सीमित नहीं है। भारत के लगभग सभी भागों में यह समझी-बोली जाती है। देश के कुछ भागों में स्थानीय संपर्क के लिए हिंदी भाषा का प्रयोग होता है, जैसे हैदराबाद, बंबई आदि महानगरों में।

7.3 हिंदी की उपभाषाएँ और बोलियाँ

जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है कि अनेक उपभाषाओं तथा बोलियों का समूह 'हिंदी भाषी क्षेत्र' है। सर्वप्रथम केलाग ने हिंदी भाषा की व्याकरण की रचना करते हुए स्पष्ट शब्दों में लिखा :

> 'साहित्यिक हिंदी के अतिरिक्त इस पुस्तक में अपेक्षाकृत कम महत्व की नौ-दस बोलियों के रूप भी दिए गए हैं। मैं यह मानता हूँ कि बोलियों के स्थानीय उपभेदों का समावेश इस पुस्तक में नहीं हो सका, किंतु मुझे विश्वास है कि पूर्व में बंगाली से लेकर पश्चिम में गुजराती तथा सिंधी तक फैली हुई **हिंदी भाषा** की सभी जीवित शैलियों के बारे में बहुत-कुछ जानकारी इस पुस्तक में आ गई है।'

उन्होंने इस व्याकरण में 'स्तरीय हिंदी' के साथ जिन बोलियों/उपभाषाओं के समानांतर रूप प्रस्तुत किए उनके नाम इस प्रकार हैं :

> 'कन्नौजी, ब्रज, मारवाड़ी, मेवाड़ी, गढ़वाली, कुमाऊँनी, नेपाली, पुरानी बैसवाड़ी, अवधी, रिवाई, भोजपुरी, मगधी, मैथिली।'

भारतीय भाषाओं के सर्वेक्षण के आधार पर डॉ. ग्रियर्सन ने और अधिक व्यवस्थित ढंग से इनको प्रस्तुत करते हुए पूर्वी हिंदी और पश्चिमी हिंदी दो खंडों विभाजित किया। 'पूर्वी हिंदी' को महत्व देते हुए पृथक से इसका एक खंड (छह) में विस्तार से दिया। 'पश्चिमी हिंदी' को **केंद्रीय वर्ग** के भाग-प्रथम में रखते हुए इसके अंतर्गत हिंदोस्थानी, बांगरू, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली बोलियों/भाषाओं में विभाजित किया। 'हिंदोस्थानी' ही एक प्रकार से खड़ी बोली है। भाग-2 में राजस्थानी तथा भाग-4 में पहाड़ी-पूर्वी, मध्य पश्चिमी को रखा है। डॉ. सुनीत कुमार चटर्जी ने ग्रियर्सन से भिन्न मत स्थापित किया। उन्होंने मध्यदेशीय में पश्चिमी हिंदी' को स्थापित कर केंद्रबिंदु बनाया।

इस पृष्ठभूमि में डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने सन् 1950 में 'हिंदी की ग्रामीण बोलियाँ' में हिंदी भाषा के दो वर्ग – पश्चिमी तथा पूर्वी उपभाषाएँ समाहित किए हैं। पुस्तक के प्रारंभ में 'परिचय' के अंतर्गत हिंदी भाषा तथा उसकी बोलियों का संक्षिप्त वर्णन दिया है :

> 'खड़ी बोली हिंदी के साहित्यिक रूपांतर – हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी। इसको ही ग्रियर्सन ने 'वर्नाक्यूलर हिंदुस्तानी' नाम दिया है ... जन्म से उर्दू और आधुनिक साहित्यिक हिंदी सगी बहनें हैं। विकसित होने पर इन दोनों में जो अंतर हुआ उसे रूपक में यों कह सकते हैं कि ... साहित्यिक वातावरण, शब्दसमूह तथा लिपि में हिंदी और उर्दू में आकाश-पाताल का भेद है। ... मेरठ बिजनौर की खड़ी बोली उर्दू तथा आधुनिक साहित्यिक हिंदी दोनों ही की मूलाधार है।'

7.3.1 वर्गीकरण

हिंदी की बोलियाँ/उपभाषाओं का मोटा-मोटा वर्गीकरण निम्नलिखित है। लगभग यही वर्गीकरण कुछ हेर-फेर के साथ अन्य भाषाशास्त्रियों को भी मान्य है।

डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने उपवर्ग तथा उपभाषाओं में इस प्रकार विभाजित किया है :

1. पश्चिमी उपभाषा :
1. खड़ी बोली
2. बांगरू
3. ब्रज
4. कन्नौजी
5. बुंदेली

2. **पूर्वी उपभाषा :**
   1. अवधी
   2. बघेली
   3. छत्तीसगढ़ी

3. **बिहारी उपभाषा :**
   1. भोजपुरी
   2. मैथिली
   3. मगही

4. **राजस्थानी उपभाषा :**
   1. मेवाती-अहीरवादी
   2. मालवी
   3. जयपुरी-हाड़ौती
   4. मारवाड़ी-मेवाड़ी

5. **पहाड़ी उपभाषा :** पहाड़ी उपभाषा हिमाचल प्रदेश में शिमला से नेपाल तक फैली हुई है। इसके अंतर्गत तीन प्रधान बोलियाँ हैं :
   पश्चिमी, मध्य तथा पूर्वी

   (क) **पश्चिमी पहाड़ी :** ये बोलियाँ सरहिंद के उत्तर में शिमला से नेपाल तक फैली हुई हैं। आज यही क्षेत्र हिमाचल प्रदेश के नाम से जाना जाता है। यहाँ बोली जाने वाली अनेक उपभाषाओं में से मंडियाली, कुल्लूई, चम्बाई पर शोधकार्य हो चुके हैं।

   (ख) **मध्य पहाड़ी :** दो मुख्य उपरूप हैं :
   1. **कुमाऊँनी :** अल्मोड़ा, नैनीताल, पिथौरागढ़ आदि जनपदों में बोली जाती हैं।
   2. **गढ़वाली :** गढ़वाल प्रदेश – टिहरी, उत्तरकाशी, देहरादून, चमोली आदि जनपदों में बोली जाती हैं।

   (ग) **पूर्वी पहाड़ी :** यही प्रकारांतर से 'नेपाली' है।

खड़ी बोली का केंद्रबिंदु मेरठ, मुजफ्फरनगर, मुरादाबाद, बिजनौर हैं; 'बांगरू' ही अब 'हरियाणवी' है जो हरियाणा राज्य में बोली जाती है; 'कन्नौजी' कन्नौज और कानपुर के चतुर्दिक; 'बुंदेली' बुंदेलखंड; ओरछा, सागर तक; 'अवधी' प्रतापगढ़-पूर्व तथा पश्चिम; 'बैंसवाड़ी' बैसवाड़ा-कानुपर, लखनऊ के मध्य; 'भोजपुरी' पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहार के कई जिलों में; 'मगही' का केंद्रबिंदु गया है; 'मैथिली' दरभंगा के समीपवर्ती क्षेत्र में; 'मारवाड़ी' मारवाड़-बीकानेर, गंगानगर, जोधपुर; 'जयपुरी' जयपुर के समीप शेखावटी प्रदेश में; 'मालवी' झाबुआ तथा इंदौर के समीपवर्ती प्रदेश में, 'हाड़ौती' कोटा के समीप, 'मेवाड़ी' मेवाड़-चित्तौड़-उदयपुर के समीप, 'मेवाती' मेव क्षेत्र में हरियाणा और राजस्थान की सीमा पर बोली जाती है। मध्यप्रदेश के निमाड़ क्षेत्र में बोली जाने वाली 'निमाड़ी' भी महत्वपूर्ण है।

साहित्यिक खड़ी बोली के विविध रूप-उपरूप - उर्दू (क्लिष्ट और साधारण, दिल्ली और लखनऊ), साहित्यिक हिंदी (क्लिष्ट और साधारण), आगरा-देहली की खड़ी बोली, हिंदुस्तानी के निकट, साहित्यिक हिंदुस्तानी आदि स्वीकार किए जाते हैं जिनको अब हिंदी के विविध शैलीगत रूप माना जाने लगा है। हिंदी का उपरूप 'दकिनी' (दक्षिण भारत में) विकसित हुआ जिसका प्रचलन हैदराबाद, मैसूर व केरल में है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने रूस के दक्षिण में बोली जाने वाली बोली – 'ताजुज़्बेकी' को भी हिंदी की नवज्ञात बोली स्वीकार किया है। इसी आधार पर अन्य विद्वानों ने विश्व में अनेक

नों पर प्रवासी भारतीयों द्वारा बोली जाने वाली उपभाषाओं को अब हिंदी की बोली माना डॉ. सतीश ने सुरीनाम में बोली जाने वाली भाषा को 'सरनामी हिंदी' की संज्ञा दी है : अब डॉ. विमलेश कांति वर्मा ने अपनी पुस्तक 'हिंदी और उसकी उपभाषाएँ' (सन्)6 ई.) में फीजी बात (फीजी की बोली) तथा पारया (उज़बेकिस्तान की बोली) को भी । की बोलियों में समाहित किया है। अब हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय महत्व बढ़ता जा रहा है। । दृष्टि से विश्व में बोली जाने वाली प्रवासियों की इन बोली रूपों को हिंदी की बोली ा जाने लगा है। 'मॉरीशस' में भी हिंदी का उपरूप विकसित हो रहा है। डॉ. हरदेव री के मतानुसार, 'बोलियाँ जनता के दिलों तक पहुँचने की सीधी राहें हैं।' इस कारण ही जों के राज्य में पराधीनता में भी बोलियों के अध्ययन को महत्व दिया जाने लगा।

प्रकार हमने देखा कि हिंदी की बोलियों/उपभाषाओं को हिंदी के संकुचित क्षेत्र, विस्तृत के व्यवहार के रूप में तथा अखिल भारतीय तथा अंतर्राष्ट्रीय रूप के संदर्भ में विभाजित ा जा सकता है :

भारतीय–राष्ट्रीय

पश्चिमी खंड ⟵⟶ पूर्वी खंड

पश्चिमी हिंदी | राजस्थानी मारवाड़ी | पहाड़ी | पूर्वी हिंदी | बिहारी

पश्चिमी उपभाषा :
1. खड़ी बोली
2. बांगरू
3. ब्रज
4. कन्नौजी
5. बुंदेली

पूर्वी उपभाषा :
1. अवधी
2. बघेली
3. छत्तीसगढ़ी

बिहारी उपभाषा :
1. भोजपुरी
2. मैथिली
3. मगही

राजस्थानी उपभाषा :
1. मेवाती-अहीरवादी
2. मालवी
3. जयपुरी-हाड़ौती
4. मारवाड़ी-मेवाड़ी

पहाड़ी उपभाषा : पहाड़ी उपभाषा हिमाचल प्रदेश में शिमला से नेपाल तक फैली हुई है। इसके अंतर्गत तीन प्रधान बोलियाँ हैं :

पश्चिमी, मध्य तथा पूर्वी

.2 हिंदी और बोलियों का पारस्परिक संबंध

की जनपदीय बोलियों का पर्याप्त महत्व है क्योंकि मानक हिंदी की जीवनी शक्ति इन ायों से ही प्राप्त होती है। जनपदीय भाषाओं के महत्व का आकलन प्राच्यविद डॉ. देव शरण अग्रवाल तथा भाषाविद डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव ने किया है :

डॉ. श्रीवास्तव के अनुसार 'अगर साहित्य सामाजिक चित्तवृत्तियों की मूल रागात्मक अभिव्यक्ति है तो इसमें संदेह नहीं कि उसके लिए मातृभाषा ही

सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम भाषा का काम कर सकती है। यही वह माटी है जिससे धरती की महक आती है और जिससे अपनी वाग्देवी की मूर्ति सहज और साकार ढंग से गढ़ी जा सकती है। ... इन जनपदों में रहने वाले व्यक्तियों की चेतना की आँख जिस भाषा में पहली बार खुलती है, वे भले ही जनपदीय बोलियाँ होती हैं पर जहाँ तक सामाजिक अस्मिता, साहित्यिक परंपरा के दबाव और सांस्कृतिक मानसिकता का प्रश्न है, वे उनको अपनी महाजाति हिंदी में ही पाते हैं।'

(समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-सितम्बर, 1991)

सुप्रसिद्ध समाजभाषावैज्ञानिक गम्पर्ज़ ने हिंदी क्षेत्र का व्यापक दौरा किया और पाया कि हिंदी की बोलियों का परस्पर संबंध बहुत प्रगाढ़ है। उन्होंने स्पष्ट किया :

'हिंदी क्षेत्र में भाषा-भेद के तीन स्तर हैं जो सामाजिक प्रयोजनों में नियमित हैं। निम्न स्तर पर स्थानीय या ग्रामीण बोली का प्रयोग होता है। ये सभी बोलियाँ एक शृंखला के ऊपर उपभाषाएँ हैं। भाषा-भेद की दृष्टि से दूसरा स्तर है। यदि कुछ ग्रामीण बोलियों का कोई एक विचार-विनिमय का केंद्र है तो वहाँ इस उपभाषा का प्रयोग किया जाता है। इसी उपभाषा के रूप में अपने-अपने उपभाषाई क्षेत्रों में छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, ब्रज या अवधी का मानक रूप निर्धारित होता है। परंतु वे मानक रूप अपने उपभाषाई क्षेत्रों से बाहर नहीं आते। इन क्षेत्रों से बाहर आने की सारी केंद्रीय शक्ति उच्च स्तर की भाषा यानी मानक हिंदी में है।'

यह भाषा-भेद जिस प्रकार सीमावर्ती गाँवों की बोलियों/दो बोलियों की सीमारेखा (ब्रज-खड़ी बोली) पर दिखाई देता है उसी प्रकार से समाज में विभिन्न स्तरों पर भी दिखाई देता है। घर में जिस बोली से संप्रेषण होता है, समाज के प्रत्येक स्तर पर भिन्न होता है। ब्रजवासी जब बुंदेली क्षेत्र में जाता है तो बोधगम्यता की कोई समस्या नहीं होती पर जब वह भोजपुरी भाषा भाषी से संपर्क स्थापित करता है तो मानक भाषा का सहारा लेना होता है चाहे उसकी भाषा में स्थानीय भाषा का पुट विद्यमान रहे। इस प्रकार बोधगम्यता के विभिन्न स्तर होते हैं।

किसी एक भाषा की विभिन्न बोलियों में पारस्परिक बोधगम्यता रहती है। इसी बात को इस प्रकार कहा जा सकता है कि यदि कुछ बोलियों में पारस्परिक बोधगम्यता विद्यमान है तो वे बोलियाँ निश्चित रूप से किसी एक भाषा से संबंधित होंगी। परस्पर बोधगम्यता के लिए कुछ तत्व आवश्यक हैं :

क. व्याकरणिक गठन में कुछ-न-कुछ समानता।
ख जातीय समानता।
ग. विकास की दृष्टि से ऐतिहासिक समानता।

उपर्युक्त तत्वों में जितनी अधिक समानता होगी परस्पर बोधगम्यता उतनी ही अधिक होगी। हिंदी की सभी उपभाषाएँ/बोलियाँ एक दूसरे से उतनी गुंथी हुई हैं कि कभी-कभी यह पहचानना कि दो उच्चरित रूप अलग बोलियाँ हैं या नहीं संभव नहीं होता। 'रातचरितमानस' इसका ज्वलंत उदाहरण है जो मूलतः 'अवधि' में लिखा गया है जिसमें ब्रजभाषा का पुट भी पर्याप्त है। यही कारण है कि 'रामचरितमानस' सर्वाधिक लोकप्रिय है। इसी को उन्नीसवीं शताब्दी के वैयाकरण केलाग ने स्पष्ट शब्दों में कहा :

'अब तक हिंदी के सभी वैयाकरणों ने उस पूरबी हिंदी की समानरूप से उपेक्षा की है, जिसका प्रतिनिधित्व तुलसीदास की रामायण करती है। यह अलग बात है कि उसमें पछाँह की बोली का भी मिश्रण हुआ है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि विश्वव्यापी लोकप्रियता और जनता पर पड़े प्रभाव की दृष्टि से तुलसीदास के साथ कबीर....।'

[व्याकरण (हिंदी अनुवाद) पृष्ठ 24]

ादिकाल के 'पृथ्वीराज रासो' के भाषा के अध्येता कभी अपभ्रंश की ओर कभी राजस्थानी डिंगल), तो कभी ब्रजभाषा (पिंगल) की ओर जाते हैं। अंततः अनेक भाषाओं के मिश्रण षटभाषा) के पक्ष में चल देते हैं। यही समस्या कबीर के अध्येताओं के सामने रही। अंततः कबीर की भाषा को 'पचमेली' या 'सधुक्कड़ी' कह दिया गया। यही हिंदी की उपभाषाओं/बोलियों के मध्य पारस्परिक बोधगम्यता को सिद्ध करना है।

हिंदी और उसकी बोलियों के पारस्परिक संबंध को दो दशक पूर्व मैंने इस प्रकार रेखांकित किया :

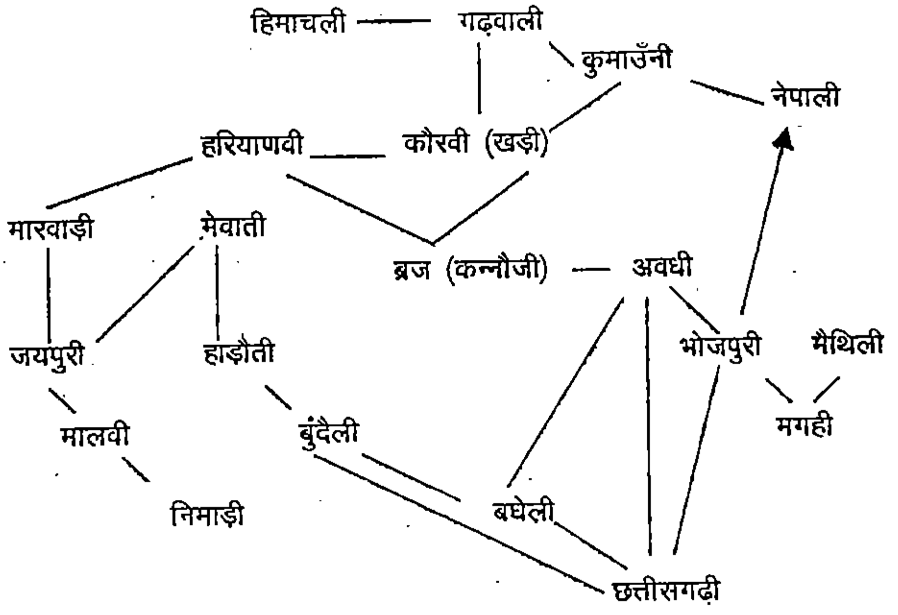

7.4 हिंदी, उर्दू और हिंदुस्तानी

जैसा स्पष्ट किया जा चुका है हिंदी भाषा के कई शैलीगत रूप प्रचलन में आ गए और उनका विकास होता गया। डॉ. ग्रियर्सन और डॉ. धीरेंद्र वर्मा द्वारा दिए गए उपरूपों की चर्चा की जा चुकी है। डॉ. वर्मा ने खड़ी बोली हिंदी के साहित्यिक रूपांतर में 'हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी' का परिगणन किया है। उन्होंने माना है कि जन्म से उर्दू और आधुनिक साहित्यिक हिंदी सगी बहनें हैं। इसको ही ग्रियर्सन ने 'वर्नाक्यूलर हिंदुस्तानी' की संज्ञा दी है। उन्होंने 'हिंदुस्तानी' के अंतर्गत उर्दू, दक्खिनी तथा वर्नाक्यूलर हिंदुस्तानी सम्मिलित की है। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इसमें साहित्यिक हिंदोस्तानी, ठेठ हिंदोस्तानी, लखनऊ की तीन प्रकार की उर्दू, दिल्ली की दो प्रकार की उर्दू, बनारस की साहित्यिक हिंदी, संयुक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश), पंजाब, मध्यप्रांत आदि की हिंदोस्तानी, पूर्वी भारत की हिंदोस्तानी, गुजरात की हिंदोस्तानी व कच्छ की हिंदोस्तानी, दक्खिनी-बंबई, मद्रास, बरार तथा वर्नाक्यूलर हिंदोस्तानी – मेरठ, मुज़फ्फरपुर, पश्चिमी रुहेलखंड, बिजनौर, अंबाला की बोलियाँ सम्मिलित हैं। आज से एक शताब्दी पूर्व जब डॉ. ग्रियर्सन को इतने अधिक विविध रूप दिखाई दिए तो अब संचार माध्यमों की क्रांति – आकाशवाणी, फिल्म तथा दूरदर्शन तथा अनेक चैनलों के विस्फोट के बाद इनमें कितनी अधिक बढ़ोत्तरी हुई होगी, मात्र कल्पना की जा सकती है।

7.4.1 हिंदी-उर्दू

आधुनिक हिंदी में तो यही स्वीकार किया जाता है कि खड़ी बोली का ही एक साहित्यिक रूप हिंदी है तो दूसरा उर्दू। हिंदी से जुड़े भाषाविद् उर्दू को हिंदी की एक शैली मानते हैं। यह मानना भी सर्वथा असत्य है कि हिंदी हिंदुओं की भाषा है और उर्दू मुसलमानों की। उर्दू

को जितना हिंदुओं ने अपनाया और समृद्ध किया उतना अन्य धर्मावलम्बियों ने नहीं। इसी प्रकार हिंदी को समृद्ध कने में खुसरो से लेकर आज तक हुए साहित्यकारों की लंबी सूची है। दूरदर्शन में दिखाए गए 'महाभारत' के संवादों के लेखक राही मासूम रज़ा आज अमर हैं।

उर्दू में जो भी थोड़ी भिन्नता है उसमें कुछ विशिष्ट ध्वनियाँ, अरबी-फारसी से प्राप्त शब्दावली और कुछ व्याकरणिक रूप हैं पर सामान्यतः व्याकरणिक ढाँचा एक है। किसी भी भाषा को चार आयामों में देखा जाता है – व्याकरण, उच्चारण, शब्दकोश और लिपि। लिपि की भिन्नता से दो भाषाएँ नहीं बन जातीं। समान लिपि से दो भाषाएँ एक नहीं हो जातीं अन्यथा मराठी-हिंदी एक हो जातीं। शब्दकोश की दृष्टि से अंग्रेज़ी में जितनी शब्दावली दूसरी भाषाओं की रचपच गई है, उतनी किसी अन्य भाषा में नहीं। ध्वनि-उच्चारण में मात्र पाँच विशिष्ट ध्वनियाँ – क़, ख़, ग़, ज़ तथा फ़ उर्दू में हैं जिनमें से ज़ और फ़ (अंग्रेजी के कारण भी) अब हिंदी में गृहीत कर ली गई हैं। किसी भी भाषा की बोलियों में जितना अंतर होता है उससे कहीं कम हिंदी-उर्दू में है।

हिंदी-उर्दू एक ही भाषा है और हिंदी में लिखने वाले तुर्क और मुसलमान दोनों ही हैं। बोलचाल की खड़ीबोली का रूप मुसलमानों के आगमन से बहुत पहले विद्यमान था। यही हिंदी का पुराना रूप (पुरानी हिंदी) हिंदी-उर्दू का मूलाधार बनी। प्रो. मौलवी वहीदुद्दीन साहब 'सलीम' ने कहा है :

> "हिंदी को हम अपनी ज़बान के लिए उमुल्लिसान (भाषा की जननी) और हमूलाए-अव्वल (मूल तत्व) कह सकते हैं। इसके बगैर हमारी ज़बान की कोई हस्ती नहीं है।"

> "हिंदी साहित्य के इतिहास में मुस्लिम साहित्यकारों का महत्व हिंदुओं से कम नहीं है। ... यही आंदोलन जब खड़ी बोली के आधार पर विकसित हुआ, तो उसमें भी हिंदू और मुसलमान दोनों मिलकर प्रयत्नशील हुए। इस भाषा के पास पूर्व साहित्यों की निधि तथा फ़ारसी, तुर्की, अरबी शब्दों एवं साहित्यों की परंपरा थी। यह भाषी कभी 'हिंदवी', कभी 'हिंदुई', कभी 'हिंदी', कभी रेख़्ता', कभी 'हिंदुस्तानी' आदि कहलाती रही। बहुत समय बाद इसी भाषा का नाम उर्दू प्रचलित हुआ। इसके साहित्यकारों में हिंदू-मुसलमान दोनों बड़ी संख्या में मिलते हैं।" (महमूद शीरानी : पंजाब में उर्दू सम्मेलन, अमृत महोत्सव स्मारिका, पृष्ठ 430)

वस्तुतः **हिंदी-उर्दू** एक ही भाषा है जिसे पहले उर्दू कहा गया वह वास्तव में हिंदी ही है और हिंदी में लिखने वाले तुर्क और मुसलमान दोनों ही हैं। उक्त विवरण यथार्थ होते हुए भी यह स्मरण रखना चाहिए कि अब भारत के संविधान की अष्टम अनुसूची में जो अठारह भाषाएँ स्वीकृत हैं उनमें हिंदी के साथ उर्दू भी है। साथ ही यह भाषा (उर्दू) जम्मू-कश्मीर राज्य की प्रथम राजभाषा है और आंध्र प्रदेश में द्वितीय राजभाषा के रूप में स्वीकृत है। कई हिंदी भाषा-भाषी राज्य भी उर्दू को द्वितीय राजभाषा के रूप में मान्यता प्रदान कर चुके हैं। ऐसी स्थिति में संवैधानिक मान्यता मिलने के कारण अन्य भारतीय भाषाओं के साथ इसका और उर्दू का सह-अस्तित्व है जिसको नकारा नहीं जा सकता। भारत के पड़ोसी देश पाकिस्तान की राजभाषा होने के कारण इसकी अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर स्वीकृति है। कई राज्यों में उर्दू अकादमी इसके समुचित विकास की ओर ध्यान दे रही है। उर्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के बाद इस भाषा का विकास भी होगा और उसमें क्षमता भी बढ़ेगी। ब्रिटिश शासन ने अपनी नीति से चाहे उर्दू-हिंदी में विभाजन बनावटी किया हो पर अब यह यथार्थ है कि उर्दू का विकास भी हिंदी के साथ-साथ भविष्य में होगा। दोनों भाषाओं में निष्णात साहित्यकार प्रेमचंद का कथन भी इस दिशा का संकेत करता है :

> "हिंदी-उर्दू का भंडार दोनो जातियों के परिश्रम का फल है। अपनी-अपनी जगह भाषा की उन दोनों शाखाओं का विशेष महत्व है। दोनों ही ने अपने-अपने तौर पर

यथेष्ट उन्नति की है। दोनों ही के साहित्य भंडार में बहुमूल्य रत्न संचित हो गए हैं और हो रहे हैं।'

(प्रेमचंद के विचार, 1936)

7.4.2 हिंदी-हिंदुस्तानी

हिंदी भाषा का यह नामकरण यूरोप के निवासियों की देन है। सत्रहवीं शताब्दी में जब पुर्तगाली भारत में आए तो उन्होंने हमारे यहाँ की भाषा का नाम अपनी सूझ-बूझ के अनुसार 'इंदोस्तान' रखा। 'हिंदुस्तानी' नाम नया नहीं है, भारत की भाषा के रूप में इसका प्रयोग प्राचीन है :

'मैंने उसे अपने सामने बैठाकर एक व्यक्ति को जिसे हिंदुस्तानी (भाषा) का भलीभांति ज्ञान था, अपनी एक-एक बोल को उसे समझाने का आदेश दिया।

(मुगलकालीन भारत – बाबर, पृ. 145)

हाब्सन-जाब्सन जैसे सुप्रसिद्ध कोश में इसको उर्दू का पर्याय माना गया जिसको एंग्लो इंडियन मूर भी कहते थे। इस पुस्तक में जो उदाहरण दिए गए हैं उनमें से सबसे पहला सन् 1616 ई. का है। सन् 1673 के उदाहरण में इसको अधिक स्पष्ट किया गया है :

कोर्ट की भाषा फ़ारसी थी, जनसाधारण में बोलचाल की भाषा 'इंदोस्तान' थी।

(The language of the court is Persion, that commonly spoken is Indostan)

भाषा का बोलचाल का रूप **हिंदुस्तानी** नाम से जाना गया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने **बुद्धचरित**' महाकाव्य की भूमिका में 'सधुक्कड़ी भाषा' पर टिप्पणी देते हुए अपने विचार व्यक्त किए :

'खड़ी बोली मुसलमानों की भाषा बन चुकी थी। मुसलमान भी साधुओं की प्रतिष्ठा करते थे चाहे वे किसी दीन के हों। इससे खड़ी बोली दोनों धर्मों के अनपढ़ लोगों को साथ लगाने वाले और किसी एक के भी शास्त्रीय पक्ष से संबंध न रखने वाले साधुओं के बड़े काम की हुई जैसे इधर अंग्रेज़ों के काम की 'हिंदुस्तानी' हुई।'

दक्षिण भारत में जब गांधीजी ने हिंदी के प्रचार-प्रसार का काम प्रारंभ किया तो हिंदी के **हिंदुस्तानी**' रूप को ही मान्यता दी। महात्मा गांधी ने '**राष्ट्रभाषा**' के पाँच लक्षण बताए और उनकी व्याख्या भी कही :

- वह भाषा कर्मचारियों के लिए सरल हो।
- उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष के परस्पर धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवहार निभ सकें।
- उस भाषा को देश के अधिकांश निवासी बोलते हों।
- वह भाषा राष्ट्र के लिए सरल हो।
- वह भाषा अल्पस्थायी स्थिति के ऊपर निर्भर न हो।

कांग्रेस की सभा में की जाने वाली कार्यवाही संबंधी भाषा का प्रस्ताव कानपुर अधिवेशन में सन् 1925 में पारित हुआ :

कांग्रेस की यह सभा प्रस्ताव पास करती है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी और वर्किंग कमेटी की कार्रवाई आमतौर पर **हिंदुस्तानी** में चलेगी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी 'हरिजन' में उन्होंने अपने विचार व्यक्त करते हुए स्पष्ट किया :

मुझे इसमें जरा भी शक नहीं कि हिंदुस्तानी सारे हिंदुस्तानियों के अंतर-प्रांतीय व्यवहार के लिए सबसे अच्छी भाषा होगी।' (दिनांक 26.10.1947)

सरल भाषा के रूप में हिंदी ही 'हिंदुस्तानी' के रूप में प्रचलित हुई जिसका प्रचलन समस्त भारतवर्ष में होता गया :

> "हिंदुस्तानी भारतवर्ष की आम भाषा है। हर हिंदी लिखने वाले का उद्देश्य यह होना चाहिए कि मानो वह मुसलमानों के पढ़ने के लिए लिख रहा है, और इसी तरह उर्दू लिखने वाले को यह ख्याल रखना चाहिए मानो वह हिंदुओं के पढ़ने के लिए लिख रहा है। अदीब-साहित्यकार ही कौम का पथ-प्रदर्शक होता है। भाषा के एकीकरण का इसके सिवा कोई दूसरा साधन नहीं। बोलचाल की भाषा गलियों और बाज़ारों में बनती है।"
>
> (प्रेमचंद के विचार, भाग-2)

एक प्रकार से हिंदुस्तानी शब्द का व्यवहार अंग्रेज़ों के राजकाल में शुरू हुआ। यह मिली-जुली भाषा का पर्याय बन गई और जनसाधारण में फैलती गई। एक प्रकार से 'क्लिष्ट हिंदी' और 'क्लिष्ट उर्दू' के मध्य जो सर्वसामान्य में प्रचलित उर्दू हुई वही हिंदुस्तानी है जिसमें अंग्रेज़ी शब्दों का प्रचलन बढ़ता गया :

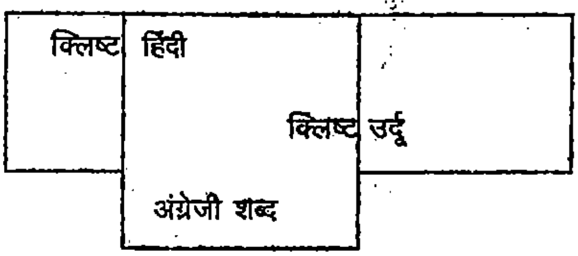

हिंदी-उर्दू का भंडार दोनों जातियों के परिश्रम का फल है। अपनी-अपनी जगह भाषा की उन दोनों शाखाओं का विशेष महत्व है। दोनों ही ने अपने-अपने तौर पर यथेष्ट उन्नति की है। दोनों ही के साहित्य भंडार में बहुमूल्य रत्न संचित हो गए हैं और हो रहे हैं।

(प्रेमचंद के विचार, 1936)

हिंदुस्तानी का प्रचलन इस रूप में हुआ।

इस विचार को ही भाषाविद् डॉ. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव ने इस प्रकार आरेख में प्रस्तुत किया :

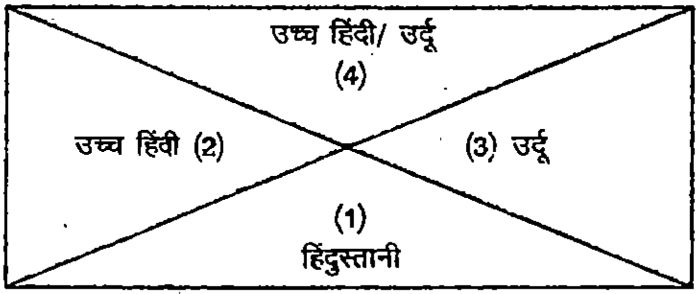

7.5 हिंदी के विविध संदर्भ

भारतवर्ष के मध्यप्रदेश की प्रमुख भाषा हिंदी है जिसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। विस्तृत भू-भाग में फैले होने के कारण इसके अंतर्गत अनेक बोलियाँ/भाषाएँ आती हैं। हिंदी के ऐतिहासिक विकास में अनेक क्षेत्रों के संतों ने महत्वपूर्ण भूमिका निबाही है। हिंदीतर क्षेत्र के विद्वानों/राजनीतिज्ञों के सहयोग से यह संपूर्ण भारत में राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचारित हो गई। हिंदी को राष्ट्रभाषा का पद दिलाने में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का अपूर्व योगदान रहा। दक्षिण में हिंदी को फैलाने में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा (मद्रास) चेन्नई की सराहनीय

ूमिका रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस भाषा को संविधान में राजभाषा के रूप मे ातिष्ठित किया गया। संपूर्ण भारत में संपर्क स्थापित करने में हिंदी ही काम में आती है। भाज अंतर्राष्ट्रीय जगत में इसका महत्व बढ़ता जा रहा है। इन विविध संदर्भों को दो भागों– ाष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय में बाँटा जा सकता है।

'.5.1 राष्ट्रीय संदर्भ

ासके अंतर्गत हिंदी भाषा के निम्नलिखित तीन रूप लिए जा सकते हैं :

- राष्ट्रभाषा
- राजभाषा
- संपर्क भाषा

ाष्ट्रभाषा

ाष्ट्रभाषा का शाब्दिक अर्थ बिल्कुल स्पष्ट है – राष्ट्र की भाषा अर्थात् वह भाषा जिसका ंपूर्ण राष्ट्र में प्रयोग होता है। जब किसी देश की कोई बोली/भाषा आदर्श बनकर **मानक** **ूप** ग्रहण की लेती है तो अधिक महत्वपूर्ण बन जाती है। फलतः पूरे राष्ट्र में तथा अन्य ाषा-भाषी क्षेत्रों में सार्वजनिक कामों में उस भाषा का प्रयोग होने लगता है और वही **भाषा** **ाष्ट्रभाषा** के पद पर प्रतिष्ठित हो जाती है।

ाष्ट्रभाषा की आवश्यकता का अनुभव तब विशेष रूप से किया जाने लगता है, तब ष्ट्रीयता के विकास के साथ राष्ट्रभाषा को राष्ट्रीय एकता के प्रतीकों में सम्मिलित कर नया जाता है। भावनात्मक एकता के लिए जब **भाषा** का महत्व प्रतिपादित किया गया है । राष्ट्रभाषा का स्वरूप स्पष्ट हुआ। यही बात हिंदी के संदर्भ में तब सार्थक सिद्ध हुई, जब ंदी अपनी सार्वभौमिकता, व्यापकता, सरलता और सर्वप्रियता के कारण **राष्ट्रभाषा** के रूप उनके द्वारा स्वीकृत की गई जो हिंदी भाषा-भाषी नहीं थे। डॉ. हरदेव बाहरी ने राष्ट्रभाषा ी संकल्पना स्पष्ट करते हुए इसकी तीन संभावनाएँ हैं :

1. कोई एक बोली।
2. अनेक बोलियों का मिश्रण।
3. देश में अनेक बोलियों में से किसी एक में अन्य बोली का मिश्रण।

ष्ट्रभाषा ' के चुनाव में राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीयता, क्षेत्रीय धारा लोकवादी जनतांत्रिक धारा हायक सिद्ध होती है! संप्रभुता की पहचान राष्ट्रीय प्रतीकों के माध्यम से होती है -- ष्ट्रध्वज, राष्ट्रगान, राष्ट्रचिह्न तथा राष्ट्रभाषा स्वाभिमान के प्रतीक हैं। देश की भाषा ही ाभिमान, आत्मविश्वास प्रकट करती है जिसके माध्यम से देश की एकता व अखंडता का ीकात्मक उद्‌घोष होता है। राष्ट्रभाषा के बिना देश की अस्मिता कुंठित हो जाती है, राष्ट्र गा हो जाता है। निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि राष्ट्रभाषा का सीधा संबंध राष्ट्र की स्मिता से है।

रत में मध्यकाल से ही सारे देश के संतों के कारण स्वतः ही हिंदी का प्रचार-प्रसार उनके रेभ्रमण के साथ होता गया। पंजाब के गुरु नानक, उत्तर प्रदेश के कबीर, असम के शंकर ।, महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर, तुकाराम, नामदेव, गुजरात के अखो आदि ने हिंदी के माध्यम से पनी बात आम जनता तक पहुँचाई। संत ज्ञानेश्वर की यह पंक्ति हिंदी का उद्‌घोष करती :

> 'दुनिया तजकर खक लगाई, जाकर बैठा बन माँ।'

त दिशा में सर्वाधिक योगदान महात्मा गांधी का रहा जिन्होंने गुजरात के भड़ौंच नामक ान पर आयोजित गुजरात शिक्षा सम्मेलन के अवसर पर अपने अध्यक्षीय भाषण (बीस क्टूबर 1917 ई.) में स्पष्ट रूप से कहा कि केवल हिंदी ही 'राष्ट्रभाषा' हो सकती है,

हिंदी और उर्दू एक ही है, केवल उनकी शैली में अंतर ही कर चुके हैं। सन् 1918 में जब गांधी जी हिंदी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन के अध्यक्ष हुए तो उन्होंने बड़ी दृढ़ता के साथ हिंदी को राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित करने पर बल दिया। उनके प्रयास से ही हिंदी के प्रचार-प्रसार में बहुत बल आया। सन् 1918 में ही दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना मद्रास में की गई। सन् 1920 में गांधी जी ने मद्रास प्रेसीडेंसी की जनता से अपील की कि वह लोगों द्वारा हिंदी सीखने की राष्ट्रीय आवश्यकता को स्वीकार कर लें।

गांधी जी गुजरात के संत प्राणनाथ से प्रभावित थे जिन्होंने सत्रहवीं शताब्दी में ही उद्घोष कर दिया था :

> "सबको बोधगम्य जानकर हिंदी (हिंदुस्तानी) भाषा सबसे बड़ी है, सबसे अच्छी है, यही सब में व्याप्त है। यही सबको आंतरिक रूप में और बाह्य रूप से मिलाने वाली भाषा है।"

आधुनिक काल में एक ओर ईसाई मिशनरी अपने विचार हिंदी में रख रहे थे तो दूसरी ओर केशवचंद्र सेन और स्वामी दयानंद जैसे सुधारकों ने अपने विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए हिंदी को अपनाया। कलकत्ता हाईकोर्ट के जस्टिस शारदाचरण चित्र द्वारा स्थापित 'एक लिपि विस्तार परिषद्' (सन् 1905) से भारी लिपि को बल मिला। 'देवनागर' पत्र भी उसके लिए प्रकाशित हुआ। देवनागरी लिपि के अपनाने से जहाँ भाषिक सहयोग बढ़ा वहीं भावात्मक एकता स्थापित हुई। जस्टिस सेन ने अपनी बात को बड़े विस्तार से समझाया :

> "सारे भारतवर्ष में एक ही भाषा का व्यवहार करना ही एक मात्र उपाय है। अभी कितनी ही भाषाएँ भारत में प्रचलित हैं। इसी हिंदी को भारतवर्ष की एक मात्र भाषा स्वीकार कर लिया जाए तो सहज ही में यह एकता सम्पन्न हो सकती है।"

बंगाल की नयी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाले सुभाषचंद्र बोस (बाद में नेताजी के नाम से विख्यात) के स्पष्ट विचार थे कि अगर आज हिंदी मान ली गई है तो वह अपनी सरलता, व्यापकता और क्षमता के कारण है। वह किसी प्रांत विशेष की भाषा नहीं बल्कि सारे देश की भाषा हो सकती है। 'वंदेमातरम्' के रचयिता बंकिमचंद्र ने हिंदी भाषा पर बल दिया। इस गान को कवींद्र रवींद्रनाथ टैगोर ने राष्ट्रीय कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में प्रस्तुत किया। उन्होंने भी मुक्तकंठ से कहा कि :

> "हमें उस भाषा को राष्ट्रभाषा ग्रहण करना चाहिए जो देश के सबसे बड़े भूभाग में बोली जाती है और जिसे स्वीकार करने के लिए महात्माजी ने हमसे आग्रह किया अर्थात् हिंदी।"

आगे चलकर राष्ट्रभाषा हिंदी और स्वतंत्रता की लड़ाई पर्याय बन गए और नेतृत्व प्रदान किया राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने। इस अभियान में देश के सभी प्रदेशों के अग्रणी राजनेताओं ने योगदान किया जिनमें से कुछ नाम चिरस्मरणीय बने रहेंगे :

> बाल गंगाधार तिलक, रवींद्रनाथ ठाकुर, विनोबा भावे, काकाकालेकर, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, अनंत शयनम् आयंगार, क्षेत्रेशचंद्र चट्टोपाध्याय, सुनीति कुमार चटर्जी, रंगनाथ रामचंद्र दिवाकर, एनी बेसेंट, सुभाषचंद्र बोस, जवाहरलाल नेहरु, भीमराव अम्बेडकर, सरदार वल्लभ भाई पटेल, लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानंद आदि।

देश के सभी भागों में राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के प्रचार के लिए अनेक संस्थाओं की स्थापना हुई जिनमें मद्रास में स्थापित दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा (अब इसके क्षेत्रीय स्नातकोत्तर केंद्र — हैदराबाद, धारवाड़, एरणाकुलम), वर्धा में स्थापित सभा, केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनन्तपुरम्, हैदराबाद की आंध्र हिंदी प्रचार सभा, कर्नाटक महिला हिंदी सेवा

समिति, बैंगलूर, कर्नाटक प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बेलगाम आदि मुख्य हैं। इसी प्रकार सुदूर उत्तर-पूर्व में हिंदी का व्यापक रूप से प्रसार हुआ।

हिंदीतर भाषा-भाषियों के राष्ट्रीय पुरस्कार समारोह में महामहिम पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा ने अपने बाईस मार्च, 1993 के अभिभाषण में राष्ट्रभाषा को महासागर माना :

> 'मैं विभिन्न भाषाओं को अपने देश की भावना और चेतना की प्रतिनिधि धारा मानता हूँ जो हमारे देश की मूल विचारधारा और राष्ट्रभाषा के महासागर में आकर गिरती हैं और उसे समुद्र बनाती हैं। वे लोग जो मातृभाषा के अतिरिक्त देश की अन्य भाषाओं के लिए काम कर रहे हैं उन्हें मैं रोशनी के चमकीले कण मानता हूँ जो हमारे मन में आशा का प्रकाश पैदा करते हैं जिससे भारत का भविष्य आलोकित होता है।

राजभाषा

राजभाषा का सामान्य अर्थ है – राजकाज की भाषा, राजकीय कार्य चलाने की भाषा। भाषा का वह रूप 'राजभाषा' है जिसके द्वारा रजाकीय चलाने में सुविधा हो। 'राजभाषा' शब्द प्राचीन नहीं है, यह तो 'संविधान' में राजकाज चलाने की भाषा संबंधी अनुच्छेद-343 से 351 तथा अष्टम् अनुसूची के जुड़ जाने से 'राजभाषा' शब्द का प्रयोग किया जाने लगा जो वस्तुतः official language ऑफीशियल लैंग्वेज़ शब्द का अनुवाद मात्र है अन्यथा इससे पूर्व 'राष्ट्रभाषा' शब्द का प्रयोग किया जाता था। काफी समय राजनेताओं को भी यही भ्रम रहा कि हिंदी ही राष्ट्रभाषा पद पर आसीन हो गई है। लेकिन अब स्पष्टतः राष्टभाषा' तथा 'राष्ट्रभाषा' में भेद किया जाता है। 'राजभाषा' प्रशासनिक प्रयोजनों तथा आर्थिक विकास के लिए काम में आती है जबकि 'राष्ट्रभाषा' सामाजिक अस्मिता तथा राष्ट्रीय संप्रभुता को द्योतित करती है।

राजभाषा के रूप में हिंदी अंग्रेज़ी की भाँति प्रशासन के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए प्रयुक्त की जाती है जबकि राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयोग में आने वाली हिंदी सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता की भाषा बनी हुई है।

भारत के संविधान में राजभाषा संबंधी अनुच्छेद मुख्यतः 343 से 351 हैं जिनके पहले अनुच्छेद 120 में भी संसद की भाषा का उल्लेख है। इन अनुच्छेदों में से 343 वें अनुच्छेद में राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हिंदी भाषा का उल्लेख इस प्रकार है :

343 (1) संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।

(2) में पंद्रह वर्ष तक अंग्रेज़ी के चलते रहने का प्रावधान है।

(3) में पंद्रह वर्ष के बाद भी अंग्रेज़ी भाषा के चलते रहने की व्यवस्था है।

अनुच्छेद 344 की विभिन्न धारा-उपधारा व पैरा में राजभाषा 345 से 347 तक 'प्रादेशिक भाषा' का उल्लेख किया गया है। अनुच्छेद 348 से 349 में उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालय की भाषा का विधान है। अनुच्छेद 350 में विशेष अभ्यावेदन की भाषा का प्रावधान है।

अनुच्छेद 351 में 'विशेष निदेश' दिया गया है जिसमें यह बताया गया है कि 'हिंदी भाषा का विकास' किस प्रकार हो :

> "संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का

माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी के और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं के प्रयुक्त रूप शैली और पदों को आत्मगत करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।"

अष्टम अनुसूची

(अनुच्छेद 344 (1) और 351)

1. असमिया, 2. उड़िया, 3. उर्दू, 4. कन्नड़, 5 कश्मीरी, 6. गुजराती, 7. तमिल, 8. तेलुगु, 9. पंजाबी, 10. बंगला, 11. मराठी, 12. मलयालम, 13. संस्कृत, 14. सिंधी, 15. हिंदी, 16. नेपाली, 17. कोंकणी, 18. मणिपुरी।

स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद भारत के संविधान में राजभाषा संबंधित अनुच्छेद अचानक जोड़ दिए गए, ऐसी बात नहीं। मुगलों के शासनकाल में भी देशी रियासतों में से अनेक में प्रशासन की भाषा हिंदी थी और अंग्रेज़ी शासन से पहले ईस्ट इंडिया कंपनी के समय ही इंगलैंड से आने वाले अधिकारियों को प्रशिक्षण देने के लिए सन् 1800 ई. में कलकत्ता में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की गई। कंपनी प्रशासन सरकार की कामकाज की भाषा के प्रति सचेत रही जिसके फलस्वरूप हिंदी पढ़ाने तथा उसकी पाठ्यपुस्तकें तैयार करने के लिए श्री लल्लू जी लाल और सदल मिश्र की नियुक्ति हुई। इस पठन की सुविधा प्राप्त होते ही यह घोषणा तत्काल कर दी गई कि "सन् 1801 के प्रारंभ से ऐसा कोई भी सिविल सर्वेंट किसी विश्वास तथा उत्तरदायित्व के पद पर नियुक्त नहीं किया जाएगा जब तक यह निश्चय न कर लिया जाए कि उसे गवर्नर जनरल द्वारा बनाए गए क़ानूनों, नियमों तथा उन भाषाओं का ज्ञान है जो पद से संबंधित कार्यकलाप के लिए आवश्यक।" जॉन गिलक्राइस्ट के निर्देशन में पर्याप्त सामग्री हिंदी पढ़ाने के लिए तैयार हुई। अभी भी समय-समय पर हिंदी पढ़ाने के आदेश निकाले गए जिनमें से इंडिया आफ़िस, लंदन का दिनांक 12.6.1881 का आदेश महत्वपूर्ण है जिसमें उत्तर-पश्चिमी प्रांत अवध पंजाब जाने वाले अधिकारियों के लिए 'हिंदी' की परीक्षा में उत्तीर्ण होना अनिवार्य कर दिया गया, अन्य राज्यों को जाने वाले अधिकारियों को प्रोत्साहन के लिए इनाम की व्यवस्था की गई। आगे चलकर इसी आदेश का स्पष्टीकरण करते हुए 26 जनवरी 1882 को सिविल सर्विस कमीशन के नाम भेजे गए पत्र में पुनः जोर दिया गया कि 'हिंदुस्तानी' के लिए विशेष पुरस्कार की व्यवस्था की जाए। सन् 1901 की जनगणना की रिपोर्ट के प्रथम खंड में हिंदी के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया कि "हिंदी के पास ऐसा शब्दाकोश और अभिव्यक्ति की सामर्थ्य है जो अंग्रेज़ी से किसी प्रकार कम नहीं है।"

स्वतंत्र भारत का संविधान बनाने के लिए जो कॉन्फ्रेंस हुई और इस अवसर पर (सन् 1928 ई. में) पं. मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में तैयार 'नेहरू रिपोर्ट' प्रस्तुत की गई जिसमें हिंदुस्तानी को सर्वमान्य भाषा के रूप में घोषित किया गया। इस रिपोर्ट को तैयार करने में दो युवकों पं. जवाहर लाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस ने विशेष परिश्रम किया।

भारत के संविधान में जो राजभाषा संबंधी अनुच्छेद 343 से 351 है, उन्हें मुंशी-आयंगर फार्मूले के अनुसार स्वीकार किया गया। उल्लेखनीय है कि ये दोनों महानुभाव अहिंदी क्षेत्र से संबंधित थे।

वर्तमान में राजभाषा के रूप में हिंदी की स्थिति इस प्रकार है :

केंद्र में संघ के प्रयोजनों के लिए छब्बीस जनवरी 1965 से मुख्य भाषा हिंदी और सह भाषा अंग्रेज़ी रहेगी :

क. राज्यों (हिंदी भाषाभाषी राज्यों में जहाँ राजभाषा हिंदी है) — हिंदी

ख. राज्यों (वे राज्य जहाँ हिंदी को द्वितीय भाषा के रूप में माना है)– मात्र-हिंदी (पंजाब-गुजरात-महाराष्ट्र)

ग. राज्यों (वे राज्य जहाँ राजभाषा हिंदी से इतर कोई भाषा है) – अंग्रेज़ी शेष सभी राज्य

समस्त हिंदी भाषा-भाषी राज्यों में राजभाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग किया जाता है साथ ही अंडमान निकोबार द्वीपसमूह में भी।

7.5.2 संपर्क भाषा

भारत जैसे बहुभाषी देश में भौगोलिक एवं सांस्कृतिक एकता ही इसको जोड़े हुए है। इस प्रक्रिया में संचार-प्रक्रिया सक्रिय है। यदि बोधगम्यता को भाषा-बोली के निर्धारण का आधार माना जाए तो संपूर्ण उत्तर भारत की संपर्क भाषा हिंदी ही होगी। जब बंगला भाषी किसी पंजाबी भाषी से बात करना चाहेगा अथवा पंजाबी भाषा-भाषी असमिया भाषी से वार्तालाप करना चाहेगा तो 'हिंदी' संपर्क भाषा के रूप में होगी वह चाहे कितनी ही टूटी-फूटी अथवा व्याकरण की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण हो। सत्रहवीं शताब्दी में **'कुलजम सरूप'** में महामति प्राणनाथ ने स्वीकार किया था कि **'यही (हिंदी-हिंदुस्तानी)** सबको आंतरिक रूप में और बाह्य रूप से मिलाने वाली (संपर्क) भाषा है।'

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरु ने भी माना था कि 'एक राज्य से दूसरे राज्य को पत्र-व्यवहार अथवा बोलचाल के लिए एक ही भाषा अपेक्षित है – वह है हिंदी भाषा। हिंदी भाषा ही उपयुक्त और उचित संपर्क भाषा बन सकती है।'

न्यायमूर्ति शारदाचरण मित्र ने हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के अवसर पर शुभकामनाएँ भेजते हुए पं. मदन मोहन मालवीय को लिखा था :

> 'हिंदी समस्त आर्यावर्त की भाषा है। यद्यपि मैं बंगाली हूँ तथापि इस वृद्धावस्था में मेरे लिए वह गौरव का दिन होगा जिस दिन मैं सारे भारतवासियों के साथ **साधु हिंदी** में वार्तालाप कर सकूँ।'

भारत के प्रत्येक राज्य में भाषा-व्यवहार की व्यवस्था है। कोई प्रदेश एक भाषी है, कोई द्विभाषी और कोई त्रिभाषी। किसी भी देश में एक भाषा संपर्क भाषा के रूप में कार्य करती है। यही स्थिति आज भारत में 'हिंदी भाषा' निभाती है। यही एक ऐसी सशक्त भाषा है जो मात्र समृद्ध तथा संपन्न होने के कारण नहीं वरन् ऐतिहासिकता, भौगोलिक एकता के कारण जनभाषा के रूप में आपसी संपर्क-संसर्ग की भाषा है। भारत की अन्य भाषाओं की ओर इसका उदार, व्यापक तथा समन्वयवादी दृष्टिकोण बना हुआ है।

संविधान के अनुच्छेद 346 में 'एक राज्य और दूसरे के बीच में अथवा राज्य और संघ के बीच संचार के लिए भाषा की व्यवस्था है।' यही **संपर्क भाषा** के प्रयोग की स्थिति बनती है। **राजभाषा नियम 1976** के अनुसार संपर्क भषा की स्थिति इस प्रकार है :

	राज्य	संपर्क भाषा
क.	राज्य (हिंदी भाषा-भाषी राज्य)	हिंदी
ख.	राज्य (पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, चंडीगढ़ जहाँ द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी मान्य है)।	हिंदी
ग.	राज्य (शेष सभी राज्य)	

टिप्पणी : हिंदी में पत्र भेजने पर अंग्रेज़ी अनुवाद भेजना अनिवार्य है।

संपर्क भाषा की आवश्यकता क्यों

क. परस्पर संपर्क बनाए रखने के लिए

ख. 1. संघ से संपर्क बनाए रखने के लिए

2. संघ व राज्य – कोई अन्य भाषा-भाषी

दो भिन्न भाषा-भाषियों के मध्य	**संपर्क भाषा**
पंजाब (पंजाबी) और हिंदी भाषी राज्य	संपर्क भाषा–हिंदी
पंजाब (पंजाबी) और संघ	हिंदी
पंजाब (पंजाबी) और बंगाल	अंग्रेज़ी/हिंदी
अरुणाचल प्रदेश की दो भिन्न आदिवासियों के मध्य	हिंदी
अंडमान-निकोबार की दो भिन्न आदिवासियों के मध्य	हिंदी
अंडमान-निकोबार व संघ के मध्य	हिंदी
हिंदी प्रदेशों की दूरस्थ दो उपभाषाओं के मध्य	हिंदी
मारवाड़ी-भोजपुरी	हिंदी
मारवाड़ी-निमाड़ी	हिंदी
तमिलनाडु–संघ के मध्य	अंग्रेज़ी

'संपर्क भाषा' के दृष्टि से हिंदी भाषा का प्रयोग विविध क्षेत्रों में किया जाता है।

विविध आयाम

	भाषा-व्यवहार	व्यवहार-कर्त्ता	भाषा-हिंदी
1.	जनसंचार	शिक्षित/अर्धशिक्षित	जनसंचार भाषा
2.	प्रशासन	शिक्षित/अर्धशिक्षित कार्मिक जन साधारण	राजभाषा हिंदी
3.	आर्थिक गतिविधि	विभिन्न व्यवसाय/कौशल	प्रयोजनमूलक हिंदी
4.	अंतर्वैयक्तिक संप्रेषण	शिक्षित/अर्धशिक्षित	जनभाषा हिंदी
5.	शिक्षा का माध्यम	शिक्षित वर्ग	हिंदी तकनीकी — अंशतः शास्त्रीय — हिंदी
6.	सामाजिक संस्कृति	शिक्षित वर्ग	सांस्कृतिक भाषा

महामहिम (स्व.) पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह मानते थे कि "हिंदी देश की ऐसी एकमात्र भाषा है जो देश के अधिकतर हिस्सों में बोली और समझी जाती है।"

यही भाषा देश को जोड़ने में कड़ी का काम कर सकती है। अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान, राजनयिक डॉ. स्मेकल मानते हैं कि :

"भारतवासियों से बातें करते हुए **हिंदी निरंतर मेरे साथ रही**, संपर्क भाषा के रूप में।"

7.5.3 हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय महत्व

हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय महत्व के कारण विभिन्न देशों के विद्वान, मनीषी, भाषाविद् हिंदी के अध्ययन-अध्यापन में रुचि लेते रहे। हिंदी का प्रथम व्याकरण भी कई शताब्दी पूर्व उनमें लिया गया जिसका तत्काल लैटिन में अनुवाद हुआ और बाद में अंग्रेज़ी में। अब तो हिंदी विश्व भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है।

प्रवासी भारतीयों के कारण हिंदी पहले से फीजी, मॉरीशस, सूरीनाम और ट्रिनीडाड में प्रतिष्ठित थी। अब तक जो पाँच विश्व हिंदी सम्मेलन हुए हैं उनमें से तीन (दो मॉरीशस में

ौर एक ट्रिनीडाड) विदेशों में संपन्न हुए हैं। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन को नागपुर में द्घाटिन करते हुए श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा था कि "हमारा देश बहुभाषी देश है। हमारे हाँ अनेकता में एकता है। यह एक सर्वभाषा भारती है लेकिन मुझे आशा है कि भारत के ग अधिक से अधिक हिंदी सीखेंगे।" आज तो हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं बल्कि विश्व इसका स्थान तीसरा है। विश्व के शताधिक विश्वविद्यालयों में हिंदी का पठन-पाठन किया ाता है।

् 1947 में यूनेस्को की स्थापना के ठीक बाद महासभा के दूसरे सत्र में मेक्सिको नगर में रत के प्रतिनिधियों द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव को सर्वसम्मति से मान लिया गया था। तब से ी यूनेस्को की अन्य स्वीकृत भाषाओं के साथ प्रयोग की जा रही है। यूनेस्को के संविधान संशोधन तथा अन्य निर्णयों का हिंदी में अनुवाद किया जाता है। विशेष प्रतिनिधि की र्नों पर किसी भी पत्र अथवा भाषण का अनुवाद भी यूनेस्को की शासकीय भाषाओं में या जाता है। सन् 1967 ई. से 'यूनेस्को कूरियर' पत्रिका का हिंदी संस्करण भी शित किया जाता है जिसमें अनेक सूचनाएँ/आलेख होते हैं। प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन अवसर पर यूनेस्को के प्रतिनिधि श्री अशर डिलियॉन ने शुभकामनाएँ भेंट करते हुए कहा:

"सबसे अधिक प्रयोग की जाने वाली भाषाओं में हिंदी का स्थान विश्व में तीसरा है। भारत में राष्ट्रीय भाषा की दृष्टि से हिंदी का स्थान सर्वोपरि है और दस से अधिक देशों में विद्यमान विभिन्न समुदाय भी हिंदी का प्रयोग करते हैं। इसमें साहित्य, ज्ञान, दर्शन, कविता, कला एवं विज्ञान का बहुत बड़ा भंडार है। निश्चित ही भविष्य में हिंदी भारत में व्यापक जनभाषा बन सकेगी। विश्वभाषा के रूप में भी ज्ञान एवं संस्कृति के आदान-प्रदान की दृष्टि से इसका विकास हो सकेगा।"

प्रकार हिंदी अंतर्राष्ट्रीय जगत् में प्रतिष्ठित हुई और शीघ्र ही उसको संयुक्त राष्ट्र संघ एन ओ) की भाषा के रूप में मान्यता मिलेगी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारत के दो प्रधानमंत्रियों श्री अटल बिहारी बाजपेयी तथा श्री पी.वी. नरसिंह राव महासभा की बैठक मशः 4 अक्टूबर, 1977 तथा 4 अक्टूबर, 1988 को हिंदी में अपना अभिभाषण विदेश के रूप में दे चुके हैं। अंतर्राष्ट्रीय मंच पर राजभाषा हिंदी को प्रतिष्ठित करने की दिशा ारत सरकार की यह पहल प्रशंसनीय रही है। सांस्कृतिक संबंध परिषद् नई दिल्ली के ान में विदेशों के लिए **गगनांचल** पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है।

त राष्ट्र संघ के अतिरिक्त अन्य अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर हिंदी में अभिभाषण हुए हैं जिनमें खनीय कुछ इस प्रकार हैं :

पूर्व प्रधानमंत्री श्री चंद्रशेखर	:	दक्षेस सम्मेलन में पूर्व
मानव संसाधन विकासमंत्री श्री अर्जुन सिंह	:	यूनेस्को की 26वीं महासभा
सांसद व केंद्रीयमंत्री श्री रामविलास पासवान	:	राष्ट्रमंडलीय संसदीय सम्मेलन
सांसद (स्व.) श्री शंकर दयाल सिंह	:	वही (37 वाँ)

र में हुए प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन के अवसर पर काका कालेलकर और डॉ. कर्ण ने संयुक्त राष्ट्रसंघ में मान्यता दिलाने के संबंध में अपने विचार व्यक्त किए। श्री द लाल वसंत राय (मॉरिशस) ने अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से हिंदी के महत्व को प्रतिपादित हुए यह प्रस्ताव अनुमोदन के लिए प्रस्तुत किया :

ारत के अतिरिक्त हिंदी नेपाल में भी बोली-समझी जाती है। मॉरिशस, ट्रिनिडाड, ीजी, सूरीनाम की हिंदी भाषी जनता के अतिरिक्त विश्व के सभी देशों में बसे ारतीय अधिकांशतः हिंदी बोलते हैं। यह बहुत बड़ी संख्या है। फिर भी, संयुक्त ाष्ट्र संघ और उसकी संस्थाओं में हिंदी का प्रयोग न होना हमारी निर्बलता का ूचक है - भारत की निर्बलता का सूचक है। इसके लिए आवाज़ उठाने की ावश्यकता है। आवाज ही नहीं संघर्ष करने की आवश्यकता है और यह पहल

भारत को करनी होगी। हम सब चाहते हैं कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान मिले।'

उक्त प्रस्ताव का समर्थन डॉ. चेलीशेव (रूस), डॉ. लोडार लुत्से (जर्मनी), प्रो. ओदोलन स्मेकल (चेकोस्लोवाकिया), श्री शंभुनाथ (त्रिनिडाड) आदि ने किया। गोष्ठी के अध्यक्ष डॉ. रामगुलाम (मॉरीशस) ने प्रस्ताव का जोरदार समर्थन किया। इसी प्रकार के प्रस्ताव द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम सम्मेलनों में भी पारित होते रहे। उक्त सभी सम्मेलनों में अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियाँ भी आयोजित हुईं।

नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने दक्षिण-पूर्व एशिया में जब आजाद हिंद फौज की और उसकी सरकार की स्थापना की थी जिसका अधिकांश कार्य हिंदी में होता था।

उत्तरी अमेरिका में संयुक्त राज्य अमेरिका में उन विश्वविद्यालयों की संख्या सर्वाधिक है जहाँ विभिन्न पाठ्यक्रमों में हिंदी पढ़ाई जाती है। फीजी, सूरीनाम, मॉरीशस तथा मॉरीशस के अतिरिक्त यूरोप में हालैंड ऐसा देश हैं जहाँ भारतवंशी लाखों की संख्या में है जो हिंदी के माध्यम से भारतवर्ष से जुड़े रहना चाहते हैं।

कई देशों में आकाशवाणी द्वारा हिंदी के कार्यक्रम प्रसारित होते हैं जैसे सूरीनाम के रेडियो स्टेशन, इंग्लैंड में बी.बी.सी. की हिंदी-सेवा, जर्मनी की वायस ऑफ़ जर्मनी आदि।

विश्व के शताधिक विश्वविद्यालयों तथा शैक्षणिक केंद्रों में हिंदी को स्थान प्राप्त है।

अनेक देशों से हिंदी की पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं जिनमें से ज्योति (त्रिनीडाड), ज्वालामुखी (जापान), विश्व विवेक (सं.रा. अमेरिका), विश्व (प्रवासी) भारती (कनाडा), मॉरिशस मित्र, आर्य पत्रिका, आर्यवीर, नवजीवन (मॉरीशस), शांतिदूत, जागृति, अनुराग, जय फीजी, फीजी संदेश (फ़ीजी), सरस्वती, भारतीदय (सूरीनाम), आर्य-ज्योति (गयाना), ज्योति (त्रिनीडाड), हिंदी (द. अफ्रीका) ब्रह्मभूमि (बर्मा-म्यांमार), साहित्यलोक (नेपाल), अमरदीप, प्रवासिनी (इंग्लैंड) आदि।

भारत से जहाँ श्री लल्लनप्रसाद व्यास के संपादन में 'विश्वहिंदी' पत्रिका प्रकाशित होती है वहीं विश्व में हिंदी का लेखा-जोखा 'विश्व में हिंदी' (सं. हरिबाबू कंसल) प्रकाशित हुए हैं। अंतर्राष्ट्रीय मंच पर हिंदी की स्थिति उज्ज्वल भविष्य का संकेत देती है। आज इस क्षेत्र में शोधकार्य करने वाले विद्वानों में अग्रणी हैं - डॉ. बरान्निकेव, डॉ. चैलिशेव, डॉ. मैकग्रेगर, डॉ. स्नेल, डॉ. लीनर लुत्से, डॉ. बृस्की, डॉ. स्मेकल, डॉ. तनाका आदि हैं।

7.6 सारांश

हिंदी भाषा और उसके विस्तृत क्षेत्र का विवरण दिया गया है। भारत के विविध राज्यों में हिंदी की क्या स्थिति है, जानने-समझने के बाद विस्तार से हिंदी भाषा की विविध बोलियों/उपभाषाओं की संक्षिप्त जानकारी दी गई है। हिंदी भाषा को उपभागों में विभजित कर पश्चिमी हिंदी तथा पूर्वी हिंदी से तात्पर्य स्पष्ट किया गया है। यह भी बताया गया है कि इन दोनों उपवर्गों में हिंदी की कौन-कौन सी बोलियाँ आती हैं। हिंदी क्षेत्र भारतवर्ष तथा विश्व के परिप्रेक्ष्य में हिंदी की बोलियों/उपभाषाओं को परिगणित किया गया है। साथ ही यहं भी स्पष्ट किया गया है कि इन समस्त बोलियों का अंतः पारस्परिक संबंध क्या है। कौन-सी बोली किस एक अथवा दो बोलियों से संबंध रखती है, इस तथ्य को रेखाचित्र

ारा स्पष्ट किया गया है। हिंदी की बोलियों/उपभाषाओं का विवरण कुछ सुप्रसिद्ध ाषाशास्त्रियों डॉ. धीरेंद्र वर्मा, डॉ. हरदेव बाहरी, डॉ. सुमन, डॉ. विमलेश कांति वर्मा – ारा दिए गए विवरण के परिप्रेक्ष्य में दिया गया है। हिंदी के विविध शैलीगत रूपों में से उर्दू था हिंदुस्तानी से अंतर स्पष्ट किया गया है। उर्दू हिंदी से जुड़े होते हुए भी किस कारण ृथक मानी जाने लगी है। हिंदी के विविध संदर्भों के अंतर्गत राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय वेभाजन किया गया है। 'राष्ट्रीय' के अंतर्गत हिंदी के विविध पक्षों – राष्ट्रभाषा, राजभाषा, ांपर्क भाषा – पर संक्षेप में विवरण देते हुए भी उनके महत्वपूर्ण बिंदुओं को उभारा गया है जेसके अंत में अंतर्राष्ट्रीय पक्ष पर वर्तमान संदर्भ में विश्व हिंदी सम्मेलनों के परिप्रेक्ष्य में वेवेचन प्रस्तुत किया गया है।

'.7 अभ्यास प्रश्न

. निबंधात्मक प्रश्न

(1) हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी के अंतःसंबंध की व्याख्या कीजिए।

(2) हिंदी भाषा के राष्ट्रीय संदर्भ की चर्चा कीजिए।

(3) हिंदी भाषा क्षेत्र से क्या तात्पर्य है?

:. टिप्पणियाँ

(1) संपर्क भाषा हिंदी

(2) हिंदी की बोलियाँ

(3) अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी

खंड के लिए उपयोगी संदर्भ ग्रंथ

1. उदयनारायण तिवारी : *भाषाशास्त्र की रूपरेखा*, भारती भंडार, इलाहाबाद।
2. भोलानाथ तिवारी (1961) : *भाषाविज्ञान*, किताब महल, इलाहाबाद।
3. भोलानाथ तिवारी(1973) : *हिंदी भाषा*, किताब महल, इलाहाबाद।
4. भोलानाथ तिवारी (सं.) (1972) : *भारतीय भाषाविज्ञान की भूमिका*, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
5. जयकुमार जलज (2001) : *ऐतिहासिक भाषाविज्ञान*, भारतीय ग्रंथ निकेतन, नई दिल्ली।
6. कृपाशंकर सिंह एवं चतुर्भुज सहाय (1977) : *आधुनिक भाषाविज्ञान*, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
7. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव एवं रमानाथ सहाय (1976) : *हिंदी का सामाजिक संदर्भ*, केंद्रीय हिंदी स्थान, आगरा।
8. धीरेंद्र वर्मा (1961) : *हिंदी भाषा का इतिहास*, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।
9. Block, Bernard & G.L., Trager (1942) : *Outline of Linguistic Analysis*, Linguistic Society of America.
10. Neil & Smith
11. Bloomfield, Leonard & Motilal Banarasidas (1963) : *Language*, Delhi.
12. Trudgill, Peter (1968) : *Sociolinguistics - An Introduction*, Penguin.
13. Katre, S.M. (1965) : *Lexicography*, Annamalai University.

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

MAHI-03 (N)

। - भाषा विज्ञान

खंड

2

हिंदी संरचना

इकाई 8
ध्वनि संरचना 5

इकाई 9
रूप, शब्द और पद 37

इकाई 10
वाक्य संरचना-I 55

इकाई 11
वाक्य संरचना-II 69

इकाई 12
अर्थ संरचना 86

इकाई 13
प्रोक्ति विश्लेषण 105

खंड-2 का परिचय

खंड-1 में संरचनात्मक भाषाविज्ञान के संदर्भ में आपने देखा कि रचना तत्व के आधार पर विश्लेषण के तीन हिस्से हैं और वाक्य संरचना के विश्लेषण संबंधी हिस्से में रचना के पाँच स्तर हैं।

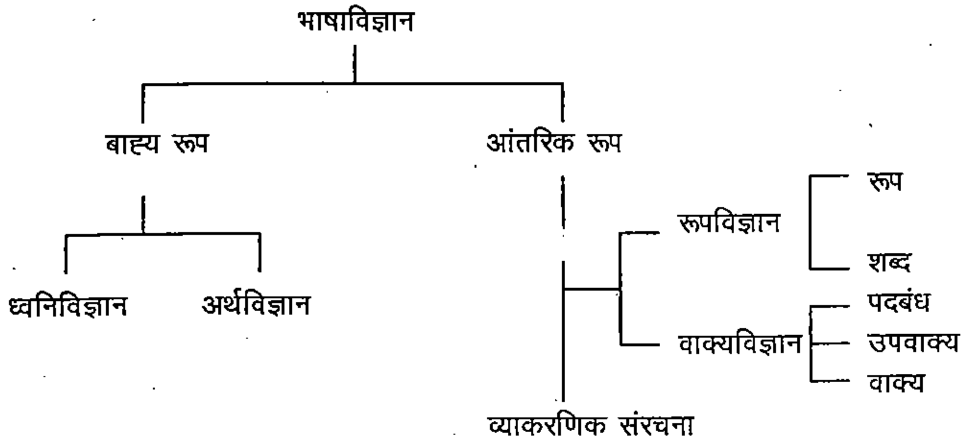

हमने खंड-1 में इन तीनों हिस्सों से संबंधित अध्ययन के आधारभूत तथा संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की थी, जिससे यह मालूम पड़े कि इन सिद्धांतों का हम किसी भी भाषा के अध्ययन में कैसे उपयोग कर सकते हैं। उन्हीं सिद्धांतों के आधार पर हमने इस खंड में हिंदी की ध्वनि संरचना, व्याकरणिक (वाक्य) संरचना तथा अर्थ संरचना के विविध पहलुओं को प्रस्तुत किया है। इस वर्णन में हमने भाषाविज्ञान के ही आधारभूत सिद्धांतों का आधार लिया है। उदाहरण के तौर पर ध्वनि संरचना संबंधी इकाई केवल वर्णमाला और उच्चारण का परिचय नहीं देता। वह यह बताता है कि हिंदी के स्वनिम (अर्थभेदक ध्वनियाँ) कौन-से हैं, उनका उच्चारणगत परिवेश क्या है आदि। इकाई-8 में यह भी चर्चा की गई है कि महाप्राण ध्वनियों को विश्लेषण में क्या माना जाए – एकल ध्वनि या 'ह' युक्त व्यंजन। इसी तरह की स्वनिम विश्लेषण की समस्याओं से आप समझ सकते हैं कि विश्लेषण कैसे किया जाए। और समाधान ढूँढ़ते हुए हम भाषा की प्रकृति से भी परिचित हो जाते हैं। अर्थ विज्ञान में हमने व्याकरण ग्रंथों की तरह पर्याय या विलोम नहीं गिनाए हैं, बल्कि पर्यायता, विलोमता आदि संकल्पनाओं की चर्चा की है।

व्याकरणिक संरचना के पाँच स्तरों में दो को हम रूपविज्ञान (morphology) कहते हैं, जो रूपों की चर्चा के साथ रूपों से शब्दों की रचना का अध्ययन करता है। भारतीय भाषा अध्ययन की परंपरा में वाक्यों को व्यवहृत शब्दों को उनके प्रकार और रूप के कारण 'पद' की संज्ञा दी जाती है। (इसी से हम पदों से बनी रचनाओं 'पदबंध' कहते हैं)। इकाई-9 में हिंदी के रूप, पद तथा शब्द की चर्चा की गई है।

व्याकरणिक संरचना का दूसरा पक्ष पदबंधों से वाक्य की रचना की चर्चा करता है। इसीलिए इसके तीनों स्तरों को मिलाकर हम इसे वाक्यविज्ञान (Syntax) कहा जाता है। वाक्यविज्ञान ही भाषा का प्रधान और सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है। यह विस्तृत है, जटिल भी, इसलिए हिंदी के वाक्य विन्यास की चर्चा दो इकाइयों में की गई है।

खंड-1 में हमने भाषाविज्ञान के दो उपागमों की चर्चा की थी। ये हैं ब्लूम फ़ील्ड द्वारा प्रवर्तित संरचनात्मक भाषाविज्ञान और चॉम्स्की द्वारा प्रवर्तित निष्पादक भाषाविज्ञान। इनके उपागम अलग है, विश्लेषण प्रक्रिया अलग है। इस पाठ्यक्रम में हमने केवल संरनात्मक उपागम पर आधारित विश्लेषण प्रस्तुत किया है और स्थानाभाव के कारण चॉम्स्की के विश्लेषण प्रक्रिया

का मात्र संकेत किया है। अगर आप आगे अध्ययन करना चाहें तो भाषाविज्ञान विभागों से संपर्क करें।

अमेरिकी संरचनात्मक भाषाविज्ञान वाक्य की रचना तक ही अपने विश्लेषण को सीमित कर लेता है। लेकिन हम जानते हैं कि जीवंत भाषाओं के विश्लेषण

शुभकामनाओं के साथ!

इकाई 8 : ध्वनि संरचना : हिंदी की समस्याएँ

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 ध्वनिविज्ञान
  8.2.1 स्वर तथा व्यंजन ध्वनियाँ
  8.2.2 हिंदी की स्वर ध्वनियाँ तथा उनका वर्गीकरण
  8.2.3 हिंदी की व्यंजन ध्वनियाँ तथा उनका वर्गीकरण
  8.2.4 हिंदी की आगत ध्वनियाँ
  8.2.5 हिंदी की नव विकसित ध्वनियाँ
8.3 खंडेतर ध्वनियाँ
  8.3.1 अक्षर तथा आक्षरिक संरचना
  8.3.2 बल तथा बलाघात
  8.3.3 सुर, तान तथा अनुतान
  8.3.4 दीर्घता
  8.3.5 अनुनासिकता
  8.3.6 संहिता या संगम
8.4 स्वनिम विज्ञान तथा निष्पादक स्वनिम विज्ञान
  8.4.1 स्वनिम विज्ञान : सैद्धांतिक पृष्ठभूमि
  8.4.2 निष्पादक व्याकरण तथा स्वनिम विज्ञान
  8.4.3 अभिव्यक्ति के विभिन्न स्तर तथा निष्पादक स्वनिम विज्ञान
  8.4.4 निष्पादक स्वनिम विज्ञान तथा प्रभेदक अभिलक्षण
  8.4.5 द्विचर अभिलक्षण
  8.4.6 स्वनिमिक नियम तथा उनकी लेखन-विधि
8.5 हिंदी की स्वनिमिक समस्याएँ
  8.5.1 अ-लोप की समस्या
  8.5.2 उत्क्षिप्त ध्वनियों ड़/ढ़ की समस्या
  8.5.3 नासिक्य ध्वनियों की समस्या
  8.5.4 महाप्राण ध्वनियों की समस्या
8.6 सारांश
8.7 अभ्यास प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- स्वर तथा व्यंजन ध्वनियों का अंतर समझ सकेंगे,
- हिंदी के स्वर तथा व्यंजन ध्वनियों का वर्गीकरण कर सकेंगे,
- हिंदी की खंडेतर ध्वनियों की प्रकृति से परिचित हो सकेंगे,
- स्वन, स्वनिम एवं संस्वन की संकल्पना को समझा सकेंगे,
- निष्पादक स्वनिम विज्ञान की आधारभूत अवधारणाओं से परिचित हो सकेंगे।
- अभिलक्षणों की संकल्पना से परिचित हो सकेंगे, और
- हिंदी की स्वनिमिक समस्याओं को समझ सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है हिंदी भाषा की ध्वनि व्यवस्था से परिचय प्राप्ता कराना। इसी व्यवस्था के अंतर्गत आपको इस इकाई में हिंदी के स्वर, व्यंजन ध्वनियों का संक्षिप्त परिचय दिया जाएगा तथा खंडेतर ध्वनियों का परिचय दिया जाएगा।

इसके अतिरिक्त आपको निष्पादक स्वनिम विज्ञान की आधारभूत संकल्पनाओं से परिचित कराते हुए निष्पादक स्वनिम विज्ञान में स्वनिम की अवधारणा क्या है इसे भी बताया जाएगा। इसके अतिरिक्त इकाई के अंतिम भाग में आपको हिंदी की प्रमुख स्वनिमिक समस्याओं के विषय में विस्तार से जानकारी दी जाएगी।

8.2 ध्वनिविज्ञान

10.2.1 स्वर तथा व्यंजन ध्वनियाँ

'स्वर' वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण में वायु मुख से बिना किसी अवरोध के बाहर निकल जाती है। हिंदी में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ स्वर ध्वनियाँ हैं।

'व्यंजन' ध्वनियों के उच्चारण में उच्चारण अवयवों (जीभ अथव निचला ओष्ठ) के द्वारा मुख के ऊपरी जबड़े में विभिन्न स्थानों पर वायु का मार्ग अवरुद्ध किया जाता है। हिंदी में क से लेकर ह तक सभी व्यंजन ध्वनियाँ हैं। अवरोध के प्रकार के आधार पर व्यंजनों के अनेक भेद (प्रकार) होते हैं।

10.2.2 हिंदी की स्वर ध्वनियाँ तथा उनका वर्गीकरण

हिंदी स्वरों का वर्गीकरण निम्नलिखित आधारों पर किया जाता है :

(i) **जीभ का कौन-सा भाग उच्चारण में भाग ले रहा है**

स्वरों के उच्चारण में जीभ का अग्र, मध्य और पश्च भाग ऊपर-नीचे उठता है। इस आधार पर स्वरों के तीन भेद हो जाते हैं :

(क) अग्र स्वर - ई, ई, ए, ऐ, ऍ
(ख) मध्य स्वर - अ
(ग) पश्च स्वर - उ, ऊ, ओ, औ, ऑ

(ii) **मुँह किस मात्रा में खुलता तथा बंद होता है**

मुँह के खुलने तथा बंद होने की मात्रा के अनुसार स्वरों के निम्नलिखित भेद हो जाते हैं :

(क) संवृत : मुँह प्रायः बंद या बहुत कम खुलता हो - इ, ई, उ, ऊ
(ख) विवृत : सबसे अधिक खुला हुआ हो - आ
(ग) अर्ध संवृत : 'संवृत' स्थिति की तुलना में अधिक खुलता हो – ए ओ
(घ) अर्ध-विवृत : 'विवृत' स्थिति की तुलना में कम खुलता हो – ऐ, औ

(iii) **ओठों की गोलाकार/अगोलाकार स्थिति के आधार पर**

जिन स्वरों को उच्चारण में ओठ गोल हो जाते हैं उन्हें वृत्ताकार तथा जिनमें चपटे रहते हों 'अवृत्ताकार' स्वर कहे जाते हैं :

वृत्ताकार - उ, ऊ, ओ, औ, ऑ
अवृत्ताकार - अ, आ, इ, ई, ए, ऐ, ऍ

हिंदी के उपर्युक्त सभी स्वरों का वर्गीकरण निम्नलिखित आरेख से समझा जा सकता है :

	अग्र स्वर		मध्य स्वर	पश्च स्वर	
संवृत	ई	इ		उ	ऊ
अर्ध-संवृत		ए			ओ
अर्ध-विवृत		ऍ	अ		ऑ
विवृत				आ	

→ अवृत्ताकार ← → वृत्ताकार ←

10.2.3 हिंदी की व्यंजन ध्वनियाँ तथा उनका वर्गीकरण

सभी व्यंजन अवरोधी ध्वनियाँ हैं। व्यंजनों का वर्गीकरण दो आधारों पर किया जाता है – अवरोध किस स्थान पर होता है और अवरोध उत्पन्न करने वाला अंग किस तरह का प्रयत्न करता है।

स्थान या **उच्चारण स्थान** से तात्पर्य ऊपरी जबड़े के उन स्थानों से है जहाँ उच्चारण अवयव (जीभ या निचला ओंठ) ऊपर जाकर फेफड़ों से आने वाली वायु का अवरोध करते हैं। इस दृष्टि से ऊपरी ओठ, ऊपरी दाँत, वर्त्स या दन्तमूल, कठोर तालु, मूर्धा, कोमल तालु या कंठ तथा स्वर यंत्र प्रमख उच्चारण स्थान हैं। ऊपरी ओठ तथा ऊपरी दाँत वे स्थान हैं जहाँ निचले ओठ द्वारा अवरोध उत्पन्न किया जाता है जबकि शेष स्थानों पर जिह्वा द्वारा अवरोध किया जाता है। इस अवरोध की प्रक्रिया में जिह्वा की नोक, जिह्वा का अग्र, मध्य तथा पश्च भाग हिस्सा ले सकते हैं।

1. हिंदी व्यंजनों का स्थान के आधार पर वर्गीकरण

कंठ्य या कोमल तालव्य - क, ख, ग, घ, ङ.
तालव्य - च, छ, ज, झ, ञ
मूर्धन्य - ट, ठ, ड, ढ, ण, ड़, ढ़, ष
दन्त्य - त, थ, द, ध, न
वर्त्स्य - स, ज़, र, ल
ओष्ठ्य - प, फ, ब, भ, म
दन्त्योष्ठ्य - व, फ़
स्वर तंत्रीय - ह

2. हिंदी व्यंजनों का प्रयत्न के आधार पर वर्गीकरण

प्रयत्न के आधार पर व्यंजनों के वर्गीकरण के निम्नलिखित आधार हैं :

(क) अवरोध की प्रकृति के आधार पर

स्पर्शी : जब उच्चारण अवयव उच्चारण स्थान का स्पर्श करके वायु का मार्ग अवरुद्ध करता है तब जो व्यंजन उच्चरित होते हैं, **स्पर्शी व्यंजन** कहे जाते हैं। हिंदी में क-वर्ग, ट-वर्ग, त-वर्ग तथा प-वर्ग के पहले चार व्यंजन स्पर्शी व्यंजन हैं।

संघर्षी : कुछ व्यंजनों के उच्चारण में उच्चारण अवयव इतना ऊपर नहीं उठते कि वे उच्चारण स्थान का स्पर्श कर सकें। वे उनके इतने निकट आ जाते हैं कि वायु दोनों के बीच से घर्षण करती हुई निकलती है। ऐसे व्यंजन **संघर्षी व्यंजन** कहे जाते हैं। हिंदी में स, श, ष, ह तथा आगत व्यंजन ख़, ग़, ज़ तथा फ़ संघर्षी व्यंजन हैं।

स्पर्श संघर्षी : जिन व्यंजनों के उच्चारण में स्पर्श तथा घर्षण दोनों प्रयत्न होते हैं, **स्पर्श संघर्षी** व्यंजन कहे जाते हैं। उच्चारण अवयव उच्चारण स्थान को स्पर्श करने के बाद इतने निकट रह जाते हैं कि वायु घर्षण करती हुई ही बाहर निकलती है। हिंदी में च-वर्ग के सभी व्यंजन इसी कोटि में आते हैं।

अंतःस्थ : इस कोटि में **अर्ध-स्वर**, **लुंठित** तथा **पार्श्विक** व्यंजन आते हैं :

अर्ध-स्वर : इनके उच्चारण में जीभ स्वरों की तुलना में अधिक ऊपर उठती है पर इतना ऊपर नहीं जाती कि वायु का मार्ग अवरुद्ध हो सके। हिंदी के 'य' तथा 'व' व्यंजन अर्ध-स्वर हैं।

लुंठित : जब जीभ की नोक मुख के मध्य भाग में आकर बार-बार आगे पीछे गिरती है तो इस प्रकार उच्चरित व्यंजन **लुंठित** कहे जाते हैं। हिंदी में 'र' व्यंजन लुंठित ध्वनि का उदाहरण है।

पार्श्विक : यहाँ भी जीभ की नोक मुख के बीच में आकर एक ओर या दोनों ओर पार्श्व (खिड़की) बनाती है और वायु इन्हीं पार्श्व से होकर बाहर निकलती है। हिंदी की 'ल' ध्वनि इसका उदाहरण है।

उत्क्षिप्त : उत्क्षिप्त व्यंजनों के उच्चारण में जीभ ऊपर उठकर पहले मूर्धा को स्पर्श करती है और फिर तुरंत झटके से नीचे गिरती है। हिंदी के 'ड़' तथा 'ढ़' व्यंजन इसके उदाहरण हैं।

(ख) **स्वर तंत्रियों के कंपन के आधार पर**

सघोष तथा अघोष व्यंजन : हम सबके गले में स्वरतंत्रियाँ होती हैं। जब फेफड़ों से निकलकर आने वाली वायु इनसे टकराती है तो ये झंकृत हो जाती है और इनमें कंपन उत्पन्न हो जाता है। कंपन के फलस्वरूप कभी ये परस्पर निकट आ जाती हैं तो कभी दूर हो जाती हैं। जिस समय ये निकट होती हैं उस समय इनकी झंकार की अनुगूँज (घोष) भी मुख तक जाने वाली वायु में सम्मिलित हो जाती है। इस समय जो व्यंजन उच्चरित होते हैं उन्हें **सघोष-व्यंजन** कहा जाता है। **अघोष व्यंजनों** में स्वर तंत्रियाँ परस्पर दूर रहती हैं अतः उनकी अनुगूँज शामिल नहीं हो पाती। हिंदी में वर्ग के प्रथम दो व्यंजन अघोष हैं और शेष तीनों सघोष :

अघोष : क ख, च छ, ट ठ, त थ, प फ

सघोष : ग घ ङ, ज झ ञ, ड ढ ण, द ध न, ब भ म

(ग) **श्वास की मात्रा के आधार पर**

अल्प प्राण तथा महाप्राण : जिन व्यंजनों के उच्चारण में मुख से कम मात्रा में श्वास निकलती है अल्पप्राण तथा जिनमें अधिक मात्रा में निकलती है महाप्राण व्यंजन कहे जाते हैं। हिंदी में वर्ग के प्रथम तथा तृतीय अल्पप्राण तथा द्वितीय एवं चतुर्थ व्यंजन महाप्राण हैं :

अल्पप्राण : क ग, च ज, ट ड, त द, प ब

महाप्राण : ख घ, छ झ, ठ ढ, थ ध, फ भ

10.2.4 हिंदी की आगत ध्वनियाँ

जो ध्वनियाँ किसी दूसरी भाषा के शब्दों के आ जाने के कारण आ जाती हैं, **आगत ध्वनियाँ** कही जाती हैं तथा उन शब्दों को आगत शब्द कहते हैं। हिंदी में भी अरबी, फ़ारसी, तुर्की, अंग्रज़ी तथा अनेक योरोपीय भाषा के शब्द आ गए हैं। इन शब्दों के माध्यम से ऐसी ध्वनियाँ भी हिंदी में आ गई हैं जो हिंदी में नहीं थीं। आज ये आगत-शब्द हिंदी में इस कदर घुल-मिल गए हैं कि किसी को यह अहसास भी नहीं होता कि ये किसी दूसरी भाषा से आये हैं। हिंदी में इन **आगत ध्वनियों** के लिए नए वर्ण भी विकसित कर लिए गए हैं। ये इस प्रकार हैं :

आगत स्वर	उदाहरण
ऍ	कैप, मैप, पैन आदि
ऑ	कॉफी, टॉफ़ी, शॉप, बॉल

यद्यपि मानक वर्तनी में 'ऍ' को नहीं लिया गया है। परंतु यदि इसको भी ले लिया जाए तो हम अनेक आगत-शब्दों का जिनमें 'ऍ' स्वर उच्चरित होता है, सही उच्चारण कर सकते हैं।

ागत-व्यंजन : आगत व्यंजनों के लिए वर्णमाला में परंपरागत वर्णों के नीचे बिंदी लगाकर ग्न विकसित किए गए हैं। ये वर्ण हैं - क़, ख़, ग़, ज़ तथा फ़।

हाँ तक उच्चारण का प्रश्न है प्रायः हिंदी भाषा भाषी ज़, फ़ की तुलना में क़, ख़ तथा ग़ ा उच्चारण नहीं करता या बहुत कम करता है। फिर भी इन ध्वनियों का महत्व तब अधिक । जाता है जब हिंदी की निकटवर्ती ध्वनि किसी शब्द में इनके व्यतिरेक में आ जाती है सेः

ाक (ताकना)	खाना (भोजन)	सजा (सजाना)
ाक़ (दीवार का आला)	ख़ाना (अलमारी का खाना)	सज़ा (दंड)
ाग (घोड़े की)	फन (साँप का)	जरा (बुढ़ापा)
ाग़ (बगिया)	फ़न (हुनर)	ज़रा (थोड़ा)

0.2.5 हिंदी की नव विकसित ध्वनियाँ

ंदी में कुछ ऐसी ध्वनियाँ भी हैं जो संस्कृत में नहीं थीं। ये किसी अन्य भाषा के प्रभाव से न ाकर स्वतः विकसित हुई हैं। ये हिंदी के संरचनात्मक विकास का परिणाम है। ये हैं :

ड़, ढ़ न्ह, म्ह तथा ल्ह तथा अनुनासिक स्वर

नमें 'ड़/ढ़' क्रमशः 'ड/ढ' से विकसित व्यंजन हैं। 'ड/ढ' व्यंजन जब दो स्वरों के मध्य में । शब्दांत में आ जाते हैं तो इनका उच्चारण क्रमशः ड़/ढ़ हो जाता है। इस इकाई के अंतिम ंड में इस पर विस्तार से चर्चा की जाएगी।

हाँ तक 'ल्ह', 'म्ह' तथा 'न्ह' व्यंजनों के विकास का प्रश्न है ये क्रमशः ल, म तथा न के हाप्राण रूप में विकसित हुए हैं जैसे :

काना - कान्हा
कुमार - कुम्हार
आला - आल्हा

रंतु अभी तक इनके लिए स्वतंत्र वर्ण नहीं विकसित किए गए।

ानुनासिक स्वर : हिंदी में अनुनासिकता के कारण सभी स्वर अनुनासिक हो जाते हैं ये अर्थ ्यतिरेक में अर्थ परिवर्तन की क्षमता रखते हैं जैसे - गोद-गोंद, भाग-भाँग आदि। इनके लिए ाखन में बिंदु तथा चंद्रबिंदु (ँ) दोनों का ही प्रयोग किया जाता है।

ंडेतर ध्वनियों के प्रसंग में 10.3.5 के अंतर्गत अनुनासिकता पर विस्तार से चर्चा की ाएगी।

.3 खंडेतर ध्वनियाँ

ऊपर अभी तक जिन ध्वनियों (स्वर तथा व्यंजनों) की चर्चा की गई वे सभी **खंडीय ध्वनियाँ** ही जाती हैं क्योंकि उन ध्वनियों के उनके ध्वनि गुणों - नासिक्य/निरनुनासिक, प्राणत्व, ोषत्व के आधार पर खंड किए जा सकते हैं, परंतु कुछ ऐसी ध्वनियाँ भी होती हैं जिनके ंड करना संभव नहीं होता। ऐसी ध्वनियों को खंडेतर ध्वनियाँ कहा जाता है। बलाघत, ानुतान, अनुनासिकता, मात्रा, संहिता आदि ऐसी ही खंडेतर ध्वनियाँ हैं। खंडेतर ध्वनियों की ंकल्पना समझने से पहले '**अक्षर**' की संकल्पना भी समझना आवश्यक है। आइए इन सब र विस्तार से विचार करें।

10.3.1 अक्षर तथा आक्षरिक संरचना

यह तो आप जानते ही हैं कि जब हम साँस लेते हैं तो वायु हमारे फेफड़ों में जाती है जिसके परिणामस्वरूप फेफड़े फूलते तथा सिकुड़ते हैं। फेफड़ों के फूलने तथा सिकुड़ने को 'हृत्-स्पंद' कहा जाता है।

एक 'हृत्-स्पन्द' (फेफड़ों का एक बार फूलना तथा सिकुड़ना) में कभी तो केवल एक स्वर का ही उच्चारण किया जाता है जैसे आ, ए, ओ आदि और कभी एक से अधिक ध्वनियों जैसे - आज, जा, लोग, उम्र, प्राण का भी उच्चारण किया जाता है। इस प्रकार एक 'हृत्-स्पंद' में जितनी भी ध्वनियाँ एक साथ उच्चरित होती हैं वे सब परस्पर मिलकर एक 'अक्षर' (syllable) का निर्माण करती हैं।

यदि एक 'हृत्-स्पंद' में केवल एक ही ध्वनि उच्चरित की जाती है तो वह निश्चित ही 'स्वर' होती है, एकाधिक ध्वनियों में स्वर के पहले, बाद में या पहले तथा बाद में व्यंजन ध्वनियाँ भी आ सकती हैं। यदि किसी शब्द में दो स्वर उच्चरित होते हैं तो उसमें दो अक्षर होते हैं जैसे - आओ, आई आदि क्योंकि इनका उच्चारण दो 'हृत्-स्पंदों' के द्वारा होता है। अतः ध्यान रखिए जिस शब्द में जितने स्वर होंगे वह शब्द उतने ही अक्षरों से बना होगा।

आक्षरिक संरचना

'अक्षर' की संरचना बिना स्वर के नहीं हो सकती। अक्षर की संरचना में 'स्वर' का स्थान प्रमुख होता है। जब हम किसी शब्द का उच्चारण करते हैं तो 'स्वर' ही अधिक मुखरित रूप में सुनाई देता है इसीलिए वह अक्षर का केंद्रक (nucleus) कहलाता है। इसे **शीर्ष** (peak) भी कहते हैं।

यदि किसी अक्षर में स्वर के पहले तथा बाद में व्यंजन भी आ रहे हैं तो स्वर के पूर्ववर्ती व्यंजनों को 'पूर्व-गह्वर' (onset) तथा परवर्ती स्वरों को 'पर गह्वर' (coda) कहा जाता है। उदाहरण के लिए - 'नाम' तथा 'प्रश्न' शब्दों की आक्षरिक संरचना इस प्रकार की होगी :

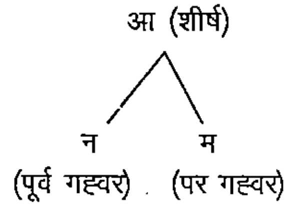

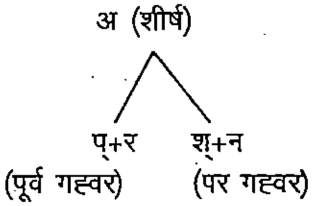

भाषाओं में एकाक्षरी तथा अनेकाक्षरी सभी प्रकार के शब्द पाए जाते हैं।

10.3.2 बल तथा बलाघात

शब्दों का उच्चारण करते समय भाषा-भाषी शब्द में आने वाले विभिन्न अक्षरों पर समान बल देकर नहीं बोलते। किसी अक्षर पर अधिक बल दिया जाता है तो किसी पर कम। उच्चारण में 'बल' के इसी आघात को बलाघात (stress) कहा जाता है तथा लिखित भाषा में अक्षर के ऊपर (/) चिह्न से दिखाया जाता है।

अंग्रेज़ी आदि अनेक भाषाओं में एक ही शब्द में बल-परिवर्तन से शब्द का अर्थ बदल जाता है। उदाहरण के लिए यदि बलाघात शब्द के प्रथम अक्षर पर होता है तो वह शब्द 'संज्ञा' की कोटि में आ जाता है और जब अंतिम अक्षर पर होता है तो वही शब्द 'क्रिया' की कोटि में आ जाता है :

संज्ञा	क्रिया
permit to	permi´t
conduct	to condúct
present	to presént

हाँ तक हिंदी का प्रश्न है, हिंदी में बल परिवर्तन से शब्द का अर्थ तो नहीं बदलता पर च्चारण की स्वाभाविकता प्रभावित हो जाती है। उदाहरण के लिए 'छिपकली' शब्द का च्चारण हिंदी भाषा-भाषी अंतिम अक्षर पर बल देकर करता है - छिपकली। लेकिन यदि ज्ञानवश कोई अंतिम के स्थान पर दूसरे अक्षर पर बल दे देता है - 'छिपकली' तो उसका च्चारण अस्वाभाविक हो जाता है लेकिन अर्थ में परिवर्तन नहीं होता।

0.3.3 सुर, तान तथा अनुतान

ब भी हम बोलते हैं तो सदा एक ही लहजे में नहीं बोलते। शब्दों के उच्चारण में अक्सर तार-चढ़ाव आता रहता है। बोलने में आए इसी उतार-चढ़ाव को **'सुर-परिवर्तन'** कहा जाता । सुर में यह उतार-चढ़ाव कभी स्वर तंत्रियों में अधिक खिंचाव के कारण होता है, कभी फड़ों से अधिक मात्रा में वायु निकलने के कारण तो कभी जीभ की मांस-पेशियों में अधिक नाव के कारण। सुर-परिवर्तन से होने वाले उतार को 'अवरोह' तथा चढ़ाव को 'आरोह' हा जाता है। अनेक भाषाओं में सुर के इन्हीं आरोह, अवरोह के कारण शब्दों तथा वाक्यों के र्थ बदल जाते हैं।

न : शब्द स्तर पर सुर भेद को तान (tone) कहा जाता है। चीनी, जापानी, कोरियन आदि ाषाओं में सुर-परिवर्तन से एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ हो जाते हैं जैसे चीनी भाषा में ा' शब्द जब अलग-अलग सुरों के साथ बोला जाता है तो इसके क्रमशः - 'माँ', 'घोड़ा', ाष निकालना' तथा 'पटुआ' चार भिन्न अर्थ हो जाते हैं।

़र-परिवर्तन के कारण जब किसी शब्द का अर्थ बदल जाता है तो उसे 'तान' कहते हैं तथा सी भाषाएँ तान-भाषाएँ (tone languages) कहलाती हैं।

नुतान : वाक्य स्तर पर सुर भेद को अनुतान (intonation) की संज्ञा दी जाती है। हिंदी ग्रेज़ी आदि भाषाओं में सुर-परिवर्तन से शब्द का अर्थ तो नहीं बदलता पर वाक्य का अर्थ वश्य बदल जाता है। यह गुण संसार की सारी भाषाओं में परिलक्षित होता है। उदाहरण के ़ए हिंदी में निम्नलिखित वाक्य अलग-अलग सुरों में बोलने पर अलग-अलग अर्थ देता है :

1. वह आ रहा है। (सामान्य कथन)
2. वह आ रहा है? (प्रश्न)
3. वह आ रहा है! (आश्चर्य)

ारोह-अवरोह की दृष्टि से अनुतान के तीन स्तर हो सकते हैं - **उच्च** (आरोही), **निम्न** अवरोही) तथा **मध्य** (सम)।

0.3.4 दीर्घता (Length)

सी को 'मात्रा' भी कहते हैं। जब किसी स्वर का उच्चारण कुछ दीर्घ समय तक किया ाता है वह स्वर 'दीर्घ' कहलाता है और इस दीर्घता के कारण भी शब्द का अर्थ बदल ाता है। हिंदी में 'अ', 'उ' तथा 'इ' तीन ह्रस्व स्वर हैं। यदि इनका उच्चारण दीर्घ समय क किया जाए तो ये दीर्घ हो जाते हैं। इनके दीर्घ रूपों को हम क्रमशः 'आ', 'ऊ' तथा 'ई' े रूप में लिखते हैं। हिंदी में दीर्घता के कारण भी शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं जैसे :

पल	- पाल	चल	- चाल
दिन	- दीन	सुना	- सूना

0.3.5 अनुनासिकता

ा' से लेकर 'औ' तक हिंदी के सभी स्वर निरनुनासिक हैं। लेकिन इनका उच्चारण करते ़मय यदि हम मुंह के साथ-साथ नाक से भी वायु को बाहर निकालें तो ये सभी स्वर ़ासिक्य हो जाते हैं। ऐसे स्वरों को ही **'अनुनासिक'** कहा जाता है।

अनुनासिकता हिंदी संरचना के विकास का परिणाम है। चूँकि अनुनासिक स्वर अपने निकटवर्ती निरनुनासिक स्वरों के साथ व्यतिरेक में आकर शब्द का अर्थ बदल देते हैं अतः हिंदी में अनुनासिकता एक महत्वपूर्ण खंडेतर ध्वनि है जैसे :

सास	-	साँस	है	-	हैं
गोद	-	गोंद	पूछ	-	पूँछ

अनुनासिकता को लिखित भाषा में बिंदु तथा चंद्रबिंदु दोनों से लिखा जाता है।

10.3.6 संहिता या संगम

शब्दों का उच्चारण करते समय एक ही शब्द के बीच में आने वाली किन्हीं दो ध्वनियों के बीच यदि थोड़ी देर रूक कर उच्चारण किया जाए तो भी अनेक भाषाओं में शब्दों का अर्थ बदल जाता है। उदाहरण के लिए हिंदी में 'सिरका' शब्द का उच्चारण करते समय यदि वक्ता 'सिर' के बाद थोड़ा विराम देकर 'का' का उच्चारण करता है तो उस शब्द का अर्थ भिन्न हो जाता है :

1. अचार के लिए सिरका ले जाना। (सिरका)
2. मेरे सिरका दर्द अब बंद है। (सिर+का)

शब्द के बीच में किन्हीं दो ध्वनियों के बीच होने वाले इस क्षणिक विराम को ही 'संहिता या संगम' कहा जाता है। संहिता को लेखन में (+) चिह्न से दिखाया जाता है। देखिए कुछ अन्य उदाहरण :

कंबल~कम+बल	1. सर्दी में एक कंबल से काम नहीं चलेगा।
	2. उसमें बहुत कम बल है।
दोना~दो+ना	1. वह दोना भरकर मिठाई लाई।
	2. मुझे भी थोड़ी मिठाई दो ना।

8.4 स्वनिम विज्ञान तथा निष्पादक स्वनिम विज्ञान

8.4.1 स्वनिम विज्ञान : सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

भाषा विज्ञान की संरचनावादी धारा का प्रभाव अमरीकी भाषा-विज्ञान पर 1940 से 1950 तक पर्याप्त मात्रा में रहा। 'संरचनावादी संप्रदाय' के सिद्धांतों तथा भाषा-विश्लेषण की तकनीकों को अपनाकर ध्वनि-सरंचनाओं का अध्ययन जिस विज्ञान के अंतर्गत किया जाता रहा उसी विज्ञान को 'स्वनिम विज्ञान' (phonology) की संज्ञा प्रदान की गई।

भाषा में जब शब्दों का उच्चारण किया जाता है तो उनमें आने वाली ध्वनियों के उच्चारण में विभिन्न प्रकार के अंतर आ जाते हैं। इन अंतरों के अनेक कारण होते हैं तथा हो सकते हैं। कभी-कभी ये अंतर तब सुनाई देते हैं जब एक ही शब्द का उच्चारण विभिन्न भाषाएँ और बोलियाँ बोलने वाले वक्ता अपनी-अपनी मातृभाषाओं के उच्चारण से प्रभावित होकर भिन्न-भिन्न रूप में करते हैं। इसके अलावा शब्दारंभ, शब्द मध्य तथा शब्दांत में जब कोई एक ध्वनि आती है तो अन्य निकटवर्ती ध्वनियों के प्रभाव से भी एक ही ध्वनि के उच्चारण में अंतर आ जाता है। कभी ध्वनियों के उच्चारण में अंतर तब दिखाई देता है जब किसी शब्द में अन्य ध्वनियाँ तो समान रहें पर किसी एक विशेष ध्वनि के स्थान पर कोई दूसरी ध्वनि आ जाती है तो भी उच्चारण में अंतर आ जाता है। परंतु उच्चारण में आए इन अंतरों में वे अंतर ही अध्ययन का विषय बनते हैं जो 'भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण' (linguistically significant) होते हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वर्ग-I तथा वर्ग-II के पहले व्यंजन के उच्चारण पर ध्यान दीजिए :

वर्ग-I	वर्ग-II
पल (प्+अ+ल)	कल (क्+अ+ल)
फल (फ्+अ+ल)	काल (क्+आ+ल)
बल (ब्+अ+ल)	किल (क्+इ+ल)
मल (म्+अ+ल)	कील (क्+ई+ल)
चल (च्+अ+ल)	कुल (क्+उ+ल)
छल (छ्+अ+ल)	कूल (क्+ऊ+ल)
जल (ज्+अ+ल)	कोल (क्+ओ+ल)

र्ग-I के सभी शब्दों के अर्थ में जो अंतर आया है वह पहले व्यंजन के बदल जाने के कारण आया है तथा वर्ग-II के शब्दों का अंतर शब्द मध्य में आन वाले स्वर के कारण है।

स्तुतः ध्वनियों के उच्चारण में आने वाला अंतर विभिन्न ध्वनियों के परस्पर व्यतिरेक में आने के कारण आया है। आप लोग पिछली कक्षा में पढ़ चुके हैं कि जो ध्वनियाँ **समान वातावरण** में परस्पर व्यतिरेक में आकर जब शब्द का अर्थ परिवर्तन कर देती हैं तो ऐसी ध्वनियों को **स्वनिम'** कहा जाता है। और इस प्रकार के उच्चारणगत अंतर जो स्वनिमिक स्तर के होते हैं **भाषा वैज्ञानिक दृष्टि** से महत्व के कहे जा सकते हैं।

लेकिन किसी एक स्वनिम का उच्चारण प्रत्येक स्थिति में एक जैसा होगा, यह भी कोई आवश्यक नहीं है। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी के 'p', 't' तथा 'k' स्वनिमों का उच्चारण शब्द के आरंभ तथा मध्य में एक जैसा नहीं होता। अंग्रेजी भाषा-भाषी शब्दारंभ में इनका उच्चारण [p^h], [t^h] तथा [k^h] के रूप में करता है तथा शब्द के मध्य में [p], [t] तथा [k] के रूप में। देखिए निम्नलिखित उदाहरण :

	शब्द	शब्दारंभ	शब्द मध्य
/p/	pin	[p^hIn)	[spin]
	pen	[p^hen]	[speak]
/t/	tin	[t^hin]	[station]
	ten	[t^hen]	[style]
/k/	kite	[k^hait]	[skin]
	kill	[k^hil]	[maker]

अर्थात् शब्दारंभ में p,t,k व्यंजनों का उच्चारण थोड़े से प्राणत्व के साथ किया जाता है जब कि शब्द मध्य में सामान्य रूप में। परंतु शब्दारंभ तथा शब्द मध्य म उच्चरित होने वाले ये व्यंजन [ph~p], [th~t], [kh~k] वस्तुतः p,t तथा k स्वनिमों के ही रूप हैं। किसी एक स्वनिम के इस प्रकार के उच्चरित रूपों को जो परिपूरक वितरण में आते हैं 'संस्वन' कहते हैं। 'परिपूरक वितरण' से तात्पर्य उस स्थिति से हैं जहाँ एक वातावरण में किसी स्वनिम का एक उच्चरित रूप आता है तो दूसरे में दूसरा रूप।

'स्वनिम-विज्ञान' के अंतर्गत किसी भाषा के विभिन्न स्वनिमों तथा उनके संस्वनों का अध्ययन किया जाता है। हिंदी में भी /ड/ स्वनिम के दो संस्वन मिलते हैं - [ड] तथा [ड़]। शब्द के आरंभ में तथा व्यंजन गुच्छों में [ड] का उच्चारण किया जाता है तो शब्द मध्य में दो स्वरों के बीच तथा शब्दांत में [ड़] का उच्चारण होता है जैसे :

ड : डर, डलिया, डमरू , अड्डा, गुड्डा , बुड्ढा

ड़ : लड़का, घोड़ा, लकड़ी, जोड़ा, पेड़, मोड़

स्वनिम विज्ञान में स्वनिमों को तिरछे कोष्ठों '//' में तथा संस्वनों को बड़े कोष्ठकों [ ] में रखा जाता है :

	स्वनिम	संस्वन	
अंग्रेजी में	/p/	[ph]	शब्दारंभ में
		[p]	शब्द मध्य में
	/ड/	[ड]	शब्दारंभ तथा व्यंजन गुच्छ में
		[ड़]	दो स्वरों के बीच तथा शब्दांत में

8.4.2 निष्पादक व्याकरण तथा स्वनिम विज्ञान

आपको यह बताया गया था कि परंपरागत स्वनिम विज्ञान जिसके अंतर्गत स्वनिम एवं संस्वनों का विश्लेषण अध्ययन का प्रमुख विषय था, भाषाविज्ञान के 'संरचनावादी संप्रदाय' के सिद्धांतों से प्रभावित था। 'संरचनावादी संप्रदाय' के भाषाविद् यह मानते थे कि प्रत्येक भाषा विशिष्ट होती है, उसकी संरचना विशिष्ट होती है। आगे चलकर विचारधारा में परिवर्तन आया। अमेरिका में एक बड़े ही प्रसिद्ध भाषाविद् का उदय हुआ। इनका नाम था नोम चॉम्स्की। उन्होंने अपने से पूर्व की भाषा संबंधी समस्त मान्यताओं पर प्रश्न चिह्न लगा दिए और भाषा अध्ययन की दिशा में एक नई दृष्टि प्रदान की।

चॉम्स्की के अनुसार भाषा की दो संरचनाएँ होती हैं - **बाह्य संरचना तथा आंतरिक संरचना।** बाह्य संरचना (Surface structure) का संबंध तो भाषा की अभिव्यक्ति के साथ होता है। परंतु भाषा का यह रूप गौण रूप है। भाषा का प्रमुख रूप तो वह है जो भाषा-भाषी के मन में होता है। इसी आंतरिक रूप को चॉम्स्की ने 'आंतरिक संरचना' (Deep structure) कहा था। आंतरिक संरचना को बाह्य संरचना में परिवर्तित करने वाले कुछ नियम होते हैं जिनको चॉम्स्की ने 'रूपांतरण नियम' (Transformations) कहा। बच्चा भाषा सीखते समय अपनी भाषा के समस्त वाक्यों को नहीं सीखता क्योंकि भाषा में वाक्य तो असीमित होते हैं। परंतु इन वाक्यों को नियंत्रित करने वाले नियम हर भाषा में सीमित होते हैं। मानव शिशु में यह जन्मजात क्षमता होती है कि वह अभिव्यक्त भाषा में से इन नियमों को पकड़ लेता है। एक बार जब नियम सीख लेता है तो फिर इन्हीं नियमों के आधार पर उस भाषा के असीमित वाक्यों को उत्पन्न करता चला जाता है। इसीलिए चॉम्स्की के इस व्याकरण का नाम पड़ा - 'रूपांतरण-निष्पादक व्याकरण' (Transformational Generative Grammar)।

इस व्याकरण के सिद्धांतों के अनुसार भाषा की बाह्य संरचना महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि महत्वपूर्ण है उसकी आंतरिक संरचना तथा रूपांतरण नियम जिनका संबंध मानव मस्तिष्क से होता है। आंतरिक संरचना वस्तुतः भाषा की अमूर्त (Abstract) संरचना होती है। निष्पादक व्याकरण के सिद्धांतों के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक 'बाह्य संरचना' के लिए समान आंतरिक संरचना हो। भाषा में यह भी हो सकता है कि भाषा की बाह्य संरचना के स्तर की अभिव्यक्ति की आंतरिक संरचना बिल्कुल भिन्न हो।

आंतरिक संरचना को बाह्य संरचना में रूपांतरित करने वाले विभिन्न नियम एक साथ गुच्छ के रूप में तथा परस्पर एक निश्चित क्रम में ही कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए 'क्या मोहन बाजार नहीं जा रहा?' वाक्य की आंतरिक संरचना 'मोहन बाज़ार जा रहा है' होगी तथा इस आंतरिक संरचना पर तीन नियम एक साथ लगेंगे। ये नियम हैं :

1. प्रश्नवाचक नियम
2. निषेधवाची नियम
3. है-लोप संबंधी नियम

यहाँ यह भी ध्यान रखना होगा कि नियम एक निश्चित क्रम में ही लगते हैं। जैसे ऊपर के वाक्य में पहले निषेधवाची नियम लागू होने के बाद ही है - लोप का नियम लागू होगा क्योंकि भाषा में 'है' का लोप प्रायः निषेधवाची वाक्यों में ही पाया जाता है।

की आंतरिक संरचना या अमूर्त संरचना भाषा के प्रत्येक स्तर पर होगी। चाहे वह वाक्य
ा का स्तर हो या शब्दों के उच्चारण का स्तर। जैसे हिंदी के 'लड़का' शब्द की अमूर्त
क संरचना 'लडका' होगी और यह मानना होगा कि 'ड' व्यंजन दो स्वरों के मध्य
के कारण 'ड़' में परिवर्तित हो गया है। इस प्रकार परंपरागत स्वनिम विज्ञान जो
 तथा 'संस्वन' ध्वनियों के दो स्तर मान कर चल रहा था, निष्पादक व्याकरण के
ों से प्रभावित स्वनिम विज्ञान अर्थात् 'निष्पादक स्वनिम विज्ञान' (Generative
ology) में यह मान कर चला गया कि ध्वनियों की संरचना के दो स्तर तो होते हैं -
च्चारण का स्तर या बाह्य संरचना का स्तर तथा दूसरा 'अमूर्त स्तर' (आंतरिक संरचना
र) और अमूर्त आंतरिक संरचना को बाह्य संरचना के स्तर में परिवर्तित करने वाले
ेक नियम होते हैं।

: अभिव्यक्ति के विभिन्न स्तर एवं निष्पादक स्वनिम विज्ञान

ात स्वनिम विज्ञान में **स्वनिम** तथा **संस्वन** की अवधारणा से स्वनिमिक संरचना
nlogical representaiton) के दो स्तरों की संकल्पना खड़ी होती है :

1. एक तो उच्चारण का स्तर या वह स्तर जिसे परंपरागत रूप से 'स्वनिकीय स्तर' (Phonetic) कहा जाता है तथा
2. दूसरा वह स्तर जहाँ ध्वनियाँ परस्पर व्यतिरेक में आती हैं अर्थात् स्वनिमिक (Phonemic) स्तर।

स्वनिकीय स्तर का संबंध ध्वनियों के उच्चारणात्मक स्तर से होता है परंतु फिर भी यह
रखना होगा कि यह स्तर 'भौतिक स्वनिकी' (Physical Phonetics) का नहीं है
वनियों के उच्चारण संबंधी सभी सूक्ष्म विवरण जैसे उच्चारण में होने वाला स्वर तंत्रियों
वाव, माँस-पेशियों में तनाव, प्राणत्व की मात्रा, ध्वनितरंगों की लंबाई आदि का प्रायः
 दिया जाता है। इस स्तर पर हम ध्वनियों के केवल उन उच्चारणात्मक अंतरों को
देते हैं, जिनके आधार पर उनको 'संस्वन' का दरजा मिल सके। इस प्रकार देखा जाए
ौतिक स्वनिकीय स्तर' की तुलना में 'स्वनिकीय स्तर' एक अमूर्त स्तर है जहाँ केवल
 से संबंधित अंतरों को ही महत्व दिया जाता है। निष्पादक स्वनिमविज्ञान में इस स्तर
वस्थित स्वनिकीय स्तर' (Systematic phonetic level) कहा जाता है।

कार यदि 'भौतिक स्वनिकीय स्तर' की तुलना में 'व्यवस्थित स्वनिकीय स्तर अमूर्त है
की तुलना में 'स्वनिमीय स्तर' (Phonemic level) की अभिव्यक्ति तो और भी
 'अमूर्त' मानी जाएगी जहाँ ध्वनियों की अधिकांश उच्चारणात्मक सूचनाएँ प्रायः छोड़
ती हैं। उदाहरण के लिए अंग्रेजी के [p^hin तथा [spin] शब्दों के 'P^h' तथा 'p'
 के अंतर अमूर्त स्वनिमिक स्तर पर छोड़ दिए जाते हैं और यह मान लिया जाता है कि
र [P^h] तथा [p] वस्तुतः एक ही स्वनिम /p/ के ही उच्चरित रूप हैं।

लकर निष्पादक स्वनिम विज्ञान में 'स्वनिम' की सत्ता को ही नकार दिया गया। यह
हीं थी कि यहाँ स्वनिकीय या व्यवस्थित स्वनिकीय स्तर की संरचनाओं की तुलना में
अमूर्त स्तर को नकारे जाने की बात थी बल्कि इस संप्रदाय के मानने वाले भाषाविदों
सार स्वनिमिक स्तर से भी अधिक अमूर्त स्तर की संकल्पना की जानी आवश्यक थी
 'स्वनिमिक सार' इतना अमूर्त नहीं होता जहाँ भाषा के सभी उच्चारण संबंधी भेदों
ष्ट किया जा सके। स्वनिमिक विश्लेषण में ऐसी स्थितियाँ भी आती हैं जब स्वनिमिक
ी अमूर्त संकल्पना उनको स्पष्ट कर पाने में असमर्थ होती है। आइए इसी बात को
 के एक अन्य उदाहरण से समझते हैं :

अंग्रेजी में दो शब्दों electric तथा electricity की स्वनिमिक संरचनाएँ होंगी – elektrik| तथा |elektrisiti|। अंग्रेजी का electricity शब्द वस्तुतः electrik शब्द में ity प्रत्यय लगकर बना है और इसकी संरचना से स्पष्ट होता है कि अंग्रेज़ी में 'i' स्वर के पूर्व शब्दांत में आने वाले 'k' का उच्चारण 's' के रूप में किया जाता है।

इस स्थिति की तुलना उस स्थिति से की जा सकती है जहाँ अंग्रेजी में 'pin' शब्द की आरंभिक ध्वनि [p^h] तथा 'spin' शब्द की [p] ध्वनि को अमूर्त स्वनिमिक स्तर पर एक ही ध्वनि |p| के रूप में ग्रहण किया गया था। इस आधार पर हमें [elektrik] शब्द के [k] तथा [elektrisiti] शब्द के [s] व्यंजन को अमूर्त स्तर पर एक मानना होगा तथा यह स्वीकार करना होगा कि ये या तो |k| अथवा |s| स्वनिम के संस्वन हैं। मान लीजिए थोड़ी देर के लिए हम इन्हें |k| स्वनिम के संस्वन मान लेते हैं तब हमें अंग्रेजी में यह स्वीकार करना होगा कि 'k' संस्वन शब्दांत में आता है तथा 's' संस्वन i स्वर के पूर्व

[r] शब्दांत में

/k/

[s] i स्वर के पूर्व

परंतु यह मानते ही अनेक प्रश्न उठ खड़े होंगे क्योंकि हम जानते हैं कि अंग्रेजी में 'k' तथा 's' व्यंजन दो स्वतंत्र स्वनिम पहले से ही स्वीकृत हैं, अतः एक को दूसरे का संस्वन नही माना जा सकता। इस प्रकार 'electricity' शब्द की स्वनिमिक संरचना /elektrik+iti/ 'स्वनिनिक स्तर' की अभिव्यकति नहीं मान सकते। मातृभाषा-भाषी यह जानता है कि 'elecricity' शब्द में ity प्रत्यय के पूर्व उच्चरित होने वाला 's' व्यंजन आंतरिक अमूर्त स्तर पर 's' न होकर 'k' ही है और किसी स्वानिमिक नियम के प्रभाव से उच्चारण स्तर पर 's' हो गया है।

इस प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए 'निष्पादक स्वनिम विज्ञान' ने एक ऐसे स्तर की संकल्पना की जो परंपरागत 'स्वनिमिक स्तर' की तुलना में अधिक अमूर्त है तथा जहाँ 'electricity' शब्द के लिए |elektrik+iti| जैसी अभिव्यक्तियों को प्रतिपादित किया जा सके।

निष्पादक स्वनिम विज्ञान ने इस स्तर को 'व्यवस्थित स्वनिमिक स्तर' (Systamatic phonemic level) की संज्ञा प्रदान की। परंपरागत 'स्वनिमिक स्तर' से इसकी भिन्नता दिखाने के लिए निष्पादक स्वनिम विज्ञान के अनुयायियों ने इसे 'विवरणात्मक स्वनिमीय स्तर' (taxonomic or autonomous phonemic level) नाम से अभिहित किया। अर्थात् जिस स्तर को परंपरागत स्वनिम विज्ञान में 'स्वनिमिक स्तर' कहा गया था उसी स्तर को निष्पादक स्वनिम विज्ञान के अनुयायियों ने 'विवरणात्मक स्वनिमीय स्तर' कहा।

अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं :

1. संरचनावादी संप्रदाय से प्रभावित परंपरागत स्वनिम विज्ञान तथा निष्पादक स्वनिम विज्ञान दोनों ही में स्वनिमिक संरचना के दो स्तर के दो-दो स्वीकार किए गए।

2. परंपरागत स्वनिम विज्ञान में स्वीकृत स्वनिमिक स्तर उतना अमूर्त नहीं होता जहाँ किसी भाषा के सभी उच्चारणात्मक अंतरों को स्पष्ट किया जा सके। अतः निष्पादक स्वनिम विज्ञान में स्वीकृत 'व्यवस्थित स्वनिमीय स्तर' अधिक अमूर्त स्तर है।

3. व्यवस्थित स्वनिमीय स्तर का संबंध मातृभाषा भाषी के मन में रहने वाली अमूर्त अभिव्यक्तियों के साथ होता है।

4. इस आंतरिक अमूर्त स्तर की अभिव्यक्तियों को मूर्त स्वनिकीय स्तर की अभिव्यक्तियों में परिवर्तित करने वाले कुछ नियम होते हैं जिन्हें स्वनिमीय नियम (Phonological rules) कहा जाता है :

व्यवस्थित स्वनिमीय अभिव्यक्ति	→ स्वनिमीय-नियम	व्यवस्थित स्वनिकीय स्तर

8.4.4 निष्पादक स्वनिम विज्ञान तथा प्रभेदक अभिलक्षण

संरचनात्मक भाषा वैज्ञानिकों ने 'स्वनिम' को एक अविभाज्य इकाई के रूप में परिभाषित किया था। उनके अनुसार स्वनिम एक ऐसी इकाई है जिसके खंड नहीं किए जा सकते। परंतु निष्पादक स्वनिम विज्ञान ने स्वनिम की सत्ता को ही नकार दिया क्योंकि 'स्वनिमिक' स्तर उतना अमूर्त नहीं है जितना कि स्वनिमिक संरचनाओं के विश्लेषण के लिए अपेक्षित है। साथ ही किसी भी स्वनिम या ध्वनि को अविभाज्य भी नहीं माना जा सकता। उदाहरण के लिए हिंदी में प, फ, ब, भ व्यंजनों में यदि अंतर दिखाना हो तो हम एक ध्वनि का दूसरी ध्वनि से अंतर उसके विभिन्न अभिलक्षणों के आधार पर ही करते हैं :

प	स्पर्शी	ओष्ठ्य	अघोष	अल्पप्राण
फ				महाप्राण
ब		अघोष	सघोष	अल्पप्राण
भ				महाप्राण

वस्तुतः कोई भी ध्वनि एकाधिक अभिलक्षणों का गुच्छ है और ये अभिलक्षण ही एक ध्वनि को दूसरी ध्वनि से भिन्न करते हैं। चूँकि अभिलक्षणों के द्वारा विभिन्न ध्वनियों में परस्पर भेद स्थापित किया जाता है अतः ये अभिलक्षण 'प्रभेदक अभिलक्षण' कहलाते हैं।

8.4.5 द्विचर अभिलक्षण (Binary features)

निष्पादक स्वनिम विज्ञान में स्वनिमिक नियमों को स्पष्ट करने के लिए अभिलक्षणों को ही आधार बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त यहाँ एक बात और बताई गई जो परंपरा से भिन्न थी। उदाहरण के लिए यदि हम कहते हैं कि 'प' व्यंजन अघोष है तथा 'ब' व्यंजन सघोष है तो वास्तव में हम दो अलग-अलग अभिलक्षणों को प्रयोग कर रहे हैं। निष्पादक स्वनिम विज्ञान के प्रणेताओं ने यह संकल्पना सामने रखी कि अभिलक्षणों का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए कि एक ही अभिलक्षण के साथ धन (+) या ऋण (-) का चिह्न लगाकर हम दो-दो अभिलक्षणों को स्पष्ट कर सकें। उदाहरण के लिए [+घोष] का अर्थ हो जाएगा 'सघोष' तथा [-घोष] का अर्थ होगा अघोष। इसी तरह [+प्राणत्व] का अर्थ होगा महाप्राण तथा [-महाप्राण] का अर्थ हो जाएगा अल्पप्राण।

इस प्रकार एक ही 'मूल्य' से '+' या '-' का चिह्न लगाकर हम ध्वनियों के दो अभिलक्षणों (गुणों) को स्पष्ट कर सकते हैं। ऐसे अभिलक्षणों को 'द्विचर अभिलक्षण' (Binary features) कहते हैं।

8.4.6 स्वनिमिक नियम तथा उनकी लेखन विधि

अमूर्त आंतरिक स्वनिमिक अभिव्यक्ति (व्यवस्थित स्वनिमिक स्तर की अभिव्यक्ति) को उच्चारण स्तर की अभिव्यक्ति (व्यवस्थित स्वनिमीय स्तर की अभिव्यक्ति) में परिवर्तित करने वाले प्रत्येक भाषा में कुछ नियम होते हैं जिन्हें 'स्वनिमिक नियम' कहा जाता है। स्वनिमिक

नियम वास्तव में वे परिवर्तन हैं जो किसी शब्द में उच्चारण स्तर पर विभिन्न ध्वनियों के एक दूसरे पर पड़ने वाले प्रभाव के कारण उत्पन्न होते हैं।

स्वनिमिक नियमों को भाषा में विस्तार से न लिखकर संक्षेप में सूत्र रूप में लिखा जाता है। उदाहरण के लिए हिंदी में 'ड' व्यंजन जब दो स्वरों के मध्य में आ जाता है तो वह 'ड़' में परिवर्तित हो जाता है। इसी नियम को यदि हमें सूत्र रूप में लिखना हो इस प्रकार लिखेंगे :

[ड] [ड़] / स्वर – स्वर

अर्थात् एक लंबी आड़ी लकीर के एक ओर तो उस परिवर्तन को दिखाया जाता है जो किसी विशेष ध्वनि में हो रहा है तथा लकीर के दूसरी ओर उस परिवेश को जिसमें कि वह ध्वनि परिवर्तन हुआ है। उक्त नियम में 'ड' व्यंजन का परिवर्तन 'ड़' में हुआ है। परिवर्तन को हम तीर के चिह्न से दिखाते हैं। परिवेश से तात्पर्य उन ध्वनियों से है जो परिवर्तित होने वाली ध्वनि के पूर्व तथा बाद में आ रही हैं। दोनों ओर की ध्वनियों या उनके अभिलक्षणों को एक छोटी-सी सीधी रेखा के पूर्व तथा बाद में लिखा जाता है। ऊपर के नियम में 'ड' के पूर्व भी एक स्वर है तथा बाद में भी एक स्वर। पड़ी लकीर के पूर्व तथा बाद में 'स्व' अर्थात् 'स्वर' के होने का संकेत दिया गया है।

इसी प्रकार हिंदी में प्रायः नासिका व्यंजन के पूर्व आने वाले स्वर प्रायः दीर्घ हो जाते हैं तथा नासिक्यीकृत हो जाते हैं। इस नियम को हम इस प्रकार लिख सकते हैं :

[-व्यंजनात्मक] [+दीर्घ/ +नासिक्य] /— [+व्यंजन/ + नासिक्य]

यहाँ – व्यंजनात्मक ध्वनि से तात्पर्य उन ध्वनियों से हैं जो व्यंजन नहीं हैं अर्थात् स्वर। ये स्वर दीर्घ हो जाते हैं यह बात +दीर्घ अभिलक्षण से, तथा नासिक्यीकृत हो जाते हैं +नासिक्य अभिलक्षणों से प्रकट की गई है। जहाँ तक परिवेश या वातावरण की स्थिति है उसे देख कर हम कह सकते हैं कि यह परिवर्तन उस समय होता है जब उस स्वर के बाद कोई नासिक्य व्यंजन (+व्यंजन तथा +नासिक्य) आ जाता है।

इस प्रकार स्वनिमिक नियमों का किसी भाषा के उच्चारण में विशेष महत्व होता है। ये नियम कई प्रकार के हो सकते हैं जैसे :

1. **अभिलक्षण परिवर्तन संबंधी नियम :** वे नियम जिनमें किसी एक ध्वनि का दूसरी ध्वनि के प्रभाव से अभिलक्षण या गुण ही बदल जाता है। जैसे ऊपर नासिक्य व्यंजन के प्रभाव से निरनुनासिक स्वर के अभिलक्षण + नासिक्य हो जाना।

2. **आगम संबंधी नियम :** किसी शब्द में उच्चारण के स्तर पर किसी नई ध्वनि का आगम हो जाता है भले ही उसकी अमूर्त संरचना में वह ध्वनि न हो। जैसे हिंदी में 'स्नान', 'स्थान' आदि शब्दों में उच्चारण के स्तर पर आरंभ में 'इ' अथवा 'अ' स्वर का आगम हो जाता है और मातृभाषा भाषी प्रायः इनका उच्चारण 'इस्नान/अस्नान' या 'इस्थान/अस्थान' के रूप में करते पाए जाते हैं।

3. **लोप संबंधी नियम :** अनेक बार ऐसा भी होता है कि शब्द की अमूर्त संरचना में कोई ध्वनि रहती है पर उच्चारण के स्तर पर उसका लोप हो जाता है या वह उच्चरित नहीं की जाती। ऐसी स्थिति में इन शब्दों की आंतरिक अमूर्त संरचना में उस ध्वनि को हमें लेना होता है और लोप संबंधी नियम से उसका लोप दिखाना होता है। उदाहरण के लिए हिंदी में शब्दांत में आने वाले 'अ' स्वर का लोप हो जाता है हम 'राम', 'आज', 'अब' आदि शब्दों को वस्तुतः राम्, 'आज्', 'अब्' के रूप में उच्चरित करते हैं।

4. **क्रम परिवर्तन संबंधी नियम :** कभी-कभी शब्दों में उच्चारण के स्तर पर ध्वनियों का परस्पर क्रम परिवर्तन भी हो जाता है जैसे हिंदी में वाराणसी तथा 'बनारस' शब्दों में

'र' तथा नासिक्य व्यंजन का क्रम परिवर्तन हो गया है। इसी प्रकार 'लखनऊ' शब्द का उच्चारण कुछ लोग 'नखलऊ' रूप में भी करते पाए जाते हैं जहाँ 'न' तथा 'ल' व्यंजनों में क्रम परिवर्तन हो जाता है।

5. **संधि के नियम :** जब किसी शब्द में स्वरों या व्यंजनों के उच्चारण में अनेक प्रकार के परिवर्तन संधि के कारण होते हैं तो ऐसे नियम संधि संबंधी नियम कहलाते हैं। जैसे : हिंदी में

रमा+ईश = रमेश (आ+ई→ए),
विद्या+आलय = विद्यालय आदि।

8.5 हिंदी की स्वनिमिक समस्याएँ

8.5.1 अ-लोप की समस्या

हिंदी की ध्वनि व्यवस्था का एक प्रमुख नियम है - 'अ-लोप का नियम'। वस्तुतः हिंदी में उच्चारण के स्तर पर हमें अनेक शब्दों में अ-स्वर के लोप की दो स्थितियाँ दिखाई देती हैं - एक तो शब्दांत में तथा दूसरी शब्द-मध्य में। आइए इन दोनों स्थितियों में होने वाले अ-लोप की प्रकृति को समझा जाए।

अन्त्य-अ-लोप की स्थिति

निम्नलिखित शब्दों की वर्तनी पर ध्यान दीजिए :

1. पाठक, 2.लेख, 3. तड़प, 4. मन, 5. रोग, 6. सफल

इन सभी शब्दों की वर्तनी में यद्यपि शब्द के अंत में अ-स्वर मौजूद है परंतु उच्चारण के स्तर पर हिंदी भाषा-भाषी इन सभी शब्दों के उच्चारण में अंतिम 'अ'-स्वर का लोप कर देता है और पाठक्, लेख्, तड़प्, मन्, रोग्, सफल् आदि के रूप में उच्चारण करता है।

यहाँ समस्या इस बात को लेकर है कि जब हम एक ओर यह देख रहे हैं कि हिंदी में प्रत्येक शब्द के अंत में आने वाले अ-स्वर का उच्चारण किया ही नहीं जाता तो फिर शब्दांत में अ-स्वर की सत्ता मानी ही क्यों जाए! अनेक विद्वानों की राय है कि पहले शब्दांत में अ-स्वर की सत्ता स्वीकार करना और फिर किसी नियम से उसका लोप दिखाना तर्कसंगत नहीं है। वस्तुतः यहाँ समस्या इस बात को लेकर है कि लेख, पाठ, रोग, मन आदि शब्द अपने स्वनिमिक रूप में व्यंजनान्त हैं अथवा स्वरांत। अगर यह मान लें कि सभी शब्द व्यंजनान्त हैं तब तो अंतिम अ-स्वर की वहाँ सत्ता होने का प्रश्न ही नहीं उठता। परंतु यदि हम यह मानकर चलते हैं कि ये सभी शब्द स्वरांत हैं तब तो हमें शब्दांत में अ-स्वर की सत्ता माननी होगी और फिर किसी नियम के द्वारा इस अ-स्वर का लोप स्पष्ट करना होगा।

रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव का यह मत रहा है कि लेख, पाठ, मन, रोग, चल आदि शब्द अपने मूल स्वनिमिक स्तर पर स्वरांत ही हैं और उच्चारण के स्तर पर इनके अंत में आने वाले स्वर - 'अ' का निम्नलिखित नियम के आधार पर लोप हो जाता है :

$$अ \rightarrow \varnothing / \text{—} \ \#$$

अर्थात् शब्दांत में 'अ' स्वर शून्य होता है। यहाँ लोप को शून्य (∅) से तथा शब्दांत को '#' चिह्न से दिखाया गया है।

श्रीवास्तव की इस मान्यता से कुछ भाषाविद् सहमत नहीं है। उन लोगों की धारणा यही है कि जब हिंदी भाषा-भाषी शब्दांत में 'अ' का उच्चारण करता ही नहीं है तो फिर शब्दांत में

उसकी सत्ता मानने की आवश्यकता ही क्या है? शब्द के अंत में अ-स्वर की सत्ता मानना क्यों अनिवार्य है इसके निम्नलिखित कारण हैं। निम्नलिखित शबदों पर ध्यान दें :

कारण-1

	क	ख
वर्ग-I	लेख	लेखक
	पाठ	पाठक
वर्ग-II	लेख	लेखन
	पाठ	पाठन
वर्ग-III	जल	जलज
	नीर	नीरज

इन उदाहरणों में 'ख' वर्ग के सभी शब्द वस्तुतः क-वर्ग के शब्दों से ही व्युत्पन्न हुए हैं। यहाँ हमें इस बात पर पहले विचार करना होगा कि पाठक लेखन या नीरज शब्दों के अंत में आने वाले प्रत्यय का स्वनिमिक विवरण क्या है?

जो विद्वान यह मानते हैं कि पाठ, लेख तथा जल आदि शब्द स्वरांत हैं उनके लिए तो प्रत्यय निश्चित ही +क, +न तथा +ज होंगे परंतु जो लोग मूल शब्दों को व्यजनांत मानते हैं (अर्थात् उनके अंत में अ-स्वर की सत्ता नहीं मानना चाहते) तो उनके लिए प्रत्यय का स्वरूप+ 'अक', + 'अन' तथा + अज' होगा।

यदि हम यह स्वीकार कर लें कि प्रत्यय का स्वनिमिक विवरण क्रमशः +अक, +अन और +अज है तब निम्नलिखित शब्दों की रचना को हम किस प्रकार स्पष्ट करेंगे?

क	ख
वारि	वारिज
मंजु	मंजुल

अर्थात् यहाँ भी उपर्युक्त तर्क के आधार पर +अज तथा +अल प्रत्यय मानना होगा और तब हमें 'वारि+अज' से 'वारिअज' तथा 'मंजु+अल' से 'मंजुअल' शब्द मिलेंगे वारिज तथा मंजुल नहीं। इन शब्दों में तब हमें 'वारिअज', 'मंजुअल' शब्द बनाने होंगे और फिर किसी नियम से 'अ' का लोप दिखाना होगा जो एक प्रकार से अवैज्ञानिक होगा।

इस समस्या का समाधान यही है कि हम यह मानें कि हिंदी के सभी शब्द स्वरांत हैं अर्थात् शब्द की मूल आंतरिक संरचना में एक 'अ' विद्यमान है और उच्चारण के स्तर पर उसका लोप कर दिया जाता है।

कारण-2

शब्दों के अंत में अ-स्वर की सत्ता स्वीकार करने के अन्य कारणों में सबसे महत्वपूर्ण कारण है हिंदी की अपनी ध्वनि-व्यवस्था। श्रीवास्तव (1995) के अनुसार 'ध्वनि व्यवस्था न केवल स्वनिम एवं उनके अंतःसंबंधों के आधार पर बनती है, बल्कि भाषा में जो स्वनिमिक नियम हैं उनके द्वारा भी नियंत्रित होती है।'

उदाहरण के लिए हिंदी की अनुस्वार ध्वनि की स्थिति पर ध्यान दीजिए। आप जानते हैं कि हिंदी में अनुसार सदैव स्वर के बाद आता है और उसके बाद की (परवर्ती) ध्वनि या तो कोई व्यंजन होती है या शून्य जैसे हिंदी (हिन्दी), चंपा (चम्पा), पंकज (पङ्कज) तथा स्वयं (स्वयम्)।

ड़ाँ तक 'अनुस्वार' के उच्चारण संबंधी नियम की बात है हिंदी में अनुस्वार शब्द के मध्य में पने आगे आने वाले व्यंजन का तुल्य स्थानिक रूप ग्रहण कर लेता है अर्थात् अपने आगे ने वाले व्यंजन के वर्ग का नासिक्य व्यंजन बन जाता है यथा :

हिंदी	~	हिन्दी	पंडित	~	पण्डित
चंपा	~	चम्पा	चंचल	~	चञ्चल
गंगा	~	गङ्.गा			

ा यदि अनुस्वार शब्द के अंत में आता है तो सदैव 'म्' व्यंजन के रूप में उच्चरित होता है से स्वयं (स्वयम्), अहं (अहम्)। इसी बात को हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि दांत में आने वाले अनुस्वार (म) के बाद यदि व्यंजन से शुरू होने वाला कोई दूसरा शब्द ता है तो यह 'म्' उस व्यंजन के उच्चारण स्थान के अनुरूप अपना स्वरूप ग्रहण कर लेता जैसे :

सम् + ताप = संताप (सन्ताप)
सम् + निहित = संनिहित (सन्निहित)
सम् + गीत = संगीत (संङ्.गीत)
सम् + लाप = सन्लाप (संलाप)
सम् + रचना = सन्रचना (संरचना)

तु यदि 'सम' (अर्थात् बराबर) नाम, काम आदि शब्दों को भी हम व्यंजनांत मान लेंगे तब नुस्वार संबंधी नियम उस पर भी घटित होना चाहिए। परंतु ऐसा नहीं होता, देखिए दाहरण:

सम + ता	=	समता	सम + रूप	=	समरूप
सम + तुल्य	=	समतुल्य	सम + दर्शी	=	समदर्शी
सम + कोण	=	समकोण			

ड़ाँ प्रश्न उठता है कि क्या कारण है कि उपसर्ग 'सम+' के बाद ताप आता है तो वह सम् ताप) बनता है पर जब 'सम' के बाद + ता या तुल्य शब्द आते हैं तो 'सम' का 'म' पना रूप नहीं बदलता। इसका कारण यही है कि अनुस्वार वाले शब्द म-कारान्त है जबकि य शब्द स्वरांत हैं। अनुस्वार का नियम 'सम', 'काम', 'नाम' जैसे शब्दों पर इसीलिए लागू हीं होता क्योंकि उनकी आंतरिक संरचना में एक अ-स्वर विद्यमान है।

ारण-3

दी के प्रत्येक शब्द की मूल संरचना में अ-स्वर की सत्ता स्वीकार करने या उन्हे स्वरांत नने के समर्थन में हिंदी की मूर्धन्य ध्वनियों के नियम को भी आधार बनाया जा सकता है। न्य-ध्वनियों की समस्या' संबंधी शीर्षक के अंतर्गत आप देखेंगे कि हिंदी में दो स्वरों के य में जब 'ड/ढ' व्यंजन आ जाते हैं तो उनका उच्चारण क्रमशः 'ड़/ढ़' के रूप में बदल ता है। जैसे :

बुड्ढा ~ बूढ़ा　　　पाण्डे ~ पाँड़े
गड्ढा ~ गढ़ा　　　ढाई ~ अढ़ाई

तु हिंदी में अनेक शब्द ऐसे भी हैं जिनमें शब्दांत में हमें 'ड़/ढ़' ध्वनियाँ दिखाई देती हैं से—जोड़, मोड़, रूढ़, पहाड़ आदि।

दे हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि शब्द की मूल संरचना में (आंतरिक संरचना में) तो वल 'ड/ढ' व्यंजनों की सत्ता है और 'ड़/ढ़' में उनका परिवर्तन दो स्वरों के मध्य में उठाने

के कारण होता है तब हमें हिंदी के सभी शब्दों को स्वरांत मानना होगा और ज़ोड़, रूढ़ आदि शब्दों की व्युत्पत्ति इस प्रकार दिखानी होगी :

जोड़ (ज्+ओ+ड्+अ)

मोड़ (म्+ओ+ड्+अ)

रूढ़ (र्+ऊ+ढ्+अ)

परंतु यदि इन शब्दों को हम व्यंजनांत मान लेते हैं तो मूर्धन्य ध्वनियों 'ड़/ढ़' की स्थिति को स्पष्ट कर पाना संभव न होगा।

शब्द मध्य में अ-लोप की स्थिति

जिस प्रकार हिंदी के शब्दांत में आने वाले अ का उच्चारण में लोप कर दिया जाता है उसी प्रकार शब्द के मध्य में भी अनेक स्थानों पर हमें अ-लोप की स्थिति मिलती है। देखिए निम्नलिखित उदाहरण :

क-वग		ख-वर्ग		उच्चरित रूप
फिसलना	-	फिसला	~	फिस्ला
सिमटना	-	सिमटा	~	सिम्टा
सनक	-	सनकी	~	सन्की
चमक	-	चमकीला	~	चम्कीला
बनारस	-	बनारसी	~	बनार्सी
नमक	-	नमकीन	~	नम्कीन

उपर्युक्त शब्दों के उच्चारण को ध्यान में रखते हुए मध्य अ-लोप का नियम इस प्रकार लिखा जा सकता है :

अ → Ø / VC — C $\bar{V}$

Ø = शून्य

V = स्वर (vowel)

C = व्यंजन (consonent)

$\bar{V}$ = दीर्घ स्वर

अर्थात् हिंदी के शब्दों में मध्य में आने वाले उस अ का लोप कर दिया जाता है जिसके पूर्व एक स्वर तथा व्यंजन हों तथा उसके बाद में व्यंजन तथा दीर्घ स्वर हों।

अ-लोप संबंधी इस नियम के स्पष्टीकरण के संदर्भ में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखिए :

1. यह नियम शब्द के पहले अक्षर पर लागू नहीं होगा। अर्थात् यहाँ, तभी, अभी, नदी, गली, परी आदि शब्दों के पहले अक्षर में आने वाले 'अ' स्वर का उच्चारण में कभी लोप नहीं होगा क्योंकि नदी या गली शब्दों की संरचना 'न्+अ+द्+ई' तथा 'ग्+अ+ल्+ई' है। इन शब्दों में 'अ' स्वर के पूर्व केवल एक व्यंजन आ रहा है जब कि नियम के अनुसार व्यंजन के पूर्व एक स्वर भी होना आवश्यक है।

2. यह भी ध्यान रखिए कि यदि अ-स्वर के पूर्व एक से अधिक व्यंजन हैं तब भी यह नियम लागू नहीं होगा जैसे :

क-वग		ख-वर्ग
बिस्तर	~	बिस्तरों (ब्+इ+स्+त्+अ+र्+ओं)
दर्पण	~	दर्पणों (द्+अ+र्+प्+अ+ण्+ओं)
चप्पल	~	चप्पलें
मच्छर	~	मच्छरों
अक्षर	~	अक्षरों

3. इसी प्रकार 'अ' स्वर के बाद भी यदि एक से अधिक व्यंजन आ जाते हैं तब भी 'अ' स्वर का लोप नहीं होगा जैसे :

पलंग	~	पलंगों	दरख्त	~	दरख्तों

4. यह भी ध्यान रखने की बात है कि 'अ' स्वर का लोप तभी होगा जब अ के बाद आने वाला स्वर दीर्घ हो जैसे :

लड़कियाँ	~	लड़्की	सिमट	~	सिम्टा
चमक	~	चम्कीला	फिसल	~	फिस्ला

5. साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अ-लोप का यह नियम तभी लगेगा जब इसके परिवेश में इसके बायीं ओर कोई रूपिम-सीमा न हो जैस निम्नलिखित शब्दों को देखिए :

बेकसूर	कनकटा
अनकहा	अनमना

इन शब्दों को देखकर लगता है कि इनका उच्चारण क्रमशः बेक्सूर, अनक्हा, कनक्टा, अनम्ना जैसा होना चाहिए था। पर ऐसा इसलिए नहीं होता क्योंकि इन शब्दों की रचना दो रूपिमों के योग से हुई है अर्थात् 'अ' स्वर के पूर्व बायीं ओर रूपिम् सीमा विद्यमान है। इनकी रचना इस प्रकार की है :

बे+कसूर	कन+कटा
अन+कहा	अन+मना

8.5.2 उत्क्षिप्त ध्वनियाँ : ड़/ढ़ की समस्या

हिंदी में ट-वर्ग की सभी ध्वनियाँ ट, ठ, ड, ढ, ण, ड़ तथा ढ़ मूर्धन्य ध्वनियाँ हैं। इनमें ट, ड, ढ, ण स्पर्शी हैं तथा 'ड़ तथा ढ़' उत्क्षिप्त। विद्वानों के बीच विवाद इस बात को लेकर रहा है कि हिंदी के 'ड़/ढ़' व्यंजनों को स्वतंत्र स्वनिम माना जाए या यह माना जाए कि ये क्रमशः ड/ढ ध्वनियों के ही परिवर्त (Variants) हैं। परंपरागत स्वनिम वैज्ञानिक प्रायः यही मानकर चले हैं कि 'ड़/ढ़' को हिंदी में स्वतंत्र स्वनिम माना जाए परंतु 'निष्पादक स्वनिम-वैज्ञानिक' इन लोगों के मत से सहमत नहीं हैं।

परंपरागत स्वनिम-वैज्ञानिक दृष्टि : परंपरागत स्वनिम वैज्ञानिकों में भी दो प्रकार के भाषाविद् हैं। एक वर्ग तो उन भाषाविदों का है जो यह मानते हैं कि 'ड़/ढ़' स्वतंत्र स्वनिम है तथा दूसरे वर्ग में वे भाषाविद आते हैं जो यह मानते हैं कि हिंदी की 'ड़/ढ़' ध्वनियाँ स्वतंत्र स्वनिम न होकर क्रमशः 'ड/ढ' स्वनिमों के संस्वन हैं। पहले वर्ग के प्रमुख भाषाविदों में कामता प्रसाद गुरू (1920), कैलोग (1875), अशोक केलकर (1968) आदि के नाम प्रमुख हैं तथा दूसरे वर्ग में आने वाले विद्वानों में कैलाश चंद्र भाटिया, वी.रा. जगन्नाथन, मसूद हुसैन आदि हैं। जो भाषाविद 'ड़/ढ़' ध्वनियों को स्वतंत्र स्वनिम मानते हैं उन लोगों ने अपने समर्थन में निम्नलिखित प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जहाँ 'ड/ढ' व्यंजन भी उसी वातावरण में आते हुए देखे जा सकते हैं जिस वातावरण में 'ड़/ढ़' आते हैं (अर्थात् दो स्वरों के मध्य) :

वर्ग-I

संस्कृत से आगत तत्सम शब्द जिनमें ड/ढ व्यंजन 'ड़/ढ़' के व्यतिरेक में आते दिखाई देते हैं:

1. आ+ड्+अ+म्+ब्+अ+र+	(आडम्बर)	-	आ+ड़्+ऊ	(आड़ू)
2. त्+अ+ड्+इ+त+	(तडित)	-	त्+आ+ड़्+ई	(ताड़ी)
3. उ+ड्+उ	(उडु)	-	उ+ड़+ऊँ	(उड़ूँ)

वर्ग-II

अंग्रेज़ी से आगत वे शब्द जिनमें ड/ढ या तो दो स्वरों के मध्य दिखाई देते हैं अथवा शब्दांत में जो वस्तुतः 'ड़/ढ़' के आने का वातावरण है :

1. स्+ओ+ड्+आ(सोडा) - ज्+ओ+ड़+आ (जोड़ा)
2. प्+ऍ+ड (पॅड) - प्+ए+ड़ (पेड़)
3. म्+ऊ+ड (मूड) - म्+ऊँ+ड़ (मूँड़)

वर्ग-III

व्युत्पन्न शब्द अर्थात् संयुक्त शब्द (compound words) जिनमें 'ड/ढ' दो स्वरों के बीच दिखाई देते हैं जैसे :

1. अ+डिग (अ+ड्+इ+ग)
2. नि+ढाल (न्+इ+ढ्+आ+ल)
3. वि+डम्बना (व्+इ+ड्+अ+म्+ब्+अ+न्+आ)

वस्तुतः परंपरागत वैयाकरणों या भाषाविदों द्वारा दिए गए इस प्रकार के शब्दों को ड/ढ तथा ड़/ढ़ की स्वनिमिक स्थिति को स्पष्ट करने के लिए आधार नहीं बनाया जा सकता। इन लोगों के तर्कों को आगे चलकर निष्पादक स्वनिम वैज्ञानिकों ने इस आधार पर स्वीकृत नहीं किया क्योंकि किसी भी भाषा की समग्र स्वनिमिक व्यवस्था को उसी भाषा के शब्दों के आधार पर स्पष्ट किया जाना चाहिए न कि दूसरी भाषा से आगत शब्दों के आधार पर, भले ही ये शब्द अंग्रेजी आदि योरोपीय भाषाओं से आए हों अथवा संस्कृत से। साथ ही व्युत्पन्न शब्दों अथवा संयुक्त शब्दों को भी हम आधार नहीं बना सकते क्योंकि ये दो भिन्न रूपिमों से मिलकर बनते हैं और इन दो रूपिमों के बीच 'रूपिम सीमा' के आ जाने से भी ऐसे शब्दों पर नियम नहीं लग सकता।

निष्पादक स्वनिम वैज्ञानिक दृष्टि : निष्पादक स्वनिम विज्ञान के सिद्धांतों को आधार बनाकर 'ड/ढ' व्यंजनों की समस्या पर विचार करने वाले प्रमुख भाषाविद हैं - रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, नारंग तथा बेकर, मंजरी ओहाला, पी.बी. पंडित आदि। इनमें इस समस्या को बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषित करने का प्रमुख श्रेय प्रो. श्रीवास्तव को ही जाता है। उनके विचारों को प्रायः सभी भाषाविदों ने स्वीकार भी कर लिया है।

इन भाषाविदों की धारणा यही है कि हिंदी में 'ड़/ढ़' व्यंजनों का अस्तित्व केवल शब्द की बाह्य संरचना पर ही है। शब्द की आंतरिक संरचना में तो क्रमशः 'ड/ढ' व्यंजन ही हैं जो दो स्वरों के मध्य आ जाने के कारण क्रमशः ड़/ढ़ में परिवर्तित हो जाते हैं। अर्थात् यह माना गया कि मूलतः हिंदी में ड/ढ व्यंजनों का ही शब्द की मूल संरचना में स्थान है। ये व्यंजन जब भी कभी दो स्वरों के मध्य में आ जाते हैं उच्चारण के स्तर पर 'ड' का उच्चारण 'ड़' तथा 'ढ' का उच्चारण 'ढ़' हो जाता है।

नियम ड/ढ → ड़/ढ़ / स्व — स्व

इस नियम के समर्थन में निम्नलिखित उदाहरण देखे जा सकते हैं :

	ड/ढ		ड़/ढ़
वर्ग (क)	डर	-	पहाड़ी (प्+अ+ह्+आ+ड़+ई)
	ढंग	-	घोड़ा
	अण्डा	-	घड़ा
	अड्डा	-	बड़ा
वर्ग (ख)	बुड्ढा	-	बूढ़ा
	गड्ढा	-	गढ़ा
	ढाई	-	अढ़ाई

पर्युक्त उदाहरणों में हम देख सकते हैं कि ड/ढ व्यंजन या तो शब्द के आरंभ में आ रहे हैं थवा संयुक्त व्यंजनों के रूप में दो स्वरों के मध्य तो 'ड़/ढ़' ध्वनियाँ ही आ रही हैं। इस यम को हम इस प्रकार लिख सकते हैं :

ड/ढ → ड़/ढ़ / स्वर —— स्वर

र्यात् ड/ढ व्यंजन जब दो स्वरों के मध्य आते हैं तो क्रमशः ड़/ढ़ में परिवर्तित हो जाते हैं। र्न्य ध्वनियों का यह नियम हिंदी की अ-लोप की समस्या के समाधान में भी अपना त्वपूर्ण योगदान देता है। इस बात को समझने के लिए निम्नलिखित उदाहरण देखिए :

वर्ग-क	1.	बिगड़ा (ब्+इ+ग्+ड़+आ)	वर्ग-ख	5.	मोड़ (म्+ओ+ड़)
	2.	लड़का (ल्+अ+ड़+क्+आ)		6.	जोड़(ज्+ओ+ड़)
	3.	लकड़ी (ल्+अ+क्+ड़+ई)		7.	बाढ़ (ब्+आ+ढ़)
	4.	तड़पन (त्+अ+ड़+प्+अ+न)		8.	पहाड़ (प्+ह्+आ+ड़)

: 'क' तथा वर्ग 'ख' के उपर्युक्त शब्दों की बाह्य संरचना को देखा जाए तो कोई भी यह ; सकता है कि इन शब्दों में 'ड़/ढ़' व्यंजन दो स्वरों के मध्य नहीं आ रहे। परंतु हमें शब्द बाह्य संरचना पर उतना ध्यान नहीं देना जितना उसकी मूल या आंतरिक संरचना पर। ाड़ा', 'पेड़' आदि शब्द कैसे बने यह जानने के लिए पहले हमें उनकी आंतरिक संरचना ानी होगी जो इस प्रकार होगी :

बिगड़ा	पेड़
[ब्+इ+ग्+अ+ड्+आ]	[प्+ए+ड+अ]

ं आंतरिक संरचना में ड़ व्यंजन नहीं है बल्कि ड ही है। चूँकि 'ड' दो स्वरों के मध्य आ ा है अतः यह 'ड़' में परिवर्तित हो जाता है। बाद में 'बिगड़ा' शब्द पर शब्द मध्य अ-लोप नियम लगता है जिसके अनुसार 'मध्य में आने वाले उस 'अ' का लोप हो जाता है ाके बाद व्यंजन तथा दीर्घ स्वर आते हों (अ → ∅ / VC — C V)। इसी प्रकार ' शब्द में अंत-अ-लोप का नियम लगता है जहाँ शब्दान्त में आने वाले 'अ' का लोप हो ा है (अ → ∅ / — #)। इन शब्दों की उत्पत्ति को इस प्रकार दिखा सकते हैं :

ारिक संज्ञा	[ल्+अ+ड्+अ+क्+आ]	[म्+ओ+ड्+अ]
म-I उत्क्षिपतीकरण →ड़/स्व-स्व	[ल्+अ+ड्+अ+क्+आ]	[म्+ओ+ड्+अ]
म-II मध्य-अ-लोप →∅/VC—CV	[ल्+अ+ड़+अ+क्+आ]	[म्+ओ+ड्+अ]
म-III अन्त्य अ-लोप →∅/—#	[ल्+अ+ड़+अ+क्+आ]	[म्+ओ+ड़]
	लड़का	मोड़

प्रकार यह ध्यान रखिए कि हिंदी में 'ड़/ढ़' व्यंजन वस्तुतः ड/ढ़ व्यंजनों के दो स्वरों में जाने के कारण बने रूप हैं। शब्दार्थ के धरातल पर एक दूसरे से संबद्ध निम्नलिखित शब्द इसी बात को सिद्ध कर रहे हैं :

ढाई ~ अढ़ाई गड्ढा ~ गढ़ा बुड्ढा ~ बूढ़ा

त् 'ढ' व्यंजन या तो शब्द के आरंभ में आ रहा है या संयुक्त व्यंजन के रूप में, जब भी दो स्वरों के मध्य आ जाता है उसका उच्चारण क्रमशः 'ढ़' हो जाता है। यही बात शब्द ल्पक की अनुस्वार-अनुनासिक की स्थिति में भी देखी जा सकती है जैसे :

पाण्डे ~ पाँड़े भोण्डा ~ भोंड़ा
हाण्डी ~ हाँड़ी साण्ड ~ साँड़

वस्तुतः देखा जाए तो ये एक ही मूल शब्द के दो रूप हैं जिनका प्रयोग विकल्पवत होता है। जहाँ अनुस्वार (व्यंजन) के रूप में प्रयोग है वहाँ 'ण्ड' के रूप में वह उच्चरित होता है पर जैसे ही अनुनासिकता की स्थिति बनती है तो दो स्वरों के बीच आ जाने के कारण उसका उच्चारण 'ड़' हो जाता है। जैसे प्+आँ+ड़+ए।

8.5.3 नासिक्य ध्वनियों की समस्या

नासिक्य ध्वनियों के विषय में आप पहले भी पढ़ चुके हैं। इन ध्वनियों के उच्चारण में वायु मुख के साथ-साथ नासिका के मार्ग से भी बाहर निकलती है। इस दृष्टि से स्वर ध्वनियाँ भी नासिक्य हो सकती हैं तथा व्यंज़न भी। हिंदी में सभी पंच-वर्गीय व्यंजनों के अंतिम व्यंजन - ङ, ञ, ण, न तथा म नासिक्य व्यंजन हैं तथा 'अ' से लेकर 'औ' तक के सभी स्वरों का उच्चारण भी नासिका से वायु को बाहर निकाल कर किया जा सकता है।

हिंदी में दो प्रकार की नासिक्य ध्वनियाँ मिलती हैं :
अनाश्रित नासिक्य ध्वनियाँ : अनाश्रित नासिक्य ध्वनियों से तात्पर्य उन व्यंजन ध्वनियों से है जिनकी उच्चारणात्मक प्रकृति अपने परिवेश की अन्य ध्वनियों से प्रभावित नहीं होती और प्रायः भाषा में ये स्वतंत्र रूप से उच्चरित की जा सकती हैं।

हिंदी में 'न्', 'म्' तथा 'ण' पूर्णतः अनाश्रित नासिक्य व्यंजन हैं जो परस्पर व्यतिरेक में आने के कारण स्वनिमिक स्तर के व्यंजन हैं1 इनमें न् तथा म् तो शब्द के आदि, मध्य तथा अंत तीनों ही स्थानों पर प्रयुक्त होते हैं जब कि 'ण' व्यंजन शब्द के आरंभ में कभी नहीं आता जैसे :

न्	-	नल,	काना	भोजन
म्	-	मन	कमी	आम
ण्	-	×	प्रणाम	प्राण

'ण' व्यंजन के संबंध में एक बात और ध्यान देने की है कि यह केवल तत्सम शब्दों में ही आता है, आम बोल चाल के शब्दों में इसका उच्चारण 'न' के रूप में ही किया जाता है जैसेः

प्राण	-	प्रान	बाण	-	बान
कण	-	कन	अरुण	-	अरुन

म/न व्यंजनों के महाप्राण रूप : हिंदी ध्वनियों के विकास-क्रम में आज हिंदी में 'म/न' ध्वनियों के महाप्राण रूप 'म्ह/न्ह' भी विकसित हो गए हैं जैसे कन्हाई, कुम्हार, तुम्हें आदि। कुछ स्थितियों में चूँकि इनके व्यतिरेकी युग्म भी मिल जाते हैं अतः 'म्ह/न्ह' को स्वतंत्र स्वनिम मानने की बात भी की जाने लगी है जैसे :

कुमार	-	कुम्हार	कान	-	कान्ह

आश्रित नासिक्य ध्वनियाँ : आश्रित नासिक्य ध्वनियों के अंतर्गत हिंदी में अनुस्वार (N) तथा अनुनासिक ध्वनियाँ मिलती हैं। अनुस्वार जहाँ एक आश्रित व्यंजन है वहीं अनुनासिक स्वर है। चूँकि इन दोनों का उच्चारण अपने परिवेश की ध्वनियों से प्रभावित होता है और ये स्वतंत्र रूप में अलग से उच्चरित नहीं की जा सकतीं इसलिए इनको आश्रित कहा जाता है। आइए अब अनुस्वार तथा अनुनासिक दोनों प्रकार की ध्वनियों की प्रकृति को विस्तार से समझा जाए।

अनुस्वार : अनुस्वार वे आश्रित नासिक्य व्यंजन है जिनका उच्चारण अपने परिवेश की ध्वनियों से निर्धारित होता है। स्वनिमिक व्यवस्था के संदर्भ में इनकी स्थिति 'आर्कीस्वनिम' (N*) की

सीलिए संस्कृत के वैयाकरणों ने लेखन व्यवस्था में इनके लिए [-] चिह्न बनाया है। स्विनिम के रूप में विद्यमान अनुस्वार हिंदी में विभिन्न परिवेशों में प्रायः ङ्, ञ, ण्, न् म् के रूप में उच्चरित किया जाता है। हिंदी में अनुनासिक दो परिवेशों में प्रतिफलित है :

शब्दांत में (V — #) : अनुस्वार सदैव 'म्' के रूप में उच्चरित होता है जैसे स्वयं ~ स्वयम्, अहं ~ अहम् वयं ~ वयम्, सं ~ सम् आदि।

व्यंजनपूर्व (V — C) : इस स्थिति में अनुस्वार (N*) अपने परवर्ती व्यंजन से प्रभावित होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो कह सकते हैं कि यह अपने परवर्ती व्यंजन के वर्ग के नासिक्य व्यंजन का रूप ग्रहण कर लेता है जैसे:

1.	पंकज	~ पङ्कज		गंगा	~	गङ्गा
	पंखा	~ पङ्खा				
2.	चंचल	~ चञ्चल		पंजाब	~	पञ्जाब
	पंछी	~ पञ्छी				
3.	कंटक	~ कण्टक		कंठी	~	कण्ठी
	अंडा	~ अण्डा				
4.	शांत	~ शान्त		गांधी	~	गान्धी
	हिंदी	~ हिन्दी		पंथ	~	पन्थ
5.	चंपा	~ चम्पा		खंभा	~	खम्भा
	अंबा	~ अम्बा				

नों नियमों को हम इस प्रकार लिखकर दिखा सकते हैं :

अनुस्वार (N*) → [नासिक्य + द्वयोष्ठ्य] / स्वर — #
अर्थात् अनुस्वार जब शब्दांत (#) में आता है तो द्वयोष्ठ्य नासिक्य अर्थात् 'म्' बन जाता है।

अनुस्वार (N*) → [नासिक्य + तुल्य स्थानीय] / स्वर — व्यं
अर्थात् व्यंजन पूर्व इसकी स्थिति अपने परवर्ती व्यंजन के अनुरूप तुल्य स्थानीय हो जाती है।

ार संबंधी ये नियम किसी एक शब्द के भीतर (रूपिम सीमा के अंतर्गत) भी काम करते ा रूपिम सीमा के बाहर भी। अर्थात् अंतरा-रूपिमिक स्थिति (Intra-morphemic tion) में भी तथा अंतर-रूपिमिक स्थिति (Inter-morphemic situation) में भी

अंतरा-रूपिमक स्थिति : अर्थात् किसी एक ही रूपिम के अंतर्गत जैसे :

पंकज	~ पङ्कज	चंपा	~ चम्पा
पंडित	~ पण्डित	अहं	~ अहम्
कंचन	~ कञ्चन		

अंतर-रूपिमिक स्थिति

(क) सं (सम्)	+ तोष ~ सन्तोष		+ चय ~ सञ्चय
	+ कट ~ सङ्कट		+ बोधन ~ सम्बोधन

	+ गीत	~	सड्.गीत	+ गीत	~	सड्.गीत
(ख) अहं (अहम्)	+ ता	~	अहन्ता	+ भाव	~	अहम्भाव
	+ कार	~	अहड्.कार			

(3) य, र, ल, व ध्वनियों के पूर्व जब अनुस्वार आता है या दूसरे शब्दों में अनुस्वार के बाद परवर्ती व्यंजन के रूप में यदि य, र, ल, व व्यंजन होते हैं तो वह उनके अनुनासिक रूप में भी उच्चरित हो सकता है और तुल्य स्थानीय व्यंजन के रूप में भी जैसे :

सं (सम्)	+ यम	~	सँय्यम	+ लाप	~	सँल्लाप
	+ योग	~	सँय्योग	+ रचना	~	सँर्रचना
	+ वाद	~	सँव्वाद			

केवल 'राज' धातु के पूर्व अनुस्वार 'म्' रूप में प्रतिफलित होता है जैसे : सम्राट, साम्राज्य आदि।

कुछ विद्वानों की आपत्ति : कुछ विद्वानों ने ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जहाँ अनुस्वार तथा अनाश्रित नासिक्य ध्वनियाँ परस्पर व्यतिरेक में दिखाई देती हैं जैसे :

(क)	चम्का	~	चंगा	(ख)	चिन्मय ~ वाड्.मय	
	सन्की	~	शंका		सन्मति ~ दिड्.नाद	
	जान्की	~	जंघा			

'क' वर्ग के शब्दों चमका, सनकी, जानकी के उच्चारणात्मक रूपों को ये विद्वान चम्का, सन्की तथा जान्की मान लेते हैं। तथा वर्ग 'ख' के उदाहरणें के आधार पर वे यह कहना चाहते हैं कि व्यंजन पूर्व स्थिति में केवल 'तुल्यस्थानीय नासिक्य' ही नहीं आते बल्कि 'विषम स्थानीय नासिक्य' भी आ सकते हैं। अतः अनुस्वार का वितरण केवल V—C तक ही नहीं माना जा सकता।

समाधान : वस्तुतः इन विद्वानों की कठिनाई यही है कि ये शब्द की बाह्य संरचना या उसके उच्चारणात्मक रूप तक ही अपने को सीमित किए रखना चाहते हैं। उपर्युक्त वर्ग 'क' के शब्दों के बारे में हम कह सकते हैं कि इन शब्दों की मूल संरचना चमका, सनकी या जानकी नहीं है बल्कि चमका (च्+अ+य्+अ+क्+आ), सनकी (स्+अ+न्+अ+क्+ई) तथा (ज्+आ+न्+अ+क्+ई) हैं और 'मध्य-अ-लोप के नियम' (अ→∅ / VC—CV) के आधार पर मध्य के 'अ' का लोप हो गया है। स्पष्ट है कि इन सभी शब्दों की मूल संरचना में नासिक्य व्यंजन और उसके परवर्ती व्यंजन के बीच एक 'अ' की सत्ता है। यह तथ्य इस आधार पर प्रमाणित किया जा सकता है कि जिन शब्दों से ये शब्द बने हैं उन सबकी मूल संरचना में 'अ' विद्यमान था जैसे :

चमक+आ → चम्का   जनक+ई → जान्की
सनक+ई → सन्की

यदि इन शब्दों की मूल संरचना में 'अ' की सतता मानी जाएगी तो निश्चित ही इन शब्दों को हम चंगा, शंका या जंघा के समकक्ष नहीं रख सकते जिनमें अनुस्वार तथा परवर्ती व्यंजन के बीच कोई भी स्वर नहीं आ रहा।

जहाँ तक 'ख-वर्ग' के शब्दों का प्रश्न है यदि ध्यान से देखा जाए तो इन शब्दों की मूल संरचना में 'नासिक्य व्यजन' की सत्ता है ही नहीं। उच्चारण स्तर पर जो नासिक्य व्यंजन यहाँ आए हैं वे संस्कृत के विशिष्ट संधि नियमों के कारण है। जैसेः

वाङ्.मय =	वाक्मय	समति	= सत्+मति
दिङ्.नाद =	दिक्नाद	चिन्मय	= चित्मय

वस्तुतः यहाँ संस्कृत की संधि के विशिष्ट नियम काम कर रहे हैं। स्पर्शी व्यंजन के बाद यदि कोई नासिक्य व्यंजन आता है तो वह अपने ही वर्ग के नासिक्य का रूप ले लेता है।

अनुनासिकताएँ : अनुनासिकता स्वरों का गुण है। नासिक्य रंजित स्वर ही अनुनासिक कहे जाते हैं। हिंदी में सभी मौखिक स्वर अनुनासिक हो सकते हैं जैसेः

अ ~ अँ	फँस, हँस	ऊ ~ ऊँ	ऊँट, मूँगा
आ ~ आँ	आँख, गाँव	ए ~ एँ	में, गेंद
इ ~ इँ	बिंदिया, सिंचाई	ऐ ~ ऐं	मैं, भैंस
ई ~ ईं	खींच, सींच	ओ ~ ओं	चोंच, गोंद
उ ~ उँ	कुँआ, उँगली	औ ~ औं	चौंकना, भौंकना

हिंदी में लिपि चिह्न के रूप में अनुनासिकता को चंद्र बिंदु [ँ] से लिखा जाता है। हाँ, यदि स्वर के ऊपर मात्रा चिह्न हो तो चंद्र बिंदु के स्थान पर इसे बिंदु से ही लिखे जाने की व्यवस्था है।

हिंदी में अनुनासिकता तीन संदर्भों में देखी जा सकती है :

1. विभक्तिपरक संदर्भ
2. स्वनिमिक संदर्भ
3. स्वनिक संदर्भ

1. **विभक्तिपरक संदर्भ :** इस संदर्भ में अनुनासिकता संज्ञा तथा क्रिया पदों को बहुवचन बनाने का कार्य करती है जैसे :

संज्ञा पद	चिड़िया ~ चिड़ियाँ		बहू	~ बहुएँ
	नदी ~ नदियाँ		बच्चे	~ बच्चों (तिर्यक रूप)
क्रिया पद	है ~ हैं		गयी	~ गयीं
	थी ~ थीं			

2. **स्वनिमिक संदर्भ :** हिंदी में मौखिक स्वर तथा अनुनासिक स्वर व्यतिरेक में भी आते हैं। देखिए निम्नलिखित न्यूनतम युग्म :

गोद	~ गोंद	भाग	~ भाँग
सास	~ साँस	आधी	~ आँधी
चौक	~ चौंक		

3. **स्वनिक संदर्भ :** हिंदी में कुछ शब्दों में अनुनासिकता केवल उच्चारण के स्तर पर ही कार्य करती है। नासिक्य व्यंजनों के परिवेश में मौखिक स्वर सानुनासिक हो जाते हैं जैसे :

नाम ~ (नाँम)   मान ~ (माँन)   कान ~ (काँन)

	मूलशब्द	अ-लोप वाले शब्द
1.	सड़क (स्+अ+ड़+अ+क)	सड़कें (स्+अ+ड़्+अ+क्+एँ)
2.	नमक (न्+अ+म्+अ+क)	नमकीन (न्+अ+म्+अ+क्+ई+न)
3.	वापस (व्+आ+प्+अ+स)	वापसी (व्+आ+प्+अ+स्+ई)
4.	फिसल (फ्+इ+स्+अ+ल)	फिसला (फ्+इ+स्+अ+ल्+आ)

उपर्युक्त सभी शब्दों में जहाँ अ-लोप दिखाई दे रहा है वहाँ उसका पूर्ववर्ती और परवर्ती व्यंजन 'व्यंजन गुच्छ' न होकर एकल स्वनिम ही है।

इसके विपरीत नीचे के शब्दों पर ध्यान दीजिए। इन सभी शब्दों में व्यंजन गुच्छ आ रहे हैं। यहाँ अ-लोप की स्थिति नहीं होती जैसे :

पूर्ववर्ती व्यंजन-गुच्छ

दर्शन (द्+अ+र्+श+अ+न) → दर्शनों (द्+अ+र्+श+**अ**+न्+ओं)

बंदर (ब्+अ+न्+द+अ+र) → बंदरों (ब्+अ+न्+द+**अ**+र्+ओं)

बिस्तर (ब्+इ+स्+त्+अ+र) → बिस्तरों (ब्+इ+स्+त्+**अ**+र्+ओं)

पुस्तक (प्+उ+स्+त्+अ+क)→ पुस्तक (प्+उ+स्+त्+**अ**+क्+एँ))

इन शब्दों में 'अ-लोप' इसलिए नहीं हुआ क्योंकि 'अ' व्यंजन के पूर्व व्यंजन-गुच्छ आ रहा है। इसी तरह 'अ' के बाद में यदि व्यंजन-गुच्छ आता है तो भी 'अ' स्वर का लोप नहीं होता जैसे :

पर्ववर्ती व्यंजन गुच्छ

परामर्श (प्+अ+र्+आ+म्+अ+र्+श) → परामर्शों (प्+अ+र्+आ+म्+**अ**+र्+श्+ओं)

प्रयत्न (प्+र्+अ+य्+अ+त्+न) → प्रयत्नों (प्+र्+अ+य्+**अ**+त्+न+ओं)

भुजंग (भ्+उ+ज्+अ+ङ्+ग) → भुजागों (भ्+उ+ज्+**अ**+ङ्+ग्+ओं)

शतरंज (श्+अ+त्+अ+र्+अ+ञ+ज) → शतरंजों (श्+अ+त्+**अ**+र्+अ+ञ+ज्+ओं)

पूर्ववर्ती तथा परवर्ती व्यंजन गुच्छ

इसी तरह निम्नलिखित शब्दों में जहाँ पूर्ववर्ती और परवर्ती व्यंजन-गुच्छ हैं 'अ-लोप का नियम' लागू नहीं होता :

निर्लज्ज (न्+इ+र्+ल्+**अ**+ज्+ज) → निर्लज्जों (न्+इ+र्+ल्+**अ**+ज्+ज+ओं)

निर्द्वंद्व (न्+इ+र्+द्+व्+**अ**+न्+द्+व) → निर्द्वंद्वी (न्+इ+र्+द्+व्+**अ**+न्+द्+व्+ई)

महाप्राण व्यंजन तथा अ-लोप का नियम

अब अ-लोप के नियम को हम उन शब्दों पर देखेंगे जहाँ महाप्राण ध्वनियाँ आती हैं। यदि महाप्राण व्यंजनों को 'व्यंजन गुच्छ' माना जाएगा तो यहाँ भी अ-लोप नहीं होना चाहिए और यदि अ-लोप होता है तो इसका अर्थ यही होगा कि 'महाप्राण व्यंजन' (चाहे वह 'अ' के पूर्ववर्ती हो या परवर्ती) 'एकल-स्वनिम' ही हैं। देखिए निम्नलिखित उदाहरण :

पूर्ववर्ती महाप्राण व्यंजन

मूल शब्द	अ-लोप वाले व्युत्पन्न शब्द
कथन (क्+अ+थ्+अ+न) →	कथनी (क्+अ+थ्+अ+न+ई)
सुभग (स्+उ+भ्+अ+ग) →	सुभगा (स्+उ+भ्+अ+ग्+ई)
बैठक (ब्+ऐ+ठ्+अ+क) →	बैठकें (ब्+ऐ+ठ्+अ+क्+एँ)
साधक (स्+आ+ध्+अ+क) →	साधक (स्+आ+ध्+अ+क्+ओं)

परवर्ती महाप्राण व्यंजन

समझ (स्+अ+म+अ+झ) → समझा (स्+अ+म्+अ+झ्+आ)

चरख (च्+अ+र्+अ+ख) → चरखा (च्+अ+र्+अ+ख्+आ)

परख (प्+अ+र्+अ+ख) → परखा ((प्+अ+र्+अ+ख्+आ)

उपर्युक्त उदाहरणें में हम देख सकते हैं महाप्राण व्यंजन के होने पर भी अ-लोप हो रहा है अतः यह कहा जा सकता है कि हिंदी में महाप्राण ध्वनियाँ व्यंजन-गुच्छ के रूप में सिद्ध नहीं हैं।

i) **शब्दारंभ में दो संयुक्त व्यंजन :** हिंदी-शब्दों की आक्षरिक संरचना पर यदि ध्यान दिया जाए तो हम देखते हैं कि हिंदी में शब्द के आरंभ में 'दो व्यंजनों' से अधिक व्यंजन नहीं आते। (अपवाद - स्त्री) जैसे :

(क) प्यार (प्+य्+आ+र्) ग्यारह (ग्+य्+आ+र्+अ+ह)
स्नान (स्+न्+आ+न) क्या (क्+य्+आ)
प्रसाद (प्+र्+अ+स्+आ+द)

इसी तरह महाप्राण व्यंजनों से बनने वाले संयुक्त व्यंजनों के उदाहरण भी हिंदी में मिल जाते हैं जैसे :

(ख) ख्याति (ख्+य्+आ+त्+इ) भ्रमण (भ्+र्+अ+म्+अ+व)
ध्रुव (ध्+र्+उ+व) ध्वजा (ध्+व्+अ+ज्+आ)

यदि महाप्राण व्यंजनों को हम 'व्यंजन-गुच्छ' मान लेते हैं तब हिंदी के इन (ख) वर्ग के शब्दों में यह मानना होगा कि शब्दारंभ में तीन व्यंजन आ रहे हैं जो हिंदी की प्रकृति के विपरीत होगा। अतः यही मानना अधिक संगत है कि हिंदी में महाप्राण व्यंजन 'एकल-स्वनिम' है।

i) इसके अलावा हिंदी में क्रिया-धातुओं के अंत में 'ना' के पूर्व कभी भी 'व्यंजन गुच्छ' नहीं आते केवल 'एकल व्यंजन' ही आते हैं जैसे करना, चलना, जाना, देना, लेना आदि। इसी तरह 'ना' के पूर्व केवल अल्पप्राण व्यंजन ही नहीं, महाप्राण व्यंजन भी आ सकते हैं जैसे - देखना, रखना, पढ़ना, बैठना, आदि।

उदाहरण यही सिद्ध करते हैं कि हिंदी के महाप्राण व्यंजन एकल स्वनिम ही हैं।

6 सारांश

तुत इकाई का उद्देश्य था आपको हिंदी भाषा की 'ध्वनि-व्यवस्था' से परिचित कराना। इसी श्य की प्राप्ति के लिए आपको संक्षेप में हिंदी के स्वरों तथा व्यंजनों का परिचय दिया गया, ी की खंडेतर ध्वनियों - अनुतान, बलाघात, संहिता, मात्रा, अनुनासिकता आदि का भी ाप में परिचय कराया गया। इसके अलावा आपको परंपरागत स्वनिम विज्ञान तथा निष्पादक नेम विज्ञान की अवधारणाओं का तुलनात्मक परिचय दिया गया है और यह भी स्पष्ट या गया कि निष्पादक स्वनिम विज्ञान के सिद्धांतों के आधार पर हम किसी भी भाषा की नेमिक व्यवस्था को विस्तार से और गहराई से स्पष्ट कर सकते हैं। निष्पादक स्वनिम ज्ञान के अंतर्गत इसकी प्रमुख संकल्पनाओं 'अभिव्यक्ति के विभिन्न स्तर', अभिलक्षण', नेमिक नियम' तथा उनकी 'लेखन विधि' का भी आपने विस्तृत जानकारी प्राप्त की।

इकाई के अंतिम खंड में हिंदी की प्रमुख स्वनिमिक समस्याओं - अ-लोप, ड़/ढ़ की समस्या, नासिक्य ध्वनियों की समस्या तथा महाप्राण व्यंजनों की समस्या का भी विस्तृत परिचय दिया गया। इन नियमों को जानकर अब अहिंदी भाषी छात्र शब्दों का मातृभाषा-भाषी के समान उच्चारण कर सकते हैं।

8.7 अभ्यास प्रश्न

1. **निबंधात्मक प्रश्न**

(1) हिंदी के स्वर और व्यंजन ध्वनियों का परिचय दीजिए।

(2) हिंदी स्वनिमिक व्यवस्था की प्रमुख समस्याओं की चर्चा कीजिए।

2. **टिप्पणी लिखिए।**

(1) खंडेतर ध्वनियाँ

(2) स्वनिम की संकल्पना

(3) हिंदी के महाप्राणा स्वनिम

(4) ध्वनि व्यवस्था और लेखन

(5) हिंदी में अ-लोप

3. **वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

अभ्यास-1

निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) अथवा गलत (x) का निशान लगाइएः

i) विवृत स्वरों के उच्चारण में मुँह सबसे कम खुलता है। (सही/गलत)

ii) सघोष ध्वनियों के उच्चारण में स्वर तंत्रियाँ झंकृत होती हैं। (सही/गलत)

iii) 'अक्षर' में सबसे मुखरित ध्वनि स्वर होती है। (सही/गलत)

iv) हिंदी-अंग्रेज़ी भाषाएँ 'तान भाषाएँ' कहलाती हैं। (सही/गलत)

v) दो ध्वनियों के बीच होने वाले क्षणिक-विराम का संबंध संहिता या संगम से है। (सही/गलत)

vi) अनुस्वार एक स्वर है तथा अनुनासिकता व्यंजनों का गुण है। (सही/गलत)

vii) 'अल्प प्राण' व्यंजनों के उच्चारण में मुख से कम मात्रा में वायु निकलती है। (सही/गलत)

viii) य, र, ल, व व्यंजन अन्तस्थ व्यंजन हैं। (सही/गलत)

अभ्यास-2

निम्नलिखित कथनों पर सही (✓) अथवा गलत (x) के निशान लगाइए।

i) समान वातावरण में परस्पर व्यतिरेक में आने वाली ध्वनियाँ स्वनिम कहलाती हैं। (सही/गलत)

ii) चॉमस्की के निष्पादक व्याकरण के प्रभाव से जो स्वनिम विज्ञान विकसित हुआ उसे निष्पादक स्वनिम विज्ञान कहा जाता है। (सही/गलत)

iii) 'आंतरिक संरचना' का संबंध भाषा-भाषी के मन से होता है। (सही/गलत)

iv) 'व्यवस्थित स्वनिकीय स्तर' की तुलना में 'भौतिक स्वनिकीय स्तर' अधिक अमूर्त है। (सही/गलत)

v) निष्पादक स्वनिम विज्ञान में स्वनिमिक नियमों को अभिलक्षणों द्वारा स्पष्ट किया जाता है। (सही/गलत)

vi) द्विचर अभिलक्षणों से ध्वनि का एक ही गुण पता चलता है। (सही/गलत)

vii) परंपरागत स्वनिम विज्ञान ने स्वनिम की सत्ता को ही नकार दिया। (सही/गलत)

viii) निष्पादक स्वनिम विज्ञान ने जिस अमूर्त स्तर की संकल्पना की उसे 'व्यवस्थित स्वनिमिक स्तर' कहा गया। (सही/गलत)

अभ्यास-3

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) परंपरागत स्वनिम विज्ञान पर .... संप्रदाय के सिद्धांतों का प्रभाव पड़ा है। (निष्पादक भाषा विज्ञान/संरचनात्मक भाषा विज्ञान)

ii) नासिक्यीकृत स्वरों को ही .... कहा जाता है। (नासिक्य स्वर/अनुस्वार/अनुनासिक)

iii) हिंदी की महाप्राण ध्वनियाँ .... हैं। (व्यंजन गुच्छ/एकल स्वनिम)

iv) हिंदी में अनुनासिकता का विकास .... से हुआ है। (नासिक्य व्यंजन/अनुस्वार)

v) हिंदी में क्रिया रूपों में 'ना' के पहले कभी भी .... नहीं आता। (व्यंजन गुच्छ/एकल स्वनिम)

तर

यास-1

गलत,
) सही,
i) सही,
) गलत,
) सही,
i) गलत,
ii) सही,
iii) सही

यास-2

सही,
) सही,
i) सही,
) गलत,
सही,
) गलत,
i) गलत,
ii) सही

अभ्यास-3

(i) संरचनात्मक भाषा-विज्ञान,
(ii) अनुनासिक,
(iii) एकल स्वनिम,
(iv) अनुस्वार,
(v) व्यंजन गुच्छ

इकाई 9 रूप, शब्द और पद

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 रूप की संकल्पना
    9.2.1 रूप के प्रकार
    9.2.2 रूपसाधक और शब्दसाधक रूप
9.3 रूपिम की संकल्पना
9.4 शब्द
    9.4.1 शब्द और अर्थ का संबंध
    9.4.2 शब्द निर्माण की आवश्यकता और प्रक्रिया
9.5 शब्द के प्रकार
9.6 शब्द वर्ग
9.7 पद की संकल्पना
9.8 सारांश
9.9 अभ्यास प्रश्न

9.0 उद्देश्य

भाषा की रचना को हम मुख्य रूप से दो भागों में बाँटते हैं। रूप विज्ञान में विभिन्न रूपों से शब्दों की रचना की जाती है। वाक्य विज्ञान इन शब्दों से पदबंध की रचना करते हैं जिससे वाक्य का एक समन्वित अर्थ प्रकट होता है। पद रूप विज्ञान और वाक्य विज्ञान का सेतु है जो वाक्य में शब्दों के प्रयोग की स्थिति स्पष्ट करता है। इस इकाई में हम रूप, शब्द, पद इन दोनों की संकल्पनाओं की चर्चा कर रहे हैं। ये विषय अपने में बहुत विशाल हैं इस कारण इस इकाई में केवल महत्वपूर्ण बातें संक्षेप में कही गई हैं। इस इकाई को पढ़ने से पहले आपसे अपेक्षा की जाती है कि आप हिंदी व्याकरण का सामान्य परिचय प्राप्त करें।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- रूप की परिभाषा कर सकेंगे और शब्द रचना में रूपों के प्रकार्य समझा सकेंगे,
- शब्द में विभिन्नता को समझने के लिए रूपिम की संकल्पना का सहारा ले सकेंगे,
- शब्द और अर्थ के संबंध की व्याख्या कर सकेंगे,
- शब्द की रचना की प्रक्रिया बता सकेंगे और विभिन्न प्रकार के शब्दों के प्रकारों की चर्चा कर सकेंगे,
- पदबंध के स्तर पर शब्द के वर्गों का प्रकार्य समझ सकेंगे, और
- पद की संकल्पना समझाते हुए वाक्य में पद का कार्य बता सकेंगे और पद परिचय दे सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

भाषा की संरचना के संदर्भ में ये दृष्टव्य है कि अर्थहीन ध्वनियों से रूप नामक सार्थक ध्वनियों से खण्डों की रचना होती है। इन रूपों से शब्दों का निर्माण किया जाता है जो वाक्य में पद के रूप में अर्थ की सृष्टि करते हैं। इस तरह ध्वनि विज्ञान भाषा का प्रारंभिक

स्तर है जिसमें अर्थ का द्योतन नहीं होता। अर्थ युक्त भाषा की शुरूआत रूपों से ही होती है। रूपों से मूल शब्द व्युत्पन्न शब्द, संयुक्त शब्द और समस्त शब्द आदि की रचना होती है। इस तरह रूप विज्ञान भाषा में शब्द रचना का परिचय देने वाला प्रारंभिक स्तर है। इस इकाई में आप रूप और शब्द के संबंधों को और शब्द और अर्थ के संबंधों को समझेंगे और रूपों और शब्दों के प्रकारों का सोदाहरण परिचय प्राप्त करेंगे।

भाषा में उक्ति या अभिव्यक्ति का तत्व है वाक्य। वाक्य शब्दों को किन्हीं व्याकरणिक नियमों के अनुसार प्रस्तुत करता है जिससे इन शब्दों के परस्पर संबंध से वाक्य का एक समन्वित अर्थ निकल सके। अगर कोई व्यक्ति भाषा के व्याकरण से परिचित न हो और 8-10 शब्दों को उच्चरित कर दे तो यह वाक्य नहीं बनेगा। कहीं-कहीं इससे अर्थ का थोड़ा आभास मिल सकता है जैसे लड़का, डंडा, कुत्ता, मार्ग क्योंकि इन शब्दों का एक संदर्भ संबंध है लेकिन अक्सर ऐसे शब्दों के साथ रखने पर कोई अर्थ नहीं निकलता जैसे मैं किताब लिखी, आप हो आते। इस तरह के गूढ़ विचारों को प्रकट करने के लिए हमें वाक्यगत संबंधों को स्पष्ट करना होगा : जैसे मैंने वह पुस्तक पढ़ी जो आपने मुझे दी थी आदि। इसी संदर्भ में पद शब्द का महत्व है। शब्द वाक्य में जिस रूप में प्रयुक्त होते हैं उन्हें हम पद कहते हैं और पद उस शब्द की सारी व्याकरणिक विशेषताओं को प्रकट करता है। इस इकाई के अंत में हम पद की चर्चा कर रहे हैं जिससे शब्द और वाक्य का संबंध स्पष्ट हो जाए।

भाषा शब्द निर्माण के लिए अनेक प्रकार की युक्तियों का सहारा लेते हैं क्योंकि हमें अपने जीवन में नयी-नयी संकल्पनाओं को प्रकट करने के लिए शब्दों की आवश्यकता होती है। इस संदर्भ में विविध प्रत्ययों से विविध अर्थों में शब्दों की रचना करते हैं। जैसे जिम्मा और उससे बनने वाले शब्द जिम्मेदार, जिम्मेदारी, गैर-जिम्मेदारी आदि शब्द अलग-अलग अर्थ प्रकट करते हैं। इसी तरह विभिन्न शब्द खण्डों से हम संयुक्त शब्दों का निर्माण करते हैं गा दो शब्दों को जोड़कर उससे समस्त शब्दों का प्रयोग करते हैं। इस इकाई में हम शब्द रचना की प्रक्रिया के संदर्भ में शब्द निर्माण के इन सब प्रकारों की भी चर्चा कर रहे हैं।

9.2 रूप की संकल्पना

'रूप' से हमारा तात्पर्य शब्द के ध्वन्यात्मक रूप (form) से नहीं है। इस (form के) अर्थ में हम भाषा में स्वरांत शब्द, व्यंजनांत शब्द आदि की चर्चा कर सकते हैं।

रूप विज्ञान के संदर्भ में रूप (morph) से हमारा तात्पर्य सार्थक शब्द खंडों से है। शब्द एक या अधिक रूपों से निर्मित होता है। 'घोड़ा', 'सड़क', 'आम' आदि शब्दों में केवल एक ही रूप है, क्योंकि इन शब्दों को हम सार्थक खंडों में विभाजित नहीं कर सकते। अन्य शब्दों में एक से अधिक खंड होते हैं। जैसे :

दो रूप : लघुता, बचपन
यहाँ 'ता', 'पन' आदि रूप क्रमशः लघु होने या बच्चा होने का भाव सूचित करते हैं।
तीन रूप : भावुक्ता, क्रमिकता, अनेकता, अशक्तता

यहाँ /उक/ ~ /इक/ प्रत्यय संज्ञा को विशेषण बनाते हैं और /ता/ भाववाचक संज्ञा का निर्माण करता है। अंतिम दो शब्दों में /अन/ और /अ/ क्रमशः 'एकता' और 'शक्तता' का विलोम बनाते हैं।

चार रूप : अन्यायपूर्वक (अ+न्याय+पूर्व+क)
गैर-जिम्मेदारी (गैर+जिम्मा+दार+ई)

के उदाहरणों में हमने जितने रूप पहचाने हैं, वे सभी सार्थक हैं और लघुतम हैं, क्योंकि
। फिर सार्थक खंडों में विभाजन नहीं हो सकता। इस तरह रूप की परिभाषा यों है :

भाषा के लघुतम सार्थक खंडों को हम रूप कहते हैं।

र्थ में /बच्चा/ और /-पन/ दोनों ही रूप हैं, भले हम 'बच्चा' को शब्द भी कहें। दूसरे में कह सकते हैं कि सारे स्वतंत्र या मुक्त रूप शब्द भी हैं। जो रूप स्वतंत्र या मुक्त हैं, वे अन्य रूपों के साथ आकर बड़े शब्दों की रचना करते हैं।

1 रूप के प्रकार

के आधार पर

ऊपर उल्लेख किया था कि एक या अधिक रूपों से शब्दों की रचना होती है। 'घोड़ा', ', 'पेड़' आदि शब्द एक ही रूप से निर्मित हैं। इस कारण ये रूप शब्द के तौर पर रूप से व्यवहृत होते हैं। इसकी तुलना में 'ता', 'पन' आदि रूप स्वतंत्र रूप से त नहीं हो सकते। इन्हें शब्द निर्माण के लिए अन्य किसी रूप का सहारा चाहिए। इन्हें द्ध (या अस्वतंत्र) रूप कहते हैं। प्रायः सभी प्रत्यय बद्ध रूप होते हैं। शब्द रचना में यह खा गया है कि किन्हीं शब्दों की रचना में स्वतंत्र, मूल रूप (एक रूप वाला शब्द) भी प की तरह व्यवहृत होता है। जैसे :

मूल रूप	बद्ध रूप	व्युत्पन्न शब्द
घोड़ा	घुड़	घुड़सवार, घुड़साल
बच्चा	बच	बचपन, बचकाना

रह मुक्त (स्वतंत्र) और बद्ध रूपों से शब्द निर्माण की प्रक्रिया में कई प्रकार के संयोजन हैं। जैसे :

मुक्त	+	मुक्त	देशप्रेम	(तत्पुरुष समास)
बद्ध	+	मुक्त	निर्बल	(उपसर्ग से विलोम की रचना)
मुक्त	+	बद्ध	लघुता	प्रत्यय से भाववाचक संज्ञा की रचना)
बद्ध	+	बद्ध	अनुज, विवाह	

के आधार पर

त रूपों से बनने वाले शब्दों में हम समस्त शब्द या संयुक्त शब्द कह सकते हैं। इनकी और प्रयोग की विशेषताओं के बारे में आगे देखेंगे।

पों से निर्मित शब्दों में हम प्रायः एक मूल शब्द के साथ प्रत्ययों का उपयोग करते हैं। वास्तव में बद्ध रूपों का पर्याय है। भाषाविज्ञान ऐसे प्रत्ययों को स्थान की दृष्टि से तीन बाँटता है :

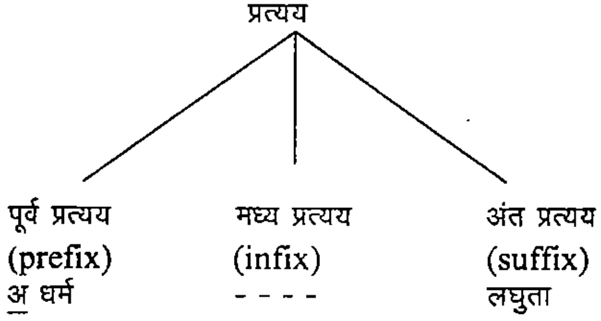

हिंदी में मध्य प्रत्यय नहीं है और परंपरा से पूव प्रत्यय का उपसग कहा जाता है। हम परंपरा का निर्वाह करते हुए आगे की चर्चा में क्रमशः उपसर्ग और प्रत्यय शब्द का ही प्रयोग करेंगे और दोनों के लिए 'रूप' शब्द का प्रयोग करेंगे।

हिंदी के रूप दो प्रकार के हैं। 'कर' धातु से 'करे', 'किया', 'करता' आदि क्रिया रूपों का निर्माण होता है। 'लड़की' शब्द से बहुवचन 'लड़कियाँ', कारक युक्त शब्द 'लड़कियों' आदि का निर्माण होता है। इस तरह संज्ञा, क्रिया आदि शब्दों से वचन, कारक, काल, पक्ष आदि व्याकरणिक सूचनाएँ प्रकट करने के लिए हम रूपसाधक (inflectioanl) रूपों का प्रयोग करते हैं।

रूपों का दूसरा प्रकार शब्द साधक प्रत्यय हैं। धन (संज्ञा) से हम 'धनी' (विशेषण, व्यक्ति) शब्द का निर्माण करते हैं, 'परेशान' (विशेषण) से हम 'परेशानी' (भाववाचक संज्ञा) का निर्माण करते हैं। इस तरह एक शब्द से रूपों के प्रयोग से हम भिन्न किंतु संबद्ध अर्थ वाले कई शब्दों की रचना करते हैं। शब्द निर्माण के लिए व्यवहृत इन रूपों को ही हम शब्द साधक (derivational) रूप कहते हैं।

9.2.2 रूपसाधक और शब्दसाधक रूप

हिंदी के सभी बद्ध रूपों को हम निम्न प्रकार से एक तालिका से दिखा सकते हैं :

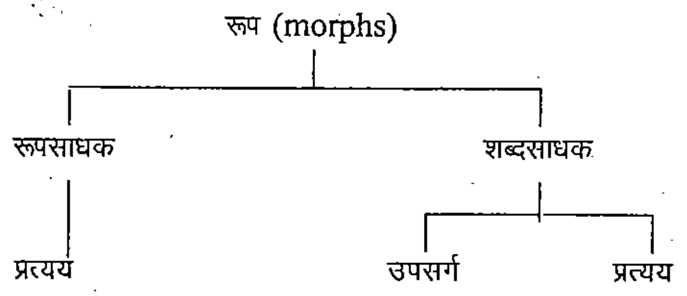

रूपसाधक प्रत्यय (inflectional suffixes)

व्यारकण ग्रंथ रूपसाधन को रूपसिद्ध भी कहते हैं। हमने उल्लेख किया था कि रूपसाधक प्रत्यय शब्द में व्याकरणिक अर्थ जोड़ते हैं। दूसरे शब्दों में ये प्रत्यय शब्द की व्याकरणिक कोटियों का अर्थ द्योतित करते हैं। ये व्याकरणिक कोटियाँ सात हैं :

संज्ञा/सर्वनाम की कोटियाँ :

i)	लिंग	-	शेर–शेरनी, लड़का–लड़की
ii)	वचन	-	बच्चा–बच्चे, लड़की–लड़कियाँ
iii)	पुरुष	-	मैं – तुम – वह
iv)	कारक	-	कमरा-कमरे (में), कमरे-कमरों (में)

क्रिया की कोटियाँ :

i)	लिंग	-	जाता–जाती, था–थी
ii)	वचन	-	गया–गये, था–थे
iii)	पुरुष	-	जाउँ–जाओ–जाए, हूँ–हो–है
iv)	पक्ष	-	जाता–गया
v)	काल	-	है–था, किया है – किया था
vi)	वृत्ति	-	जाइए–जाएँ

रूपसाधक प्रत्यय संख्या में सीमित होते हैं। इनसे शब्दों की रूपावलियाँ (paradigms) बनती हैं और व्याकरण ग्रंथ रूपावलियों की विस्तृत सूचना देते हैं। संस्कृत में संज्ञा की रूपावली को

'शब्द' कहते हैं। 'राम' शब्द का नमूना देखिए जिसमें लिंग, वचन और कारक की कोटियों का समावेश है :

वचन

संज्ञा पुल्लिंग	**कारक**	**एक**	**द्वि**	**बहु**
	कर्ता	रामः	रामौ	रामाः
	कर्म	रामं	रामौ	रामान्
	करण	रामेण	रामाभ्याम्	रामयोः
	संप्रदान	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः आदि

हिंदी में क्रिया की रूपावली देखिए जिसमें काल लिंग, वचन और पुरुष का निर्देश है :

लिंग वचन

भविष्यत् काल

पुरुष	पुल्लिंग		स्त्रीलिंग	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
उत्तम	जाऊँगा	जाएँगे	जाऊँगी	जाएँगी
मध्यम	जाओगे		जाओगे	
अन्य	जाएगा		जाएगी	

इस क्रिया के रूपों का भी विश्लेषण कर लें। दोनों लिंगों में एकवचन में /ऊँ/ प्रथम पुरुष, /ओ/ मध्यम पुरुष और /ए/ अन्य पुरुष सूचित करते हैं। /एँ/ दोनों लिंगों में बहुवचन का सूचक है। गा/गे/गी भविष्यत् काल के प्रत्यय हैं और क्रमशः पुल्लिंग एकवचन, पुल्लिंग बहुवचन और स्त्रीलिंग का द्योतन करते हैं। ये प्रत्यय अपवादों और उपवर्गों को छोड़कर समस्त क्रिया शब्दों में इन्हीं व्याकरणिक अर्थों में प्रयुक्त होते हैं।

हम निश्चित नियमों द्वारा क्रिया के प्रत्ययों को पहचान और विश्लेषित कर सकते हैं। जैसे :

धातु	**+**	**पक्ष**	**+**	**काल**
देख		ता (पूर्ण) है आदि		
		आ (पूर्ण)		

'आ', 'कर', 'जा' आदि धातुओं के साथ प्रत्यय जुड़ते समय धातुओं में कुछ रूप– स्वनिमिक परिवर्तन हो जाते हैं जैसे :

आ + आ →	आया	(य् का आगम)
कर + आ →	किया आदि	(किय् रूप)
जा + आ →	गया	(गय् रूप)

लेकिन हिंदी के सर्वनाम शब्दों का रूप विश्लेषण इतना आसान नहीं है। उदाहरण को लिए संबंध कारक रूपों को देखिए :

मैं + का	-	मेरा
तुम + का	-	तुम्हारा
वह + का	-	उसका

इस कारण सर्वनाम के रूपों का विश्लेषण किये बिना रूपावली प्रस्तुत करना ही व्यावहारिक हल है। सर्वनामों की रूपावली का नमूना देखिए :

1	2	3	4	5
सर्वनाम +	ने +	को +	से, (में, पर)+	का, के, की
मैं	मैंने	मुझको	मुझसे	मेरा, मेरे, मेरी
तू	तूने	तुझको	तुझसे	तेरा, तेरे, तेरी
तुम	तुमने	तुमको	तुमसे	तुम्हारा, तुम्हारे, तुम्हारी
आप	आपने	आपको	आपसे	
वह	उसने	उसको	उससे	
यह	इससे	उसको	उससे	
हम	हमने	हमको	हमसे	हमारा, हमारे, हमारी
वे	उन्होंने	उनको	उनसे	
ये	इन्होंने	इनको	इनसे	
जो (एकवचन)	जिसने	जिसको	जिससे	
कौन (बहुवचन)	किसने	किसको	किससे	
क्या (एकवचन)	-	किसको	किससे	
जो (बहुवचन)	जिन्होंने	जिनको	जिनसे	
कौन (बहुवचन)	किन्होंने	किनको	किनसे	
क्या (बहुवचन)	-	-	किनसे	

इस तालिका में देखें कि सर्वनामों के विकारी रूपों और परसर्गों को मिलाकर एक शब्द के रूप में लिखा जाता है।

शब्दसाधक रूप (derivative suffixes)

शब्दसाधन और व्युत्पादन दोनों पर्याय हैं। विशेषण से गुण सूचित करने वाले भाववाचक संज्ञा शब्द, स्थिति का अभाव या निषेध करने वाले शब्द, संज्ञा से उसकी स्थिति सूचित करने वाले विशेषण शब्द आदि उपसर्गों और प्रत्ययों से व्युत्पन्न होते हैं। इस चर्चा का यह अर्थ नहीं है कि शब्द साधन में शब्द वर्ग बदल जाना अनिवार्य है। वास्तव में व्युत्पादन या शब्द साधन दो तरह के हैं :

अंतर व्युत्पादन में शब्द का वर्ग नहीं बदलता। जैसे :

संज्ञा :	गुण - दुर्गुण	अवसर - सुअवसर	बच्चा - बचपन
विशेषण :	कुशल - अकुशल	बृहत् - बृहत्तम	मग्न - निमग्न
क्रिया :	करना - कराना		

अंतः व्युत्पादन में शब्द का वर्ग बदल जाता है। जैसे :

क्रिया से संज्ञा :	अनबन	फिसलन भरती	
क्रिया से विशेषण :	नासमझ	अचूक	समझदार
संज्ञा से विशेषण :	निडर	दयालु	दुखी
संज्ञा से क्रिया (नामधातु):	हथियाना	ललचाना	विचारना
संज्ञा से अव्यय :	आजन्म	असमय	क्रमशः

प्रत्यय

हिंदी में प्रत्ययों की संख्या सैकड़ों में है। ये प्रत्यय स्रोत की दृष्टि से संस्कृत (तत्सम), हिंदी (तद्भव) और अरबी-फ़ारसी मूल के हैं। प्रत्यय युक्त शब्द यौगिक रूढ़ होते हैं, अर्थात् हम अपनी इच्छा से किसी भी शब्द के साथ कोई प्रत्यय नहीं लगा सकते। दयालु, कृपालु के सादृश्य में हम *अनुकंपालु, *ममतालु जैसे शब्द नहीं बना सकते। -इत, -इक आदि प्रत्यय बहु प्रचलित हैं, जबकि ईला (जहरीला) जैसे प्रत्यय सीमित शब्दों के साथ ही आते हैं। इसका यह भी तात्पर्य है कि प्रत्यय और मूलशब्द एक स्रोत के हों। जैसे संस्कृत तत्सम शब्द

अन्+आदर-अनादर। यह बात काफ़ी हद तक सही है, लेकिन भाषा की जीवंतता के कारण कई प्रत्यय व्यापक प्रयोग में आ जाते हैं और कई जगह व्यवहार में आते हैं। जैसे बेलाग (उर्दू बे + हिंदी लाग), गर्माहट (उर्दू गर्म + हिंदी आहट) आदि।

आगे हम तीनों स्रोतों के रूपों को तालिका बद्ध रूप में दे रहे हैं।

उपसर्ग			प्रत्यय		
संस्कृत	हिंदी	उर्दू	संस्कृत	हिंदी	उर्दू
अ(अरवस्थ)	अन(अनपढ़)	बे(बेकार)	इत(व्यवस्थित)	पन(बचपन)	ई(खुशी)
अन्(अनादर)		ना(नालायक)	इक(सामाजिक)	आर(लुहार)	मंद(फ़ायदे मंद)
सु(सुपुत्र)		ला(लाजवाब)	ई(दुखी)	(<संस्कृत कार)	
कु(कुपुत्र)		बद(बदनाम)	आ(प्रिया)	आस(मिठास)	दार(ज़िम्मेदार)
			इका(नायिका)	स(सपूत)	
			य(सौंदर्य)	क(कपूत)	
			ता(एकता)	नी(मोरनी)	
			ईय(भारतीय)	आवट(बनावट)	
				आवना(डरावना)	
				आकू(लड़ाकू)	

9.3 रूपिम की संकल्पना

अब तक हमने मूल शब्द, उपसर्ग, प्रत्यय आदि रूपों की चर्चा की। प्रायः यह देखा गया है कि एक रूप (morph) अपने परिवेश के कारण भिन्न-भिन्न रूपों (forms) में आते हैं। जैसे 'उत्' उपसर्ग के कई रूप हैं :

सत् (सत्पुरुष) सद् (सद्भाव) सन् (सन्मार्ग) सच् (सच्चरित्र)

ये चारों केवल स्वनिमिक दृष्टि से भिन्न हैं, प्रकार्य और अर्थ की दृष्टि से एक हैं। सत् के चारों रूपों का एक ही अर्थ है - 'अच्छा'। इस कारण हम इन्हें एक ही वर्ग में रखेंगे और उसके भिन्न रूपों का विवरण देंगे। 'अच्छा' के अर्थ में (सत्) एक रूपिम है और उसके चार व्यक्त रूप रूपिम के संरूप कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में व्यक्त सभी संरूपों के समूह को रूपिम कहा जाता है। रूपिम एक अमूर्त संकल्पना है और संरूप वास्तविक, व्यक्त रूप। इस कारण जहाँ रूप अविकारी हो, वहाँ भी हम अमूर्त रूपिम की कल्पना करते हैं, क्योंकि शब्दों की रचना रूपिमों से ही व्याख्यायित की जाती है, जिससे विभिन्न परिवेशों में रूपों की भिन्नता को समझा जा सके।

रूपिम की संकल्पना की आवश्यकता क्या है? यह हम लोगों के संज्ञान (cognition) के स्वरूप का द्योतक है। 'मेज़' एक संकल्पना है, अमूर्त है, इसके व्यक्त, वास्तविक रूप कई हो सकते हैं। लोहे की मेज़ हो या लकड़ी की या पत्थर की, उसका आकार गोल, चौकोर, लंबा जो भी हो, सबको हम 'मेज़' नाम से ही पहचानते हैं। भाषा में भी हम निश्चित अर्थ में मूल संकल्पना को पहचान कर उसे व्यक्त रूपों के तौर पर व्यवहार में लाते हैं। ऊपर के उदाहरण फिर देखिए :

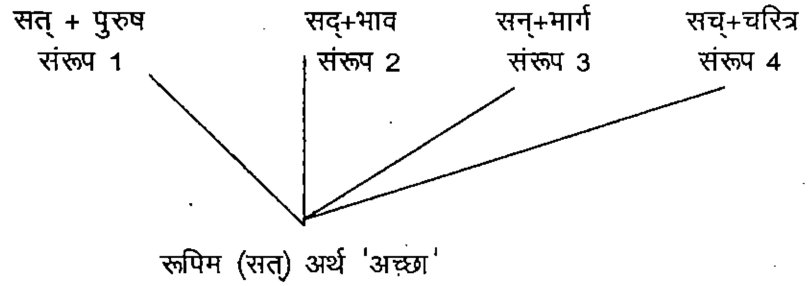

जब रूपिम तथा उसके संरूपों की पहचान कर ली जाती है, तो चारों का परिवेश (कौन-सा, कहाँ आए) स्पष्ट किया जाता है। भाषाविज्ञान की भाषा में इसे वितरण (distribution) कहा जाता है। जैसे :

रूपिम	संरूप		परिवेश
'सत्'	सत्	-	क, त, प आदि अघोष ध्वनियों से पहले
	सद्	-	ग, द, ब आदि घोष ध्वनियों से पहले
	सन्	-	न आदि नासिक्य व्यंजनों से पहले
	सच्	-	च से पहले

रूपिम अमूर्त है, तो 'सत्' को रूपिम क्यों कहते हैं? हमें पहचान के तौर पर रूपिम को कोई नाम देना होता है। आमतौर सबसे प्रचलित संरूप को ही रूपिम का नाम देता जाता है। जब /सत्/ को हम रूपिम की संज्ञा देते हैं, तो /सत्/ के आधार पर ही रूप परिवर्तन निर्धारित करते हैं। याने /स्/ का /द्/, /न्/, /च्/ आदि में परिवर्तन हुआ। इस कारण /त्/ को इस रूपिम विश्लेषण के संदर्भ में रूपस्वनिम (morphophoneme) कहा जाता है। अर्थात् (सत्), (उत्) आदि सभी रूपों में /त्/ का यही वितरण होगा, जैसे उत्पत्ति, उद्भव आदि उदाहरण स्पष्ट करते हैं। इस तरह रूपिम, संरूपों का वितरण, रूपस्वनिम आदि शब्द निर्माण तथा शब्दों के ध्वन्यात्मक रूप को स्पष्ट रूप से समझने में सहायक होते हैं। समान नियमों के आधार पर हम प्राक्, दिक्, तत् आदि रूपों से बनने वाले शब्दों के रूप (form) को आसानी से समझ सकते हैं।

संस्कृत के वैयाकरणों ने रूपस्वनिमिक प्रक्रिया को संधि के नियमों से स्पष्ट किया। इस दृष्टि से कह सकते हैं कि वैयाकरणों में गहरी भाषावैज्ञानिक सूझ थी। उनका रूप विश्लेषण अत्यंत वैज्ञानिक है। एक अंतर अवश्य है। संस्कृत में केवल दो शब्दों की संधि के संदर्भ में ही नियम बनाए गए हैं। लेकिन आधुनिक भाषाओं के विश्लेषण में कई तरह के शब्दों की रचना को समझने के लिए रूपिम की संकल्पना की आवश्यकता है। जैसे हिंदी के बहुवचन रूपों को हम संधि से समझा नहीं सकते। हिंदी के बहुवचन रूपिम (ए) का विवरण देखिए :

रूपिम	संरूप		वितरण
(ए)	पुल्लिंग शब्द - आ→ए		विकारी आ कारांत शब्द जैसे लड़का, कमरा
अर्थ-बहुवचन		∅[1]	अन्य सभी शब्द (राजा, आदमी, चाकू, पति)
	स्त्रीलिंग शब्द - एँ		i) व्यंजनांत शब्द (किताब, बहन,)
			ii) आकारांत, उ/ऊ कारांत शब्द (भाषाएँ, बहुएँ)[2]
		याँ	इ/ई कारांत शब्द (जातियाँ, लड़कियाँ)[2] (अनुनासिकता) या कारांत (चिड़ियाँ)

1. इस चिह्न का तात्पर्य यह है कि ऐसे शब्दों में बहुवचन में कोई परिवर्तन नहीं होगा। इसे 'शून्य रूप' कहा जाता है।
2. बहू से बहुवचन बनाते समय स्वर ह्रस्व हो जाता है। यही बात 'लड़की' पर भी लागू होती है। इसकी चर्चा संज्ञा के संदर्भ में अलग से की जाएगी।

आपने ध्यान दिया होगा कि कितने संक्षेप में हिंदी के बहुवचन शब्दों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। संक्षिप्त, सीमित नियम याद रखने में आसान होते हैं। इसलिए प्रस्तुतीकरण भाषा सीखने वालों के लिए लाभदायक हैं।

9.4 शब्द

रूप की चर्चा के संदर्भ में हमने शब्दों की रचना की भी चर्चा की, क्योंकि रूप शब्द के घटक है। शब्द की रचना के संदर्भ में ही रूपों की सार्थक चर्चा हो सकती है। लेकिन अभी हमने

ब्दों की परिभाषा नहीं की है। एक परिभाषा तो यही है कि शब्द रूपों से निर्मित सार्थक, तंत्र खंड हैं। लेकिन हम शब्द पहचानें कैसे? उच्चरित भाषा ध्वनियों का प्रवाह है और नतौर पर शब्दों के बीच में कोई अंतराल (pause) भी नहीं सुनाई देता। उच्चरित भाषा में नापत्ति (substitutability) का सिद्धांत हमें शब्द पहचानने में मदद देता है, जैसे :

मैंने नाश्ते में दो पराँठे खाए

मैंने नाश्ते में दो कचौरियाँ खाईं।

ां 'पराँठे' और 'कचौरियाँ' स्थानापत्ति द्वारा भिन्न वाक्य की सृष्टि करते हैं। लेकिन इस र्भ में हम 'अंडा' और 'अंडे' (जैसे एक अंडा खाया/दो अंडे खाए) दोनों को दो अलग ; मानें या एक। इसी तरह शब्द को पहचानने में भी लेखन भी हमारा साथ नहीं देता। राती भाषा में परसर्ग को संज्ञा के साथ जोड़कर लिखा जाता है जैसे घरमां (घर में)। क्या गुजराती के लिए एक शब्द है और हिंदी के संदर्भ में दो शब्द? हिंदी में ही हम 'राम को', को' जैसे शब्दों में 'को' के प्रयोग में अंतर देखते हैं।

ानों का मत है कि शब्द दो प्रकार के होते हैं। संज्ञा, विशेषण, क्रिया आदि शब्द निश्चित स्पष्ट अर्थ व्यक्त करते हैं। ये कोशीय (lexical) शब्द कहलाते हैं। ये शब्द काफ़ी हद सार्वभौम होते हैं, अर्थात घोड़ा, बुरा, दौड़ना आदि शब्द संसार की लगभग सारी भाषाओं मेलते हैं। शब्दों का दूसरा वर्ग है प्रकार्यात्माक (functional) शब्द जो भाषा की संरचना प्रकृति के आधार पर भाषाओं में अलग-अलग होते हैं। हिंदी में 'तो' का प्रयोग है, अंग्रेज़ी ाहीं, अंग्रेज़ी में 'the' का प्रयोग है, हिंदी में नहीं। हिंदी और अंग्रेज़ी में योजक क्रमशः शब्द d' तथा 'और' हैं। संस्कृत में प्रत्यय जैसा युक्त रूप (clitic) 'च' दोनों संज्ञाओं में ता है। इसी तरह तमिल में दोनों संज्ञाओं में 'उम्' जुड़ता है। जैसे :

राम और सीता - रामश्चा - रामनुम् सीतयुम्

र्यात्मक शब्दों के संदर्भ में भाषाओं में बहुत भिन्नता है। किसी भाषा में प्रकार्यात्मक शब्द त्र रूप से आते हैं, तो किसी भाषा में ये प्रत्यय के रूप में मूल शब्द में जुड़ जाते हैं। ृत तथा तमिल आदि द्रविड भाषाओं में विभक्तियाँ शब्द का अंग बनकर आती हैं। लेए संस्कृत भाषा को रूपरचना के आधार पर संश्लिष्ट (synthetic) भाषा कहा जाता इसकी तुलना में हिंदी और अंग्रेज़ी में to, in, an, को, से, में, पर आदि स्वतंत्र रूप सित हो गए। इसलिए इन भाषाओं को (analytic) भाषा कहा जाता है। इस तरह ओं में शब्द रचना के संदर्भ में व्यापक रूप से विविधता दिखाई देती है। एक भाषा जिस को स्वतंत्र शब्द से प्रकट करती है, उसे दूसरी भाषा प्रत्ययों से या शून्य से व्यक्त करती ाधारणतया सारी भाषाओं में बहुवचन शब्द प्रत्यय जोड़ने से बनता है, लेकिन मलय भाषा हुवचन के लिए पुनरुक्त शब्द का उपयोग होता है। जैसे :

मलय भाषा

कारण शब्द के लिए कोई सार्वभौम परिभाषा देना कठिन है। इतना ही कह सकते हैं कि भाषा की सार्थक, स्वतंत्र इकाई है।

.1 शब्द और अर्थ का संबंध

दो प्रकार के शब्दों की चर्चा की - कोशीय शब्द और प्रकार्यात्मक शब्द। प्रकार्यात्मक के अर्थ को हम भाषा की व्याकरणिक संरचना के संदर्भ में ही समझ सकते हैं और के प्रयोगों में ही इनके प्रकार्य को देख सकते हैं। 'और', 'या', 'लेकिन', 'इसलिए', लेए' जैसे कुछ शब्दों के समान शब्द कई भाषाओं में देखे जा सकते हैं। फिर भी इनके व प्रकार्यों को हम भाषा विशेष में ही समझ सकते हैं।

कोशीय शब्द वस्तु जगत और भाव जगत की ज्ञात संकल्पनाओं का अर्थ द्योतित करते हैं। भौतिक परिवेश, संस्कृति और जीवन शैली में अंतर के कारण भाषाओं की शब्दावली में भी अंतर आता है। अंग्रेज़ के लिए सिंदूर, जूठन आदि अपरिचित संकल्पनाएँ हैं, हिंदी भाषी के लिए Ball, Mass आदि अपरिचित हैं। भाषाओं में शब्दावली में अंतर के और भी कई कारण हैं। इसे जानने से पहले हमें शब्द और अर्थ के संबंध को समझना होगा।

आमतौर पर हमारी यह धारणा है कि हर शब्द का एक अर्थ होता है और हर अर्थ के लिए एक शब्द। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि प्रायः सभी प्रचलित शब्दों का एक अर्थ क्षेत्र होता है जिसमें अर्थ का विस्तार होता जाता है। 'आना' को ही लें। इसके अर्थात् संबंध कितने सारे हैं। नींद आती है, रेलगाड़ी में चलते स्टेशन आते हैं, हमें किसी पर तरस आता है या किसी काम में अड़चनें आती हैं। 'आना' की ये अर्थच्छटाएँ सभी भाषाओं में किसी एक समान शब्द से व्यक्त नहीं होतीं। जैसे अंग्रेज़ी में feel sleepy, reach a station, face problems आदि में 'come' का इस्तेमाल नहीं होता। इसी तरह 'बात' शब्द को लें। इसके बीसियों अर्थ हैं, जिन्हें प्रयोग के संदर्भ में ही देखा जा सकता है। जैसे :

वाह, क्या बात है!
कोई बात नहीं बनी।
मेरी उनसे बात नहीं हुई।
क्या बात कर रहे हो?
अच्छी बात है
मैं एक बात कहना चाहूँगा।

अच्छे शब्दकोश शब्द के ऐसे सभी प्रमुख प्रयोगों को अर्थ के तौर पर समाविष्ट करते हैं। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि शब्द का निश्चित अर्थ क्या है? अक्सर यह कहा जाता है कि भाषा में 'पूर्ण पर्याय' बिलकुल नहीं होते। अर्थात् सामान्य बोलचाल में दोनों पर्याय कभी हर जगह समान रूप से व्यवहृत नहीं होते। हिंदी में पिता, बाप दोनों पर्याय हैं, लेकिन आज 'बाप' का प्रयोग अनादर या तिरस्कार का भाव प्रकट करने के लिए होने लगा है। इस तरह भाषा धीरे-धीरे मितव्ययता के सिद्धांत का पालन करने लगती है।

स्कूली व्याकरण अक्सर इसी बात के दोषी हो जाते हैं। 'व्यावहारिक हिंदी व्याकरण और रचना' (एन सी ई आर टी, 1995) में सरिता को नदी का पर्याय बताया गया है, जबकि लेखक द्वय यह भी उल्लेख करते हो - 'पर्यायवाची शब्दों को मिलते-जुलते अथवा समानार्थी रूप में ही समझना चाहिए।' पर्याय तो वे ही शब्द हो सकते हैं, जो एक ही संकल्पना (सांकेतिक वस्तु या भाव - referent) का अर्थ द्योतित करें। मिलते-जुलते शब्दों को एक जगह रखकर उनके अर्थ सामीप्य का विश्लेषण करने वाला ग्रंथ पर्याय कोश नहीं, बल्कि Thesauras कहलाएगा, जिसके बारे में आप कोशविज्ञान नामक इकाई में पढ़ेंगे।

विलोम (antonym) : विलोम की परिभाषा देना बहुत कठिन कार्य है। व्याकरण ग्रंथ विलोम के नाम से जो उदाहरण देते हैं, उन पर ज़रा नज़र डाल लें :

(i) उपस्थिति-अनुपस्थिति : इसमें विपरीत स्थिति का बोध होता है, जैसे स्विच के आन-आफ़ स्थिति हो। अन्य उदाहरण है स्त्री-पुरुष, खाली-भरा, असली-नकली आदि।

(ii) अच्छा-बुरा : इन दोनों शब्दों का ध्रुवीय संबंध है। इसलिए हर बिंदु के एक तरफ़ 'अच्छा' है तो दूसरी तरफ 'बुरा'।

अच्छा	कम अच्छा	कम बुरा	बुरा

इसलिए जो अच्छा नहीं है, वह बुरा ही हो यह ज़रूरी नहीं है। यही नहीं, इनके अर्थ में समय तथा काल की सापेक्षता भी आ जाती है। इसका प्रयोग काफ़ी हद तक व्यक्तिनिष्ठ भी हो सकता है। जिस गाड़ी को एक आदमी 'बड़ी' कहे, उसे दूसरा 'छोटी' कह सकता है, क्योंकि दोनों उसे भिन्न दृष्टियों (ध्रुवों) से देख रहे हैं। अन्य उदाहरण हैं ठंडा - गरम, महँगा - सस्ता आदि।

(iii) 'खरीदना-बेचना' आदि एक ही घटना के दो पक्ष हैं, इन दोनों व्यापारों में परिपूरकता है। इन दोनों शब्दों को विलोम नहीं कहा जा सकता, जबकि व्याकरण ग्रंथ में भाई-बहन, माता-पिता, लेना-देना आदि शब्दों को विलोम कहा जाता है।

(iv) व्याकरण ग्रंथ 'काला' और 'सफ़ेद' को भी विलोम के भीतर रखते हैं। भौतिक विज्ञान की दृष्टि से इनमें विपरीत स्थिति तो दिखाई देती है। सफ़ेद सारे रंग फेंक देता है, काला सारे रंग जज़्ब कर लेता है। लेकिन आम आदमी के लिए ये भी दो रंग हैं, जैसे नीला, पीला, लाल आदि। इन शब्दों में शब्दों का सबंध वर्ण पट्टिका के सिद्धांत पर समझा जा सकता है। जैसे :

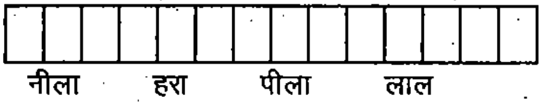

इस पट्टिका के सभी रंगों के नाम एक वर्ग स्थापित करते हैं और हर रंग का शब्द उस वर्ग या श्रेणी का सदस्य है। हर दो शब्द में अर्थ का अंतर तो है, लेकिन लाल-हरा आदि विलोम नहीं है। यातायात के संकेत के रूप में लाल और हरे रंग का वैपरीत्य पूर्णतः आरोपित है। संकेत के रूप में ये भले विलोम हों, रंग के नाम की दृष्टि से इनमें कोई विपरीतता नहीं है। इस तरह के अन्य शब्द हैं मौसमों के नाम, सवेरा, दुपहर, शाम, रात आदि दिन के भागों के नाम (जबकि रात-दिन में परिपूरकता का भी द्योतन होता है)। महानगर से अत्यंत छोटे गाँव तक निश्चित श्रेणी विभाजन है, लेकिन लोग शहर और गाँव के वैपरीत्य को प्रमुखता देते हैं। इसी तरह अरब पति से लेकर अति कंगाल तक एक बृहत श्रेणी है, लेकिन लोग सारे संसार को अमीर और गरीब की दो कोटियों में विभाजित करते हैं। इस वैपरीत्य का आधार भाषावैज्ञानिक नहीं, समाज-सापेक्ष है।

समरूपी शब्द (homonym)

कई ऐतिहासिक कारणों से कभी एक ही शब्द कई भिन्न और असंबद्ध अर्थ प्रकट करता है। जैसे मगर (लेकिन, एक प्राणी), पर (लेकिन, परसर्ग, पंख)। काव्य शास्त्र में इन शब्दों को श्लेष कहा गया है। श्लेष अलंकार में ऐसी उक्तियाँ दी जाती हैं, जिन्हें हम दोनों अर्थों में समझ सकते हैं। जैसे गुरु ने कहा - सैंधव (घोड़ा) लाओ और चेला नमक (सैंधव का दूसरा अर्थ) ले आया। यमक अलंकार में उसी शब्द का दोनों अर्थों में दो बार प्रयोग होता है। बिहारी का दोहा देखिए - कनक कनक से सौ गुना मादक है। अर्थात् सोना धतूरे से सौ गुना मादक है।

अनेकार्थी शब्द (polysemy के शब्द)

इस वर्ग के शब्द कई **संबद्ध** अर्थ देते हैं। यह भाषा की विशेषता है कि हम भिन्न स्थितियों में समान प्रकार्य के अर्थ के लिए शब्द का अर्थ विस्तार करते हैं। जैसे 'फल' वृक्ष के पूरे वर्ष के विकास का परिणाम है। इसी तरह हम कार्यों के 'फल' की बात करते हैं। 'स्तंभ' भवन का आधार है। हम व्यक्तियों को भी 'आधुनिक मनोविज्ञान के स्तंभ' कहते हैं। ऐसे प्रयोगों को हम भाषा के मुहावरेदार प्रयोग कहते हैं। इसी प्रक्रिया से रूढ़ मुहावरे भी सिद्ध होते हैं। बच्चा घर का चिराग' होता है, कोई व्यक्ति किसी संस्था की 'जान' बन सकता है, कोई शहर किसी क्षेत्र का हृदय (हृत् प्रदेश heart land) कहला सकता है।

9.4.2 शब्द निर्माण की आवश्यकता और प्रक्रिया

भाषा की अर्थ की संरचना पर विचार करें, तो हमें दो बातें मालूम पड़ती हैं। भाषा के जो शब्द हैं, वे आवश्यकतानुसार नये अर्थ (या नई अर्थच्छटाएँ) अर्जित करते जाते हैं। जैसे 'पटल' का मूल अर्थ था 'तख्ता', लेकिन हम आधुनिक युग में संसद के संदर्भ में table के लिए (जो स्वयं ही अंग्रेज़ी में इस शब्द का नया प्रयोग है) 'पटल' का प्रयोग करने लगे हैं।

भाषा में नई संकल्पनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए हम नये शब्दों का भी निर्माण करते हैं। हम ग्रह शब्द से परिचित हैं। जब आधुनिक युग में मनुष्य ने राकेट की सहायता से अंतरिक्ष में 'ग्रह' जैसे खगोल पिंडों को स्थापित किया, तो उन्हें 'उपग्रह' की संज्ञा दी गई। इस तरह आधुनिक युग के संदर्भ में नये आविष्कारों और नई संकल्पनाओं के लिए शब्दों की आवश्यकता होती है। भाषा अपने साधनों से शब्दों का निर्माण करती है।

शब्द निर्माण की, विश्व स्तर पर प्राप्त विचारों को व्यक्त करने के लिए आसान और सहज प्रक्रिया है मूल भाषा के शब्दों को यथावत् ले लेना। इसे उधार (borrowing) की संज्ञा दी जाती है। हिंदी में रेडियो, टेलीविज़न, इंजन, कार आदि सैकड़ों शब्द गृहीत हुए हैं।

हम अंग्रेज़ी से अनगिनत शब्द नहीं ले सकते। अगर हम संकल्पना को लेकर उसे अपनी भाषा के तत्वों के माध्यम से व्यक्त करें, तो हिंदी भाषियों के लिए नए शब्द सुबोध भी लगेंगे। इसी संदर्भ में शब्द निर्माण की दूसरी प्रक्रिया है उधार अनुवाद। आधुनिक युग में socialism की संकल्पना सामने आई। social का अनुवाद हुआ समाज (समास में 'सामाजिक' लेने की आवश्यकता नहीं है - 'समाज' पर्याप्त है)। ism का अनुवाद है वाद। हिंदी में 'समाजवाद' शब्द बना। अब इस प्रकार के शब्दों के लिए 'वाद' सक्रिय रूप बन गया और राष्ट्रवाद, आधुनिकतावाद, मानवतावाद जैसे शब्दों का निर्माण सहज बन गया। Telecomunication के लिए दूर संचार, Election Commission के लिए निर्वाचन आयोग आदि, उधार अनुवाद के उदाहरण हैं।

जहाँ भारतीय मूल की संकल्पना हो वहाँ अपने साधनों से नये शब्द बना लिए जाते हैं जैसे पंचायत राज, कुटीर उद्योग, या कुछ अंश विदेशी भाषाओं से लेकर संकर शब्दों का निर्माण कर लिया जाता है, जैसे गोबर गैस, कंपनी अधिनियम, रोज़गार योजना आदि संकर शब्दों के उदाहरण हैं। शब्द और अर्थ के संदर्भ में इनके संबंध को स्पष्ट करने के लिए आर्थी संरचना (अर्थ की संरचना) की कुछ प्रक्रियाएँ विकसित की गई हैं। इनमें प्रमुख हैं पर्याय, विलोम, समरूपता और अनेकार्थता।

पर्याय (synonym) : समान अर्थ वाले शब्द पर्याय कहलाते हैं, जैसे कमल, पद्म आदि। आखिर पर्यायों की आवश्यकता क्यों होती है? पर्याय वास्तव में संरचना की मितव्ययता (economy) के सिद्धांत के विपरीत हैं। आखिर भाषा एक संकेत के लिए अनेक चिह्नों का निर्माण ही क्यों करे। वास्तव में संस्कृत से आए हुए पर्याय साहित्य की समृद्धि के द्योतक हैं। एक तरफ़ इन शब्दों से नयी अर्थच्छटाएँ जुड़ती हैं (जैसे पंक से निकला हुआ फूल पंकज आदि), दूसरी ओर काव्य की रचना में तुक के लिए विभिन्न आकारों के शब्दों का होना अवश्यंभावी भी है। यद्यपि संस्कृत में कमल, राजीव, जलज, नीरज, पंकज, वारिज, पद्म आदि कई नाम हैं, इनमें केवल 'कमल' मुख्य संकेतक शब्द है (सामान्य व्यवहार का शब्द है), शेष सभी केवल साहित्य में प्रयुक्त होते हैं।

आधुनिक हिंदी में पर्यायों की बहुलता का एक प्रमुख ऐतिहासिक कारण है। एक ही विचार के लिए हमारे पास तत्सम पर्यायों के अतिरिक्त तद्भव तथा उर्दू स्रोत का शब्द भी उपलब्ध है। कोड मिश्रण की स्थिति में वक्ता अंग्रेज़ी शब्द भी बोल जाते हैं। जैसे :

संस्कृत तत्सम	तद्भव	उर्दू स्रोत	अंग्रेजी
यत्न प्रयत्न प्रयास	जतन	कोशिश	try (संज्ञावत) <try करना
पुस्तक ग्रंथ	पोथी	किताब	बुक (बुक स्टोर जैसे शब्दों में)

ये बहुल पर्याय भाषा पर भार के समान हैं। भाषा इस स्थिति में धीरे-धीरे कुछ पर्यायों को ख़त्म करती है। जैसे अब पोथी केवल साहित्यिक शब्द रह गया है। 'मयस्सर' (प्राप्त), 'मुनासिब' (उचित) जैसे उर्दू के शब्द प्रयोग से धीरे-धीरे हट रहे हैं।

5 शब्द के प्रकार

कई दृष्टियों से शब्दों के प्रकार की चर्चा कर सकते हैं। स्रोत के आधार पर तत्सम, तद्भव देशज आदि की चर्चा कर सकते हो। अर्थ के आधार पर पर्याय, विलोम आदि की चर्चा कर सकते हैं। प्रकार्य के आधार पर संज्ञा, सर्वनाम आदि वर्गों की चर्चा कर सकते हैं। इसी इकाई में अन्यत्र इन सब प्रकारों की प्रसंगानुसार चर्चा की गई है। इस प्रकरण में हम केवल रचना के आधार पर शब्दों के प्रकारों की चर्चा करेंगे।

परंपरागत व्याकरण शब्दों को रचना के आधार पर तीन वर्गों में बाँटते हैं। **रूढ़** शब्द वास्तव में प्रत्यय रहित मूल शब्द हैं (स्वतंत्र रूप हैं)। **यौगिक** शब्द एक से अधिक रूपों से निर्मित शब्द हैं। यौगिक शब्दों के रचना की दृष्टि से दो प्रमुख भेद हैं :

i) दो स्वतंत्र शब्दों से निर्मित शब्द - संयुक्त शब्द और समस्त शब्द
ii) मूल शब्द से प्रत्ययों से निर्मित व्युत्पन्न शब्द

यौगिक रूढ़ : वे शब्द हैं, जो मूलतः यौगिक हैं, लेकिन अर्थ की दृष्टि से अब एक अखंडित शब्द के समान प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण के लिए चमक चम्+ (प्रकाश) + क से निर्मित है। लेकिन आज हम इसके रूपों का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं मानते। इसी तरह लेन-देन अब मूल शब्दों से भिन्न एक समन्वित अर्थ transaction का द्योतन करता है। इसे भी हम यौगिक रूढ़ मान सकते हैं, क्योंकि अब इस शब्द के 'लेन' या 'देन' का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं हैं। संयुक्त शब्द और समस्त शब्द में कुछ विद्वान अंतर नहीं करते। अंग्रेज़ी में इन दोनों के लिए compound word का ही प्रयोग होता है।

संयुक्त शब्द : संस्कृत भाषा में भी सरलीकरण के उद्देश्य से मूल क्रिया के स्थान पर संज्ञा+कर की रचना प्रचलित हो गई थी। हिंदी भाषा में यह विरासत के तौर पर चली आ रही है। संयुक्त शब्द की यह प्रक्रिया समास से इसे अलग करती है। हिंदी में अंग्रेज़ी मूल क्रिया के स्थान पर 'करना/होना' से सैकड़ों शब्द बनते हैं। जैसे :

help मदद करना, सहायता करना
try कोशिश करना, यत्न करना
rain बारिश होना
close बंद करना (सकर्मक) बंद होना (अकर्मक)
start शुरू करना, शुरू होना

वाक्य संरचना की दृष्टि से इन शब्दों के प्रयोग में एक कठिनाई है। अंग्रेज़ी में I helped Ram में कर्ता-क्रिया-कर्म का संयोजन है। यही वाक्य हिंदी में भिन्न रचना प्रदर्शित करता है। जैसे :

मैंने   राम   की   सहायता की।
कर्ता   ?   कर्म   क्रिया

क्या यहाँ हम 'राम की' को विशेषण मानें? यह विशेषण नहीं है, क्योंकि यह इस वाक्य का अनिवार्य घटक है। वास्तव में यह प्राप्तिकर्ता है। अंग्रेज़ी में प्राप्तिकर्ता का संदर्भ केवल रूपांतरण में ही दिखाई देता है। जैसे I gave help to Ram.

रचना की दृष्टि से समास से भिन्न कई शब्द हैं, जिन्हें हम संयुक्त शब्द की कोटि में रख सकते हैं। **प्रतिध्वनित शब्द** (echo words) में मूल शब्द का प्रतिध्वनि रूप जुड़ता है, जो अपने में निरर्थक है। जैसे चाय-वाय, प्यार-व्यार, दे दाकर, मार-मूरकर आदि। उलट-पुलटकर, अड़ोस-पड़ोस आदि शब्दों में शब्द का प्रतिबिंबित रूप तो है, लेकिन थोड़े ध्वनि परिवर्तन के साथ। **अनुकरणात्मक** शब्द मूल, रूढ़, शब्द भी हो सकते हैं, जैसे धम्म से गिरना, लकड़ी का खट् से टूटना। अधिकतर अनुकरणात्मक शब्द पुनरुक्त या द्वित्व होते हैं, जहाँ मूल रूप को दुहराने से नये शब्द का निर्माण होता है। खन् की आवाज़ से खनखनांना, मेंढक की टर् की आवाज़ से टरटराना, बकरी की 'मे मे' की आवाज़ से मिमियाना इसके उदाहरण हैं।

संयुक्त शब्दों का तीसरा प्रमुख वर्ग है **पुनरुक्त शब्द**। धीरे-धीरे, बैठे-बैठे, घर-घर आदि शब्द हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं की विशेषता है। इसका संबंध कुछ हद तक वचन से है। जैसे यह बात घर-घर पहुँच गई (अर्थात् सभी घरों में या हर घर में)। 'बैठे-बैठे' में उस व्यापार की दीर्घता का आभास होता है।

समास

समास में दो स्वतंत्र शब्दों का योग होता है। दोनों शब्दों के बीच कोई न कोई व्याकरणिक संबंध होता है। इस तरह समास हमें वाक्य संरचना की ओर ले जाते हैं। समास मुख्य रूप से चार हैं।

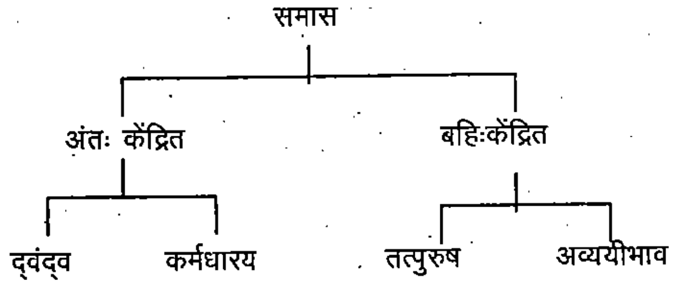

अंतःकेंद्रित रचनाएँ पदबंध के भीतर काम करती हैं, पदबंध के भीतर विस्तार करती हैं। द्वंद्व समास में दो शब्दों के बीच 'और' (समाहारा) 'या' (विकल्पन) का संबंध होता है। जैसे :

और : ऋषि-मुनियों का देश है भारत
या : मैं चाय-कॉफ़ी काछ भी ले लूँगा।

ध्यान दें कि समस्त शब्द प्रकार्य की दृष्टि से एक शब्द है, इस कारण लिंग-वचन-कारक के प्रत्यय केवल अंत में जुड़ेंगे। अगर समास का विग्रह हो जाए, तो ये दोनों दो स्वतंत्र शब्दों की तरह प्रयुक्त होंगे, जैसे

भारत के ऋषियों, मुनियों ने ......

र्मधारय समास में विशेषण + संज्ञा की रचना है (या संज्ञा + विशेषण की)। जैसे परमात्मा, षिवर। कर्मधारय के ही दो और रूप हैं। **द्विगु समास** में संख्यावाचक विशेषण और संज्ञा की ना होती है, जैसे त्रिभुज, पंचशील आदि। बहुव्रीहि कर्मधरय और द्विगु दोनों से व्युत्पन्न द्धों में अन्यार्थ की सिद्धि करता है। जैसे नीलकंठ (कर्मधारय) और त्रिलोचन (द्विगु) दोनों व जी के नाम हैं।

हे:केंद्रित रचना से पदबंधों का निर्माण होता है। केवल एक अपवाद है तत्पुरुष समास जपुत्र' का, जिसमें संबंध कारक का लोप हुआ है। 'राजा का पुत्र' अंतःकेंद्रित रचना है। ष सभी अन्य तत्पुरुष समास के शब्दों में परसर्ग का लोप दिखाई देता है, जो अन्य पदबंधों ो रचना का द्योतक है। जैसे :

मदांध - मद से अंध
गृहप्रवेश - गृह में प्रवेश
अन्नदाता - अन्न को देने वाला आदि।

व्ययीभाव समास में क्रिया विशेषण पदबंध की रचना होती है। जैसे यथा आवश्यकता - ावश्यकता के अनुसार।

).6 शब्द वर्ग

ाब्द की चर्चा समाप्त करते हुए हम शब्द वर्ग के बारे में अवलोकन करेंगे, क्योंकि शब्द वर्ग ा संबंध वाक्य संरचना से है। हम जानते हैं कि शब्द ही पदबंध की संरचना करते हैं, जो ाक्य विन्यास की सबसे छोटी इकाई है।

ारंपरागत व्याकरण हिंदी (और मूलतः संस्कृत भी) के संदर्भ में दो प्रकार के शब्दों की चर्चा करता है।

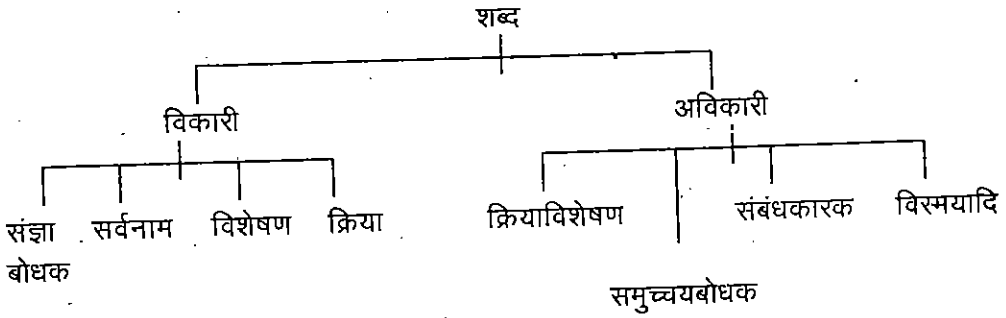

विकारी शब्दा व्याकरणिक कोटियों के कारण रूपसिद्ध होते हैं और लिंग, वचन, काल, पक्ष आदि व्याकरणिक विशेषताएँ प्रकट करते हैं। सर्वनाम या विशेषणयुक्त संज्ञा शब्द मुख्यतः संज्ञा पदबंध की रचना करते हैं जैसे कर्ता, कर्म, प्राप्तिकर्ता आदि। क्रिया शब्द क्रिया पदबंध की रचना करते हैं। कर्ता, कर्म, क्रिया आदि पदबंध वाक्य के अनिवार्य घटक हैं।

क्रियाविशेषण शब्द क्रियाविशेषण पदबंधों की रचना करते हैं, जो वाक्य के ऐच्छिक या अतिरिक्त घटक हैं। वास्तव में यहाँ, वहाँ अब, पहले, तेज़, जल्दी आदि मूल क्रियाविशेषण शब्द भाषा में बहुत सीमित हैं। अधिकतर क्रियाविशेषण पदबंध (चाकू से, घर में, तेज़ी से आदि) संज्ञा में परसर्ग जोड़ने से बनते हैं।

समुच्चयबोधक शब्द संयुक्त तथा मिश्र वाक्य के योजक शब्द हैं। संबंधकारक शब्द के लिए, के पीछे, के बाद, से पहले आदि परसर्ग युक्त पदबंधों की रचना करते हैं। विस्मयादिबोधक

शब्द (वाह! हाय! आदि) वास्तव में लघु वाक्य हैं1 इस तरह मूल क्रियाविशेषण शब्दों को छोड़ दें, तो शेष सभी अविकारी शब्द वाक्य संरचना के तत्व हैं। इसलिए आधुनिक भाषाविज्ञान इन्हें एक साथ प्रकार्यात्मक शब्द (function words) की संज्ञा देता है। अविकारी शब्दों के प्रयोग को हम वाक्य विन्यास के विश्लेषण के संदर्भ में ही अच्छी तरह जान सकते हैं।

9.7 पद की संकल्पना

एक वाक्य देखिए :

(क) उस लड़के ने कुत्तों को मारा।

इसमें क्या-क्या शब्द हैं? 'इस' मूलतः शब्द नहीं है, 'यह' का तिर्यक रूप है, 'लड़के' भी 'लड़का' का तिर्यक रूप है, जो /ने/ के कारण एकारांत में बदल गया है। इस वाक्य में आए हुए शब्दों के मूल रूप या कोशीय रूप इस तरह हैं :

(ख) यह, लड़का, ने, कुत्ते, को, मार

ये मूल शब्द साथ आने पर भी कोई समन्वित अर्थ नहीं दे पाते, जो वाक्य का गुण है। ये शब्द तभी वाक्य की सृष्टि कर सकेंगे, जब वे पहले दिए गए वाक्य के अनुसार वाक्यगत संबंध स्पष्ट करेंगे। शब्द स्तर पर वाक्य की विशेषताएँ प्रकट नहीं हो सकती। उदाहरण के तौर पर 'संज्ञा ' शब्द में वाक्य में कर्ता या कर्म का प्रकार्य वहन कर सकता है। परसर्गीय शब्द /ने/ तथा /को/ क्रमशः शब्द के व्याकरणिक अर्थ का द्योतन करते हैं। इस संदर्भ में हम कह सकते हैं कि वाक्य के घटक शब्द नहीं (जैसे ऊपर के वाक्य (ख) में है) बल्कि पद हैं (जैसे वाक्य (क) में है।) **एक वाक्य में शब्द जिस रूप में आते हैं, वे पद कहलाते हैं।** इस तरह पद रूप विज्ञान और वाक्य विज्ञान का सेतु है।

वाक्य
↑
उपवाक्य | वाक्य विज्ञान
↑
पदबंध
[मेरे लड़के ने]
[मेरा, लड़का, ने] | रूप विज्ञान
शब्द
↑
रूप

वाक्य विज्ञान का सबसे छोटा खंड पदबंध कहलाता है, क्योंकि यह पदों से निर्मित होता है। इस कारण हम वाक्य में आने वाले पदों की वाक्य संरचना के संदर्भ में विशेषताएँ बताने वाले कार्य को पद परिचय कहते हैं।

पद परिचय : ऊपर के वाक्य (क) का पद परिचय इस तरह किया जा सकता है :

उस - निर्देशवाचक सर्वनाम 'वह' का तिर्यक रूप, संज्ञा, पदबंध में संज्ञा का विशेषणवत् प्रयोग, एकवचन

लड़के - आकरांत, पुल्लिंग एकवचन संज्ञा शब्द का विकारी रूप, कर्ता या कर्म पदबंध में आ सकता है।

ने - कर्ता पदबंध सूचित करने वाला परसर्ग।

कुत्तों - आकारांत, पुल्लिंग, बहुवचन संज्ञा का विकारी रूप। संज्ञा पदबंध का शीर्ष है।

को - परसर्ग, कर्म पदबंध का द्योतक

मारा - इस वाक्य में कर्म+को के कारण अविकारी, सामान्य भूतकाल, पूर्ण पक्ष।

इस तरह पद परिचय वाक्य में पदों के विविध प्रकार्यों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिससे हम वाक्य में उनका स्थान और प्रकार्य समझ सकें। इस तरह पद की संकल्पना रूप विज्ञान और वाक्य विज्ञान का सेतु है।

9.8 सारांश

इस इकाई में हमने तीन महत्वपूर्ण संकल्पनाओं की चर्चा की। रूप भाषा का सबसे छोटा खंड है। अगर रूप स्वतंत्र है तो वे मूल शब्द कहलाएँगे जैसे पेड़, बच्चा, घोड़ा आदि। अगर रूप बद्ध हो तो वह उपसर्ग या प्रत्यय कहलाएगा और मूल शब्द के साथ मिलकर विस्तृत शब्दों का निर्माण करेगा। जैसे उपसर्ग से 'सम्मान्य' शब्द बनता है और प्रत्यय से 'एकता' शब्द बनता है।

शब्द निर्माण की प्रक्रिया के आधार पर शब्द के कई प्रकार हैं। स्वतंत्र रूप मूल शब्द ही हैं, व्याकरणिक संबंध प्रकट करने वाले प्रत्ययों से हम रूप साधित (inflected) शब्दों का निर्माण करते हैं। रूप साधित शब्द वास्तव में पदबंध की रचना में काम आते हैं और वाक्य के समन्वित अर्थ की सृष्टि करते हैं। शब्द साधक या व्युत्पादक प्रत्यय अर्थ की दृष्टि से भिन्न शब्दों की रचना करते हैं।

शब्द निर्माण की दो और प्रक्रियाएँ भी हैं। संयुक्त शब्द भिन्न रूपों ओर मूल शब्दों से 'काम करना' आदि क्रियाओं का निर्माण करते हैं ; पुनरुक्त रूपों से चमचमाना, डगमगाना आदि शब्दों की रचना करते हैं जिसमें प्रत्यय लगाकर हम 'चमचमाहट' आदि संज्ञाओं का भी शब्द साधन करते हैं। समस्त शब्द दो स्वतंत्र शब्दों के योग से बनते हैं। व्युत्पन्न शब्दों का प्रयोग अनिवार्य पदबंधों की रचना के लिए या अतिरिक्त पदबंध के रूप में होता है। पद वास्तव में वाक्य में शब्द के प्रयोग का दूसरा नाम है। विभिन्न प्रकार से निर्मित शब्दों का जब हम वाक्य में प्रयोग करते हैं तो उनमें उनके स्थान के आधार पर कर्ता, कर्म आदि पदबंधों में उनके प्रकार्य के आधार पर विविध प्रकार के व्याकरणिक संबंध स्पष्ट होते हैं जो वाक्य के समग्र अर्थों को समझने में हमारी सहायता करते हैं।

9.9 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक
   (1) रूपिम की संकल्पना स्पष्ट कीजिए और शब्द निर्माण में इसका प्रकार्य समझाइए।
   (2) शब्द वर्ग से क्या तात्पर्य है। आप हिंदी में कितने शब्द वर्ग स्थापित कर सकते हैं?

2. टिप्पणी लिखिए
   (1) रूप और शब्द का संबंध
   (2) रूप साधक और शब्द साधक प्रत्ययों में अंतर
   (3) विलोम शब्द के प्रकार

(4) विकारी और अविकारी शब्द
(5) रूप के प्रकार
(6) रूपिम की संकल्पना

3. **वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

अभ्यास-1

सही शब्द चुनकर वाक्य पूरे कीजिए।

(i) वाक्य में व्यवहृत स्वतंत्र सार्थक इकाई को .... कहते हैं। (शब्द/पद)

(ii) 'कर' से 'क्रिया' की रचना .... प्रत्यय से हुई है। (शब्दसाधक/रूपसाधक)

(iii) तत्पुरुष समाज .... रचना है। (अंतःकेंद्रित/बहिःकेंद्रित)

(iv) भाषा की सबसे छोटी, सार्थक इकाई को .... कहते हैं। (शब्द/रूप)

(v) सत्, सन्, सद् एक ही .... के सदस्य हैं। (रूपिम/प्रत्यय)

अभ्यास-2

(i) चाय-वाद को हम पुनरुक्त शब्द कहते हैं। (सही/गलत)

(ii) 'राजद्रोह' में दो मुक्त रूप एक साथ आये हैं। (सही/गलत)

(iii) रूपसाधक प्रत्ययों से व्याकरणिक विशेषताएँ प्रकट होती हैं। (सही/गलत)

(iv) संज्ञा, विशेषण आदि को प्रकार्यात्मक शब्द कहते हैं। (सही/गलत)

(v) स्वतंत्र रूप को शब्द भी कह सकते हैं। (सही/गलत)

उत्तर

अभ्यास-1

(i) पद
(ii) रूपसाधक
(iii) बहिःकेंद्रित
(iv) रूप
(v) रूपिम

अभ्यास-2

(i) गलत
(ii) सही
(iii) सही
(iv) गलत
(v) सही

:काई 10 वाक्य संरचना-I

काई की रूपरेखा

0.0 उद्देश्य

).1 प्रस्तावना

).2 वाक्य विज्ञान

).3 वाक्य का स्वरूप

- 10.3.1 अर्थपरक इकाई के रूप में
- 10.3.2 संरचनापरक इकाई के अंत में
- 10.3.3 व्याकरणिक इकाई के रूप में
- 10.3.4 मनोवैज्ञानिक इकाई के रूप में
- 10.3.5 संदर्भपरक इकाई के रूप में

).4 वाक्य की संरचना

- 10.4.1 भाषा संरचना में वाक्य
- 10.4.2 वाक्य संरचना के स्तर : उपवाक्य, पदबंध

).5 वाक्यात्मक युक्तियाँ

- 10.5.1 पदक्रम (शब्दक्रम)
- 10.5.2 कारक संबंध
- 10.5.3 अन्विति
- 10.5.4 अर्थ संगति
- 10.5.5 अध्याहार/अल्पांग वाक्य

).6 सारांश

).9 अभ्यास प्रश्न

0.0 उद्देश्य

स इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- वाक्य विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र को समझ सकेंगे,
- वाक्य का स्वरूप समझ सकेंगे,
- संरचना, अर्थ तथा संदर्भ की दृष्टि से वाक्य के स्वरूप के विभिन्न आयामों को समझ सकेंगे,
- भाषा संरचना में वाक्य के स्थान और महत्व को समझ सकेंगे,
- वाक्य के विभिन्न घटकों के बीच संरचनाक्रम को समझ सकेंगे,
- वाक्य की विभिन्न व्याकरणिक युक्तियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे,
- वाक्य में पदक्रम के महत्व को समझ सकेंगे,
- वाक्य में कारक संबंधों को समझ सकेंगे,
- वाक्य में अन्विति की व्यवस्था का महत्व समझ सकेंगे,
- वाक्य में अर्थसंगति या योग्यता का महत्व समझ सकेंगे, और
- वाक्य में अध्याहार युक्ति या अल्पांग वाक्यों की रचना समझ सकेंगे।

0.1 प्रस्तावना

छली इकाई में आप शब्द की रचना प्रक्रिया के बारे में पढ़ चुके हैं। इस इकाई में आप क्य की रचना प्रक्रिया और उसके नियमों के बारे में पढ़ेंगे।

वाक्य रचना के नियमों का अध्ययन वाक्य विज्ञान कहलाता है। इस इकाई में हम वाक्यविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र का परिचय देंगे। हम देखेंगे कि अर्थ, संरचना, मनोविज्ञान, व्याकरण, सामाजिक संदर्भ आदि की दृष्टियों से विद्वानों ने वाक्य के स्वरूप की व्याख्या की है। हम भाषा संरचना में वाक्य की स्थिति स्पष्ट करते हुए इसके दो प्रमुख घटक **उपवाक्य** और **पदबंध** की भी चर्चा करेंगे।

हम इस इकाई में आपको उन वाक्यात्मक युक्तियों का भी परिचय देंगे जिनसे संगत वाक्यों की रचना संभव होती है, जैसे पदक्रम, कारक संबंध, अन्विति, अर्थसंगति और अध्याहार (अल्पांग वाक्य)।

10.2 वाक्य विज्ञान

पिछली इकाई में आप पढ़ चुके हैं कि **रूपविज्ञान** शब्द या रूप की संरचना का अध्ययन करना है। उसी प्रकार **वाक्यविज्ञान** वाक्य की संरचना का अध्ययन करता है। **वाक्यविज्ञान भाषा की उस प्रक्रिया और नियम व्यवस्था का अध्ययन करना है जिनसे शब्द एक दूसरे के योग से वाक्य की रचना करते हैं।** इसे हम यों भी कह सकते हैं कि वाक्य संरचना के विभिन्न घटकों के बीच परस्पर संबंधों का अध्ययन **वाक्यविज्ञान** है।

जिस प्रकार विभिन्न ध्वनियों के योग से शब्द की रचना होती है उसी तरह विभिन्न शब्दों (या पदबंधों) के योग से **वाक्य** की रचना होती है। वाक्यविज्ञान जहाँ एक ओर इन शब्दों से मिलकर बननेवाली रचना (वाक्य) का अध्ययन करता है वहीं दूसरा ओर यह वाक्य के अंतर्गत दो या अधिक उपवाक्यों के परस्पर संबंधों का भी अध्ययन करता है। उपवाक्यों के स्तर पर **सरल**, **संयुक्त** और **मिश्र** तीन प्रकार के वाक्य माने जाते हैं। अतः एकाधिक उपवाक्यों से बनने वाले वाक्यों की संरचना के नियमों का अध्ययन भी वाक्यविज्ञान का विषय है।

वाक्यविज्ञान उन विभिन्न व्याकरणिक युक्तियों का भी अध्ययन करता है जिनके प्रयोग से व्याकरणसम्मत तथा संगत वाक्यों का निर्माण संभव होता है। इस प्रकार की कुछ प्रमुख वाक्यात्मक युक्तियाँ हैं : पदक्रम, कारक संबंध, अन्विति, अर्थसंगति तथा अध्याहार।

वाक्यविज्ञान के अंतर्गत वाक्यात्मक संबंधों का अध्ययन दो स्तरों पर होता है : वाक्य विन्यासात्मक (रेखीय) संबंध और रूपावली संबंध। **वाक्य विन्यासात्मक** (या रेखीय) संबंध से तात्पर्य है वाक्य के विभिन्न घटकों के बीच मौजूद क्रमिक व्याकरणिक संबंध (जैसे, कर्ता, कर्म, पूरक, क्रियाविशेषण तथा क्रिया आदि)। इस अध्ययन के फलस्वरूप हम किसी भाषा विशेष के **मूलवाक्य-साँचों** या वाक्य-कोटियों की संख्या और स्वरूप का निधार्रण करने में समर्थ होते हैं। द्रष्टव्य है कि वाक्य-साँचों से ही भाषा के समस्त वाक्य प्रजनित (व्युत्पन्न) होते हैं। इन्हीं दो सरल शब्दों में हम वाक्य का रूपांतरण या विस्तार भी कहते हैं। वाक्यविज्ञान उन नियमों और युक्तियों का भी अध्ययन करता है जिनसे मूल वाक्य-साँचों का विस्तार अथवा रूपांतरण भाषा के अनेक प्रकार के वाक्यों में संभव होता है।

रूपावली संबंध (paradigmatic relation) से तात्पर्य है वाक्य के किसी घटक विशेष (शब्द, पदबंध) का अपने ही वर्ग के अन्य शब्दों से जुड़ा होना। वाक्य में किसी एक घटक के प्रयोग-स्थान पर हम अन्य समानधर्मा शब्दों का प्रयोग कर सकते हैं। उदाहरण के लिए 'रमेश घर जा रहा है' वाक्य में रमेश के प्रयोग-स्थान पर हम 'लड़का', 'वह' 'मेरा बड़ा भाई' आदि शब्द या पदबंध इस्तेमाल कर सकते हैं। इसी प्रकार 'घर' के स्थान पर हम 'बाज़ार', 'अस्पताल', 'सीता के यहाँ' आदि शब्द या पदबंध इस्तेमाल कर सकते हैं। एक ही वर्ग के एकाधिक शब्दों/पदबंधों के बीच का यह संबंध **रूपावली संबंध** कहलाता है। यह संबंध रेखीय

या क्रमिक नहीं होता बल्कि ऊपर से नीचे की ओर होता है। द्रष्टव्य है कि इसी ऊर्ध्वाधर संबंध से **पदबंध** की संकल्पना विकसित होती है।

हिंदी वाक्य-संरचना के संदर्भ में उक्त आयामों में से कुछ की चर्चा हम इस इकाई में करेंगे और शेष की अगली इकाई-11 में।

10.3 वाक्य का स्वरूप

वाक्य क्या है? इसका उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि हम वाक्य को अर्थ की एक इकाई के रूप में देख रहे हैं या संरचना की एक इकाई के रूप में, किसी मानसिक इकाई के रूप में देख रहे हैं या सामाजिक संदर्भ की एक इकाई के रूप में, आदि। स्पष्ट है कि वाक्य के संबंध में जितने मत हैं, उतनी ही तरह की इसकी परिभाषाएँ हैं। नीचे हम वाक्य के संबंध में पाँच दृष्टिकोण प्रस्तुत कर रहे हैं जिनसे यह भी स्पष्ट हो जाएगा कि भाषाविज्ञान की बदलती मान्यताओं के साथ-साथ किस प्रकार समय-समय पर वाक्य के प्रति भी विद्वानों के दृष्टिकोणों में परिवर्तन आया है।

10.3.1 अर्थपरक इकाई के रूप में

पारंपरिक रूप से अधिकांश विद्वानों ने वाक्य को अर्थ की एक इकाई के रूप में ही परिभाषित किया है। इस मत के अनुसार वाक्य एक अपेक्षाकृत पूर्ण और स्वतंत्र मानव उक्ति है जिसकी पूर्णता और स्वतंत्रता इस बात में है कि यह अकेले प्रयुक्त होता है या हो सकता है। इस दृष्टि से वाक्य **'एक स्वतंत्र अर्थपूर्ण उक्ति'** है। कामताप्रसाद गुरू (1920) ने भी वाक्य को **'एक पूर्ण विचार व्यक्त करने वाला शब्द समूह'** कहा है। उदाहरण के लिए नीचे दिया पहला शब्द-समूह वाक्य है जबकि दूसरा शब्द-समूह वाक्य नहीं है, क्योंकि यह पूर्ण विचार व्यक्त नहीं करता :

(1) मेरा मित्र परीक्षा देने जा रहा है। (वाक्य)

(2) मेरा मित्र परीक्षा देने। (वाक्य नहीं)

10.3.2 संरचनापरक इकाई के रूप में

कुछ विद्वानों का मानना है कि अर्थ या विचार की पूर्णता सापेक्षिक होती है। एक विचार को हम दो या अधिक वाक्यों में भी कह सकते हैं और एक में भी। अतः संरचनावादी भाषावैज्ञानिकों ने वाक्य को एक मूर्त रचना के रूप में स्वीकार किया, अमूर्त अर्थ के रूप में नहीं। उनके अनुसार वाक्य एक रचना है जो कुछ घटकों (शब्दों, पदबंधों) से मिलकर बना है, उसी प्रकार जिस प्रकार शब्द एक रचना है जो कुछ ध्वनियों से मिलकर बना है। अतः ब्लूमफील्ड के अनुसार 'वाक्य एक ऐसी रचना है जो किसी उक्ति विशेष में अपने से बड़ी किसी रचना का अंग नहीं बन सकती।' इस दृष्टि से वाक्य भाषा की सबसे बड़ी इकाई है। उदाहरण के लिए, ध्वनि अपने से बड़ी रचना शब्द का अंग है, शब्द अपने से बड़ी रचना पदबंध का अंग है, पदबंध अपने से बड़ी रचना उपवाक्य का अंग है, लेकिन वाक्य अपने से बड़ी किसी रचना का अंग नहीं हो सकता। देखिए :

ध्वनियाँ	: ल/ड़/क/आ	शब्द	: लड़का
शब्द	: मेरा/बड़ा/लड़का	पदबंध	: मेरा बड़ा लड़का
पदबंध	: मेरा बड़ा लड़का/कल/आ रहा है	उपवाक्य	: मेरा बड़ा लड़का कल आ रहा है।
उपवाक्य	: मैंने उन्हें बताया/कि मेरा लड़का कल आ रहा है	वाक्य	: मैंने उन्हें बताया कि मेरा बड़ा लड़का कल आ रहा है।

10.3.3 व्याकरणिक इकाई के रूप में

वाक्य को हम एक व्याकरणिक इकाई के रूप में भी देख सकते हैं। वाक्य के विभिन्न घटक वाक्य में कोई न कोई व्याकरणिक भूमिका निभाते हैं, अर्थात् कोई न कोई व्याकरणिक प्रकार्य पूरा करते हैं। इस दृष्टि से वाक्य एक ऐसी व्याकरणिक रचना है जिसमें कम से कम दो अवयवों का होना ज़रूरी है - उद्देश्य और विधेय। उद्देश्य वाक्य का वह अंश है जिसके बारे में कुछ कहा जाए। उद्देश्य के बारे में जो कुछ कहा जाए वह विधेय है। देखिए :

उद्देश्य	विधेय
मेरा बड़ा लड़का	कल आ रहा है।
सतीश	बीमार है।
बच्चे को	गर्मी लग रही है।

वाक्य में उद्देश्य और विधेय का विस्तार संभव है। यह विस्तार या तो विशेषणों के प्रयोग से संभव होता है (देखिए (क)) या फिर अन्य घटकों के आगम से (देखिए (ख)), जैसे :

(क) लड़का → मेरा बड़ा लड़का

बीमारा → बहुत बीमार

(ख) मेरा लड़का/कल शाम की गाड़ी से/दिल्ली/जा रहा है।

10.3.4 मनोवैज्ञानिक इकाई के रूप में

संरचनावादी भाषावैज्ञानिकों ने वाक्य को एक मूर्त तथा विश्लेष्य रचना के रूप में देखा था, लेकिन रूपांतरण निष्पादक व्याकरण के जनक चॉम्स्की ने वाक्य को मानव मस्तिष्क में स्थित एक अमूर्त संकल्पना के रूप में स्वीकार किया। उनके अनुसार इस अमूर्त संकल्पना का व्यक्त या व्यावहारिक रूप **उक्ति** है। अपने अमूर्त मानसिक रूप में वाक्य एक **आदर्श वाक्य** होता है जो हर दृष्टि से पूर्ण और सही होता है। उसका जो रूप बाह्य संरचना से व्यक्त होता है वह उससे भिन्न हो सकता है। अतः वाक्य की दो प्रकार की संरचनाओं की कल्पना की गई : आंतरिक तथा बाह्य/ ऊपर से एक दिखाई देने वाले वाक्य में एक या अधिक आंतरिक वाक्य अंतर्निहित हो सकते हैं। इन आंतरिक वाक्यों को आधायित (embeded) वाक्य कहा जाता है। जिस वाक्य में आधायित वाक्य निहित होता है उसे **आधात्री वाक्य** कहते हैं। देखिए :

बाह्य संरचना	: मैंने लोगों को कमरे से बाहर भागते देखा।	
आंतरिक संरचना	: क. मैंने लोगों को देखा।	(आधात्री वाक्य)
	ख. लोग कमरे से बाहर भाग रहे थे	(आधायित वाक्य)

यही कारण है कि मनोवादी भाषावैज्ञानिक वाक्य को एक संरचित माला या लड़ी (स्ट्रक्चर्ड स्ट्रिंग) मानते हैं। उनके अनुसार वाक्य रेखीय क्रम में बुनी गई लड़ी या माला नहीं है। इसकी बुनावट में उच्चाधिक्रम (hierarchy) है और एक से अधिक स्तर हैं।

संरचनावादी भाषावैज्ञानिक अर्थ को अविश्लेष्य मानते हुए इसे अपने विश्लेषण में शामिल नहीं करते थे। रूपांतरण निष्पादक व्याकरण ने अर्थबोध को अपने विश्लेषण में एक घटक के रूप में स्वीकार किया क्योंकि इसी घटक से बाह्य स्तर पर समान लेकिन आंतरिक स्तर पर भिन्न से वाक्यों में भेद स्पष्ट करना संभव होता है। देखिए :

राधा ने लड़कों को मुस्कराते हुए देखा।

क. राधा मुस्करा रही थी। (वाक्य 1),

ख. लड़के मुस्करा रहे थे। (वाक्य 2)

10.3.5 संदर्भपरक इकाई के रूप में

समाज भाषाविज्ञान और बाद में संकेत प्रयोग विज्ञान (प्रैग्मेटिक्स) के विकास के बाद वाक्य की संकल्पना में बहुत बड़ा परिवर्तन आया। अब वाक्य को संरचना के रूप में नहीं बल्कि एक सामाजिक 'घटना' या कार्यव्यापार के एक घटक के रूप में देखा जाने लगा जिसका संबंध संवाद के पूर्ण परिवेश से होता है। इस दृष्टि से वाक्य संदेश-संप्रेषण की एक इकाई है, लेकिन मूल इकाई नहीं। संदेश-संप्रेषण की दृष्टि से अब भाषा की मूल इकाई प्रोक्ति (डिस्कोर्स) माना जाने लगा, वाक्य नहीं। जो वाक्य या वाक्य समूह वक्ता के पूर्ण मंतव्य, विचार-बिंदु या संदेश को व्यक्त करे, वह प्रोक्ति है।

प्रसंग के अनुसार प्रोक्ति केवल एक शब्द की भी हो सकती है (बैठिए, आओ), एक वाक्य की भी (एक गिलास पानी लाओ), एक से अधिक वाक्यों की भी (कमरे में जाओ। वहाँ पानी का एक गिलास रखा है। उसे ले आओ), एक पैराग्राफ की भी और एक पूर्ण अध्याय या पुस्तक की भी। आप प्रोक्ति के बारे में विस्तार से इकाई 13 में पढ़ेंगे।

ऊपर के विवेचन से आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि प्रारंभ से लेकर अब तक वाक्य की संकल्पना में कितने मोड़ आए और किस प्रकार भाषावैज्ञानिक विचारधाराओं के उतार-चढ़ाव के साथ इसकी परिभाषा बदलती रही।

10.4 वाक्य की संरचना

10.4.1 भाषा संरचना में वाक्य

भाषा की संरचना के तीन प्रमुख अंग माने जाते हैं - ध्वनि, व्याकरण और अर्थ। इनमें से व्याकरण के दो प्रमुख अवयवों में एक है वाक्य और दूसरा शब्द। सुविधा के लिए भाषा-संरचना का वर्गीकरण इस प्रकार दर्शाया जा सकता है :

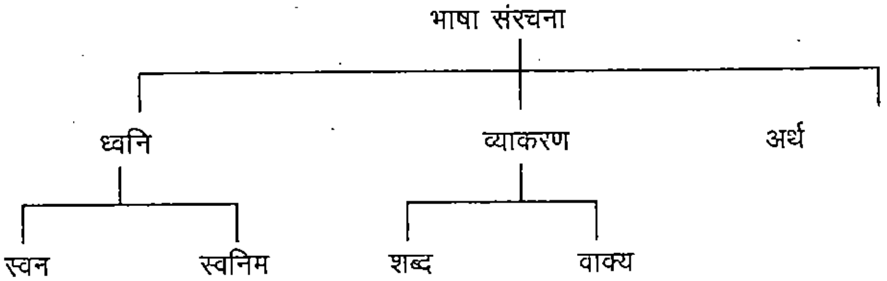

इससे पहले अनुच्छेद 10.3 में आपने देखा कि व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से वाक्य भाषा की सबसे बड़ी इकाई है, लेकिन संदेश-संप्रेषण की दृष्टि से वाक्य से भी बड़ी एक इकाई है प्रोक्ति, जो वक्ता के पूर्ण मंतव्य का प्रतिनिधित्व करती है। प्रोक्ति भाषा की वह इकाई है जो वक्ता के अभीष्ट मंतव्य या संदेश को अपनी पूर्णता में श्रोता तक पहुँचाती है।

10.4.2 वाक्य संरचना के स्तर : उपवाक्य, पदबंध

(क) **उपवाक्य** : वाक्य से छोटा घटक उपवाक्य है। वाक्य एक उपवाक्य का भी हो सकता है और एक से अधिक उपवाक्यों का भी। जहाँ वाक्य में केवल एक उपवाक्य होता है वहाँ वह स्वतंत्र उपवाक्य होता है और सरल वाक्य कहलाता है। इस स्थिति में वाक्य और उपवाक्य में अभेद होता है। उदाहरण के लिए नीचे दिया वाक्य (1) एक स्वतंत्र उपवाक्य है और इसलिए सरल वाक्य भी है। इसमें केवल एक ही उपवाक्य की सत्ता है। इससे भिन्न वाक्य (2) में दो उपवाक्य हैं लेकिन यह भी वाक्य है। देखिए:

(1) मैंने एक मकान खरीदा। (एक स्वतंत्र उपवाक्य=वाक्य)

(2) मैंने एक मकान खरीदा जिसमें चार कमरे हैं।
(स्वतंत्र उपवाक्य+अस्वतंत्र उपवाक्य = वाक्य)

वाक्य में उपवाक्यों की संख्या एक या एक से अधिक कितनी भी हो सकती है। जिन वाक्यों में दो या अधिक उपवाक्य होते हैं उनमें उपवाक्यों के बीच दो प्रकार के संबंध संभव हैं : अस्वतंत्र (आश्रित) और स्वतंत्र (अनाश्रित)। जो उपवाक्य दूसरे उपवाक्यों पर आश्रित होते हैं उन्हें आश्रित उपवाक्य कहते हैं। जो उपवाक्य दूसरे उपवाक्यों पर आश्रित नहीं होते वे स्वतंत्र (या मुख्य) उपवाक्य होते हैं। देखिए :

(1) सेठजी ने जेब से पैसे निकाले और लड़के को दे दिए।
(दोनों स्वतंत्र उपवाक्य)

(2) जेनी ने वे कपड़े पहने जो मैंने उसे दिए थे।
(पहला उपवाक्य स्वतंत्र/मुख्य, दूसरा आश्रित)

जिन उपवाक्यों में दोनों उपवाक्य स्वतंत्र होते हैं उन्हें संयुक्त वाक्य कहते हैं, जैसे उपर्युक्त वाक्य (1)। जिन वाक्यों में एक उपवाक्य स्वतंत्र/मुख्य और दूसरा आश्रित रहता है, उन्हें मिश्र वाक्य कहते हैं। इस दृष्टि से उपवाक्यों के संदर्भ में वाक्य की तीन कोटियाँ संभव हैं :

1. सरल वाक्य [जिसमें केवल एक उपवाक्य होता है जो अनिवार्यतः स्वतंत्र होता है।]
2. संयुक्त वाक्य [जिसमें दो या अधिका स्वतंत्र/मुख्य उपवाक्य होते हैं]
3. मिश्र वाक्य [जिसमें एक स्वतंत्र/मुख्य उपवाक्य होता है और शेष आश्रित उपवाक्य]

इन पर विस्तृत चर्चा इकाई-11 में की जाएगी।

(ख) **पदबंध** : उपवाक्य से छोटा घटक पदबंध है। उपवाक्य पदबंधों से मिलकर बनता है। पदबंध वाक्य में निर्धारित व्याकरणिक प्रकार्यों को पूरी क ने वाली इकाइयाँ हैं, जिनका अस्तित्व केवल वाक्य के अंतर्गत ही संभव है, वाक के बाहर नहीं।

पदबंध की संकल्पना को आप इस प्रकार भी समझ सकते हैं। प्रत्येक वाक्य में कर्ता, कर्म, पूरक क्रियाविशेषण तथा क्रिया आदि का एक निर्धारित प्रयोग-स्थान होता है। इन स्थानों पर प्रयुक्त होकर संज्ञा, विशेषण क्रियाविशेषण, क्रिया आदि शब्द वाक्य में कुछ निश्चित भूमिकाएँ निभाते हैं और वाक्य में निर्धारित प्रकार्य संपन्न करते हैं। इन स्थानों को प्रकार्य स्थान कहते हैं और इन स्थानों पर जो शब्द या शब्द समूह प्रयुक्त होते हैं या होने की क्षमता रखते हैं उन्हें पदबंध कहते हैं। इस दृष्टि से पदबंध एक शब्द का भी हो सकता है और एक से अधिक शब्दों का भी। देखिए :

कर्ता पदबंध	**कर्म पदबंध**	**क्रिया पदबंध**
(1) ड्राइवर	गाड़ी	धो रहा है।
(2) मेरा ड्राइवर	दोनों गाड़ियाँ	धो रहा है।
(3) हमारा पुराना ड्राइवर	बाहर रखी सभी गाड़ियाँ	धो रहा है।

वाक्य (1) में तीन पदबंध हैं : 'ड्राइवर', 'गाड़ी' और 'धो रहा है'। ये तीनों घटक यहाँ क्रमशः कर्ता, कर्म और क्रिया के प्रकार्य स्थान पर प्रयुक्त हैं। वाक्य (2) और (3) में इन पदबंधों का कुछ विस्तार हुआ है, लेकिन उनके प्रकार्य वे ही हैं। समान प्रकार्य-स्थानों पर प्रयुक्त होने के कारण वे भी पदबंध हैं, अर्थात् प्रकार्य की दृष्टि से

'ड्राइवर', 'मेरा ड्राइवर' और 'हमारा पुराना ड्राइवर' में कोई अंतर नहीं है, क्योंकि तीनों कर्ता स्थान पर प्रयुक्त हैं। यहाँ तीनों पदबंधों में शीर्ष एक ही है - 'ड्राइवर'। यही स्थिति अन्य दो पदबंधों के साथ भी है। तात्पर्य यह कि पदबंध के विस्तार के लिए शीर्ष के साथ जितने भी विशेषक (विशेषण आदि) प्रयुक्त होंगे, वे सभी उसके अंग होते चले जाएँगे।

पदबंधों का विस्तार मुख्यतः चार प्रकार से संभव होता है :

1. शीर्ष (संज्ञा आदि) में विशेषण जोड़कर, जैसे :

   (मीठा) फल, (बच्चों के) कपड़े,

   (ऊपर के मकान में रहने वाला) व्यक्ति

2. दो या अधिक शीर्षों का प्रयोग कर, जैसे :

   राम और सीता; बच्चे, बूढ़े और ज़वान,

   आम, संतरे, अनार और केले

3. दो या अधिक शीर्षों को समानाधिकरण संबंधों में जोड़कर। ऐसे दृष्टांतों में दो या अधिक शीर्ष एक ही व्यक्ति या पदार्थ का बोध कराते हैं और एक प्रकार का विशेषण का-सा कार्य करते हैं लेकिन दोनों संज्ञाएं शीर्ष होती हैं, जैसे :

   हमारे निदेशक श्री राम लाल गुप्ता

   मेरा लड़का सतीश

4. परसर्गों आदि के प्रयोग से, जिससे सामान्यतः क्रियाविशेषण पदबंध प्राप्त किए जा सकते हैं, जैसे :

   सड़क में, उन विद्यार्थियों के लिए, छोटी बस से।

पदबंध से छोटी इकाई शब्द है। शब्दों के योग से ही पदबंध की रचना होती है, जैसे:

हमारा + पुराना + ड्राइवर = हमारा पुराना ड्राइवर

जिस पदबंध में केवल एक ही शब्द होता है उसमें शब्द और पदबंध में अभेद होता है जैसे 'ड्राइवर गाड़ी धो रहा है' में 'ड्राइवर' और 'गाड़ी' पदबंध भी हैं और शब्द भी। वाक्य में आने वाले शब्दों को हम पद कहते हैं। इसके बारे में आप इकाई 9 में पढ़ चुके हैं। शब्द से छोटा घटक रूपिम है और रूपिम से छोटा घटक स्वनिम है। इन दोनों के बारे में आप इससे पहले की इकाइयों में विस्तार से पढ़ चुके हैं।

उक्त विश्लेषण में भाषा संरचना में वाक्य तथा अन्य घटकों के बारे में हमने जो कुछ चर्चा की उसके आधार पर हम भाषा के विभिन्न घटकों को अधिक्रम (हाइरार्की) इस प्रकार दर्शा सकते हैं :

प्रोक्ति

वाक्य

उपवाक्य

पदबंध

शब्द

रूपिम

स्वनिम

).5 वाक्यात्मक युक्तियाँ

र हमने वाक्य को शब्दों अथवा पदबंधों से बनी एक रचना कहा है। इससे यह नहीं ाझना चाहिए वाक्य बिखरे हुए शब्दों का समूह मात्र है। आप किसी भी को गौर से देखें तो

आप पाएँगे कि वाक्य के विभिन्न घटकों के बीच एक प्रकार की क्रमबद्धता होती है। इसे हम **पदक्रम** (या शब्दक्रम) कहते हैं। आप यह भी पाएँगे कि इन घटकों के बीच एक प्रकार का व्याकरणिक संबंध भी है जो शब्दों (घटकों) के प्रयोग स्थान द्वारा या फिर विभक्तियों (ने, को, में, से आदि) द्वारा व्यक्त होता है। इसे हम **कारक** या **कारक संबंध** कहते हैं। आप यह भी पाएँगे कि वाक्य के कुछ घटक अन्य घटकों के रूपों को वचन, लिंग, पुरुष की दृष्टि से प्रभावित करते हैं। यह **अन्विति** कहलाता है। आप यह भी पाएँगे कि एक ही संरचनात्मक कोटि का शब्द होते हुए भी आप उसके स्थान पर दूसरा शब्द नहीं इस्तेमाल कर सकते। दूसरे शब्दों में, किसी भी संज्ञा आदि शब्द की जगह वाक्य में कोई भी दूसरा संज्ञा आदि शब्द आप नहीं रख सकते। शब्दों के अर्थ में एक प्रकार की संगति होती है तभी वे शब्द सही वाक्य का निर्माण करते हैं। वाक्य के इस लक्षण को हम **अर्थसंगति** (या योग्यता) कहते हैं।

आप अक्सर यह भी देखते हैं कि हम कभी-कभी पूरा वाक्य न बोलकर वाक्यों के कुछ अंशों को लुप्त कर देते हैं, लेकिन फिर भी श्रोता को अभीष्ट अर्थ का बोध हो जाता है। इसे हम अध्याहार कहते हैं और इस प्रकार के वाक्यों को प्रायः अल्पांग वाक्य कहते हैं। ये सभी वाक्य-रचना की कुछ व्याकरणिक युक्तियाँ या लक्षण हैं जिनकी संक्षिप्त चर्चा हम आगे करेंगे।

10.5.1 पदक्रम (शब्दक्रम)

शब्द से बड़ी किसी भी रचना में शब्दों का पूर्वापर क्रम शब्दक्रम कहलाता है। यह क्रम-विधान हर भाषा में अलग हो सकता है। उदाहरण के लिए हिंदी, अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं में संज्ञा पदबंध का शब्दक्रम है : विशेषण + संज्ञा, जैसे बड़ा लड़का, सुंदर मकान। कुछ अन्य भाषाओं में (जैसे फ्रांसीसी, रोमानियन आदि) यह क्रम उलटा होता है अर्थात् संज्ञा + विशेषण। इसी प्रकार हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में क्रिया वाक्य के अंत में आती है जबकि अंग्रेज़ी आदि भाषाओं में कर्ता के बाद, अर्थात् मध्य में।

यहाँ हमारी चर्चा का विषय वाक्य के घटकों के बीच शब्दक्रम व्यवस्था से है। वाक्य के संदर्भ में इसे पदक्रम कहना अधिक उचित है। वाक्य के स्तर पर पदक्रम की लगभग वही भूमिका होती है जो कारक विभक्ति की होती है। इसलिए कोई शब्द वाक्य में किस स्थान पर और किससे पहले या बाद में प्रयुक्त होता है यह कभी-कभी प्रकट करता है कि वह शब्द वाक्य में कर्ता है, कर्म है या कोई और व्याकरणिक प्रकार्य कर रहा है। इस दृष्टि से पदक्रम का वाक्य में वही महत्व है जो कारक का है। उदाहरण के लिए, इन दो वाक्यों में प्रथम स्थान में आने के कारण ही साँप और मेंढ़क कर्ता है।

साँप मेंढ़क खा रहा है (साँप : कर्ता)
मेंढ़क साँप खा रहा है (मेंढ़क : कर्ता)

यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि अगर संज्ञा के बाद कोई विभक्ति या परसर्ग (ने, को, से आदि) प्रयुक्त हो तो प्रायः वह विभक्ति ही कर्ता, कर्म आदि की सूचना देता है, पदक्रम नहीं। देखिए :

साँप मेंढ़क को खा रहा हे। (मेंढ़क : कर्म)
मेंढ़क को साँप खा रहा है।(मेंढ़क : कम)

हिंदी तथा भारतीय भाषाओं में वाक्यों का पदक्रम है : कर्ता-कर्म-क्रिया जिसमें क्रिया का स्थान वाक्य के सबसे अंत में है। अंग्रेजी में इसे SOV रचना कहते हैं, अर्थात् subject - objcet-verb। अंग्रेजी इसके विपरीत SVO पदक्रम वाली भाषा है, अर्थात् जिसमें क्रिया का स्थान कर्ता के बाद होता है और कर्म का उसके बाद।

हिंदी के वाक्यों की सहज पदक्रम व्यवस्था इस प्रकार है : हिंदी वाक्य = (+कर्ता ± कर्म ± पूरक ± क्रिया विशेषण + क्रिया)

;सम कता तथा क्रिया अनिवार्य घटक (+) हैं, कर्म और पूरक ऐच्छिक घटक (±) हैं और क्रिया विशेषण ऐसा ऐच्छिक घटक है, जो अपने स्थान से पूर्व किसी भी स्थान पर आ सकता ;, अर्थात् कर्ता से पहले या बाद में, कर्म से पहले या बाद में और क्रिया से पहले, लेकिन ाद में नहीं। देखिए :

परसों मैं चिट्ठी लिखूँगा।
मैं परसों चिट्ठी लिखूँगा।
मैं चिट्ठी परसों लिखूँगा।

ुछ भाषाओं में पदक्रम व्यवस्था अधिक स्थिर होती है और कुछ में अधिक लचीली। हिंदी ाक्यों में पदक्रम अधिक लचीला है। इसके विपरीत अंग्रेज़ी में पदक्रम काफी स्थिर है। दाहरण के लिए नीचे दिए अंग्रेज़ी वाक्य में आप पदक्रम परिवर्तन नहीं कर सकते लेकिन ंदी वाक्य में कर सकते हैं :

My brother has gone to the hopital
(*To the hopital my father has gone
*Has gone my father to the hopital)
मेरे पिताजी अस्पताल गए हैं।
गए हैं मेरे पिताजी अस्पताल।
अस्पताल गए हैं मेरे पिताजी।

0.5.2 कारक संबंध

ाक्य के विभिन्न पदबंध परस्पर कुछ वैयाकरणिक संबंधों से जुड़े होते हैं, तभी उनसे वांछित ार्थ बोध हो पाता है। यह व्याकरणिक संबंध कारक संबंध कहलाता है। इसी के फलस्वरूप ाक्य का कोई पदबंध कर्ता की भूमिका में होता है, कोई कर्म की, कोई पूरक, कोई क्रिया ाशेषण की और कोई क्रिया की। वास्तव में इन्हीं की मदद से हमें किसी भी वाक्य का र्कसम्मत अर्थबोध होता है।

ाप पहले पढ़ चुके हैं कि वाक्य में कारक संबंधों की सूचना हमें, दो प्रकार से मिलती है ारक विभक्तियों से, (जैसे ने, को, में, से, के लिए आदि) और पद के प्रयोग स्थान से जैसे प्रथमा, द्वितीया, आदि)। संस्कृत तथा परंपरागत हिंदी व्याकरण में वाक्य स्तर पर 6 कार के कारक गिनाए गए हैं (इनकी प्रमुख संभावित विभक्तियाँ कोष्ठक में दी गई हैं) :

. कर्ता (क्रिया का करने वाला) : ∅ ने (से, को)
. कर्म (जिस पर क्रिया का प्रभाव या फल पड़े) : (∅, को)
. करण (जिस साधन से क्रिया हो) : से, के द्वारा
. संप्रदान (जिसकी हितपूर्ति क्रिया से हो) : को, के लिए
. अपादान (जिससे अलगाव हो) : से
. अधिकरण (क्रिया संचालन का आधार) : में, पर

ाक्य विश्लेषण में कारक संबंध अत्यंत महत्वपूर्ण और जटिल माना जाता है। भाषावैज्ञानिकों इस पर काफी कार्य किया है। प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक फ़िल्मोर (1968) ने 'कारक व्याकरण' ामक ग्रंथ की रचना की। उनके अनुसार 'वाक्य एक क्रिया तथा एक से अधिक संज्ञा दबंधों की ऐसी रचना है जिसमें प्रत्येक संज्ञा क्रिया के साथ एक विशेष कारक संबंध के तर्गत जुड़ी रहती है।' इस विश्लेषण में क्रिया वाक्य के केंद्र में है और क्रिया ही यह ाश्चित करती है कि उसे वाक्य में कितने और किन-किन कारकों की आवश्यकता है। दाहरण के लिए, आना, बुलाना, बुलवाना क्रियाओं की कारक संबंधी आकांक्षाएँ देखिए :

रमेश आया। (एक कारक)
निदेशक ने रमेश को बुलाया। (दो कारक)
निदेशक ने चपरासी से सचिव को बुलवाया (तीन कारक)

10.5.3 अन्विति

हर भाषा में संज्ञाओं की तीन प्रमुख व्याकरणिक कोटियाँ होती हैं - वक्ता, लिंग और पुरुष। इनकी एक विशेषता यह होती है कि ये प्रायः संज्ञा के माध्यम से वाक्य के कुछ घटकों (जैसे विशेषण और क्रिया) के रूपों को प्रभावित करती हैं। दूसरे शब्दों में, ये संज्ञाएँ उन्हें अपनी व्याकरणिक कोटि (लिंग-वचन-पुरुष) के अनुकूल रूप बदलने को बाध्य करती हैं। किसी घटक विशेष के प्रभाव में रूप बदलने की इस प्रक्रिया को अन्विति कहते हैं।

यद्यपि अन्विति की यह प्रक्रिया सभी भाषा में कमोबेश देखी जाती है, लेकिन हिंदी में यह प्रवृत्ति बहुत अधिक है। हिंदी में अन्विति दो स्तरों पर देखी जा सकती है - विशेषण और क्रिया।

1. विशेषण स्तर पर : छोटा लड़का, छोटे लड़के, छोटी लड़की
2. क्रिया स्तर पर : लड़का आ गया। सीता आ गई।
   मेहमान आ गए। महिलाएँ आ गईं।

वाक्य के संदर्भ में इनमें से संज्ञा-क्रिया की अन्विति अधिक महत्वपूर्ण है। संज्ञा-विशेषण की अन्विति मुख्यतः पदबंध स्तर तक सीमित रहती है।

10.5.4 अर्थ संगति

व्याकरणिक संरचना तथा अन्विति आदि की दृष्टि से सही होते हुए भी वाक्य अर्थ संगति की दृष्टि से दोषपूर्ण हो सकते हैं। देखिए :

1. * कल मैंने अपने विचारों को खाया।
2. * मेरी गाड़ी आज बहुत दुखी है।
3. * बच्चे बर्फ पढ़ रहे हैं।

ऊपर दिए तीन वाक्य क्यों असंगत हैं? शब्द जहाँ एक ओर व्याकरणिक रचना है, वहीं अर्थ के स्तर पर वह किसी वस्तु या व्यापार का प्रतीक भी है। जिस प्रकार वाक्य में व्याकरण की रचना संबंधी कुछ आकांक्षाएँ होती हैं उसी तरह वस्तु (अर्थ) की भी कार्य-व्यापारगत कुछ आकांक्षाएँ होती हैं। 'खाना' व्यापार का कर्म कोई खाद्य पदार्थ ही हो सकता है, 'विचार' नहीं। दुखी कोई प्राणी ही हो सकता है 'गाड़ी' नहीं। 'पढ़ना' व्यापार का कर्म कोई पठनीय वस्तु ही हो सवंतीा है 'बर्फ़' नहीं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वाक्य के हर घटक को अर्थ की दृष्टि से भी अन्य संबद्ध घटकों के योग्य होना चाहिए। इसे अर्थसंगति कहा जाता है। इसीलिए परंपरागत व्याकरण में इसे योग्यता का गुण कहा जाता है।

10.5.5 अध्याहार/अल्पांग वाक्य

यदि अपने आस-पास वास्तव में प्रयुक्त वाक्यों को आप गौर से देखें तो आप पाएँगे कि हम अनेक बार वाक्य के कुछ अंशों का लोप कर देते हैं और कभी-कभी तो केवल एक-दो शब्दों का ही प्रयोग करते हैं और फिर भी अर्थबोध में कोई बाधा नहीं पहुँचती। भाषा का यह लक्षण **अध्याहार** कहलाता है और इस प्रकार के वाक्यों को हम **अल्पांग वाक्य** कहते हैं। पूर्णांग वाक्यों में वाक्य के सभी घटक मौजूद रहते हैं (राम घर जा रहा है)। अल्पांग वाक्यों में एक या अधिक घटकों का लोप होता है (आइए)।

अर्थबोध तथा रचना प्रक्रिया की दृष्टि से हम अल्पांग वाक्यों को चार प्रमुख वर्गों में रख सकते हैं :

1. **वृत्ति, मनोभाव, संबोधन**, अभिवादन सूचक अल्पांग वाक्य :

   हे भगवान!
   शुक्रिया।
   नमस्कार।
   शाबाश।

2. **संदर्भ आश्रित अल्पांग वाक्य :** इनमें लुप्त अंश का अर्थबोध संदर्भ की सहायता से होता है, जैसे :

   कौन? (प्रश्न)
   डाकिया। (उत्तर)
   (आप कहाँ जा रहे हैं?) बनारस।
   (मैं जा रहा हूँ) अच्छा।

3. **पूरक अल्पांग वाक्य :** सामान्यतः बोलचाल के वाक्यों में कुछ वाक्यों के एक-दो घटक वाक्य के बाद एक अन्य अल्पांग वाक्य के रूप में आते हैं, मानो वे बाद में आए पूरक विचार हों, जैसे :

   मैं कल लौटूँगा। तीन बजे।
   वह आज आ रहा है। शाम की गाड़ी से।

4. **संयुक्त अल्पांग वाक्य :** वाक्य में समानधर्मी घटकों के दोहराव से बचने के लिए वक्ता प्रायः उनमें से एक घटक का लोप कर देता है। यह लक्षण लगभग सभी भाषाओं में मिलता है। देखिए :

   मैं भी घर जाऊँगा लेकिन अभी नहीं।
   माँ सो रही है और बच्ची भी।

5. **आज्ञार्थक अल्पांग वाक्य :** लगभग सभी भाषाओं में आज्ञार्थक वाक्यों में सामान्यतः मध्यम पुरुष (तुम, आप, तू) का लोप हो जाता है। देखिए :

   (आप) आइए।
   (तुम) एक कप चाय लाओ।

10.6 सारांश

- वाक्यविज्ञान भाषा की उस प्रक्रिया और नियम-व्यवस्था का अध्ययन करता है जिनसे शब्द एक दूसरे के योग से वाक्य की रचना करते हैं।
- घटकों के बीच वाक्यात्मक संबंध दो प्रकार के होते हैं : वाक्य विन्यासात्मक और रूपावली संबंध।
- व्याकरणिक स्तर पर भाषा की मूल इकाई वाक्य है और संदेश-संप्रेषण के स्तर पर भाषा की मूल इकाई प्रोक्ति है।
- वाक्य में व्याकरणिक दृष्टि से कम से कम दो अवयवों का होना ज़रूरी होता है - उद्देश्य और विधेय।
- भाषा-संरचना के तीन प्रमुख स्तर हैं : ध्वनि, व्याकरण और अर्थ।
- वाक्य से छोटा घटक उपवाक्य है। एक वाक्य में एक उपवाक्य भी हो सकता है और एक से अधिक भी।
- उपवाक्य दो प्रकार के हो सकते हैं - आश्रित तथा स्वतंत्र।
- जिन वाक्यों में दोनों उपवाक्य स्वतंत्र होते हैं उन्हें संयुक्त वाक्य कहते हैं।
- जिन उपवाक्यों में एक उपवाक्य स्वतंत्र तथा शेष आश्रित उपवाक्य होते हैं उन्हें मिश्रवाक्य कहते हैं।

- पदबंध वाक्य में निर्धारित व्याकरणिक प्रकार्यों को पूरी करने वाली इकाइयाँ हैं जिनका अस्तित्व केवल वाक्य के अंतर्गत ही संभव है।
- वाक्य रचना प्रक्रिया की पाँच प्रमुख वाक्यात्मक युक्तियाँ हैं : पदक्रम, कारक संबध, अन्विति, अर्थसंगति और अध्याहार।
- किसी घटक विशेष के प्रभाव में रूप बदलने की प्रक्रिया अन्विति कहलाती है।
- पूर्णांग वाक्यों में वाक्य के सभी घटक मौजूद रहते हैं। अल्पांग वाक्यों में एक या अधिक घटकों का लोप रहता है।
- अल्पांग वाक्य की कुछ प्रमुख कोटियाँ हैं : वृत्तिसूचक, संदर्भ आश्रित, पूरक, संयुक्त तथा आज्ञार्थक।

10.7 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

(1) वाक्य का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

(2) वाक्यात्मक युक्तियों की संकल्पना को सोदाहरण समझाइए।

2. टिप्पणी लिखिए

(1) वाक्य और उपवाकय का संबंध

(2) पदबंध की संकल्पना

3. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

अभ्यास-1

(क) नीचे दिए कुछ कथन सही हैं और कुछ गलत। सही कथन के आगे (✓) तथा गलत कथन के आगे (x) का निशान लगाएँ

i) मूल वाक्य साँचों से ही भाषा के समस्त वाक्य प्रजनित हों यह ज़रूरी नहीं। (सही/गलत)

ii) संरचना की दृष्टि से वाक्य भाषा की सबसे बड़ी इकाई है। (सही/गलत)

iii) सरल वाक्य में कम से कम दो उपवाक्य आवश्यक हैं। (सही/गलत)

iv) प्रोक्ति हमेशा एक से अधिक वाक्यों की होती है। (सही/गलत)

v) संयुक्त वाक्यों में कोई भी आश्रित उपवाक्य नहीं होता। (सही/गलत)

(ख) कोष्ठक में दिए उत्तरों में से कोई एक उत्तर सही है। जो सही उत्तर हो उसे रिक्त स्थान में लिखिए।

i) पदबंधों का अध्ययन .... के अंतर्गत होता है।
(शब्द विज्ञान/रूप विज्ञान/वाक्य विज्ञान)

ii) किसी वाक्य में एक पदबंध के स्थान पर अन्य समानधर्मा पदबंधों का प्रयोग .... संबंध सूचित करता है।
(वाक्य विन्यासात्मक/रूपावली/व्याकरणिक)

iii) .... एक ऐसी रचना है जो अपने से बड़ी किसी रचना का अंग नहीं बन सकता।
(उपवाक्य/वाक्य/पदबंध)

iv) वाक्य में अंतर्निहित आंतरिक वाक्य को .... वाक्य कहते हैं।
(आधारित/आधात्री/अल्पांग)

v) संदेश-संप्रेषण की दृष्टि से .... भाषा की मूल इकाई है।
(वाक्य/प्रोक्ति/पदबंध)

ग) निर्देश के अनुसार उत्तर दीजिए :

i) 'मैंने लड़की को यहाँ से गुजरते देखा' वाक्य में निहित दो वाक्यों को लिखिए।
1) ....
2) ....

ii) इस वाक्य में पदबंध छाँटें :
'कल आप किसके यहाँ गए थे?'
....
....

iii) 'कृपया भीतर आइए' वाक्य में उद्देश्य और विधेय का उल्लेख करें।
उद्देश्य : ....
विधेय : ....

iv) लघु इकाई से बड़ी इकाई की ओर जाते हुए इन घटकों को सही क्रम में लिखें :
रूपिम, शब्द, प्रोक्ति, स्वनिम, वाक्य, पदबंध, उपवाक्य

v) 'मेरे कमरे में रहने वाला लड़का' क्रिया विशेषण तथा संज्ञा दोनों पदबंध में शीर्ष तथा उसके विस्तार को छांटिए।
क्रिया विशेषण : ....
संज्ञा : ....

अभ्यास-2

क) नीचे दिए कुछ कथन सही हैं और कुल गलत। सही कथन के आगे (✓) तथा गलत कथन के आगे (×) का निशान लगाएँ:

i) पदक्रम का विधान हर भाषा में एक समान होता है। (सही/गलत)

ii) अंग्रेज़ी की तुलना में हिंदी का पदक्रम अधिक लचीला है। (सही/गलत)

iii) हिंदी में कर्ता तथा क्रिया वाक्य के अनिवार्य घटक हैं, (सही/गलत)

iv) वाक्य में कर्ता ही यह निश्चित करता है कि वाक्य में कितने और कौन-कौन से कारकों की अपेक्षा है। (सही/गलत)

v) हिंदी में संज्ञा के वचन, पुरुष, लिंग की अन्विति का प्रभाव केवल विशेषण और क्रिया पर पड़ता है। (सही/गलत)

ख) कोष्ठक में दिए उत्तरों में से कोई एक उत्तर सही है। जो उत्तर सही हो उसे रिक्त स्थान में लिखिए।

i) हिंदी .... भाषा है। (SOV/SVO/VSO)

ii) जिसकी हितपूर्ति क्रिया से हो उसे .... कारक कहते हैं। (अपादान/अधिकरण/संप्रदान)

iii) वचन, लिंग, पुरुष भाषा की .... कोटियाँ हैं। (संरचनात्मक/व्याकरणिक/अर्थपरक)

iv) वाक्य के किसी घटक विशेष के प्रभाव में रूप बदलने की प्रक्रिया को .... कहते हैं। (अध्याहार/कारक/अन्विति)

v) 'मुझे उनकी चिट्ठी भी मिल गई और पैसे भी' .... अल्पांग वाक्य है। (संदर्भ आश्रित/पूरक/संयुक्त)

उत्तर

अभ्यास-1

(क) i) गलत
ii) सही
iii) गलत
iv) गलत
v) सही

(ख) i) वाक्यविज्ञान
ii) रूपावली
iii) वाक्य
iv) आधायित
v) प्रोक्ति

(ग) i) मैंने देखा। लड़की यहाँ से गुज़र रही थी।
ii) कल/ आप/ किसके/ यहाँ/ गए थे।
iii) उद्देश्य : (आप)
विधेय : कृपया भीतर आइए। इस वाक्य में उद्देश्य प्रच्छन्न है।
iv) स्वनिम : रूपिम - शब्द - पदबंध - उपवाक्य - वाक्य - प्रोक्ति
v) संज्ञा : शीर्ष - लड़का
क्रिया विशेषण : शीर्ष - कमरा विस्तार - मेरे ... में
विस्तार : मेरे कमरे में रहने वाला लड़का

अभ्यास-2

(क) i) गलत
ii) सही
iii) सही
iv) गलत
v) सही

(ख) i) SOV
ii) संप्रदान
iii) व्याकरणिक
iv) अन्विति
v) पूरक

(ग) उत्तर कृपया इकाई से जाँच करें।

इकाई 11 वाक्य संरचना-II

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 वाक्य विश्लेषण के स्तर
 11.2.1 संरचनापरक
 11.2.2 प्रकार्यपरक
 11.2.3 लौकिक अर्थपरक
 11.2.4 सूचनापरक
11.3 वाक्य साँचे
 11.3.1 प्रकार्य स्थान
 11.3.2 वाक्य-विन्यासात्मक संबंध
 11.3.3 रूपावली संबंध
 11.3.4 अनिवार्य तथा ऐच्छिक घटक
11.4 आधारभूत वाक्य
 11.4.1 स्वरूप और लक्षण
 11.4.2 आधारभूत वाक्यों के प्रकार्य
  (क) कोप्यूला वाक्य साँचा
  (ख) को-वाक्य साँचे
  (ग) क्रियाप्रधान वाक्य
11.5 व्युत्पन्न वाक्य-साँचे
 11.5.1 पदबंध विस्तार द्वारा
 11.5.2 ऐच्छिक घटक के योग द्वारा
 11.5.3 लोप प्रक्रिया द्वारा
 11.5.4 रूपांतरण प्रक्रिया द्वारा
11.6 सारांश
11.7 अभ्यास प्रश्न

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- वाक्य-विश्लेषण के विभिन्न स्तरों को समझ सकेंगे,
- आप वाक्य की संरचनापरक, प्रकार्यपरक, लौकिक अर्थपरक और सूचनापरक कोटियों के बीच अंतर समझ सकेंगे,
- आप वाक्य और वाक्य-साँचों के बीच अंतर स्पष्ट कर सकेंगे,
- आप हिंदी के आधारभूत वाक्यों की संरचना और उनके महत्व को समझ सकेंगे,
- आप हिंदी के 14 आधारभूत वाक्य-साँचों का वर्गीकरण कर सकेंगे और उनके बीच भेद समझा सकेंगे, और
- आप हिंदी के आधारभूत वाक्यों से व्युत्पन्न विभिन्न वाक्यों और उनकी रचना-प्रक्रियाओं को स्पष्ट कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई-10 (वाक्य संरचना-1) में आपने वाक्य विज्ञान, वाक्य के स्वरूप, वाक्य संरचना और वाक्यात्मक युक्तियों के बारे में जानकारी प्राप्त की।

इस इकाई में आपको वाक्य-विश्लेषण के विभिन्न स्तरों का परिचय दिया जाएगा और वाक्य और वाक्य-साँचों के बीच अंतर स्पष्ट किया जाएगा। इस इकाई में आपको हिंदी के आधारभूत वाक्यों से परिचित कराया जाएगा और उनके विशिष्ट लक्षणों की जानकारी दी जाएगी। इस इकाई में आप इन आधारभूत वाक्यों से व्युत्पन्न विभिन्न वाक्यों की रचना-प्रक्रिया के बारे में भी जानकारी प्राप्त करेंगे।

11.2 वाक्य विश्लेषण के स्तर

विद्वान एक लंबे अरसे से वाक्य की वास्तविक बनावट और उसके तत्वों को समझने की कोशिश करते रहे हैं। उन्होंनें वाक्य के विभिन्न पहलुओं को कई दृष्टियों से विश्लेषित करने का प्रयास किया। वाक्य की जितनी गहराई में जाने का प्रयास किया गया उतना ही यह स्पष्ट होने लगा कि वाक्य में एक नहीं बल्कि अनेक तहें हैं और उन सबके साथ संयोजित होकर ही वाक्य अपना अभीष्ट अर्थ व्यक्त करने में सफल होता है। लोक-व्यवहार में वाक्य का अंतिम लक्ष्य संदेश-संप्रेषण है। संप्रेषण के स्तर पर देखें तो पता चलेगा कि वाक्य की अभिव्यक्ति मात्र ध्वनियों, व्याकरणिक रचनाओं और अर्थ तत्वों (भावों) का मिला-जुला रूप नहीं है। वाक्य के पीछे प्रायः एक सामाजिक व्याकरण भी छिपा रहता है जो यह निर्देश देता है कि किस परिवेश या संदर्भ में किस वाक्य या अभिव्यक्ति का प्रयोग उपयुक्त है। इसके अलावा वाक्य में कभी-कभी वक्ता का निजी दृष्टिकोण, मंतव्य या उसकी अपनी अभिवृत्ति भी निहित रहती है। इस संपूर्ण परिवेश में ही वाक्य संप्रेषणीय होता है।

स्पष्ट है कि वाक्य की रचना पर कई प्रकार के प्रतिबंध हैं - संरचनागत, व्याकरणगत, अर्थगत, संदर्भगत आदि। वाक्य की बाह्य संरचा के पीछे अर्थ-संरचना का एक पूरा जाल फैला है जो कई प्रकार से वाक्य की बाह्य संरचना को प्रभावित और नियंत्रित करता है। अतः वाक्य के मर्म तक पहुँचने के लिए वाक्य का विश्लेषण कई स्तरों पर करने की आवश्यकता पड़ती है।

उदाहरण के लिए अगर हम वाक्य के घटकों का विश्लेषण संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया आदि संरचनात्मक कोटियों (शब्द-वर्गों) के रूप में करें तो वाक्य में इन घटकों के परस्पर व्याकरणिक संबंधों की जानकारी हमें नहीं मिल सकती। यदि व्याकरणिक संबंधों को स्पष्ट करने क लिए कर्ता, कर्म, पूरक, क्रिया आदि प्रकार्यात्मक कोटियों के आधार पर वाक्य का विश्लेषण करें तो लौकिक जगत में इन घटकों की वास्तविक भूमिका का बोध हमें नहीं होता। उदाहरण के लिए निम्नलिखित दो वाक्य देखिए :

रामू पिट रहा है।
लड़के को चोट लगी।

यदि इन वाक्यों में 'रामू' और 'लड़के' को कर्ता की कोटि में रखते हैं तो प्रश्न उठता है कि वह व्यक्ति जो पीट नहीं रहा है बल्कि खुद पिटाई का शिकार हो रहा है या जो खुद चोट का भोक्ता है, चोट लगाने वाला नहीं, वह कैसे कार्य करने वाला 'कर्ता' हो सकता है?

इतना ही नहीं यदि आप वाक्य को उसकी पूर्णता में देखें तो पाएँगे कि वाक्य में एक स्तर सूचना संरचना का भी है जिसमें एक अंश पूर्वज्ञात सूचना का है और दूसरा अंश नई सूचना का।

इस प्रकार किसी भी वाक्य का विश्लेषण कम से कम चार स्तरों पर किया जा सकता हैः (क) संरचनापरक, (ख) प्रकार्यपरक, (ग) लौकिक अर्थपरक, और (घ) सूचनापरक।

11.2.1 संरचनापरक

इस स्तर पर वाक्य के विभिन्न घटकों (शब्दों) की संरचनात्मक कोटियों (या शब्द-वर्ग) का निर्धारण किया जाता है, जैसे संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रियाविशेषण, क्रिया आदि। उदाहरण के लिए 'महीप सिंह स्टेशन से अभी-अभी लौटा' वाक्य की संरचनात्मक कोटियाँ इस प्रकार निश्चित होंगी :

महीपसिंह	:	संज्ञा
स्टेशन	:	संज्ञा
से	:	परसर्ग
अभी-अभी	:	क्रियाविशेषण
लौटा	:	क्रिया

11.2.2 प्रकार्यपरक

इस स्तर पर वाक्य के घटकों का निर्धारण वाक्य में उनकी व्याकरणिक भूमिकाओं के आधार पर किया जाता है, जैसे कर्ता, कर्म, पूरक, क्रियाविशेषण, क्रिया आदि। ये एक प्राकर की कारक कोटियाँ हैं और इनका अस्तित्व केवल वाक्य के ही अंतर्गत होता है, वाक्य से बाहर नहीं। इसके विपरीत संरचनात्मक कोटियों (संज्ञा, विशेषण आदि) का अस्तित्व वाक्य से बाहर केवल शब्दों के स्तर पर भी संभव है।

उदाहरण के लिए, 'लोगों ने महीपसिंह को अपना नेता चुना' वाक्य की प्रकार्यात्मक कोटियाँ इस प्रकार होंगी :

लोगों ने	:	कर्ता
महीपसिंह को	:	कर्म
अपना नेता	:	पूरक
चुना	:	क्रिया

11.2.3 लौकिक अर्थपरक

लौकिक अर्थ के स्तर पर वाक्य के घटकों का निर्धारण लौकिक या वास्तविक जगत में उनकी भूमिकाओं के आधार पर होता है। प्रकार्यात्मक कोटियाँ व्याकरणिक जगत में उनकी भूमिकाओं के आधार पर निर्धारित होती हैं जबकि लौकिक अर्थ की कोटियाँ वास्तविक जगत में उनकी भूमिकाओं के आधार पर निर्धारित होती हैं, जैसे अभिकर्ता (सक्रिय कर्ता), अनुभवकर्ता, भोक्ता, लक्ष्य (कर्म), परिवेश (क्रिया विशेषण आदि) आदि।

उदाहरण के लिए 'लड़के को चोट लगी' वाक्य की लौकिक अर्थ कोटियाँ इस प्रकार होंगी:

लड़के को	:	अनुभवकर्ता (experiencer)
चोट लगी	:	क्रिया

इसी प्रकार 'सतीश फल खा रहा है' वाक्य की कोटियाँ होंगी :

सतीश	:	अभिकर्ता (agent)
फल	:	लक्ष्य (गोल)
खा रहा है	:	क्रिया

11.2.4 सूचनापरक

कई भाषावैज्ञानिक भाषा की मूल इकाई वाक्य को नहीं बल्कि प्रकरण (text) को मानते हैं क्योंकि वक्ता अपना संदेश संप्रेषित करने क लिए ऐसे विकल्पों का चयन करता है जो विशेष प्रकरण या प्रसंग के अनुकूल होता है। वह वाक्य को सूचना या संदेश के रूप में गठित करता है। इसलिए वह कभी वाक्य के किसी घटक को वाक्य के सबसे पहले लाता है कभी किसी को बीच में और किसी को अंत में। वह कभी-कभी वाक्य के सहज क्रम में भी

परिवर्तन करता है, किसी विशेष घटक पर अन्य की अपेक्षा अधिक बलाघात देता है। इस प्रकार हम पाते हैं कि जिस प्रकार वाक्य की व्याकरणिक संरचना होती है उसी प्रकार सूचना की भी अपनी संरचना होती है।

सूचना के स्तर पर दो घटकों की स्थिति मानी जाती है : ज्ञात सूचना और नई सूचना। सूचना का जो अंश श्रोता को पहले से ज्ञात है वह **ज्ञात सूचना** (विद्यमान सूचना) कहलाती है। **नई सूचना** वह है जिसकी जानकारी देना वक्ता का अभीष्ट है, जैसे 'रमेश आज नहीं आएगा' वाक्य की सूचना संरचना इस प्रकार है :

रमेश	:	ज्ञात सूचना
आज नहीं आएगा	:	नई सूचना

इसी प्रकार सूचना संयोजन की दृष्टि से भी वाक्य के दो खंड हो सकते हैं : थीम (theme) और रीम (rheme)। वाक्य के प्रारंभ में जो भी घटक प्रयुक्त होता है वह 'थीम' है और शेष अंश 'रीम'। देखिए :

थीम	**रीम**
सीता	किताब पढ़ रही है।
शायद	वह कल न आए।
दूर कहीं	कोई रो रहा है।
यह चिट्ठी	मैंने नहीं लिखी
बुलाया	मैंने आपको (आ गया आपका दोस्त)

11.3 वाक्य साँचे

किसी भी भाषा में अगणित वाक्यों की रचना संभव है, लेकिन वाक्य-विश्लेषण के किसी एक आधार पर इन वाक्यों को कुछ खास कोटियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। यह वर्गीकरण सामान्यतः व्याकरणिक प्रकार्यों के आधार पर किया जाता है यद्यपि वाक्य-विश्लेषण के ऊपर बताए चारों आधारों पर यह वर्गीकरण संभव है। परंपरागत रूप से वाक्यों को अकर्मक, सकर्मक, द्विकर्मक, कर्तपूरक आदि वर्गों में विभाजित करने की पद्धति व्याकरणिक प्रकार्यों पर आधारित है। प्रकार्य के आधार पर वाक्य-कोटियाँ इस प्रकार दर्शाई जाती हैं :

कर्ता × क्रिया	(रमेश हँसता है।)
कर्ता × कर्म × क्रिया	(रमेश फल खाता है।)
कर्ता × कर्म^{2} कर्म^{1} × क्रिया	(रमेश राधा को किताब देता है।)

(ध्यान दें कि लौकिक अर्थपरक की दृष्टि से कर्म^{2} को प्राप्तिकर्ता भी कहा जा सकता है।) ये वाक्य नहीं हैं बल्कि वाक्यों के ढाँचे हैं जिनमें समानधर्मा अनेक वाक्यों का समावेश रहता है। वाक्य के इस प्रकार के प्रकार्यात्मक ढाँचे को **वाक्य-साँचा** कहते हैं। भाषा में वास्तविक वाक्यों की संख्या अनगिनत हो सकती है, लेकिन वाक्य-साँचों की संख्या निश्चित और सीमित होती है। वाक्य-साँचों की संख्या और उनका स्वरूप हर भाषा में अलग-अलग हो सकते हैं।

यहाँ पर वाक्य और वाक्य-साँचे के बीच मूलभूत अंतर समझ लेना ज़रूरी है। वाक्य विभिन्न पदबंधों से निर्मित एक मूर्त और निश्चित रचना है। वाक्य-साँचा इन पदबंधों की प्रकार्यात्मक कोटियों से निर्मित एक अमूर्त ढाँचा है जिसमें उपयुक्त शब्दों को आरोपित कर अगणित वाक्य बनाए जा सकते हैं। वाक्य का एक मूर्त और निश्चित अस्तित्व होता है। वाक्य-साँचा उसका एक अमूर्त और प्रतीकात्मक ढाँचा होता है। वाक्य में प्रयुक्त शब्दों की संख्या सीमित

होती है, लेकिन वाक्य-साँचों के विभिन्न घटकों के स्थान पर प्रयुक्त हो सकने वाले संभावित शब्दों की संख्या असीमित हो सकती है।

वाक्य-साँचों की अपनी एक आंतरिक संरचना होती है और विभिन्न घटकों के विन्यास के अपने नियम होते हैं। कुछ प्रमुख नियम इस प्रकार हैं :

1.3.1 प्रकार्य-स्थान

वाक्य-साँचे में प्रत्येक घटक के प्रयोग का एक निश्चित स्थान होता है जिसे **प्रकार्य-स्थान** कहते हैं। प्रत्येक प्रकार्य-स्थान पदबंध स्तरीय होता है और एक पदबंध का प्रतिनिधित्व करता है। वाक्य-साँचे के निर्धारण में पदबंध से नीचे किसी अन्य कोटि को नहीं लिया जा सकता। प्रकार्य-स्थान संज्ञा पदबंध का भी हो सकता है (राम का बड़ा भाई), क्रिया विशेषण पदबंध का भी (कमरे में), क्रिया पदबंध का भी (खा रहा है) और स्वतत्र विशेषण पदबंध का भी (मोहन बहुत बीमार है) लेकिन संज्ञा पदबंध में जुड़े विशेषण पदबंध का नहीं (जैसे 'काला घोड़ा' में 'काला' विशेषण पदबंध नहीं)।

1.3.2 वाक्य-विन्यासात्मक संबंध

प्रत्येक वाक्य-साँचे की एक निश्चित वितरण-व्यवस्था होती है और उसके विभिन्न घटक एक-दूसरे से व्याकरणिक संबंधों के ज़रिए जुड़े रहते हैं, अर्थात् उनमें एक प्रकार का कारकीय संबंध होता है और घटक वाक्य में एक के बाद एक क्रम से आते हैं। इस प्रकार के संबंध को रेखीय या वाक्य-विन्यासात्मक (syntaymatic) संबंध कहते हैं, जैसे हिंदी वाक्य में कर्ता-कर्म-क्रिया विशेषण - क्रिया के बीच संबंध। वाक्य साँचों के घटकों में एक व्यावहारिक सीमा तक रेखीय विस्तार संभव है, जैसे :

लड़की/ पत्र/ लिख रही है।

आज/ लड़की/ सुबह से/ कमरे में/ पत्र लिख रही है।

1.3.3 रूपावली संबंध

आपने देखा कि वाक्य-साँचे का प्रत्येक घटक अन्य घटकों से रेखीय संबंध से जुड़ा रहता है लेकिन दूसरी ओर यही घटक अपने ही वर्ग के अन्य शब्दों से भी जुड़ा रहता है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक घटक के प्रकार्य-स्थान पर उस वर्ग के अन्य शब्द भी प्रयुक्त हो सकते हैं। उदाहरण क लिए ऊपर के वाक्य (1) में 'लोग' के स्थान पर'हम', 'सभी लोग', 'यहाँ पढ़ने वाले छात्र' आदि संज्ञा शब्द प्रयुक्त हो सकते हैं। इसी प्रकार 'आते हैं' क्रियापदबंध के स्थान पर 'जाते हैं', 'रहते हैं' आदि क्रियापदबंध प्रयुक्त हो सकते हैं। एक ही वर्ग के इन शब्दों के बीच **रूपावली (paradigmatic) संबंध** माना जाता है।

प्रकार्य स्थान पर प्रयुक्त हो सकने वाले ऐसे शब्दों को **शब्द-वर्ग** कहा जाता है। इनके संरचनातमक वर्ग संभव हैं, जैसे संज्ञा शब्द-वर्ग, विशेषण शब्द-वर्ग, क्रिया विशेषण शब्द-वर्ग, क्रिया शब्द-वर्ग आदि। किसी भी शब्द-वर्ग के शबदों की संख्या असीमित हो सकती है इसलिए विभिन्न प्रकार्य-स्थानों पर उपयुक्त शब्द-वर्गों के शब्द का प्रयोग करते हुए एक वाक्य साँचे से असीमित संख्या में वाक्य बनाए जा सकते हैं।

वाक्य-साँचे के विभिन्न घटकों के बीच वाक्य विन्यासात्मक तथा रूपावली संबंधों के इन दो आयामों को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है :

कर्ता		क्रि.वि.		कर्म		क्रिया
लड़के	→	होटल में	→	खाना	→	खाते हैं।
हम	→	घर में	→	अख़बार	→	पढ़ते हैं।
मैं	→	यहाँ	→	काम	→	करते हैं।

इसमें → चिह्न वाक्य विन्यासात्मक (रेखीय) संबंध दर्शाता है और चिह्न ↓ रूपावली संबंध दर्शाता है।

11.3.4. अनिवार्य तथा ऐच्छिक घटक

वाक्य-साँचों के पदबंध घटक दो प्रकार के होते हैं - अनिवार्य तथा ऐच्छिक। अनिवार्य घटक वे हैं जिन्हें वाक्य से निकाल देने पर वाक्य व्याकरण या मूल अर्थ की दृष्टि से टूट जाता है, जैसे 'मैं आज खाना नहीं खाऊँगा' वाक्य में 'मैं' और 'खाऊँगा' दो अनिवार्य घटक हैं क्योंकि इनमें से किसी भी घटक को हटा देने से वाक्य व्याकरण और अर्थ की दृष्टि से भंग हो जाता है। इसके विपरीत 'आज' एक ऐच्छिक घटक है, क्योंकि इसे वाक्य से हटा देने पर भी वाक्य व्याकरण तथा मूल अर्थ की दृष्टि से पूर्ण रहता है। स्मरण रहे कि इस प्रकार की अतिरिक्त सूचनाएँ प्रायः क्रियाविशेषण पदबंधों द्वारा दी जाती है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि क्रियाविशेषण अनिवार्यतः ऐच्छिक घटक होते हैं। कुछ वाक्यों में क्रियाविशेषण अनिवार्य घटक के रूप प्रयुक्त होते हैं और उन्हे वाक्य से हटा देने पर वाक्य भंग हो जाता है, जैसे 'रमेश घर में है' वाक्य में क्रिया विशेषण पदबंध 'घर में' को वाक्य से नहीं हटा सकते।

11.4 आधारभूत वाक्य

11.4.1. स्वरूप और लक्षण

किसी भी भाषा की वाक्य-व्यवस्था को समझने के लिए उस भाषा के मूल वाक्यों का निर्धारण करना ज़रूरी है। भाषा में वाक्य कई आकार-प्रकार में व्यक्त होकर आते हैं। वाक्य एक उपवाक्य का भी हो सकता है, एक से अधिक उपवाक्यों का भी। वाक्य का आकार छोटा भी हो सकता है और बड़ा भी। कभी-कभी एक ही वाक्य के भीतर दूसरा वाक्य संज्ञापदबंध आदि के रूप में संकुचित होकर आ सकता है (जैसे, 'वह वापस लौटने की सोच रहा है')। कुछ वाक्य अल्पांग वाक्य के रूप में व्यक्त होकर आते हैं, कुछ पूर्णांग वाक्य के रूप में (जैसे, 'मैं शिवकुमार हूँ। और आप?')।

भाषा-व्यवस्था की यह विशिष्टता है कि वाक्य चाहे जितना बड़ा, छोटा या जटिल हो उसमें एक आधारभूत वाक्य की सत्ता अवश्य रहती है। यह आधारभूत वाक्य एक प्रकार का बीज वाक्य है जिससे भाषा के अनेक वास्तविक वाक्य जनित होते हैं। देखिए :

वास्तविक वाक्य : इस कक्षा के सभी छात्र आजकल रोज हिंदी का समाचार पत्र पढ़ते हैं।

आधारभूत वाक्य : छात्र समाचार पत्र पढ़ते हैं।

ऐसे वाक्य जिनके सभी घटक अनिवार्य हों आधारभूत वाक्य कहलाते हैं। आधारभूत वाक्यों के साँचे आधारभूत वाक्य-साँचे कहलाते हैं। इन्हें बीज वाक्य साँचे या मूल वाक्य-साँचे भी कहा जाता है। आधारभूत वाक्य-साँचों में भाषा में प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के वाक्य व्युत्पन्न करने की क्षमता निहित रहती है। किसी भी भाषा में आधारभूत वाक्य-साँचों की संख्या सीमित होती है। इन सीमित आधारभूत वाक्य साँचों में ऐच्छिक घटकों के योग से या वाक्य रूपांतरण द्वारा उस भाषा के अनगिनत वाक्य बनाए जा सकते हैं।

हर भाषा के आधारभूत वाक्यों का स्वरूप और उनकी संख्या अलग-अलग हो सकती है। उनके निर्धारण के लिए भी अलग-अलग मानदंड प्रयुक्त किए जा सकते हैं। फिर भी मोटे रूप से आधारभूत वाक्यों के निर्धारण के लिए कुछ लक्षण महत्वपूर्ण हैं :

(क) **अनिवार्य घटक** : आधारभूत वाक्य-साँचों में केवल अनिवार्य घटकों को ही स्थान दिया जाता है, ऐच्छिक घटकों को नहीं। 'सतीश चाय पीता है' आधारभूत वाक्य हैं, क्योंकि इनके तीनों घटक अनिवार्य हैं। 'सतीश कभी-कभी चाय पीता है' वाक्य में

'कभी-कभी' एक ऐच्छिक घटक है, क्योंकि इसके बिना भी वाक्य व्याकरण और मूल अर्थ की दृष्टि से पूर्ण है। अतः यह ऐच्छिक घटक आधारभूत वाक्य का अंग नहीं हो सकता।

(ख) **कथनात्मक वाक्य :** आधारभूत वाक्य-साँचों में हमेशा सरल कथनात्मक वाक्यों को ही रखा जाता है, संयुक्त, मिश्र या अल्पांग वाक्यों को नहीं। इसी प्रकार प्रश्नार्थक, नकारात्मक, आज्ञार्थक, अकार्तवाच्य आदि संदर्भ-विशिष्ट वाक्यों को आधारभूत वाक्यों में नहीं शामिल किया जाता, क्योंकि ऐसे सभी वाक्य आधारभूत वाक्यों से व्युत्पन्न या रूपांतरित (transform) किए जा सकते हैं।

(ग) **नियंत्रक तत्व–क्रिया :** आधारभूत वाक्य-साँचों के निर्धारण में सामान्यतः क्रिया को ही आधार माना जाता है क्योंकि क्रिया की प्रकृति और माँग के अनुसार ही वाक्य की रचना निर्धारित होती है और वाक्य में आने वाले पात्रों (कर्ता, कर्म आदि) की संख्या नियंत्रित होती है। उदाहरणार्थ, 'हँसना' क्रिया (अकर्मक) एक पात्र (कर्ता) की अपेक्षा करता है, 'पीना' क्रिया (सकर्मक) दो पात्रों (कर्ता, कर्म) की और 'देना' क्रिया (द्विकर्मक) तीन पात्रों (कर्ता, कर्म, संप्रदान) की। ये तीनों क्रियाएँ अलग-अलग आधारभूत वाक्य-साँचों का निर्माण करती हैं। कुछ वाक्यों में जिनमें कोशीय क्रियाओं का प्रयोग नहीं होता, विधेय अंश वाक्य को नियंत्रित करता है जैसे 'रमेश को खांसी है' वाक्य में 'खांसी' और 'मोहन लेखक है' में 'लेखक' वाक्य के नियंत्रक तत्व हैं।

11.4.2 आधारभूत वाक्यों के प्रकार्य

आधारभूत वाक्यों तथा वाक्य-साँचों की संख्या हर भाषा में अलग-अलग हो सकती है। स्वयं एक भाषा में भी अलग-अलग आधारों पर इनकी संख्या में अंतर आ सकता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि आधारभूत वाक्यों के निर्धारण के लिए हम क्या प्रतिमान अपनाते हैं और संरचना और अर्थ के बीच कितना गहरा संबंध हमें अभीष्ट है। हिंदी में अलग-अलग प्रतिमानों के आधार पर विद्वानों ने 4 से 21 तक आधारभूत वाक्य गिनाए हैं।

नीचे हम सूरजमान सिंह (1985) द्वारा निर्धारित 14 आधारभूत वाक्यों की सूची दे रहे हैं:

क) कोप्यूला वाक्य

1. संज्ञात्मक कोप्यूला वाक्य : रफ़ी मेरा ड्राइवर है।
2. विशेषणात्मक कोप्यूला वाक्य : राधा सुंदर है।
3. क्रिया विशेषणात्मक वाक्य : सतीश घर में है।

ख) को-वाक्य

4. पूरक प्रधान को वाक्य : सुधीर को बुखार है।
5. कर्मप्रधान को-वाक्य : सीता को मकान चाहिए।
6. कर्मपूरक प्रधान वाक्य : राधा को नौकर चोर लगता है।
7. स्वामित्ववाची वाक्य : मोहन के पास तीस रुपए हैं।

ग) क्रियाप्रधान वाक्य

8. सामान्य अकर्मक : ईश्वर है/ राधा नाचती है।
9. सहअव्ययात्मक अकर्मक : प्रताप गांधीनगर में रहता है।
10. सहपात्रीय अकर्मक : गोपाल राधा से लड़ता है।
11. सामान्य अकर्मक : हरी पानी पीता है।
12. सहअव्ययात्मक सकर्म : मोहन गाड़ी गैरेज में रखता है।
13. सहपात्रीय सकर्मक : सेठजी नौकर को पैसे देते हैं।
14. कर्मपूरक वाक्य : मैं चंपा को नर्स समझता था।

इन आधारभूत वाक्यों को वाक्य-साँचों के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

क) कोप्यूला वाक्य-साँचा

1. संप × संप × योजक क्रिया : रफी मेरा ड्राइवर है।
2. संप × विप × योजक क्रिया : राधा सुंदर है।
3. संप × क्रि.वि. × योजक क्रिया : सतीश घर में है।

ख) को-वाक्य साँचे

4. संप+को × संप(पूरक) × को-क्रियाकर : सुधीर को बुखार है।
5. संप+को × संप(कर्म) × को-क्रिया : सती को मकान चाहिए।
6. संप+को × संप(कर्म) × पूरक × को-क्रिया : राधा को नौकर चोर लगता है।
7. संप+के पास × संप × हो-क्रिया : मोहन के पास तीस रुपए हैं।

ग) क्रिया प्रधान वाक्य-साँचे

8. कर्ता × क्रिया : ईश्वर है/ राधा नाच रही है।
9. कर्ता × अप × क्रिया : प्रताप गांधीनगर में रहता है।
10. कर्ता × सहपात्र × क्रिया : गोपाल राधा से लड़ता है।
11. कर्ता × कर्म × क्रिया : हरी पानी पीता है।
12. कर्ता × कर्म × अप × क्रिया : मोहन गाड़ी गैरेज में रखता है।
13. कर्ता × सहपात्र × कर्म × क्रिया : सेठजी नौकर को पैसे देते हैं।
14. कर्ता × कर्म × कर्मपूरक × क्रिया : मैं चंपा को नर्स समझता था।

(संप= संज्ञा पदबंध, विप = विशेषण पदबंध, अप = अव्यय पदबंध)

आप पाएँगे कि उपर्युक्त वर्गीकरण में हिंदी के सभी आधारभूत वाक्यों को तीन वर्गों में रखा गया है : कोप्यूला वाक्य, को-वाक्य और क्रिया प्रधान वाक्य।

(क) कोप्यूला वाक्य

कोप्यूला वाक्य वे वाक्य हैं जिनमें कर्ता और पूरक किसी योजक क्रिया के माध्यम से जुड़े होते हैं, जैसे 'मोहन अध्यापक है', 'सरला सुंदर है', 'माताजी घर में हैं'। इन वाक्यों के कर्ता आचिह्नित होते हैं, अर्थात् इनके बाद किसी परसर्ग (को, के, में आदि) का प्रयोग नहीं होता। इन वाक्यों के पूरक संज्ञा, विशेषण या क्रिया-विशेषण में से कोई भी हो सकता है, जैसे ऊपर के वाक्यों में 'अध्यापक' 'सुंदर' और 'घर में'।

कोप्यूला वाक्यों में कर्ता और पूरक कुछ विशेष संबंधों से जुड़े होते हैं। जैसे 'मोहन अध्यापक है' वाक्य में 'मोहन' और 'अध्यापक' एक ही व्यक्ति का बोध कराते हैं। यहाँ दोनों के बीच 'अभिनिर्धारित - अभिनिर्धारक' का संबंध है, अर्थात् 'अध्यापक' 'मोहन' की पहचान बताता है (जैसे मोहन कौन है? मोहन अध्यापक है)।

इसी प्रकार 'सरला सुंदर है' वाक्य में कर्ता और पूरक के बीच विशेष्य-विशेषण का संबंध है। क्रिया विशेषणात्मक कोप्यूला वाक्य में (जैसे 'माताजी कमरे में है) पूरक कर्ता की अवस्थिति सूचित करता है।

कोप्यूला वाक्यों में क्रिया के प्रकार्य-स्थान पर 'योजक क्रिया' का प्रयोग होता है। इसी को अंग्रेज़ी में 'कोप्यूला' क्रिया भी कहते हैं। copula का लैटिन में अर्थ है 'जोड़ना'। प्रमुख योजक क्रियाएँ हैं - है, था, होता, तथा इनके समानधर्मा रूप। अन्य सामान्य क्रियाओं (जैसे,

पीना, देखना, जाना आदि) की तरह योजक क्रियाएँ अपना कोशीय अर्थ नहीं व्यक्त करतीं। इनका प्रकार्य केवल दो अस्तित्वों के बीच संबंध उद्‌घाटित करना होता है।
वाक्य-साँचों के रूप में देखें तो कोप्यूला वाक्य तीन घटकों से बनी रचना होती है, जिसका प्रत्येक घटक अनिवार्य घटक होता है। वाक्य में क्रिया विशेषण सामान्यता ऐच्छिक घटक माना जाता है, लेकिन इस कोटि के कोप्यूला वाक्यों में क्रियाविशेषण भी अनिवार्य घटक के रूप में आते हैं1 तुलना कीजितए - वाक्य (1) में 'कमरे में' अनिवार्य घटक है, वाक्य (2) में ऐच्छिक घटक :

(1) रमेश **कमरे** में है। (अनिवार्य घटक)
(2) रमेश **कमरे** में पढ़ रहा है। (ऐच्छिक घटक)

(ख) को-वाक्य

ऐसे सभी वाक्यों को जिनमें कर्ता के साथ 'को' परसर्ग का प्रयोग होता है **को-वाक्य** कहते हैं। कर्ता के साथ 'को' का प्रयोग विधेय पूरक (संज्ञा) या कुछ विशिष्ट क्रियाओं की आकांक्षा के कारण होता है। उदाहरण के लिए, निम्नलिखित वाक्यों में पूरक शब्द (बुखार, भूख, खुशी) कर्ता के बाद 'को' परसर्ग की आकांक्षा करते हैं, जैसे :

(1) सुधीर को **बुखार** है।
(2) बच्चे को **भूख** लगी है।
(3) सीता को इस बात का **दुख** है।

ध्यान रहे कि संज्ञा के बाद 'को' का प्रयोग प्रायः कर्म के बाद भी होता है जैसे 'मैंने **राम को** बुलाया', 'सरला ने **राधा को** तीन सौ रुपए दिए'। ये को-वाक्यों में नहीं आते क्योंकि इन वाक्यों में 'को' का प्रयोग कर्ता के बाद नहीं बल्कि कर्म के बाद हुआ है।

निम्नलिखित वाक्यों में कर्ता के बाद 'को' का प्रयोग कोशीय क्रिया (मिलना, आना, चाहिए, लगना) की आकांक्षा के कारण हुआ है :

(1) श्री रत्नम् को हिंदी **आती** है।
(2) आपको कितने रुपए **मिलते** हैं।
(3) चाचा जी को एक कॉफी **चाहिए**।
(4) मुझे वह नौकर मूर्ख **लगता** है।

इन वाक्यों में प्रयुक्त क्रियाओं को सुविधा के लिए 'को-क्रियाएँ' कहते हैं, अर्थात् ये वे क्रियाएँ हैं जो को-वाक्य की आकांक्षा करती हैं। ध्यान रहे कि ये क्रियाएँ कर्म की अपेक्षा करती हैं पूरक की नहीं। वाक्य (4) की कोटि की क्रियाएँ कर्म तथा कर्मपूरक दोनों की आकांक्षा करती हैं। इस वाक्य में 'नौकर' कर्म है और 'मूर्ख' कर्मपूरक।

कर्ता के बाद 'को' की आकांक्षा करने वाले वाक्यों की एक और कोटि है जो उपयुक्त वाक्यों से इस रूप में भिन्न है कि इनमें 'कर्ता-को' की आकांक्षा न पूरक के कारण होती है और न क्रिया के कारण बल्कि क्रिया रूप (-ना है, -ना पड़ और -ना चाहिए) के कारण जैसे:

स्मिथ को डॉक्टर के पास **जाना है**।
कल रमेश को देर तक दफ्तर में **रुकना पड़ा**।
आपको शराब नहीं पीनी चाहिए।

ये वाक्य को-वाक्य अवश्य हैं लेकिन इन्हें आधारभूत वाक्यों में नहीं शामिल किया जाता क्योंकि ये वाक्य रूपांतरण-प्रक्रिया से प्राप्त किए जा सकते हैं, जैसे :

स्मिथ डॉक्टर के पास **जाता है** :
→ स्मिथ को डॉक्टर के पास जाना है।

(1) सुरेश चाय पी रहा है। (संज्ञा कर्म)
(2) अध्यापक ने दो छात्रों को बुलाया। (संज्ञा कर्म)
(3) मैं कार चलाना जानता हूँ। (भावार्थक संज्ञा)
(4) हम सोच रहे हैं कि हम आज ही लौट जाएँ। (उपवाक्य के रूप में)

4) **सहअव्ययात्मक सकर्मक :** इस वर्ग के अंतर्गत ऐसे सभी वाक्य आते हैं जो अपने अर्थ की पूर्ति के लिए अनिवार्य घटक के रूप में कर्म के साथ-साथ एक सहअव्यय (क्रियाविशेषण) की भी आकांक्षा करते हैं, जैसे :
(1) मैं अपनी गाड़ी इस गैरेज में रखता हूँ। (सहअव्यय)
(2) पिताजी ने सभी पैसे बैंक में डाल दिए हैं। (सहअव्यय)
(3) उन्होंने सारी जिम्मेदारियाँ मुझ पर थोप दीं। (सहअव्यय)

5) **सहपात्रीय सकर्मक :** इस वर्ग के अंतर्गत ऐसे सभी वाक्य आते हैं जो अपने अर्थ की पूर्ति के लिए अनिवार्य घटक के रूप में कर्म के साथ-साथ एक अन्य सहपात्र की आकांक्षा करते हैं। द्विकर्मक, संप्रदान तथा कुछ प्रकार के अपादान कारक भी इसी वर्ग में शामिल हैं, जैसे :
(1) मैंने अपने मित्र को एक किताब दी। (सहपात्र, द्विकर्मक/संप्रदान)
(2) दुकानदार ने गुप्ताजी से पूरे पैसे ले लिए। (सहपात्र, अपादान)
(3) डॉक्टर ने मरीज़ से कहा कि वह कल आए। (सहपात्र, उपवाक्य के रूप में कर्म)
(4) डॉक्टर ने मरीज़ से कल आने को कहा। (सहपात्र, उपवाक्य का नामिकीकरण)

6) **कर्मपूरक :** इस वर्ग के अंतर्गत ऐसे सभी वाक्य आते हैं जो अपने अर्थ की पूर्ति के लिए अनिवार्य घटक के रूप में कर्म के साथ-माथा एक कर्मपूरक की आकांक्षा करते हैं। यह कर्मपूरक संज्ञा भी हो सकती है, विशेषण भी, जैसे :
(1) लोगों ने आपको अपना नेता चुना है। (संज्ञा पूरक)
(2) मैं शर्माजी को अपना बड़ा भाई मानता हूँ। (संज्ञा पूरक)
(3) हम आपको ईमानदार समझते थे। (विशेषण पूरक)

11.5 व्युत्पन्न वाक्य-साँचे

भाषावैज्ञानिक मानते हैं कि वास्तविक भाषा-व्यवहार में हम जितने भी प्रकार के छोटे-बड़े वाक्यों का प्रयोग करते हैं उन सबका स्रोत आधारभूत वाक्य ही हैं। भाषा के सभी वाक्य किसी न किसी रूप में इन्हीं आधारभूत वाक्य-साँचों से व्युत्पन्न होते हैं। हम कुछ विशेष भाषिक युक्तियों का इस्तेमाल कर कभी आधारभूत वाक्यों का विस्तार करते हैं, कभी उनमें नये अर्थ, शब्द, पदबंध और उपवाक्य जोड़ते हैं, कभी कुछ अंशों का रूपांतरण करते हैं और कुछ का लोप और सप्रकार हम अनंत वाक्यों का निर्माण कर सकते हैं।

आधारभूत वाक्यों से विभिन्न वाक्य व्युत्पन्न करने की चार प्रमुख प्रक्रियाएँ हैं :

11.5.1 पदबंधां के विस्तार द्वारा

किसी भी पदबंध में विशेषण या अन्य शब्द जोड़कर उसका विस्तार किया जा सकता है, जैसे :

(1) लड़का अध्यापक को ढूँढ़ रहा है।
(2) आपका लड़का अंग्रेज़ी के अध्यापक को ढूँढ रहा है।
(3) आपका छोटा वाला लड़का अंग्रेज़ी के नए अध्यापक को ढूँढ रहा है।

.5.2 ऐच्छिक घटकों के योग द्वारा

धारभूत वाक्यों में ऐच्छिक पदबंधों या घटकों को जोड़कर भी वाक्य का विस्तार किया जा कता है। ये ऐच्छिक घटक सामान्यतः क्रियाविशेषण पदबंधों के रूप में होते हैं औरा इनका ख्य प्रयोजन वाक्य में अतिरिक्त सूचना देना और वाक्य को संदर्भ से जोड़ना होता है। क्य-संरचना की दृष्टि से इन घटकों का विशेष महत्व नहीं होता, लेकिन सूचना संरचना दृष्टि से ये अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं देखिए:

(1) रमेश अख़बार पढ़ रहा है।

(2) रमेश कुर्सी पर बैठे हुए अख़बार पढ़ रहा है।

(3) रमेश चार बजते से कुर्सी पर बैठे हुए अखबार पढ़ रहा है।

(4) रमेश बिना कुछ खाए-पिए चार बजे से कुर्सी पर बैठे हुए अखबार पढ़ रहा है।

.5.3 लोप प्रक्रिया द्वारा

दो या अधिक संरचक वाक्यों के बीच ऐसे समरूप अंश (पद या पदबंध) हों जो समान टे के हों और वाक्य में समान प्रकार्य करते हों तो दूसरे वाले समान अंश का लोप हो ता है, जैसे :

(1) मैं आपको जानता हूँ। मैं आपके भाई को नहीं जानता हूँ।

(2) मैं आपको जानता हूँ आपके भाई को नहीं।

5.4 रूपांतरण प्रक्रिया द्वारा

तरण वैयाकरणों की यह धारणा है कि आधारभूत वाक्यों पर कुछ विशिष्ट नियम (जैसे, नियम, स्थानांतरण नियम, आरोपण नियम आदि) लागू कर उनसे अनेक प्रकार के -संगत वाक्य बनाए जा सकते हैं जैसे - प्रश्नात्मक वाक्य, नकारात्मक वाक्य, सक-, आज्ञार्थक वाक्य, संभावनार्थक वाक्य, कर्मवाच्य वाक्य। देखिए :

(1) रमेश अखबार पढ़ रहा है।
→ क्या रमेश अख़बार पढ़ रहा है? (प्रश्नात्मक रूपांतरण)

(2) दुकानदार ने गुप्ताजी से पूरे पैसे ले लिए।
→ दुकानदार ने गुप्ताजी से पूरे पैसे नहीं लिए (नकारात्मक रूपांतरण)

(3) दुकानदार ने गुप्ताजी से पूरे पैसे ले लिए।
→ दुकानदार गुप्ताजी से पूरे पैसे ले सकते हैं। (सक-रूपांतरण)

(4) भाईसाहब चाय पीते हैं।
→ भाईसाहब, चाय पीजिए। (आज्ञार्थक रूपांतरण)

(5) निदेशक ने आदेश ज़ारी कर दिए हैं।
→ आदेश ज़ारी किए जा चुके हैं। (कर्मवाच्य रूपांतरण)

(6) पिताजी कल लौट रहे हैं।
→ शायद पिताजी कल लौटें। (संभावनार्थक रूपांतरण)

5 सारांश

ाक्य का विश्लेषण इन चार स्तरों पर किया जा सकता है - संरचना, प्रकार्य, लौकिक ार्थ और सूचना।

रचनापरक विश्लेषण से हमें संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण जैसी कोटियाँ प्राप्त होती हैं। कार्यपरक विश्लेषण से हमें कर्ता, कर्म, पूरक जैसी कोटियाँ प्राप्त होती हैं।

- लौकिक विश्लेषण से हमें अभिकर्ता (एजेंट), अनुभावक, भोक्ता जैसी कोटियाँ प्राप्त होती हैं। सूचनापरक विश्लेषण से हमें ज्ञात सूचना तथा नई सूचना अथवा थीम, रीम जैसी कोटियाँ प्राप्त होती हैं।
- वाक्य विभिन्न पदबंधों से निर्मित एक मूर्त और निश्चित रचना है। वाक्य-साँचा इन पदबंधों की प्रकार्यात्मक कोटियों से निर्मित एक अमूर्त ढाँचा है।
- वाक्य में प्रयुक्त शब्दों की संख्या सीमित होती है, लेकिन वाक्य-साँचों के विभिन्न घटकों के स्थान पर प्रयुक्त हो सकने वाले संभावित शब्दों की संख्या असीमित हो सकती है।
- वाक्य-साँचे में प्रत्येक घटक के प्रयोग का एक निश्चित स्थान होता है जिसे प्रकार्य स्थान कहते हैं। प्रकार्य-स्थान यहाँ पदबंध स्तरीय होता है और एक पदबंध का प्रतिनिधित्व करता है।
- प्रत्येक वाक्य-साँचे की एक निश्चित वितरण व्यवस्था होती है और उसके विभिन्न घटक एक दूसरे से व्याकरणिक संबंधों के जरिए जुड़े रहते हैं जिसे वाक्य विन्यासात्मक संबंध कहते हैं।
- एक प्रकार्य-स्थान पर प्रयुकत हो सकने वाले शब्दों को शब्द-वर्ग कहते हैं। इनके बीच के संबंध को रूपावली संबंध कहते हैं।
- वाक्य-साँचों के घटक दो प्रकार के होते हैं – अनिवार्य घटक और ऐच्छिक घटक। अनिवार्य घटक को हटा देने से वाक्य व्याकरण और अर्थ की दृष्टि से भंग हो जाता है।
- ऐसे वाक्य जिनके सभी घटक अनिवार्य घटक हों आधारभूत वाक्य कहलाते हैं। आधारभूत वाक्यों के साँचे आधारभूत वाक्य-साँचे कहलाते हैं।
- आधारभूत वाक्यों के तीन प्रमुख वर्ग हैं - कोप्यूला वाक्य वर्ग, को-वाक्य वर्ग और क्रियाप्रधान वाक्य-वर्ग।
- कोप्यूला वाक्यों में कर्ता और पूरक योजक क्रिया के माध्यम से जुड़े होते हैं।
- को-वाक्यों द्वारा अभिव्यक्त भावों को कुछ विशिष्ट कोटियों में रखा जा सकता है - शारीरिक अनुभूति, बौद्धिक अनुभूति, मनोभाव, पसंद आदि।
- क्रियाप्रधान वाक्यों में क्रिया ही वाक्य का मुख्य नियंत्रक तत्व होता है। इनके छह प्रमुख भेद हैं - सामान्य अकर्मक, सहअव्ययात्मक अकर्मक, सामान्य सकर्मक, सहअव्ययात्मक अकर्मक, सहपात्रीय सकर्मक, कर्मपूरक।
- भाषा के सभी वाक्य किसी-न-किसी आधारभूत वाक्य से व्युत्पन्न होते हैं। व्युत्पन्न वाक्यों की रचना की चार प्रुख प्रक्रियाएँ हैं - पदबंध विस्तार, ऐच्छिक घटकों का योग, लोप प्रक्रिया और रूपांतरण प्रक्रिया।

11.7 अभ्यास प्रश्न

1. **निबंधात्मक प्रश्न**
   (1) वाक्य विश्लेषण के स्तरों की व्याख्या कीजिए।
   (2) आधारभूत वाक्य ओर व्युत्पन्न वाक्य की संकल्पना को सोदाहरण समझाइए।

2. **टिप्पणी लिखिए**
   (1) हिंदी में कर्ता+को वाले वाक्य
   (2) सकर्मक वाक्य के प्रकार
   (3) आधारभूत वाक्यों से विभिन्न व्युत्पन्न वाक्य प्राप्त करने की प्रक्रियाएँ

3. **वस्तुनिष्ठ प्रश्न**

अभ्यास-1

(क) नीचे दिए कुछ कथन सही हैं और कुछ गलत। सही कथनों के आगे (✓) तथा गलत कथन के आगे (x) का निशान लगाएँ :

i) लौकिक जगत की कोटियाँ वास्तविक जगत में उनकी भूमिकाओं के आधार पर निर्धारित होती हैं। (सही/गलत)

ii) वाक्य के प्रारंभ में जो भी घटक होता है उसे 'रीम' कहते हैं। (सही/गलत)

iii) वाक्य-साँचा विभिन्न पदबंधों से निर्मित एक मूर्त और निश्चित रचना है। (सही/गलत)

iv) वाक्य-साँचे के निर्धारण में पदबंध से नीचे किसी अन्य कोटि को नहीं लिया जाता। (सही/गलत)

v) क्रिया विशेषण हमेशा ऐच्छिक घटक के रूप में ही प्रयुक्त होते हैं। (सही/गलत)

(ख) कोष्ठक में दिए गए उत्तरों में से कोई एक उत्तर सही है। जो सही उत्तर हो उसे रिक्त स्थान में लिखिए।

i) लोक-व्यवहार में वाक्य का अंतिम लक्ष्य .... संप्रेषण है। (संदेश/अर्थ/मनोभाव)

ii) वाक्य में कर्ता, कर्म, पूरक .... कोटियाँ कहलाती हैं। (संरचनात्मक/प्रकार्यात्मक/लौकिक)

iii) 'मैं अभी तक आपको डॉक्टर समझता था' वाक्य में .... वाक्य का कर्म है। (मैं/डॉक्टर/आपको)

iv) 'यह पत्र मैंने नहीं लिखा' वाक्य में .... 'थीम' है। (यह पत्र/मैंने नहीं लिखा/नहीं लिखा)

v) वाक्य-साँचें में प्रत्येक घटक के प्रयोग की एक निश्चित जगह होती है जिसे .... कहते हैं। (विन्यास-स्थान/रेखीय-स्थान/प्रकार्य-स्थान)

(ग) सही विकल्प पर ✓ का निशान लगाएँ :

i) 'मुझे आपसे सहानुभूति है' - इस वाक्य में
   - क) 'मुझे' अनुभवकर्ता है। ( )
   - ख) 'आपसे' अनुभवकर्ता है। ( )
   - ग) 'मुझे' सक्रिय कर्ता है। ( )

ii) सूचना संरचना के अनुसार 'मेरे भाई को तीन दिन से बुखार है' इस वाक्य में :
   - क) 'तीन दिन से बुखार है' नई सूचना है। ( )
   - ख) 'मेरे भाई को' नई सूचना है। ( )
   - ग) दोनों गलत हैं। ( )

iii) एक ही प्रकार्य-स्थान में प्रयुक्त हो सकने वाले शब्दों को :
   - क) शब्दावली कहते हैं। ( )
   - ख) व्याकरणिक शब्द कहते हैं। ( )
   - ग) शब्द-वर्ग कहते हैं। ( )

iv) 'मेरा लड़का/तीन दिन से/होटल में/खाना/खा रहा है' - इस वाक्य में पाँच पदबंधों के बीच का संबंध,
   - क) रूपावली संबंध है। ( )

ख) वाक्य-विन्यासात्मक संबंध है। ( )
ग) जाति-सदस्य संबंध है। ( )

v) 'मैं थोड़ी देर सोना चाहता हूँ' - यह वाक्य,
क) सहअव्ययात्मक सकर्मक वाक्य है। ( )
ख) सहपात्रीय सकर्मक वाक्य है। ( )
ग) सामान्य सकर्मक वाक्य है। ( )

अभ्यास-2

(क) नीचे दिए कुछ कथन सही हैं और कुछ गलत। सही कथनों के आगे (✓) तथा गलत कथन के आगे (×) का निशान लगाएँ :

i) ऐसे वाक्य जिनके सभी घटक ऐच्छिक हों आधारभूत वाक्य कहलाते हैं। (सही/गलत)

ii) भाषा में आधारभूत वाक्यों की संख्या असीमित होती है। (सही/गलत)

iii) को-कर्ता सामान्यतः चेतन होता है। (सही/गलत)

iv) को-वाक्य की रचना केवल हिंदी भाषा की अपनी विशिष्टता है जो अन्य भारतीय भाषाओं में नहीं मिलती। (सही/गलत)

v) सहअव्यय हमेशा अनिवार्य घटक के रूप में ही प्रयुक्त होता है। (सही/गलत)

(ख) कोष्ठक में दिए गए उत्तरों में से कोई एक उत्तर सही है। जो सही उत्तर हो उसे रिक्त स्थान में लिखिए।

i) आधारभूत वाक्य-साँचों में हमेशा .... वाक्यों को ही रखा जाता है। (संयुक्त/मिश्र/सरल)

ii) .... में कर्ता और पूरक योजक क्रिया के माध्यम से जुड़े होते हैं। (को-वाक्य/कोप्यूला वाक्य/क्रियाप्रधान वाक्य)

iii) 'मुझे बुखार है' .... है। (को-वाक्य/कोप्यूला वाक्य/क्रियाप्रधान वाक्य)

iv) .... में केवल क्रिया ही वाक्य का मुख्य नियंत्रक तत्व होता है। (को-वाक्य/कोप्यूला वाक्य/क्रियाप्रधान वाक्य)

v) .... सामान्यतः क्रियाविशेषण होते हैं। (सहपात्र/सहअव्यय/को-कर्ता)

(ग) सही विकल्प पर ✓ का निशान लगाएँ :

i) 'मुझे वह लड़का निर्दोष लगता है' वाक्य में 'निर्दोष' :
क) कर्म है
ख) कर्मपूरक है
ग) कर्तापूरक है

ii) 'तभी एक आदमी ने दुकानदार के पेट में छूरा भोंक दिया' वाक्य में 'पेट में' :
क) सहपात्र है
ख) सहअव्यय है
ग) कर्म है

iii) सरला हमेशा अपनी पड़ोसन से झगड़ती रहती हैं' वाक्य में 'पड़ोसन' :
क) कर्म है

ख) सहअव्यय है
ग) सहपात्र है

iv) 'उन्होंने कहा कि वे आज कार्यालय नहीं आएँगे' वाक्य में कर्म है :
क) कार्यालय
ख) वे
ग) आज वे कार्यालय नहीं आएँगे

v) 'उन्हें हिंदी नहीं आती' वाक्य
क) को-वाक्य है।
ख) क्रियाप्रधान वाक्य है।
ग) कोप्यूला वाक्य है।

उत्तर

अभ्यास-1

(क) i) सही
ii) गलत
iii) गलत
iv) सही
v) गलत

(ख) i) संदेश
ii) प्रकार्यात्मक
iii) आपको
iv) यह पत्र
v) प्रकार्यप्रधान

(ग) i) क
ii) क
iii) ग
iv) ख
v) ग

अभ्यास-2

(क) i) गलत
ii) गलत
iii) सही
iv) गलत
v) सही

(ख i) सरल
ii) कोप्यूला वाक्य
iii) को-वाक्य
iv) क्रियाप्रधान वाक्य
v) सहअव्यय

(ग) i) ख
ii) ख
iii) ग
iv) ग
v) क

इकाई 12 अर्थ-संरचना

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 अर्थ की प्रकृति
- 12.2.1 नाम और रूप
- 12.2.2 अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया
- 12.2.3 आर्थी घटक तथा विश्लेषण
- 12.2.4 आर्थी क्षेत्र
- 12.2.5 आर्थी संबंध

12.3 पर्यायता
- 12.3.1 पर्याय का आविर्भाव
- 12.3.2 पर्यायता का अर्थविभेदन

12.4 अनेकार्थता
- 12.4.1 शब्दस्तरीय अनेकार्थता
- 12.4.2 शब्द संयोग स्तर पर अनेकार्थता
- 12.4.3 अनेकार्थता की स्थिति में अर्थ विनिश्चय

12.5 विलोमता
- 12.5.1 ध्रुवीय
- 12.5.2 क्रमिकीय
- 12.5.3 संबंधी
- 12.5.4 अनुवर्ती
- 12.5.5 मापक्रमीय

12.6 वाक्य-स्तर पर अर्थ विवेचन
- 12.6.1 वाक्यार्थ बोध प्रक्रिया
- 12.6.2 अनेकार्थता
- 12.6.3 पर्यायता
- 12.6.4 विलोमता

12.7 सारांश
12.8 अभ्यास

12.0 उद्देश्य

जिस प्रकार वाक्य संरचना में पदबंध उपवाक्यों, वाक्य आदि घटकों से निर्मित वाक्यों के प्रकारों की चर्चा करते हैं उसी प्रकार भाषा की अर्थ संरचना भी होती है जिसमें हम शब्द और अर्थ के विभिन्न संदर्भों की चर्चा करते हैं।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- अर्थ की प्रकृति समझा सकेंगे,
- भाषा की अर्थ संरचना के घटक बता सकेंगे,
- शब्द और अर्थ का संबंध समझा सकेंगे,
- अनेकार्थता, पर्याय, विलोम आदि की प्रकृति स्पष्ट कर सकेंगे, और
- भाषा में शब्द : ‌ाग की विशेषताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

संस्कृति तथा सभ्यता के जिस उच्च सोपान पर आज हम स्थित हैं उसके लिए मानव प्रमुखतया भाषा प्रतीकों का ऋणी है जो उसे मनन-चिंतन-निदिध्यासन का सामर्थ्य प्रदान

करते हैं। सिंह यदि कभी मृग को सोचता होगा(?) तो उसके मनोपटल पर 'मृग' का सजीव स्वरूप उभर आता होगा पर आपको कोई सिंह-मृग की कहानी सुनानी हो तो धाराप्रवाह में चित्र के स्थान पर भाषा प्रतीक उभर आएँगे। भाषा प्रतीक ही हमारे स्मृति भंडार में भरे रहते हैं। इस पाठ में भाषा प्रतीक और वास्तविक जगत् की सत्ता (इन्टिटी) के अंतःसंबंध 'अर्थ' की संरचना स्पष्ट की जा रही है। अर्थ की प्रकृति के बाद हिंदी में विद्यमान पर्यायता, अनेकार्थता, विलोमता पर प्रकाश डाला जा रहा है और अंत में वाक्य स्तर पर इनकी भूमिका स्पष्ट की जा रही है।

12.2 अर्थ की प्रकृति

अर्थ' शब्द का सही-सही क्या 'अर्थ' है - यह भाषा दार्शनिकों के लिए एक अति कठिन समस्या है। इस समस्या की एक विलक्षणता यह भी है कि जहाँ एक ओर भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से की परिभाषा में कही-न-कहीं से 'अतिव्याप्ति' या 'न्यूनव्याप्ति' का दोष आ जाता है, वहीं दूसरी ओर साधारण व्यक्ति भी बचपन से ही 'अर्थ' की संकल्पना से भलीभाँति परिचित है और बेझिझक 'अर्थ' शब्द का व्यावहारिक दृष्टि से सही प्रयोग करता रहता है। बच्चे प्रायः किसी वस्तु। प्राणी की ओर इशारा कर यह पूछते हैं कि 'यह क्या है?' अर्थात् इसे क्या कहते हैं' या 'इसे मैं क्या कहूँ' या 'मैं इसे किस नाम से पुकारूँ' आदि। वे बड़ों के कथन को सुनकर कभी-कभी यह पूछ बैठते हैं कि अभी आपने यह (=×) कहा है, 'यह क्या है?' अर्थात् 'इसका क्या मतलब है' या 'इसका चित्र दिखाइए' आदि। विद्यालय में जाकर बालक को अध्यापक से निरंतर सुनने को मिलता है कि इस 'शब्द' का यह 'अर्थ' होता है या 'वृक्ष' का अर्थ है 'पेड़', 'सरिता' का अर्थ है 'नदी' या 'lion' का अर्थ है 'शेर' आदि। इस प्रकार बाल्यावस्था में ही व्यक्ति 'अर्थ' शब्द के विविध अर्थों से परिचित हो जाता है।

12.2.1 'नाम' और 'रूप'

अर्थ की संकल्पना को स्पष्ट करने के पूर्व यदि भारतीय चिंतन में प्रयुक्त दो शब्द 'नाम' और रूप' को समझ लिया जाए तो अर्थ के अर्थबोधन में सहायता मिलेगी। संसार में मनुष्य असंख्य वस्तुओं, प्राणियों व्यक्तियों, यन्त्र-उपकरणों आदि को देखता है। इनकी अपनी-अपनी सत्ता होती है जिसके कारण वे अन्य से भिन्न होते हैं और अन्य के बीच में पहचाने जाते हैं। इस मूर्त सत्ता के लिए तकनीकी शब्द 'रूप' का प्रयोग है। सृष्टि में जितनी सत्ताएँ हैं वे स्रष्टा के रूप हैं, शायद इसीलिए 'रूप' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार रूप इन्द्रियगोचर सांसारिक मूर्त सत्ता है। किंतु समाज में प्रत्येक भाषा समुदाय इन मूर्त सत्ता-रूपों को किसी-न-किसी नाम से पुकारते या जानते हैं। हिंदी भाषी 'गाय-रूप' के लिए 'गाय नाम का प्रयोग करते हैं, घोड़ा प्राणी रूप के लिए 'घोड़ा' - 'नाम' का व्यवहार करते हैं,आदि। इस प्रकार बालक अपने बड़ों को 'रूप', के लिए 'नाम$_1$', 'रूप$_2$' के लिए 'नाम$_2$', 'रूप$_3$' के लिए 'नाम$_3$' आदि अनंत 'रूप' एवं 'नाम' को देखता-सुनता है। वह यह भी देखता है कि नाम', सुनते ही 'रूप', का प्रयोग हो रहा है, 'नाम$_2$' के सुनते ही 'रूप$_2$', 'नाम$_3$' के सुनते ही 'रूप$_3$' आदि का जनव्यवहार होता है। ऐसे निरंतर साहचर्य-बोध से बालक यह परिणाम निकाल लेता है कि 'नाम' और 'रूप' के बीच कोई संबंध है - इस बुद्धि स्थित संबंध को मोटे तौर से 'अर्थ' कहते हैं।

अब इस स्थिति पर ध्यान दीजिए। बच्चा स्कूल जाने के पहले नाश्ता कर रहा है और दूध पीते ही कहता है, 'माँ! चीनी'। 'चीनी' ध्वनियाँ सुनते ही माँ 'चीनी' पदार्थ को उसकी ओर बढ़ा देती है। यहाँ स्वाभाविक लगता है कि 'चीनी' शब्द-ध्वनि और 'चीनी' पदार्थ में कोई सीधा प्रत्यक्ष संबंध है :

(चीनी) ←——————→ 'चीनी'

शब्द का उच्चारण — वस्तु

नाम — रूप

अर्थात् 'चीनी-नाम' सुनते ही 'चीनी-रूप' का ध्यान आता है और विपरीततः 'चीनी-रूप' देखते ही 'चीनी-नाम' स्मृति में आता है। संस्कृत दर्शन के अनुसार प्रत्येक में एक 'कारण' है और दूसरा 'कार्य' - 'चीनी-नाम' का श्रवण 'कारण' है, 'चीनी-वस्तु' का बोध 'कार्य' तथा विपरीततया 'चीनी-वस्तु' का दर्शन 'कारण' है और 'चीनी-शब्द' का स्मृति-प्रत्यक्ष 'कार्य' है। और कारण-कार्य के बीच कुछ-न-कुछ समय अवश्य लगता है और कोई-न-कोई प्रक्रम-प्रक्रिया अवश्यमेव होती है (संस्कृत दर्शन में इस प्रक्रम या प्रक्रिया को 'व्यापार' कहते हैं)। यहाँ 'नाम' (वाचक) और 'रूप' (वाच्य) के बीच जो व्यापार होता है वह 'अर्थ' – व्यापार है अर्थात् वाचक-वाच्य संबंध का नाम 'अर्थ' है। दूसरे शब्दों में 'अर्थ' नाम और रूप के बीच का वह संबंध है जो नाम के सुनते ही रूप को देखता है और रूप को देखते ही नाम बोलता है।

यह एक बहुत सरलीकृत व्याख्या है। यथार्थ स्थिति जानने के लिए कुछ और गंभीरता से विवेचन आवश्यक है और इसके लिए निम्नलिखित कुछ विचार-बिंदुओं पर प्रकाश डाला जा रहा है :

(i) **ध्वन्यात्मक शब्द और भाषाई शब्द :** भारतीय भाषा चिंतन के अनुसार भौतिक ध्वनियों के दो वर्ग हैं : 'ध्वन्यातमक' और 'वर्णात्मक' - ध्वन्यातमक जैसे कोई हार्न बजाए, वर्णात्मक जो भाषा का भाषाई अवयव है। (श्रोत ग्राह्यों गुणः शब्दः। स द्विविधो ध्वन्यात्मको वर्णात्मकश्च/ तत्र ध्वन्यात्मको भेर्यादौ। वर्णात्मकः संस्कृत भाषादि रूपः) (तर्क संग्रह, पृष्ठ 52)। बच्चे ने जब 'चीनी' ध्वनि निकाली तो वह ध्वन्यात्मक थी, माँ ने अपने भाषाई संस्कार से उसे हिंदी भाषा का एक 'शब्द' माना। (भाषाई संस्कार एक महत्वपूर्ण शर्त है - 'गो' ध्वनिसमूह को अंग्रेजी भाषा 'go' मानेगा और संस्कृत भाषी गो (= 'धेनु')। श्रोता सामान्यतया वाक्य ही सुनता है, संधि विच्छेद द्वारा 'पद' स्तर पर पहुँचता है, तत्पश्चात् तिङ्-सुप् आदि पृथक् करने के बाद प्रातिपदिक आदि (शब्द) पर और वह 'वर्णात्मक ध्वनि' है। इस प्रकार :

ना' वर्णात्मक हिंदी भाषा का 'चीनी'-नाम/शब्द (अमूर्त)

↑

ना ध्वन्यात्मक 'चीनी'-नाम (मूर्त)

(ii) व्यक्ति (व्यष्टि) - जाति : बच्चा बाह्य जगत् में जो कुछ भी देखता है वह मूर्त, इंद्रियगोचर और विशेष (व्यक्ति, व्यष्टि) होता है, किंतु वह शीघ्र ही 'जाति' की संकल्पना से भलीभाँति परिचित हो जाता है। छोटे बच्चे को एक लाल खिलौना दिया जाता है और कहा जाता है 'खिलौना लो', फिर एक पीला वैसा ही खिलौना दिया ज़ाता है और कहा जाता है कि 'खिलौना लो'। वस्तु का रंग, आकार, आकृति आदि बदलती जाती है किंतु वह सुनता है 'खिलौना लो'। इस प्रकार उसके मन में खिलौने का अमूर्त रूप बैठ जाता है और वह खिलौना - 'जाति' का अनुभव कर लेता है। जहाँ 'व्यक्ति' मूर्त है, 'जाति' अमूर्त है। इस प्रकार 'नाम' से संबद्ध अनेक व्यष्टि रूप$_1$, व्यष्टि रूप$_2$, व्यष्टि रूप$_3$.. से 'जाति रूप' का अनुभव हो जाता है।

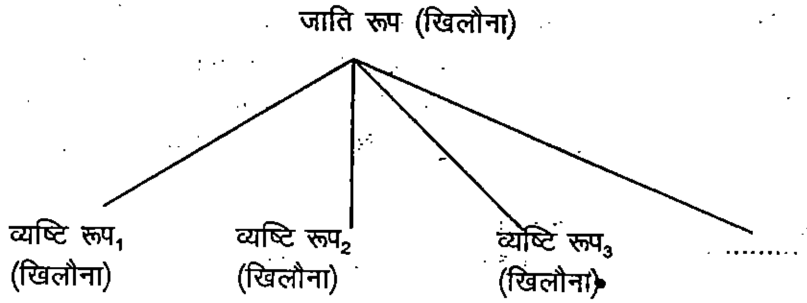

यह विशेष-सामान्य अथवा व्यक्ति-जाति संबंध प्राणियों तथा वस्तुओं (संज्ञा शब्दों) में बहुत स्पष्ट है, किंतु यह संबंध गुणों (विशेषण के विशेषकों) तथा क्रियाओं (क्रिया प्रक्रमों, क्रिया प्रक्रियाओं, क्रिया व्यापारों, क्रिया स्थितियों, घटनाओं आदि) में भी मिलता है।
अब 'अर्थ' की संकल्पना के विवेचन की ओर लौटें। नीचे के चित्र/आरेख पर ध्यान दें :

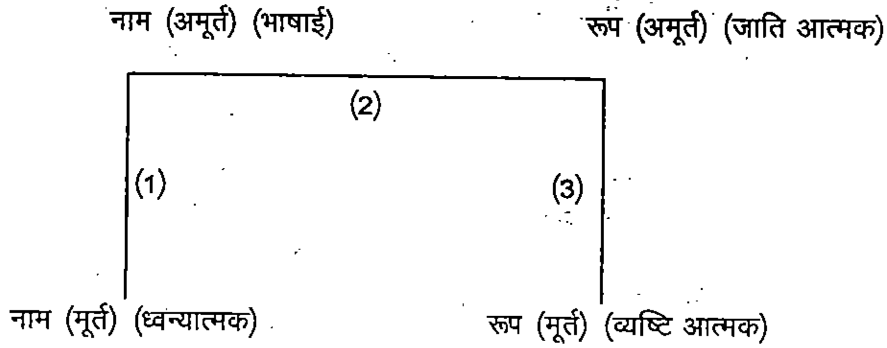

यह आरेख नैयायिकों के अनुसार 'शब्द बोध' की प्रक्रिया को दिखा रहा है। (1) चरण में हम ध्वन्यातमक नाम से भाषाई नाम तक पहुँचते हैं (पदज्ञान), (2) चरण में अमूर्त नाम से अमूर्तरूप तक पहुँचते हैं, यह व्यापार 'अर्थ-व्यापार' है जिसे तकनीकी न्याय शब्दावली में शक्तिमान' कहते हैं। इसी चरण पर वाचक-वाच्य संबंध को 'अर्थ' कहते हैं। (3) चरण में जो अमूर्त रूप वाच्य का चरण-दो से प्राप्त हुआ है उससे बाह्य जगत् में स्थित मूर्त-प्रत्यक्ष वाच्य तक पहुँचते हैं (पदार्थ ज्ञान)। इस प्रकार 'अर्थ', अमूर्त नाम और अमूर्त रूप के बीच का संबंध है जिसके कारण हम नाम से रूप की ओर अथवा रूप से नाम की ओर चलते हैं।

12.2.2 अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया

बच्चा अर्थग्रहण कैसे करता है, इसका अध्ययन भारतीय भाषा-चिंतन में गहराई से हुआ है और अर्थग्रहण की प्रक्रिया को 'शक्ति ग्रह' के नाम से कहा गया है। इसके आंठ साधन माने गए हैं :

> शक्ति ग्रहं व्याकरणोपमान कोशाप्त वाक्याद् व्यवहारतश्च।
> वाक्यस्य शेषद् विवृत्ते र्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्ध पद्स्य वृद्धाः।।
> (न्यायसिद्धांत मुक्तावली - शब्दखंड -   )

इनका विवेचन यहाँ निम्न क्रम से किया जा रहा है :

(1) **वृद्ध व्यवहार/लोक व्यवहार :** छोटा बच्चा बड़ों से अथवा भाषा विशेष न समझने वाला व्यक्ति उस भाषा को बोलने वाले लोगों से अनेक प्रकार के वाक्य सुनता है और तदनुसार उनकी क्रियाओं को देखता है और तब शब्दों के अर्थों का ज्ञान होता है। शक्तिग्रह के उपायों में यह प्रमुखतम है। 'अश्वं नय', 'गां नय', 'अश्वम् आनय', 'गाम् आनय' वृद्धजन व्यवहार के प्रसिद्ध उदाहरण हैं। जनसाधारण जीवन भर इसी साधन से अपनी शब्दावली बढ़ाता चलता है।

(2) **कोश :** शब्दकोश तो मुख्यतया शब्दों के अर्थ/अर्थों को बताने तथा समझाने के लिए बनाए ही जाते हैं। यदि पढ़ते समय पाठक के सामने कोई ऐसा शब्द आ जाता है, जिससे वह परिचित नहीं है तो सर्वप्रथम वह शब्दकोश निकाल कर अर्थ देखेगा। शिक्षार्थियों को विद्यालयों में निरंतर इस दिशा में प्रोत्साहित किया जाता है।

(3) **व्याकरण :** शब्दों के अर्थ का ज्ञान व्याकरण से शीघ्र और सही-सही हो जाता है। संस्कृत जैसी भाषाओं में जहाँ प्रचुर मात्रा में यौगिक शब्द हैं, समास-प्रत्यय-उपसर्ग-संधि की जानकारी अर्थ निकालने में बड़ी सहायता देती हैं। जैसे - पठ् (पढ़ना) +0 कुल (=अ क) (क्रिया करने वाला) = पढ़ने वाला।

(4) **आप्त-वाक्य :** 'आप्त' उस व्यक्ति को कहते हैं जिसे संबद्ध विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है और जो अपने विषय का विशेषज्ञ होता है। शास्त्रों में आए शब्दों के मानक एवं प्रामाणिक परिभाषा आधारित अर्थ जानने का यह प्रमुख स्रोत है। कक्षा में अध्यापक द्वारा बताए और अन्यत्र बड़ों द्वारा बताए अर्थों को बालक इसी साधन द्वारा ग्रहण करता है।

(5) उपमान : कभी-कभी बड़ों के लिए अर्थ बताना कठिन होता है क्योंकि वह प्राणी या वस्तु पूछने वाले को प्रत्यक्ष अथवा चित्रादि के माध्यम से उपलब्ध नहीं है। ऐसी स्थिति में बताने वाला उस सत्ता से समीपतम परिचित वस्तु का उल्लेख करते हुए कहता है कि इसके समान होता है।

(6) विवृत्ति : विवृत्ति का अर्थ विवरण देना अर्थात् व्याख्या देना है। संस्कृत में भाष्य, टीका आदि का बहुत प्रचलन था। साहित्यिक कृतियों पर भी टीकाएँ मिलती थीं, जिनसे अभिधा से अतिरिक्त व्यंजना, तात्पर्या आदि को स्पष्ट किया जाता है, साहित्यिक विशेषताओं को उद्घाटित किया जाता है और कथ्य के ज्ञानमीमांसा-परक पक्षों पर प्रकाश डाला जाता है। विवृत्ति द्वारा शब्द के अर्थ के विविध पक्षों को उदाहरण, भेद-उपभेद आदि द्वारा सम्यक् रूप से समझाया जाता है।

(7) सिद्ध पद सान्निध्य : यह वाक्यगत साधन है। वाक्य में अनेक शब्दों में से यदि केवल दो-एक शब्दों का अर्थ नहीं आता है तो ज्ञात (सिद्ध) पदों के सामीप्य से उनका अर्थ निकाला जा सकता है। जैसे 'इस आम के पेड़ पर पिक मधुरस्वर से गान कर रही है' वाक्य में 'पिक' शब्द का अर्थ नहीं ज्ञात है, किंतु सांसारिक जानकारी से मालूम है कि आम के पेड़ पर वसंत में कोयल ही कूकती है, अतएव 'पिक' शब्द का अर्थ 'कोयल' ज्ञात हो गया।

(8) वाक्य शेष : वाक्यशेष का अर्थ है 'बचा हुआ अथवा बचे हुए वाक्य'। किसी वाक्य का अर्थ यदि किसी अन्य वाक्य के अर्थ पर आधारित है तो वह वाक्य शेष है। जहाँ सिद्ध पदसान्निध्य वाक्य स्तरीय था, यह प्रोक्तिस्तरीय है। जैसे 'अभी-अभी क्लिन्टन चीन गए थे। यह कदाचित् पहला अवसर था कि अमेरिका का राष्ट्रपति चीन जाए।' यहाँ क्लिन्टन अमेरिका के राष्ट्रपति हैं यह जानकारी वाक्य शेष से मिल जाती है।

12.2.3 आर्थी घटक और उनका विश्लेषण

ध्वनियों के घटकों का जिस प्रकार निर्धारण होता है और उनका विश्लेषण होता है उसी प्रकार शब्दार्थ के घटकों का निर्धारण-विश्लेषण क्यों न किया जाए यह विचार पाश्चात्य भाषा चिंतकों का बहुत दिनों से था। यह कठिन कार्य अवश्य था क्योंकि ध्वनियों के विवेचन-विश्लेषण को पहले तो भारतीय ध्वनिशास्त्रियों के वर्गीकारक विवेचन ने तथा बाद में भौतिकशास्त्र में ध्वानिकी पर हुए विविध अध्ययनों ने जो सहायता पहुँचाई थी उस प्रकार की

सहायता शब्दार्थ विज्ञान को नहीं मिल रही थी। फिर भी विश्व की ज्ञानमीमांसा के, मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय अनुसंधान निष्कर्षों ने और भारतीय न्याय एवं मीमांसा की वैचारिक उपलब्धियों ने इस दिशा में बहुत योगदान किया है।

अतएव यह माना जाने लगा कि जिस प्रकार भाषा ध्वनि अनेक ध्वनितत्वों के संयोजन से बनती है (उदाहरणार्थ 'प' ध्वनि में अनेक ध्वनितत्व जैसे व्यंजन-स्पर्श-द्व्योष्ठ्य-अघोष-अल्पप्राण-निरनुनासिक आदि हैं) उसी प्रकार प्रत्येक शब्द का अर्थ अनेकानेक अर्थतत्वा के संयोजन से बनता है। 'बालक-बालिका' में केवल लिंग घटक (पुल्लिंग-स्त्रीलिंग) का अंतर है, 'कटोरा-कटोरी' में बृहत्-लघु-भाव का अंतर है, 'दौड़ना' वह चलना है जिसमें बहुत तेज वेग है और 'भागना' वह दौड़ना है जिस अनिष्टता की आशंका से दूर हटना (पलायन) है, छीनना' वह लेना है जिसमें आदाता बल प्रयोग कर रहा है जबकि दाता की देने में अनिच्छा है। संक्षेप में प्रत्येक अर्थ में अनेकानेक 'अर्थतत्व' संपुटित (encapsulated) हैं।

घटकीय विश्लेषण में द्वि-आधारी पद्धति (binary system) की भाँति (+) (-) का प्रयोग एक के बाद एक होता जाता है। संसार की सत्ताएँ '+चेतन' या '-चेतन' हैं, +चेतन में +जन्तु' है, '+जन्तु' में '+मानव' और '-मानव' है, '+मानव' के कई आयामों में '+पुं', '-पुं' है और आयु-अवस्था के कई लक्षण हैं। इस प्रकार :

बच्चा = '+चेतन', '–जन्तु' '+मानव' '+पुं' + प्रथम बालावस्था
बंछड़ा = '+चेतन', '+जन्तु' '+गौ' '+पुं' '+बालावस्था'

12.2.4 आर्थी-क्षेत्र

आजकल प्रवेश परीक्षाओं अथवा प्रतियोगिता परीक्षाओं में तार्किक चिंतन योग्यता के परीक्षण हेतु odd man out (बेमेल हटाइए) अथवा समानानुपातिक वस्तुनिष्ठ प्रश्न आते हैं, जेसे, बेमेल सदस्य बताइए :

(क)	चिड़िया, गाय, मछली, पेड़	(पेड़)
(ख)	केला, जलेबी, आम, अमरूद	(जलेबी)
(ग)	गाय, शेर, साँप, आदमी	(साँप)

यह इस बात का संकेत देता है कि व्यक्ति तार्किक चिंतन में आर्थी-लक्षणों (घटकों) को ध्यान में रखते हुए सत्ताओं के वर्ग, उपवर्ग आदि समूहन करता रहता है। समावेशिता (inclusiveness) के उत्तराधर क्रम निरंतर बनते रहते हैं और प्रत्येक शाखा जो आगे छोटी शाखाओं में बँट रही है आर्थी क्षेत्र, आर्थी उपक्षेत्र आदि का निर्माण करते हैं। उदाहरणार्थ :

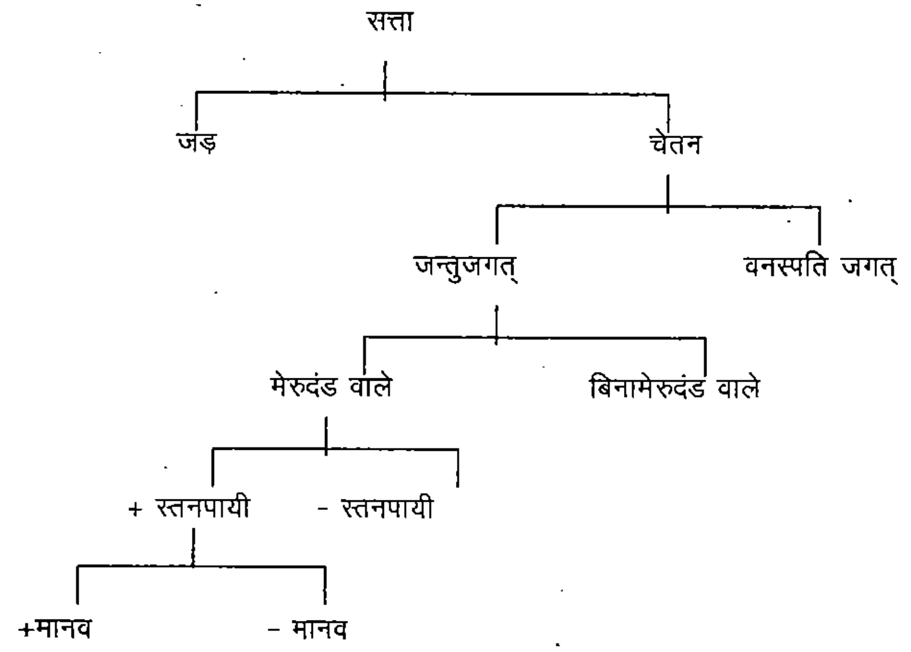

इस उत्तराधरक्रम विभाजन में जन्तुजगत् एक आर्थी क्षेत्र बना, वनस्पति जगत् दूसरा आर्थी क्षेत्र, मानव एक आर्थी उपक्षेत्र बना, पशु पक्षी आदि अन्य आर्थी उपक्षेत्र, आदि आदि।

ये आर्थी क्षेत्र शब्दावली वर्गीकरण, थेसारस (अर्थ कोश) बनाने में भाषाशिक्षण के क्षेत्र में बहुत उपयोगी होते हैं। हिंदी में इन आर्थी क्षेत्रों के कोटिकरण की दिशा में कोई विशेष अध्ययन नहीं हुआ है। हिंदी के समान्तर कोश (थेसारस) में कोटिकरण का एक प्रयास किया गया है। अंग्रेज़ी थेसारसों ने सौ साल से अधिक पुराने Rogets Thesaurus को ही मुख्य आधार बनाया है। नीचे प्राचीन दर्शनों में प्राप्त कोटिकरण तथा आधुनिक पाश्चात्य ज्ञानमींमासा आधारित कोटिकरण को ध्यान में रखते हुए एक कोटिकरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

110 ब्रह्म, ईश्वर
120 प्रकृति : 121 आकाश, 122 पृथ्वी, 123 जल, 124 वायु, 125 अग्नि, तेजस्
210 वनस्पति जगत् : 211 वृक्ष, 212 पुष्प, 213 फल
220 जन्तुजगत् : 221 पाशु, 222 पक्षी, 223 कीट, 224 सरीसृप, 225 जलचर
230 मानव
331 जीवन-अवस्थाएँ : 332 शरीरांग, 333 शारीरिक क्रियाएँ, 334 रोग एवं निवारण, 335 मन और मनोभावनाएँ आदि, 336 मनोविकार एवं उनके निवारणोपाय
410 आहार : उपादान-साधन-प्रक्रियाएँ-उत्पाद
420 आवास : भवन, फर्नीचर, प्रकाश, वायु, स्वच्छता
430 आच्छादन : वस्त्र, आभूषण-रत्न, श्रृंगार-प्रसाधन
440 आमोद-प्रमोद : उत्सव, समारोह, सम्मेलन
450 कला-शिल्प : ललित कलाएँ-उपयोगी कलाएँ-शिल्प
460 विनिर्माण : यंत्र, उपकरण, साधन आदि, उपादान-साधन-प्रक्रिया-उत्पाद
510 परिवार-कुटुंब-गोत्र
520 इष्ट मित्र : समुदाय
530 सामाजिक संबंध एवं क्रियाएँ (आज्ञा, निवेदन आदि)
610 शिक्षण-प्रशिक्षण : स्थलनाम, साधन, विषय
620 चिन्तन : गणना एवं मापन - काल, स्थान, दिशा, वर्गीकरण-कोटिकरण
630 धार्मिक क्षेत्र : स्थलनाम, ग्रंथ, कृत्य, गुरू, मान्यताएँ, देवादि
640 आजीविका : वाणिज्य व्यापार - स्थल-प्रक्रिया-साधन-मुद्रा आदि
650 आजीविका : अन्य - धंधे
710 यातायात : यात्रा साधन, यात्रामार्ग आदि
720 संदेश प्रेषण : पत्रवाहक, डाक
730 संदेश प्रेषण : यांत्रिक साधन - टेलीफोन, टी.वी.-रेडियो, इन्टरनेट
810 रक्षा-सुरक्षा : सेना-पुलिस, अस्त्रशस्त्र, सैन्यव्यवस्था
820 राज्य : शासन व्यवस्था, विधायी, राजनैतिक
830 प्रशासन : देश-प्रांत आदि, अधिकारी, प्रशासनतंत्र
840 विधि : विधि ग्रंथ, न्याय व्यवस्था, दंड, कारागार आदि

12.2.5 आर्थी संबंध

इन आर्थी क्षेत्रों के अंतर्गत जो शब्द/शब्द समूह आते हैं उनमें विशिष्ट आंतरिक संबंध अवश्य होता है। जैसे, 'फूल' शब्द और 'कमल, गुलाब, गेंदा' आदि शब्दों में यह आर्थी संबंध है कि 'फूल' वर्ग नाम है और 'कमल, गुलाब, गेंदा आदि' सदस्य नाम हैं, तथा 'कमल, गुलाब, गेंदा ' शब्दों में पारस्परिक संबंध 'सह-वर्गी' होना है। इसी प्रकार 'देश', 'प्रांत', 'कमिश्नरी', 'जिला', 'तहसील', 'परगना' आदि में उत्तराधर-समावेशी संबंध है - देश कई प्रांतों में बँटा रहता है, प्रांत कई कमिश्नरियों में, कमिश्नरी कई जिलों में आदि। भाषाविज्ञान में संरचना में भी उत्तराधर क्रम मिलता है - प्रोक्ति, वाक्य, उपवाक्य, पदबंध, पद, शब्द, शब्दांश, रूपिम व्याकरणिक उत्तराधरक्रम है। इसी प्रकार अंगांगी-संबंध भी होता है। शरीर के कई अंग हैं -

ोर्ष-वक्ष-उदर-हस्त पाद आदि। यदि 'भुजा' को अंगी मानें तो 'बाहु' और 'अंगुलियाँ' दो मुख अंग हैं। इनमें प्रवरता (ज्येष्ठता) - अवरता (कनिष्ठता) भाव नहीं रहता है - अंगी बिना ग के रह सकता है, जैसे अंगुली कटा हाथ, हथकटी भुजा, भुजा कटा शरीर। इसी प्रकार पादान-उत्पाद संबंध है जैसे मिट्टी का घड़े, कुल्हड़, आदि से या चीनी का जलेबी, बर्फी ादि से। संक्षेप में आर्थी क्षेत्र, वर्ग, उपवर्ग के व्यष्टि किसी-न-किसी आर्थी संबंध से बँधे रहते ।

2.3 पर्यायता

र्यायता नाम-रूपा संबंधों में से वह संबंध है जहाँ एक 'रूप' के अनेक 'नाम' भाषाविशेष में लते हैं। उदाहरणार्थ हिंदी में एक 'रूप', 'चन्द्रमा' के लिए "चांद, चंदा, चन्द्र, रजनीकर, मरश्मि" आदि अनेक 'नाम' मिलते हैं। ये सब नाम आपस में पर्याय हैं और एक के स्थान दूसरा, कभी-कभी कुछ प्रतिबंधों के अधीन, स्थानापन्न हो सकते हैं। आगे इसकी विवेचना जा रही है कि भाषा में पर्यायता की स्थिति क्यों आती है तथा संस्कृत एवं हिंदी की र्यायता से सामान्यतया उदाहरण लिए गए हैं।

.3.1 पर्याय का आविर्भाव

भाषिकता की स्थिति

ायता का, विशेषाता हिंदी पर्यायता का, मुख्य स्रोत बहुभाषिकता है। सभ्यता के आदि काल प्राकृतिक प्रतिकूलता के कारण झुंड के झुंड मानव-समूह अन्यत्र अन्यभाषी प्रदेश में पहुँचते ते थे और विकसित सभ्यता वाले समाजों में सीमित मात्रा में ही सही लोग धार्मिक, ानैतिक, व्यापार-वाणिज्यिक, शिक्षा एवं कला क्षेत्रों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए दूसरे ों में निरंतर जाते थे। इस प्रकार की अन्योन्य क्रिया की स्थिति में बहुभाषिकता की स्थिति ः उत्पन्न् होती थी। बहुभाषिकता की स्थिति में पहले तो आदाता भाषा में दाता भाषा के क शब्द, विशेषतः उन रूपों के लिए जिनसे आदाता परिचित नहीं थे अर्थात् नये थे, क शब्द आ जाते थे (जैसे, रेडियो, बस, चाकू, आदि)। इनसे पर्यायता की स्थिति उत्पन्न होती है। किंतु जब बाद में, दाता यदि प्रभावी (dominant) है और अनेक भाषा व्यवहार आदाता के पास उस 'रूप' के लिए निजी 'नाम' होते हुए भी आग्रह (या दुराग्रह) करता के उसका अपना 'नाम' चले तो आदाता भाषा में एक ही 'रूप' के लिए दो 'नाम' हो ते हैं, एक उसका अपना निजी (जैसे, न्यायालय) और एक प्रभावी दाता की भाषा का से, कचहरी)। हिंदी क्षेत्र में ऐसी पर्यायता प्रचुर है - पहले मुगल आदि प्रभावी दाताथे और में अंग्रेज़ आदि। इस कारण ऐसे बहुत से युग्म या त्रिक हैं जहाँ हिंदी के अपने 'नाम' साथ-साथ फारसी या/और अंग्रेज़ी के शब्द मिलते हैं। जैसे - पवन-हवा, पुस्तक-किताब, र-खूबसूरत, लज्जा-शरम, उद्यान-गार्डन, मानचित्र-एटलस, डॉक्टर-वैद्य-हकीम आदि।

ाहासिकता की स्थिति

यता का, विशेषतः हिंदी पर्यायता का, एक अन्य प्रमुख स्रोत हिंदी का लंबा इतिहास है। भाषा को विरासत में एक विशाल विपुल शब्द भंडार संस्कृत से तत्सम शब्दों के रूप में ा है। इसके अतिरिक्त संस्कृत से विकसित परवर्ती भाषाओं, जैसे पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, भी उसे संस्कृत के अनेक शब्द तद्भव रूप में मिले हैं, और स्वयं पुरानी हिंदी ने कुछ नये ार के तद्भव रूप बनाए थे, वे भी विरासत में हिंदी को मिले हैं। इस कारण एक ही 'रूप' लिए तत्सम 'नाम', तद्भव 'नाम' और देसी 'नाम' (देसी भी विरासत में संस्कृत भिन्न ाओं से मिले हैं) मिल सकते हैं। इस प्रकार के उदाहरण सर्वविदित हैं जैसे, मुख-मुँह, -कान, पुष्प-फूल, विद्युत-बिजली, सप्त+सात, कृष्ण-कान्ह, कान्हा और किशन आदि।

विदेशी शब्दों के अनुवाद

विदेशी शब्दों के अनुवाद के कारण भी पर्यायता आ जाती है। कभी-कभी भाषा में पहले से ही शब्द होता है फिर भी विदेशी शब्द का नया रूपांतरण किया जाता है और पर्याय युग्म का जन्म होता है। जैसे equator के लिए विषुवद् रेखा प्राचीन शब्द था, नया शब्द 'भूमध्यरेखा' बना। कभी-कभी नवसृजन दो प्रकार से हो जाता है और पर्याय युग्म सामने आ जाता है, जैसो linguistics के लिए भाषाविज्ञान, भाषाशास्त्र, भाषिकी।

अश्लील/अमंगल परिहार

यह सार्वजनिक/सार्वभाषिक प्रवृत्ति है कि अश्लील, अशुभ या अमंगल को ज्यों का त्यों अभिधा में न कहा जाए - ऐसा कहना शालीनता से परे होता है। बच्चों को 'शू' या एक अंगुली ऊपर उठाना सिखाया जाता है। सुबह सुबह लोग 'दिशा जाते हैं', 'जंगल जाते हैं', 'खेत जाते हैं' और वह स्थल toilet है, bathroom है, प्रसाधन है, शौचालय या शौचागार है। वयोवृद्ध मरते नहीं है - गोलोकवासी होते हैं, सद्गति पाते हैं, स्वर्गवासी बनते हैं और मरण के पर्याय हैं - महानिद्रा, निधन, प्रयाण, देहान्त, देहावसान,परलोकगमन आदि।

साहित्यिक लेखन

साहित्यिक लेखन में पर्याय शब्दों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मानवकृत वस्तुएँ तो प्रायः एक-दो प्रकार्यों के लिए बनाई जाती हैं, किंतु प्राकृतिक सत्ताओं के अनेक प्रकार्य-गुण होते हैं - सूर्य हमें प्रकाश देता है, उष्णता देता है, चन्द्रमा हमें प्रकाश देता है, शीतलता देता है। संस्कृत में इन प्राकृतिक शक्तियों के पौराणिक आख्यान भी होतो हैं और इनके मानवीकरण के कारण माता-पिता या जनक भी होते हैं - इस कारण पर्यायता का परास (रेंज) और भी बढ़ जाता हैं। उदाहरणार्थ चंद्रमा के पर्यायों पर विचार करें :

किरणें श्वेत	:	सितांशु, शुभ्रांशु, श्वेतभानु, सितकर
अंधेरा भगाता है	:	तमीश, तमोघ्न, तमोहर
रात से संबंध	:	रजनीकर, रजनीश, रजनीपति, निशाकर, निशीश, निशापति, निशाना राकेश, राकापति, क्षपाकर, निशारत्न
शीतलता देता है	:	हिमांशु, हिमकर, तुषारांशु
बीच में खरगोश	:	शशी, शशांक, शशधर, मृगधर, मृगांक, छायांक, छायामृगधर, हरिणांक, कलंकी, फुरंकांग
अमृत से संबंध	:	सुधांशु, सोमराज, अमृतरश्मि, सुधाकर, सुधानिधि, ओषधीश
कलाएँ (घटती बढ़ती हैं)	:	कलानाथ, कलाधर, कलानिधि, इंदु, क्षयी, पक्षज, पक्षधर।
कमल से संबंध	:	कुमुदहर, कोकहर
पौराणिक : तारों का पति	:	नक्षत्रेश्वर, नक्षत्रनाथ, उडुप, उडुराज, नक्षत्रेश, ऋक्षेश, ग्रहराज, तारेश, रोहिणीश, चित्रेश
: समुद्र से निकला	:	अंबुज, जलज, जलधिज, सिंधूद्भव
: शिव के मस्तक पर	:	शिवशेखर

संस्कृत में पर्यायों के आधिक्य के मूल में यौगिक स्तरीय नवरचना है। संस्कृत में 'मूल' शब्द के अनेक पर्याय हैं, साथ में प्रत्यय या उपपदों के भी बहुत से पर्याय हैं। उदाहरण संस्कृत में 'जल' के प्रसिद्ध पर्याय हैं - नीर वारि, पयस्, उद(क), क्षीर, अंबु, सलिल, आप्, तोय, अंभस् आदि। बादल पानी रखता है अतएव - धर लगाने से जलधर, पयोधर, अंबुधर आदि अनेक पर्याय बन गए। बादल पानी का वहन करता है तो वारिवाह, तोयवाह, अंबुवाह आदि अनेक पर्याय बन गए। इस प्रकार बड़ी मात्रा में मेघ के पर्याय बन गए। संस्कृत की इस क्षमता का कवि पूरा-पूरा लाभ उठाते थे, वे काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से ऐसे शब्दों की भी नवरचना कर लेते थे जो प्रायः अप्रचलित होते थे।

छंदोबद्धता के कारण पर्याय प्रयोग

हिंदी में आजकल छन्दोबद्ध पद्य रचना अथवा कविता का प्रचलन नहीं रहा है, अतएव साहित्यिक लेखन में पर्याय शब्दों को खोजने तथा छंदोनुकूल शब्द प्रयुक्त करने की आवश्यकता नहीं होती है। हिंदी के 'प्रिय प्रवास' में छन्दोबद्ध कविता थी और उसका पहला छन्द है :

दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु शिखा पर थी अवराज ती
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा।

यहाँ ।।। ऽ।। ऽ।। ऽ।ऽ लघु गुरु विन्यास है। यहाँ कवि के लिए बंधन है। वह 'गगन' के स्थान पर 'अंबर' या 'आकाश' या 'व्योम' आदि नहीं ला सकती है क्योंकि वे ।।।। नहीं है। 'कमलिनी' के लिए भी मज़बूर था क्योंकि 'कमल' के अनेक पर्यायों में 'कमलिनी' ही ।।।।ऽ है।

12.3.2 पर्यायता का अर्थविभेदन

शुद्ध पर्यायता की स्थिति में पर्याय शब्दों में से प्रत्येक को दूसरे के स्थान पर बिना बंधन के प्रयुक्त किया जा सकता है। व्यवहारतः यह स्थिति स्पष्ट संप्रेषण को स्वीकार्य नहीं है, उसकी अपेक्षा यथासंभव नाम-रूप में एकैक संबंध की है। अपवाद स्थिति साहित्यिक लेखन की है जहाँ पर्यायता का अपना विशेष महत्व है। इस कारण भाषा व्यवहार में पर्यायों का अर्थविभेदन निरंतर चलता रहता है।

द्विभाषिकता की स्थिति में पर्याय बने शब्द अपनी-अपनी मूल भाषा की संस्कृति से जुड़े होने के कारण कुछ-न-कुछ विभेदी अर्थच्छाया अवश्य रखते हैं। वैद्य-हकीम-डाक्टर विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों से जुड़े हैं। पाठशाला-मदरसा-स्कूल सामान्यतया शिक्षण माध्यम भाषा की विभिन्नता रखते हैं।

द्विभाषिकता की स्थिति में जहाँ संस्कृतिजन्य विभिन्नता स्पष्टतया अंकित नहीं है, वहाँ भाषा व्यवहार में कोडमिश्रण। कोड सामंजस्य विभेदन को जन्म देता है। प्रोक्ति स्तर पर, यदि संस्कृत निष्ठ भाषा का व्यवहार हो रहा है तो तत्सम पर्याय शब्द, यदि उर्दू निष्ठ भाषा या उर्दू कोड मिश्रित भाषा का व्यवहार हो रहा है तो उर्दू पर्याय-शब्द, यदि अंग्रेज़ी कोड मिश्रित भाषा का व्यवहार हो रहा है तो अंग्रेज़ी पर्याय शब्द का प्रयोग होता है! सामान्य अनौपचारिक भाषा व्यवहार में हिंदी भाषी तद्भव शब्दों के बाहुल्य के साथ तद्भव, उर्दू और अंग्रेज़ी पर्याय शब्दों का निस्संकोच प्रयोग अवश्य करता है।

औपचारिक लेखन में संस्कृत तत्सम शब्दों के व्यवहार का प्रचलन है। यहाँ अवश्य अनेक तत्सम पर्यायों में से एक के चयन की समस्या आ सकती है। प्रायः तत्सम पर्यायों में शब्द युत्पत्ति के आधार पर अथवा लोक-रूढ़ि के आधार पर अर्थ विभेदन किया जा सकता है। ार्थना, निवेदन, विन्नती, अनुरोध आदि स्थूलतया पर्याय होते हुए भी विभिन्न स्पष्ट प्रसंग में युक्त किए जाते हैं (यह सर्वविदित है अतएव विस्तार भय से व्याख्या नहीं की जा रही है।)

ाकरणिक पर्यायता

ज्ञाओं, विशेषणों और क्रियाओं में पर्यायता बड़ी मात्रा में होती है, व्याकरणिक शब्दों, जैसे, ज्या विशेषणों, समुच्चय बोधकों, उद्गार शब्दों आदि में भी पर्यायता मिलती है। भाषाई सबल भिव्यक्ति के लिए व्याकरणिक पर्यायता बहुत महत्वपूर्ण है। कुछ उदाहरण हैं : सदा, सर्वदा, ाशा, और, तथा, एवं, किंतु, लेकिन, पर, परंतु, यदि, अगर, आदि आदि।

12.4 अनेकार्थता

अनेकार्थता वह नाम-रूप संबंध है जहाँ एक 'नाम' का प्रयोग अनेक 'रूपों' के लिए किया जाता है, जैसे 'पत्र' नाम का प्रयोग 'पत्ते' के लिए भी होता है और 'चिट्ठी' के लिए भी। अनेकार्थता सभी भाषाओं में मिलती है, एकार्थता की स्थिति विरल होती है। शुद्ध एकार्थता का अच्छा उदाहरण तकनीकी पद हैं जिनके अर्थ सुपरिभाषित होने के कारण सीमाबद्ध, अपरिवर्तनीय और अनन्य होते हैं, जैसे विज्ञान में स्पर्शज्या, आक्सीजन, प्रकाशवर्ष।

'कल्पना' मानव की नैसर्गिक एवं विलक्षण अंतर्जात क्षमता है जोकि आदि मानव में भी थी और आज इक्कीसवीं सदी की ओर जाने वाले मानव की भी। इसी कल्पना का पहला सहारा आदि मानव ने लिया जब उसे किसी पूर्व-अपरिचित 'रूप' या परिचित 'रूप' के किसी अवयव को नया नाम देने की आवश्यकता पड़ी। उसकी सहज कल्पना 'मानवीयीकरण' की थी, और मानव अंगों के नाम उन पर अंतरित करने की प्रवृत्ति प्रबल थी। पेड़ के सबसे ऊपर के भाग को 'शीर्ष' माना गया, जड़ के पास के भाग को 'पाद' और शाखा को 'भुजा'। सूर्य की किरणों को लंबा हाथ माना गया जिसे बढ़ाकरा वह हमें उष्णता का 'दान' करता है। रूपकीकरण की यह प्रवृत्ति आरंभिक मानव में ही सीमित नहीं थी। आज जब हम बुद्धि का सहारा लेकर भाषावैज्ञानिक विधियों द्वारा पूर्वप्रचलित शब्दों, मूलांशों प्रत्ययों और इनके विविध संयोजनों को नया 'नाम' देते हैं। तब भी कल्पना की इतिश्री नहीं हुई। कंप्यूटर के एक उपकरण को mouse का 'नाम' देना इसका उत्तम उदाहरण है।

12.4.1 हिंदी में शब्द स्तरीय अनेकार्थता

(क) **विरासत में मिली अनेकार्थता :** हिंदी को मुख्यतया संस्कृत से शब्दावली मिली है। संस्कृत अनेकार्थता के विषय में बहुत समृद्ध भाषा है। वहाँ 'हरि' के 24 अर्थ गिनाए गए हैं, जिनमें प्रमुख हैं - विष्णु, इन्द्र, शिव, ब्रह्मा, यम, सूर्य, चन्द्र, मनुष्य, वानर, अश्व, सर्प आदि। संस्कृत में 'क', 'ख', 'ग', 'घ' आदि वर्णों के भी कई-कई अर्थ कोशों में मिलते हैं - 'क' के अर्थ हैं - ब्रह्मा, विष्णु, कामदेव, अग्नि, सूर्य, पक्षी, मन, काल, मेघ्ड़, पक्षी आदि। ख़ैर, ये तो मुख्यतया साहित्यिक रचनाओं और सभंगश्लेष में प्रयुक्त होते हैं, फिर भी विशाल संख्या वे अनेकार्थ हैं जिनसे हम आज भी परिचित हैं। उदाहरणार्थ - पत्र (पत्ता, चिट्ठी), अंक (गिनती, चिह्न, गोद), कर (हाथ, किरण, टैक्स), पक्ष (पंख, दोनों ओर के अवयव, अनुकूल-प्रतिकूल समूह), नव (नया, नौ) आदि आदि।

(ख) **ऐतिहासिक ध्वनि प्रक्रिया परिवर्तन और आदान के ध्वन्यैक्य से उत्पन्न अनेकार्थताः** हिंदी का एक लंबा इतिहास है। संस्कृत के अनेकानेक शब्द पालि-प्राकृत-अपभ्रंश-पुरानी हिंदी से गुजरते हुए हमारे पास पहुँचे हैं और उनमें ध्वन्यात्मक परिवर्तन भी हुए हैं। इन ध्वन्यात्मक रीति से परिवर्तित शब्दों को हम 'तद्भव' कहते हैं। इन तत्सम-तद्भव अथवा तद्भव-तद्भव में कभी-कभी ध्वन्यैक्य स्थिति आ जाती है और अनेकार्थता का जन्म हो जाता है। जैसे - काम (तत्सम) - काम (तद्भव < कर्म), बेर (तद्भव < बदर) - बेर (तद्भव < वेला) आदि।

हिंदी में हिंदी-भिन्न भाषाओं से आदान लिए शब्दों की संख्या भी विशाल है। अपनी भगिनी भाषाओं, जैसे, बंगाली, मराठी, गुजराती आदि से तो शब्द लिए ही गए हैं, विदेशी भाषाओं से विशेषतः अरबी-फ़ारसी तथा अंग्रेज़ी से निःसंकोच शब्द लिए गए हैं, और ऐसी स्थिति में ध्वन्यैक्य की स्थिति आना कठिन नहीं है।

'बस' शब्द संस्कृत 'वश' का तद्भव है, अंग्रेज़ी 'बस' का आदान शब्द है, और अरबी फ़ारसी 'बस' का आदान शब्द भी है। कुछ और उदाहरण हैं - आम (तद्भव < आम्र) - आम (अरबी 'सामान्य'), चंदा (तद्भव < चन्द्र) - चंदा (फारसी 'चन्दः'), पर (<परंतु), पर (फारसी 'पक्षी के पंख') आदि।

(ध्यान दें कि भाषाविज्ञान में इन्हें समरूपी शब्दयुग्म कहा गया है और अनेकार्थता से भिन्न माना गया है। किंतु सामान्य हिंदी-भाषा के मन में इन्हें अनेकार्थता ही माना जाता है।)

ग) **नवशब्द निर्माण से उत्पन्न अनेकार्थता :** भारत की वर्तमान भाषाओं में हिंदी को सबसे अधिक नवशब्द निर्माण की चुनौती का सामना करना पड़ा है। उत्तर भारत के प्रायः सभी महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा तकनीकी शिक्षा संस्थानों को हिंदी माध्यम से अध्ययन-अध्यापन करना पड़ रहा है, अतएव शैक्षिक विषयों की तकनीकी शब्दावली के विकास के लिए भारत सरकार ने एक वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग का गठन किया है जो पिछले पचास सालों से हिंदी शब्दों का निश्चयन कर रहा है। राजभाषा होने के कारण भी प्रशासनिक तथा सभी मंत्रालयों से संबद्ध शब्दावली के कारण भी प्रशासनिक तथा सभी मंत्रालयों से संबद्ध शब्दावली के हिंदी शब्दों का विकास हो रहा है। इस कार्या में संस्कृत शब्दों मूलांशों, प्रत्ययों तथा उनके विविध संयोजनों का सहारा लिया जाता है अतएव स्वाभाविक है कि नवरचित शब्द का एक अर्थ संस्कृत का पुराना और एक अर्थ आज का। उदाहरणार्थ 'मंत्रालय' तो संस्कृत में 'मंत्रालय' न होने के कारण एकार्थी है, किंतु 'मंत्री' संस्कृत में आज के minister के अर्थ में नहीं था, वहाँ वह 'सलाह देने वाला' के अर्थ में था। अतएव 'मंत्री' के दो अर्थ हो गए। इसी प्रकार 'आकाशवाणी' के दो अर्थ हो गए। 'निकाय' अब bodies, system (of equations) के लिए है, और 'झुंड' इसका पुराना अर्थ है।

ı) **हिंदी के प्रत्ययों के अनेकार्थी होने के कारण अनेकार्थता :** हिंदी में कुछ प्रत्यय अनेकार्थी हैं अतएव उनसे बने शब्द भी अनेकार्थी हो गए हैं, जैसे - धुलाई (धोने की मज़दूरी) - धुलाई (धोने की प्रक्रिया) - धुलाई (धोने की प्रक्रिया का परिणाम), पहाड़ी (पहाड़ पर रहने वाला) - पहाड़ी (छोटा पहाड़)। संबंधवाची प्रत्यय के तो अनेक अर्थ होते हैं, अतएव बनारसी (बनारस का रहने वाला) - बनारसी (बनारस में बना या पैदा किया जैसे, 'बनारसी साड़ी/बनारसी पान)। प्रेरणार्थक रूप 'खिलाना' के तीन अर्थ हैं - खाना खिलाना, फूल की कली को खिलाना, खेल खिलाना।

रूप रचना में प्रत्ययों के ध्वन्यैक्य के कारण भी अनेकार्थता आ जाती है। 'पेड़ा+ओं= पेड़ों' और पेड़+ओं = पेड़ों', माँग (संज्ञा) + स्त्रीलिंग-बहुवचन प्रत्यय एँ→माँगें (जैसे हमारी माँगें), क्रिया धातु माँग (माँगना)+इच्छार्थक क्रिया प्रत्यय एँ→माँगें (जैसे हम उनसे माँगें) इसके कुछ उदाहरण हैं।

.) **अनेकार्थता के कुछ अन्य स्रोत :** अनेकार्थता का एक सामान्य स्रोत 'जाति' वाचक शब्द है जो अपने सभी सदस्यों को इंगित करता है। जैसे 'फल' नाम द्वारा 'केला' - रूप 'आम' - रूप, 'संतरा' - रूप आदि से अनेक रूपों को इंगित किया जा सकता है। इसी प्रकार 'मिठाई' नाम द्वारा जलेबी, बर्फी, गुलाब, जामुन आदि रूप प्रदर्शित होते हैं। इसीलिए संदिग्धता निवारण के लिए 'फल ले आना' के तुरंत बाद पूछा जाता है कि कौन-से फल। इन शब्दों को 'आच्छादक' (cover) नाम भी कहते हैं।

एक अन्य अनेकार्थता की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति **नाम** का ही प्रयोग उसके आविष्कार के साथ किया जाता है। विज्ञान में न्यूटन, जूल, वाट आदि अनेक इकाइयों के नाम व्यक्ति नाम पर है।

12.4.2 शब्द संयोग-स्तर पर अनेकार्थता

अनेकार्थता की एक स्थिति वह है जब अर्थ की अनेकता शब्दस्तर पर न होकर शब्द संयोग स्तर पर होती है। इस स्तर पर विभिन्न विग्रह पर विभिन्न अर्थ मिलते हैं। जैसे :

> असरकारी (अ+सरकारी) संस्थाएँ सरकारी संस्थाओं की अपेक्षा अधिक असरकारी (असर+कारी) होती हैं।
>
> God is no where → God is now here
>
> आ जाऊँगा → आज+आऊँगा / आ + जाऊँगा

संस्कृत में इन्हे सभंग श्लेष कहते हैं। संस्कृत महाकाव्यों में बड़े-बड़े विचित्र उदाहरण मिलते हैं। श्रीहर्ष रचित नैषधीय चरित दमयंती स्वयंवर में इन्द्र, धर्मराज, कुबेर, वरुण और नल उपस्थित हैं। परिचय कराने वाले निम्न एक श्लोक से :

> दैवः पति र्विदुषि नैषधराज गत्या
> निर्णीयते न किमु न व्रियते भवत्या।
> नायं नलः खलु तवा तिमहानलाभो
> यद् येनमुज्झसि वरः कतरः परस्ते।। (13/28)

पाँचों का परिचय, सभंग श्लेष की सहायता से कराता है। हिंदी में भी रीति-काल में सभंग श्लेष का प्रचुर प्रयोग होता था।

संस्कृत महाकाव्यों में कुछ महाकाव्य विश्वसाहित्य में अनुपम हैं। राघवपाण्ड ''यम् पूरे 18 सर्गों का महाकाव्य है किंतु इसमें निरंतर दो कथानक चलते हैं - रामायण के और महाभारत के। और यह कौशल केवल सभंग श्लेष के द्वारा संभव हुआ है।

12.4.3 अनेकार्थता की स्थिति में अर्थविनिश्चय

अनेकार्थता की स्थिति में अनेक अर्थों में से कौन-सा अर्थ लिया जाए इस पर, विशेषतः प्राचीन भारत में, बहुत कार्य हुआ है। भर्तृहरि की ये कारिकाएँ बहुचिर्चित हैं :

> संसर्गो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
> अर्थः प्रकरणं लिङ्ग शब्दस्यान्यस्य संनिधिः।।
> सामर्थ्य मौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः।
> शब्दार्थ स्यानवच्छेदे विशेष स्मृतिहेतवः।। वा.प. 2/317, 318

1. संयोग/संसर्ग : 'सशंखचक्रो हरिः' में शंख-चक्र के उल्लेख से 'हरि' का अर्थ 'विष्णु' है क्योंकि शंखचक्र का संयोग विष्णु के साथ प्रसिद्ध है।
2. विप्रयोग : अशंखचक्रो हरिः' यहाँ भी 'हरि' का अर्थ 'विष्णु' रहेगा क्योंकि शंखचक्र का सहित-रहित भाव विष्णु के साथ ही संभव है।
3. साहचर्य : 'भीमार्जुनौ' में भीम के साहचर्य के कारण 'अर्जुन' का अर्थ पाण्डव अर्जुन से होगा न कि कार्तिवीर्य अर्जुन से।
4. विरोधिता : 'कर्णार्जुनौ' अर्जुन के प्रबल विरोधी 'कर्ण' के उल्लेख के कारण अर्जुन पाण्डवीय होगा, न कि कार्तिवीर्य अर्जुन।
5. अर्थ (=प्रयोजन) : 'स्थाणुं वन्दे' में स्थाणु के दो अर्थों - शिव और खंभा में 'शिव' का ही अर्थ निकलेगा क्योंकि खंभे की कोई वन्दना नहीं करता।

प्रकरण : 'सर्व' जानाति देवः'। 'देव' का व्यवहार 'देवता' और अपने से वरिष्ठ अधिकारी दोनों के लिए है। यदि व्यक्ति व्यक्ति से कह रहा है तो 'देव' का अर्थ 'आप' होगा।

लिंग (=लक्षण/पहचान) : कामदेव की ध्वजा में 'मकर' है अतएव 'कुपितो मकरध्वजः' में मकरध्वज का अर्थ काम देव होगा, न कि समुद्र।

अन्य शब्द सान्निध्य : यह एक प्रमुख विनिश्चय साधन है। 'रामो जामदग्न्यः' में जामदग्न्य के सामीप्य से राम का अर्थ परशुराम होगा।

सामर्थ्य : 'मधुना मत्तः पिकः' में 'मधु' के तीन अर्थों - शहद, सुरा, वसंत में 'वसन्त ऋतु' अर्थ लिया जाएगा क्योंकि कोयल को मत्त करने का सामर्थ्य वसन्त में ही है।

औचित्य : 'पातु वो दयितामुखम्' में औचित्य के आधार पर मुख शब्द का अर्थ साम्मुख्य लिया जाएगा, क्योंकि उसी से विरही नायक की रक्षा हो सकती है, मुख (मुँह) से नहीं।

देश : देश का अर्थ है स्थान। 'विभाति गगने चन्द्रः' कहने पर चन्द्रमा का ही बोध होगा, कपूर का नहीं। 'ताम्बूले चन्द्रः' कहने पर 'कपूर' का अर्थ लिया जाएगा, चन्दमा का नहीं।

काल : 'चित्रभानु' के दो अर्थ हैं - सूर्य, चन्द्रमा। 'निशि चित्रभानुः' में चंद्रमा का अर्थ और 'दिवा चित्रभानुः' में सूर्य का अर्थ समय के संकेत के कारण होगा।

व्यक्ति : व्यक्ति से तात्पर्य पुंलिंग/स्त्रीलिंग/नपुंसक लिंग है। 'मित्रो भाति,' में पुलिंग होने के कारण मित्र का अर्थ सूर्य है, 'मित्रं भाति' में नपुंसक होने के कारण 'मित्र' (=दोस्त) है।

स्वर : स्वर से तात्पर्य उदात्त, अनुदात्त, स्वरित से है। वृत्तासुर ने इन्द्र का नाश करने के लिए यज्ञ में 'इन्द्रशत्रुर्वधस्व' इस अभिचार मन्त्र का जप करवाया था। किंतु इस मन्त्र में अन्तोदात्त के स्थान पर आद्युदात्त उच्चारण करने से, इन्द्र के स्थान पर स्वयं वृत्त का ही विनाश हो गया।

आदि : 'आदयः' पद से साहित्यचार्यों ने अभिनय (इंगित) का अर्थ ग्रहण किया है। 'इतना' कहने के साथ हाथ का संकेत बहुत कुछ स्पष्ट कर देता है।

प्रकार अनेक अर्थों में अर्थ का विनिश्चयन कई युक्तियों से होता है। स्थूलतया दो वर्ग हैं- ाठ्यीय (co-textual) अर्थात् वाक्यान्तर्गत अन्य शब्द द्वारा अथवा प्रकरण-परक ntextual) अर्थात् वाक्य से बाहर बाह्य जगत् की स्थिति। 'सैन्धवं आनय' यदि खाना । समय कहा गया है तो 'सैन्धव' का अर्थ नमक है, यदि बाहर यात्रा के समय कहा गया ो सैन्धव का अर्थ 'घोड़ा' है।

.5 विलोमता

ऊपर बताए 'नाम' और 'रूप' के संबंधों से भिन्न प्रकार की स्थिति है। मोटे तौर से हम ान से भाषा कक्षा में यह सुनते आ रहे हैं कि 'मित्र' का विलोम 'शत्रु' है, 'रात' का ोम 'दिन' है, 'भारी' का विलोम 'हल्का' है इत्यादि। आगे इसी विलोम भाव का भाषा निक विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

5.1 ध्रुवीय विलोमता

य विलोमता की स्थिति में दोनों शब्द दोनों छोर पर होते हैं, जैसे 'जीवित' और 'मृत'। स्थिति में व्यक्ति जीवित है तो मृत नहीं है और मृत है तो जीवित नहीं है, और इसके

अतिरिक्त व्यक्ति को जीवित या मृत दोनों में से एक होना आवश्यक है। इस कारण "मोहन जीवित और मृत दोनों है", "मोहन न तो जीवित है और न मृत" वाक्य निरर्थक हैं। इन युग्मों में 'अधिक जीवित', 'अधिक मृत' पदबंध नहीं बन सकते और न तुलात्मक वाक्य कि "मोहन सोहन से अधिक मृत या जीवित है"। इस कोटि के अन्य शब्द हैं 'कुमारी-विवाहिता', 'देशी-विदेशी', 'स्त्री-पुरुष' तथा 'चल-अचल' आदि।

12.5.2 क्रमिकीय विलोमता

क्रमिकीय विलोमता की स्थिति में ऐसे गुणात्मक विशेषण आते हैं जिनमें न्यूनाधिकता तथा तुलनात्मकता होती है। उदाहरणार्थ 'भारी-हल्का' युग्म। "वह वस्तु ज्यादा भारी या बहुत भारी है"। "वह वस्तु कम हल्की या थोड़ी हल्की है", "यह वस्तु उस वस्तु की तुलना में भारी है"। ऐसे ही 'क्रूर-दयालु' युग्म को ले तो "राम बहुत क्रूर है", "सोहन बहुत दयालु है", "राम सोहन से अधिक क्रूर है लेकिन विनोद सोहन से अधिक दयालु है"। ऐसे ही शब्द हैं :

ऊँचा-नीचा, सरल-कठिन, तेज-सुस्त, अच्छा-बुरा, क्रूर-दयालु, सुखी-दुःखी, खट्टा-मीठा आदि।

ये गुण क्रमिकता में स्थित होते हैं। एक ही वस्तु एक दृष्टि से ऊँची है तो दूसरी दृष्टि से नीची, किसी को खट्टा आम खाने के बाद एक आम मीठा लगा, और वही आम दूसरे को जो अधिक मीठा आम खा चुका है, खट्टा लगा। यह व्यक्तिनिष्ठता इन सभी विलोम-युग्मों में है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु को ऊँचा या नीचा होना आवश्यक नहीं है, वह समतलीय हो सकती है। ऐसा व्यक्ति भी हो सकता है जो न तो दुःखी हो और न सुखी या दुःखी भी हो और सुखी भी।

12.5.3 संबंधी विलोमता

संबंधी विलोमता वह स्थिति है जहाँ संज्ञाएँ आपस में किसी संबंध से बंधी हैं। पति-पत्नी, भाई-बहन, माँ-बेटा, गुरु-शिष्य, पूर्वज-वंशज डॉक्टर-मरीज़, आदि ऐसे ही संबंध हैं। इस स्थिति में :

A, B का पति है तो B, A की पत्नी।

A, B का भाई है तो B, A की बहन।

A, B का गुरु है तो B, A की शिष्या।

A, B का मरीज है तो B, A की डाक्टर। आदि होते हैं।

12.5.4 अनुवर्ती विलोमता

कुछ क्रियाओं का पारस्परिक संबंध ऐसा होता है कि एक क्रिया दूसरे की अनुवर्ती होती है। जैसे, खोलना-बंद करना, चलना-रुकना, भरना-खाली करना आदि। खोलने की स्थिति तभी आती है जब कुछ पहले से बंद हो, बंद करने की स्थिति तभी आती है जब पहले से कुछ खुला हो। इसी प्रकार :

गाड़ी चलते-चलते **रुक** गई, गाड़ी रुकते-रुकते **चलने** लगी।

बाल्टी में पानी **भर** रहा है, बाल्टी को **खाली** कर रहा है।

अनुवर्तिता के उदारहण हैं।

12.5.5 मापक्रमीय विलोमता

यह स्थिति प्रायः क्रियाविशेषणों में होती है। किस मापक्रम (स्केल) में पूर्वापर (काल या स्थान या दिशा) की स्थिति ऐसी विलोमता को जन्म देते हैं। जैसे :

A, B के आगे है, इसलिए B, A के पीछे है।

A, B के दाएँ है, इसलिए B, A के बाएँ है।

A, B के बाद आया था, इसलिए B, A के पहले आया था।

संक्षेप में विलोम युग्मों में किसी-न-किसी गुण (attribute) का प्रबल अंतर होता है -यह अंतर मात्रा का, आकार का (टेढ़ा-सीधा), आकृति का आदि किसी का भी हो सकता है। इन गुणों की उपस्थिति और इन गुणों का अभाव भी विलोमता का सृजन करता है।

12.6 वाक्य स्तर पर अर्थ विवेचन

अभी तक अर्थ का विवेचन शब्द-स्तर तक (lexically) सीमित था, अब वाक्य स्तरीय विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

12.6.1 वाक्यार्थ बोध की प्रक्रिया

संप्रेषण की लघुतम इकाई वाक्य है। वक्ता को अपनी बात पूरी करने के लिए कम से कम एक पूरे वाक्य की अपेक्षा है और श्रोता भी जब तक वाक्य पूरा नहीं सुन पाता तब तक संदेश ग्रहण के प्रति आश्वस्त नहीं रहता। बातचीत में ऊपरी तौर से आधे-अधूरे वाक्यांशों या वाक्यों का प्रयोग दिखाई पड़ता है उसका कारण यह है कि वक्ता-श्रोता के बीच जब बड़ी मात्रा में सहभाजित जानकारी (shared knowledge) होती है तब श्रोता प्रकरणानुसार अनुमान लगा लेता है कि वक्ता क्या कहने जा रहा है और वक्ता भी इतने से ही श्रोता समझ जाएगा वाक्य के अनेक अंश अनबोले छोड़ देता है। किंतु यदि इतना मानसिक तादात्म्य नहीं है तो सामान्यतया पूरे वाक्यों का प्रयोग किया जाता है।

वाक्यार्थ कई चरणों में होता है यद्यपि यह सब इतने शीघ्रातिशीघ्र होता है कि श्रोता को यह पता नहीं लगता कि कब कौन-सा चरण समाप्त हुआ और कब कौन-सा प्रारंभ।

चरण-1 : श्रोता प्रत्येक शब्द का 'पद ज्ञान' करता है, 'शक्तिमान' करता है, 'पदार्थ' ज्ञान करता है। इस प्रकार शाब्दी अर्थ और तत्संबंधी व्याकरणिक अर्थ की जानकारी उसे होती है। ऐसा क्रमशः प्रत्येक शब्द के साथ होता है जब तक वाक्यान्त नहीं होता। यह सब उसकी चालू स्मृति में जमा होता रहता है।

चरण-2 : (क) वाक्यान्त के बाद श्रोता इन चालू स्मृति स्थित पदों को पदबंधों में और पदबंधों को कारकीय संरचना में बाँधता है। एक कच्चा वाक्यीय वृक्ष-आरेख बन जाता है।

(ख) क्रिया धातु पर विशेष ध्यान देकर, क्रिया से संबद्ध अपेक्षित पदबंधों के खाँचे (slots) बना लेना। जो सकर्मक क्रिया है तो कर्म का खाँचा, द्विकर्मक क्रिया है तो कर्म$_1$ और कर्म$_2$ का खाँचा।

(ग) अध्याहार खाँचों में पूर्ववाक्य/प्रकरण से खाँचा भरना। अर्थात् 'कहाँ जा रहे हो?' 'पुणे' तो (मैं) पुणे (जा रहा हूँ) पूरा वाक्य बनाना।

(घ) सर्वनामों, सार्वनामिक विशेषण एवं क्रिया विशेषणों के स्थान पर जिस संज्ञा का स्थानापन्न सर्वनाम है उसे रखना। मोहन ने कहा कि मैं अपनी किताब पढ़ रहा हूँ - मोहन ने कहा कि मोहन मोहन की किताब पढ़ रहा है।

इस पर वाक्यीय वृक्ष-आरेख समग्रतः तैयार हो जाता है।

चरण-3 : इस वाक्यीय वृक्ष-आरेख पर विहंगम दृष्टि डाल कर अनेकार्थता जन्य अथवा व्याकरणिक संदिग्धता को यदि वह है, दूर करना। इस प्रकार अभिधा-आश्रित वाक्यार्थ मिल जाता है।

चरण-4 : किंतु अभिधा-आश्रित वाक्यार्थ मात्र संदेशग्रहण नहीं कराता। वाक्य का अर्थ (=प्रयोजन) ही असली वाक्यार्थ है। वक्ता बोला ही क्यों? वक्ता ने यह

संदेश क्यों दिया? वक्ता श्रोता से संदेश ग्रहण के बाद क्या अपेक्षा करता है? इन का उत्तर ही 'प्रयोजन' है और 'प्रयोजन' श्रोता की प्रेरक शक्ति है जो श्रोता से वक्ता-अपेक्षित कार्रवाई कराती है। प्रयोजन की जानकारी वक्ता-श्रोता के 'सहभाजित ज्ञान' पर निर्भर होती है। 'शाम हो गई' का अभिधा आश्रित अर्थ तो एक ही है किंतु प्रयोजनानुसार 'अब घर वापिस चलें' 'शाम वाली दवाई खा लो', 'ऊनी कपड़ा पहन लो' आदि अनेक हैं। संस्कृत में इसे 'व्यंजना' कहते हैं।

इस प्रकार वाक्यार्थ प्राप्ति के लिए शब्दार्थ-ज्ञान (semantic), व्याकरणिकार्थ-ज्ञान (grammatical), वाक्यीय (syntactic) ज्ञान, प्रोक्ति का सहपाठ्यीय संबंधी (cotextual) का ज्ञान तथा प्रोक्ति का प्रकरणात्मक (contextual) ज्ञान आवश्यक है। जैसा कि मोटे तौर से लगता है कि वाक्य में आए प्रत्येक शब्द का शब्दार्थ आता हो तो वाक्यार्थ भी जाना जाएगा, ऐसा नहीं है।

12.6.2 वाक्य-स्तर पर अनेकार्थता

ऊपर व्यंजना जन्य वाक्य स्तरीय अनेकार्थता का उदाहरण दिया जा चुका है। कभी-कभी सार्वनामिक विशेषण अथवा क्रिया विशेषण सर्वनामता किस संज्ञा के साथ है स्पष्ट नहीं कर पाता है (विशेषतः तब जब विशेष्य सर्वनाम के समीप न हो) और भ्रामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। व्याकरणिक अनेकार्थता का उदाहरण 'राम का चित्र' है जहाँ राम चित्र का विषय हो सकता है, राम (किसी और के) चित्र का चित्रकार हो सकता है और राम चित्र का धारक/स्वामी हो सकता है। वाक्यीय अनेकार्थता का उदाहरण है : 'सिपाही ने दौड़ते हुए चोर को पकड़ा'। 'मोहन को सोहन को दस रुपए देने हैं', में तो अंत तक पता नहीं लग पाता है कि किसे देना है और किसे लेना है।

12.6.3 वाक्यस्तरीय पर्यायता

यह बहुत सामान्य है। बार-एक एक-सी व्याकरणिक संरचना अरोचकता न उत्पन्न करे या अनेक वैकल्पिक संरचनाओं में एक विशेषतया अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाती है, वैकल्पिक संरचनाओं का प्रयोग होता है। पाश्चात्य भाषाविज्ञान में इसे aagnate स्थिति बताते हैं। वाच्य-परिवर्तन, सरल/मिश्र/संयुक्त वाक्यों में परस्पर अंतरण, आदि इसके साधन हैं। शब्द और पदबंध का परस्पर-अंतरण प्रायः भाषा कक्षाओं में सिखाया जाता है, जैसे :

अनाथ : जिसके माता-पिता न हों
विधुर : जिसकी पत्नी का निधन हो गया हो

12.6.4 वाक्यस्तरीय विलोमता

विलोमता में नकारात्मकता का कुछ-न-कुछ अवयव होता है। सभी भाषाओं में, और हिंदी में विशेषतया, नकारात्मक शब्द स्तर, प्रत्यय स्तर, पदबंध स्तर आदि अनेक स्तरों पर आती है। 'नहीं' के प्रयोग से प्रायः यह उत्पन्न होती है। 'मोहन स्वस्थ है' या 'मोहन बीमार नहीं है' आदि उदाहरणों से हम सब परिचित ही हैं।

इस प्रकार इस पाठ में 'अर्थ' के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। अर्थ ही भाषिक प्रयोग का चरम लक्ष्य है, शब्द, ध्वनि आदि तो उसके साधन मात्र हैं किंतु खेद है कि अध्ययन-अध्यापन में इस पर अपेक्षाकृत कम बल दिया जाता है। संप्रेषण क्रांति की यह प्रबल माँग है कि अर्थ-शक्तियों पर विशेष अनुसंधान किए जाएँ ताकि राज संदेश जनमानस तक प्रबलतया पहुँच सके और देश सही अर्थ में इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर सके।

12.7 सारांश

भारतीय भाषा अध्ययन की परंपरा में अर्थ की विशद व्याख्या हुई है और वैज्ञानिकों ने नाम और रूप के संबंध को भाषा की अर्थ संरचना के अध्ययन का आधार माना है। हम भाषा में

और अर्थ के विभिन्न संबंधों की व्याख्या करते हैं जिससे कि भाषा की अर्थ संरचना ट हो सके। भाषा के शब्द यादृच्छिक हैं और अर्थ के प्रतीक हैं। लेकिन शब्द और अर्थ संबंध एक-एक का नहीं होता बल्कि अक्सर एक शब्द के कई अर्थ सामने आते हैं या ही अर्थ के लिए कई शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इस स्थिति के कई कारण हो ते हैं। भाषा में परिवर्तन दूसरी भाषा से शब्द ग्रहण करने की स्थिति भाषा के भीतर किन्हीं तियों में जैसे अमंगल या अशलील संदर्भों में शब्द न बोलने और शब्द को छिपा कर ने की प्रवृत्ति, साहित्य में सामान्य से हटकर कुछ नया कहने की शैलीगत व्यवस्था ये सब और अर्थ के संबंध में परिवर्तन लाते हैं।

विकल्प की वस्तु है। यानी भाषा हमें एक ही बात को कई प्रकार से कहने की छूट देती ाथ में हम यह भी देखते हैं कि कोई कथन संदर्भ के अनुसार भिन्न-भिन्न अर्थ देता है। तरह पर्याय की अवस्था केवल शब्द तक सीमित नहीं है बल्कि वाक्य में भी हम ार्थता आदि अवस्थाएँ देखते हैं।

की अर्थ संरचना का ज्ञान भाषा के अच्छे प्रयोग के लिए आवश्यक है। भाषा के प्रयोग समझने के स्तर पर शब्द के सही अर्थ या संदर्भ को प्रकट न करना दोष माना जाएगा। स्तर पर अच्छी अभिव्यक्ति के लिए अर्थ संरचना का ज्ञान आवश्यक है। जहाँ तक ित्यिक भाषा का सवाल है पर्याय अभिव्यक्ति अकौशल को बढ़ाता है और अनेकार्थता के ग श्लेष आदि अलंकारों की पुष्टि होती है। इस संदर्भ में कह सकते हैं कि भाषा के ्त प्रयोग के लिए अर्थ संरचना का ज्ञान अतिआवश्यक है।

8 अभ्यास प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

(1) शब्द की संकल्पना स्पष्ट कीजिए।

(2) भाषा की आर्थी संरचना का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

टिप्पणी लिखिए

(1) विलोमता

(2) पर्यायता

(3) अनेकार्थता

(4) वाक्य और अर्थ का संबंध

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

अभ्यास-1

सही शब्द चुनकर वाक्य पूरे कीजिए।

(i) पर्याय काम (कर्म, वासना) .... के कारण बना है। (ऐतिहासिक परिवर्तन/उधार)

(ii) 'जीवंत', 'मृत' इन दो शब्दों .... विलोमता है। (क्रमिकीय/ध्रुवीय)

(iii) 'दिशा जाना' .... का उदाहरण है। (अमंगल परिहार/ अप्रचलित प्रयोग)

(iv) उर्दू से आये कई शब्द .... का निर्माण करते हैं। (शैलभेद/पर्यायता)

(v) ....अनेकार्थी शब्द का उदाहरण है। (अंक/दस)

अभ्यास-2

सही/गलत में उत्तर दीजिए।

(i) वाक्यार्थ में अनेकार्थता नहीं होती। (सही/गलत)

(ii) शब्द और अर्थ को 'नाम' और 'रूप' की संकल्पना से समझ सकते हैं। (सही/गलत)

(iii) 'भाई', 'बहन' संबंधी विलोमता के उदाहरण हैं। (सही/गलत)

(iv) साहित्यिक भाषा में पर्याय नहीं होते। (सही/गलत)

(v) 'फूल' और 'कमल' का संबंध वर्ग और सदस्यता का है। (सही/गलत)

उत्तर

अभ्यास-1

(i) ऐतिहासिक

(ii) ध्रुवीय

(iii) अमंगल परिहार

(iv) पर्यायता

(v) अंक

अभ्यास-2

(i) गलत

(ii) सही

(iii) सही

(iv) गलत

(v) सही

इकाई 13 प्रोक्ति विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 भाषा प्रकार्य
13.2.1 ब्यूलर - याकोब्सन-हैलिडे-भारतीय
13.3 प्रोक्ति
13.4 प्रोक्ति प्ररूप
13.5 प्रोक्ति विश्लेषण
13.5.1. सामाजिक परिवेश
13.5.2 सामाजिक-संबंध (प्रास्थिति)
13.5.3 सामाजिक प्रयोजन
13.5.4 सामाजिक व्यवहार के पैटर्न
13.5.5 अभिव्यक्ति-शैली
3.6 पाठ
3.7 संसक्ति
13.7.1 व्याकरण आधारित
13.7.2 अर्थ आधारित
3.8 पाठ्य विश्लेषण
3.9 सारांश
3.10 अभ्यास प्रश्न

3.0 उद्देश्य

याकरण का संबंध आमतौर पर शब्द रचना और वाक्य संरचना के विश्लेषण से है। व्याकरण ाक्य की रचना तक ही सीमित रहते हैं। आधुनिक भाषाविज्ञान भाषा को उसकी प्राकृतिक रिवेश में देखते हैं और भाषा का प्राकृतिक स्वरूप है उसका विविध क्षेत्रों में प्रयोग। जैसे ार्तालाप, भाषण, निबंध, लेखन, पत्र-लेखन आदि। भाषा के प्रयोग के इन्हीं रूपों को हम ोक्ति (discourse) कहते हैं।

स इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- प्रोक्ति की परिभाषा दे सकेंगे,
- प्रोक्ति का स्वरूप और प्रकार समझा सकेंगे,
- प्रोक्ति को भाषा के सामाजिक व्यवहार के संबंध में स्पष्ट कर सकेंगे,
- पाठ की व्याख्या कर सकेंगे, और
- पाठ का विश्लेषण कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

ानव एक सामाजिक प्राणी है, यह एक सर्वसम्मत सत्य है। यों तो पशु-पक्षियों और ोटपतंगों में भी न्यूनाधिक सामाजिकता देखने को मिलती है - मधुमक्खियों तथा चींटियों ा संगठन प्रायः उदाहरण रूप में उल्लखित किया जाता है - किंतु मानव समाज जैसी टिलता, व्यापकता और सुगुम्फितता अन्यत्र नहीं मिलती है। कारण अत्यंत सरल है - मानव ो भाषा का वरदान मिला है। भाषा समाज के प्रत्येक सदस्य को वह सामर्थ्य देती है जिसे ह अपने विचारों, मनोभावों, कल्पनाओं आदि को दूसरे सदस्य के पास पहुँचा सकता है।

इसके अतिरिक्त भाषा वह माध्यम बनती है जिससे एक पीढ़ी अपनी अर्जित ज्ञान-संपदा, रचना-तकनीकों तथा सामाजिक मूल्यों को अपनी अगली पीढ़ी को सौंपती है और इस अर्पण-ग्रहण परंपरा से मानव-संस्कृति निरंतर प्रगतिशील बनी रहती है।

भाषा किस प्रकार सामाजिक व्यवहार की नींव में है, इसका एक प्रसिद्ध उदाहरण ब्लूमफ़ील्ड द्वारा दिया जैक और जिल का अन्योन्य - व्यवहार है। जैक और जिल दोनों जा रहे थे। जिल को भूख लगी थी। रास्ते में जिल को बाड़ के पीछे लगे सेब के पेड़ पर सुंदर-सुंदर सेब दिखई पड़े। जिल ने जैक से कहा, 'मुझे भूख लगी है, सेब खाऊँगी।' बस, जैक ने छलांग मार कर बाड़ पार की और पेड़ पर चढ़कर कुछ सेब तोड़े। और इस प्रकार जिल ने अपनी भूख मिटाई। यहाँ जिसे भूख लगी थी वास्तव में उसने कोई शारीरिक प्रयत्न नहीं किया, केवल ज़बान हिलाई। इस वाचिक क्रिया ने साथी को शारीरिक प्रयत्न के लिए प्रेरित किया, और उसने कष्ट उठाकर सेब तोडे। कष्ट किसी को और कष्ट का निवारण कोई अन्य करे, यह भाषा द्वारा ही संभव है। भाषा, इस प्रकार, एक ऐसा साधन है, जिससे समाज का प्रत्येक अपनी दक्षता, कुशलता और सामर्थ्य का लाभ, केवल स्वयं को न पहुंचा कर, दूसरों तक पहुँचाता है। यही श्रम विभाजन और श्रमफल वितरण समाज की आधार शिला है।

जिस कंप्यूटर-प्रधान युग में आज हम सब जी रहे हैं, उस युग तक पहुँचाने वाले वैज्ञानिक प्रयोगों और चिंतनों के मूल में भाषा द्वारा आविष्कृत गणना-पद्धति है। जब एक बार भाषा में एक, दो तीन .... आदि शब्द बन गए तब हमें गिनना और जोड़ना आ गया। जोड़ना का व्युत्क्रम घटाना है, तथा पुनः पुनः जोड़ना गुणन-प्रक्रिया है। यह गणित शास्त्र और इससे प्रजनित सभी वैज्ञानिक शास्त्र तथ्यतः भाषा प्रयोग के ही परिणाम है। चिंतन-मनन और स्मरण-प्रत्यास्मरण आदि के मूल में भी भाषा है। हम जब सोचते हैं तब भाषिक रूप में तथ्य तथा आँकड़े हमारे सामने आते हैं।

इस प्रकार समाज के सदस्यों के बीच स्थित अन्योन्यक्रिया तथा संस्कृति के मूलाधार गणना एवं चिंतन-मनन - भाषा के दो प्रमुख प्रकार्य (फंक्शन) हैं। पाश्चात्य विद्वानों और भारतीय मनीषियों ने इस दिशा में गंभीरता से चिंतन किया है। इन प्रकार्यों का संक्षिप्त विवरण आगे दिया जा रहा है।

13.2 भाषा-प्रकार्य

पाश्चात्य भाषा-दर्शन में भाषा-प्रकार्यों का उल्लेख करते ही भाषा-दार्शनिक ब्यूलर का नाम सामने आ जाता है। ब्यूलर (1934) ने तीन प्रकार्यों का निरूपण किया है :

(i) समुदिष्ट प्रकार्य (referential function)
(ii) क्रियावृत्तिक प्रकार्य (conative function)
(iii) भावबोधक प्रकार्य (expressive function)

(i) समुद्दिष्ट प्रकार्य में वक्ता का ध्यान बिंदु (फ़ोकस) कथ्य विषय-वस्तु पर रहता है। भाषा का प्रकार्य किसी विषय की सूचना को वक्ता से श्रोता के पास पहुँचना है। यह तथ्य प्रधान है।

(ii) क्रियावृत्तिक में वक्ता ध्यान बिंदु श्रोता है। भाषा का प्रकार्य श्रोता को किसी अभीष्ट क्रिया करने की ओर प्रेरित करना है। यह आदेश, अनुरोध, अनुन्य, प्रेरणा, परामर्श, प्रतिबोधन आदि किसी के द्वारा हो सकता है।

(iii) भावबोधक प्रकार्य में भाषा-व्यवहार का ध्यान बिंदु स्वयं वक्ता है। यहाँ भाषा का प्रकार्य आत्म-अभिव्यंजना अथवा सर्जना है। (देखा जाए तो भारतीय चिंतन की ये

तत् (वह : विषयवस्तु), त्वम् (श्रोता : प्रवर्तना) तथा अहम् (वक्ता : स्रष्टा) - प्रधान स्थितियाँ हैं।)

याकोब्सन (1960) ने तीन अन्य, यद्यपि गौण तथा उपरिलिखित तीनों से किसी-न-किसी प्रकार संबद्ध भाषा प्रकार्य जोड़े हैं :

(iv) संपर्कक प्रकार्य (phatic function)

(v) काव्यात्मक (poetic function)

(vi) आधिभाषिक प्रकार्य (metalinguistic function)

(iv) संपर्कक प्रकार्य दो व्यक्तियों के बीच सामाजिक संपर्क स्थापित करने तथा बनाए रखने में सहायता करता है। ट्रेन में पड़ोस में बैठे व्यक्ति से यह कहना कि आजकल मौसम बहुत खराब चल रहा है, केवल बातचीत करने का श्रीगणेश है, कोई सूचना-वाक्य नहीं।

(v) काव्यात्मक प्रकार्य में संदेश को अधिक बल न देकर भाषाई पक्ष पर अधिक बल दिया जाता है - उक्ति-वक्रता, पद लालित्य, अलंकार-प्रवणता आदि इसी के साधन हैं।

(vi) आधिभाषिक प्रकार्य में भाषा का प्रकार्य स्वयं भाषा के लिए होता है, न कि बाह्य जगत् या मनोजगत् के किसी तत्व के लिए। उदाहरणार्थ "मैं घर जा रहा हूँ" बाह्य जगत् से संबद्ध वाक्य में आया 'मैं' वक्ता का पर्याय है। किंतु "मैं एक सर्वनाम है" वाक्य में 'मैं' वक्ता का पर्याय नहीं है, बल्कि भाषा-व्याकरण में उत्तम पुरुष सर्वनाम शब्द 'मैं' का व्यंजक है।

हैलिडे (1970) के अनुसार भाषा प्रकार्य अन्य आधार पर निरूपित किए गए हैं। भाषा प्रकार्य तीन हैं :

(1) प्रत्ययप्रधान प्रकार्य (ideational function)
(2) अंतर्व्यक्तिप्रधान प्रकार्य (interpersonal function)
(3) पाठ्यात्मक प्रकार्य (textual function)

(1) प्रत्यय प्रधान प्रकार्य हमारे अमूर्त प्रत्ययों को मूर्त भाषाई रूप देता है। ये प्रत्यय वस्तुओं, प्राणियों, व्यक्तियों, स्थितियों तथा घटनाओं एवं घटना-चक्रों से संबंधित होते हैं। इस प्रकार्य के दो अंश हैं - अनुभवात्मक (experiential) और तार्किक (logical)। पहले से अनुभवों के निरूपण पर अधिक बल होता है, दूसरे में तार्किक संबंधों पर जो अनुभवों से अप्रत्यक्षतया संबंधित है।

(2) अंतर्व्यक्तिप्रधान प्रकार्य में सामाजिकता पर अधिक बल है। भाषा का बहुत बड़ा दायित्व सदस्यों को समाज में बाँधे रखना है, और इस दिशा में जो अन्योन्य क्रियाएँ होती हैं उनका आधार भाषा व्यवहार ही है।

(3) पाठ्यात्मक प्रकार भाषा का तीसरा प्रकार्य है। संदेश में अंतर्व्यक्त संबंधों और मूल तथा व्युत्पन्न संप्रत्ययों को पाठ में सुगुम्फित करना इस प्रकार्य का लक्ष्य है। भाषाई विकल्पों का चयन करना तथा उन्हें पाठ्यबद्ध करना इस पाठ्यात्मक प्रकार्य का क्षेत्र है।

भारतीय दर्शन के मीमांसा ग्रंथों में भाषा का मूल प्रकार्य 'विधि' निरूपित किया गया है। यह किसी सीमा तक क्रियावृत्तिक प्रकार्य (ब्यूलर) और अंतर्व्यक्तिकप्रधान प्रकार्य (हैलिडे) के समांतर है। भाषा का मूल, प्राकृतिक और जीवशास्त्रीय प्रकार्य यही है कि एक सदस्य किसी

विशेष परिस्थिति या घटना को देखकर अन्य सदस्यों को समय पर सूचित कर सके ताकि सूचनानुसार वह उपयुक्त व्यवहार कर सके। मीमांसा में यह उपयुक्त अभीष्ट व्यवहार यज्ञ का सुष्टुरूपेण संपादन है और उस दिशा में याज्ञिक यजमान व्यक्ति को प्रेरित करता है, दिशा-दर्शन देता है, संपादन में सहायता पहुँचाता है। इन विधि-आत्मक वाक्यों में सबसे व्यापक क्रिया व्यापार 'प्रवर्तना' है। प्रवर्तना ही वस्तुतः भाषा का एक मात्र प्रकार्य है। जब कोई अपनी पत्नी से कहता है कि कल दिल्ली जाना है, तो यह तथ्यात्मक कथ्यपरक संदेश ऊपर से अवश्य सूचना मात्र लगता है किंतु भीतर से प्रवर्तनात्मक है। व्यंजना यह है कि जो कुछ बच्चों के लिए दिल्ली भेजना है, उसे ठीक-ठाक कर दो, बहू को चिट्ठी लिखनी है तो लिख दो, बाजार से मिठाई मँगा दो और रास्ते के लिए नाश्ता तैयार कर दो। इसी प्रकार इस पाठ्यक्रम में यह पाठ आपको पढ़ने व समझने के लिए दे रहे हैं। यह सूचना प्रधान भाषिक कार्य है, तथ्यात्मक प्रकथन-वाक्य हैं, कहीं 'एवं कुरु', 'इदं कुरु' का संकेत नहीं है। किंतु पाठ के आरंभ में उद्देश्यों को यदि आप देखें तो वहाँ पाएँगे कि आप 'प्रोक्ति' को समझ कर प्रोक्ति विश्लेषण कर सकें आदि, जो कि मुख्यतया क्रियावृत्तिक हैं।

13.3 प्रोक्ति

पिछले अनुच्छेदों में भाषा के प्रकार्यों की चर्चा करते समय हमने यह देखा कि हम सब अपने समाज के अन्य सदस्यों के साथ मुख्यतया भाषा के माध्यम से विचारों, भावों, ज्ञान तथा रचना तकनीकों आदि का आदान-प्रदान करते हैं। इन सामाजिक अन्योन्य क्रियाओं में हुए भाषाई (वाचिक) व्यवहार की स्वयंपूर्ण इकाई 'प्रोक्ति' कही जाती है। उदाहरणार्थ पार्क में सुबह टहलने गए दो सज्जन मिल जाते हैं। नमस्ते, दुआ-सलाभ के बाद कुछ देर दोनों कुछ बातें करते हैं, तदनंतर नमस्ते, अलविदा कहते हुए दोनों अपने-अपने रास्ते चले जाते हैं। इस सामाजिक अन्योन्य क्रिया में जो भाषा-व्यवहार नमस्ते से प्रारंभ हुआ और अंत में नमस्ते-अलविदा से समाप्त हुआ, वह एक पूर्ण समाजभाषावैज्ञानिक इकाई है - 'प्रोक्ति' है। हम इसे भारतीय चिंतन का 'वाक्' भी कह सकते हैं। अर्थात् वागारंभ से वागंत तक का भाषिक व्यवहार 'प्रोक्ति' है। दूसरा उदाहरण शैक्षिक परिवेश का लें। घंटा बजता है। पहले वाले अध्यापक पढ़ा कर बाहर जाते हैं। कुछ देर बाद दूसरे अध्यापक आते हैं। सामाजिक अन्योन्य क्रिया छात्रों के खड़े हो जाने से हो जाती है। यदि 'गुड मार्निंग' आदि का प्रयोग होता है तो तब से, अन्यथा जब अध्यापक पढ़ाने लगते हैं, तब से 'प्रोक्ति' का आरंभ हो जाता है। घंटा बजने पर जब अध्यापक पढ़ाना बंद कर देते हैं, तब भाषिक व्यवहार अर्थात् 'प्रोक्ति' का अंत होता है। ये तो उदाहरण मौखिक प्रोक्ति के थे। लिखित भाषा-व्यवहार में लिखित अंश का आदि अंत स्पष्ट होता है। आपने अपने मित्र को पत्र द्वारा लिखित संदेश भेजा : पत्र स्वयं एक लेखबद्ध अपने में पूर्ण इकाई है - वह एक 'प्रोक्ति' है। पूरा उपन्यास अथवा पूरी कृति या रचना भी एक 'प्रोक्ति' है। आपकी पाठ्यपुस्तक भी एक 'प्रोक्ति' है, उसके अध्याय भी 'प्रोक्ति' हैं, अध्याय के खंड भी प्रोक्ति हैं और एक पैराग्राफ भी एक प्रोक्ति है - यह बात दूसरी है कि आप उन्हें 'प्रोक्तिबंध', 'प्रोक्तिसमुच्चय', 'प्रोक्ति-समूह', 'प्रोक्ति' जैसे कोई नाम, क्रमशः उन्हें दे दें। संक्षेप में प्रोक्ति में आकार का कोई बंधन नहीं है। छोटा-सा नोटिस 'फूल तोड़ना मना है' एक प्रोक्ति है क्योंकि संदेश-प्रेषण की दृष्टि से वह पूर्ण है, और दूसरी और 'महाभारत' जैसे महाकाव्य भी।

इस प्रकार हमने देखा, कि प्रोक्ति एक समाजभाषावैज्ञानिक इकाई है जो संप्रेषण की दृष्टि से, संदेश की पूर्णता की दृष्टि से और आशय-अभिव्यक्ति की दृष्टि से अधूरी नहीं है। इस प्रोक्ति को, जब भाषावैज्ञानिक दृष्टि से देखते हैं, तब वह एक, वाक्य के ऊपर की, व्याकरणिक संरचना है। जिस प्रकार रूपिम (मार्फीम) शब्दों की, शब्द पदबंधों की, पदबंध उपवाक्य की और उपवाक्य वाक्य की उत्तरोत्तर रचना करते हैं, वैसे ही वाक्य 'प्रोक्ति' (व्याकरणिक प्रोक्ति) की रचना करते हैं। अर्थात् 'प्रोक्ति' के संरचक-घटक 'वाक्य' हैं। ये

रचक वाक्य परस्पर जुड़ कर जब एक संदेश की स्वयंपूर्ण अभिव्यक्ति करते हैं, तब 'प्रोक्ति' ाती है। लिखित संदेश में यह सरलता है कि लेखक प्रायः विचारों की एकात्मकता एक ाग्राफ स्तर पर निरूपित कर देता है। और इस प्रकार पैराग्राफरूपी प्रोक्ति सहजतः भिनिर्धारित व पहचानी जा सकती है। पैराग्राफ के सभी वाक्य सुसंबद्ध और सुगुम्फित होकर क आशय को पूर्णतः व्यक्त करते हैं जो कि 'प्रोक्ति' कहे जाने की पहली शर्त है।

3.4 प्रोक्ति प्ररूप

ाने पिछले अनुच्छेदों म प्रोक्ति के विषय में यह जाना कि वह सामाजिक अन्योन्य-क्रिया के च हुआ एक स्वयंपूर्ण भाषिक व्यवहार है। सामाजिक अन्योन्य क्रिया स्वभावतः तभी संभव है ब एकाधिक सदस्य आमने-सामने हों। यह सामाजिक परिस्थिति कई प्रकार की हो सकती किंतु उन्हें दो प्ररूपों में बद्ध किया जा सकता है - एक, जब सदस्य बातचीत कर रहे हों र्थात् श्रोता स्वयं वक्ता बनता है और वक्ता श्रोता और ऐसा वक्ता-श्रोता-परिवर्तन बार-बार ता है, दूसरे, जब वक्ता ही मुख्यतः संदेश दे रहा है, श्रोता लगभग श्रोता ही बने हुए हैं र्थात् वक्ता-श्रोता परिवर्तन नगण्य है। इस प्रकार प्रोक्ति के दो मुख्य प्ररूप बनते हैं :

(1) वार्तालाप : (+) वक्ता-श्रोता - भूमिका परिवर्तन

(2) भाषण : (-) वक्ता-श्रोता भूमिका परिवर्तन

दो सामान्य प्ररूपों के अतिरिक्त विरलतया वे स्थितियाँ आती हैं जब वाचिक कथन क्रिया है, किंतु श्रोता नहीं है। जैसे :

(3) स्व-वार्तालाप : जहाँ वक्ता स्वयं अपना श्रोता बन जता है।

(4) स्व-भाषण : जहाँ वक्ता का न बाह्य न आंतरिक श्रोता है।

दोनों को 'स्वालाप' शीर्षक में समेटा जा सकता है।

) **वार्तालाप :** वार्तालाप प्रारूप में वक्ता कुछ बात करता है। सुनने वाला श्रोता सुनकर सुनते-सुनते बिना वक्ता के चुप हुए बोलने लगता है। यदि कई लोग हैं तो प्रायः सभी बातचीत में बोलने की भूमिका अदा करते हैं। प्रायः बातचीत के दौरान ऐसी स्थिति नहीं आती है कि बिल्कुल सन्नाटा पर्याप्त समय तक हो, और सभी या एकाधिक एक ही समय बोल रहे हैं यह स्थिति भी नहीं आती है।

वार्तालाप में प्रायः किसी बात से आरंभ होता है : कभी-कभी उस बात पर कई लोग बोलते रहते हैं किंतु अनेक बार ऐसी स्थिति आती है कि नया-नया बोलने का विषय आने लगता है और लोग उस पर बातचीत करने लगते हैं। कभी-कभी कोई भी विषय केंद्र में या प्रधान नहीं होता और नए विषय तथा पुराने विषय में कोई पक्का तार्किक बंध नहीं होता है, तब वार्तालाप गप-शप बन जाता है।

वार्तालाप का एक प्रभेद चर्चा-परिचर्चा आजकल बहुत प्रचलित है। परिचर्चा में अनेक सदस्य, प्रायः चर्चा विषय के अच्छे जानकार, एक साथ एकत्र किए जाते हैं। एक संयोजक अथवा सूत्रधार होता है जो श्रोताओं में से अगला वक्ता कौन हो इसका संकेत देता है और वह संकेतित व्यक्ति वार्तालाप की कड़ी को आगे बढ़ाता है। यदि संकेतित व्यक्ति के अतिरिक्त कोई बोलने लगता है तो किसी प्रकार उसे अपनी बात शीघ्र समाप्त करने को कहते हैं या टोक देते हैं। छात्रों का ग्रूप-डिस्कशन भी इसी कोटि का है।

वार्तालाप का एक प्रभेद वह है जहाँ एक ही व्यक्ति से अनेक लोग कुछ पूछते हैं। जिससे पूछा जा रहा है उसे श्रोता मान लिया जाए तो वक्ता अनेक है अर्थात् वक्ता श्रोता संबंध बहु-एक (many : one) का है। एम.ए. या पीएच.डी. की मौखिकी परीक्षा तथा सेवार्थ साक्षात्कार (इन्टरव्यू) तथा एक प्रकार से पुलिस आदि की पूछताछ (इन्टेरोगेशन) इसी कोटि की है। इन सबमें जिससे पूछा जा रहा है कुछ कम प्रतिष्ठा का उस उस समय है, इसके विपरीत प्रेस कांफ्रेंस है जहाँ जिससे पूछा जा रहा है वह उच्च प्रतिष्ठा का उस स्थिति में है (यहाँ उच्च प्रतिष्ठा का अर्थ यह है कि उसे महोदय, मान्यवर करके संबोधित किया जाता है)।

(2) **भाषण :** भाषण प्रारूप में एक प्रमुख वक्ता तथा अनेक श्रोता होते हैं। वक्ता की भाषण के समय विशिष्ट सामाजिक प्रास्थिति (स्टेटस) होती है। सामान्यतया उसे टोका या रोका नहीं जाता। भाषण का हमेश एक विशेष विषय तथा प्रयोजन होता है।

भाषणों में सामान्यतया श्रोता प्रत्यक्ष होते हैं और वक्ता वातावरण और श्रोताओं की अनुक्रियाओं पर ध्यान देता है। राष्ट्रपति का संदेश एक ऐसा भाषण है जिसमें कोई प्रत्यक्ष श्रोता नहीं होता है। आजकल दूरदर्शन तथा आकाशवाणी से विभिन्न राजनैतिक दल अपने दृष्टिकोण को जनता के सामने रखते हैं, वहाँ भी प्रत्यक्ष श्रोता नहीं होते हैं। प्रधानमंत्री के लालकिले से पंद्रह अगस्त के भाषण में सामने प्रत्यक्ष श्रोता होते हैं और दूरदर्शन एवं आकाशवाणी से शेष भारतवासी उस भाषण को सुनते हैं1 यहाँ श्रोता प्रत्यक्ष तो होते हैं किंतु केवल मूक दर्शक। अन्य सम्मेलन आदि में श्रोता प्रत्यक्ष होते हैं और मूक दर्शक न होकर अपनी प्रतिक्रियाओं के प्रदर्शन के लिए स्वतंत्र होते हैं।

भाषण के अन्य प्रभेदीकरण का आधार श्रोताओं की संख्या है। श्रोताओं की संख्या सीमित इनी-गिनी से विपुल रैली जैसी भीड़ तक होती है। बीच में लघुसंख्यक मध्यसंख्यक, बहृत्संख्यक प्रभेद आते हैं। विशाल या विपुल संख्या में श्रोता राजनैतिक रैलियों में अपने राजनेता को सुनने के इच्छुक व्यक्ति होते हैं। बृहत् संख्या में श्रोता राजनेताओं तथा धर्मगुरुओं को सुनने आते हैं। मध्यम संख्या में सम्मेलन, विचारगोष्ठी, शैक्षिक समारोहों में दिखाई पड़ते हैं। लघुसंख्यक में संगोष्ठी, कक्षा आदि के व्याख्यान आते हैं। सीमितसंख्यक में छोटी विचारगोष्ठी, आदि में लोग एकत्र होते हैं। समिति की बैठकों में सीमित संख्या के सदस्यों के होने पर भी भाषा-व्यवहार वार्तालाप-प्ररूप का होता है क्योंकि सभी सदस्यों को बोलने का अधिकार होता हे।

जहाँ तक टोका-टाकी का प्रश्न है वह आयोजन की सामाजिक प्रतिष्ठा एवं मर्यादा तथा वक्ता-श्रोता सामाजिक संबंध में वक्ता की सामाजिक प्रस्थिति पर निर्भर है। यदि श्रोता की वक्ता के प्रति श्रद्धा है, वक्ता की आप्तता और ईमानदारी पर पूरा विश्वास है और श्रोता को संदेश से अपना हित होने की पक्की निष्ठा है तो भाषण के बीच बाधा नगण्य हो जाती है।

(3)–(4) **स्वालाप :** स्वालाप की स्थिति अतिविरल होती है। यहाँ कोई श्रोता नहीं होता है अतएव सामाजिक अन्योन्य क्रिया का प्रश्न ही नहीं उठता। किंतु जीवन में अनेक स्थितियाँ ऐसी आती हैं जब व्यक्ति मन ही मन बोलता है। किसी के कथन या कार्य पर प्रायः हम टिप्पणी (कमेन्ट) करते हैं, वार्तालाप की मर्यादा के कारण बोल तो नहीं सकते हैं पर मन में कमेन्ट अवश्य करते हैं। संस्कृत नाटकों में ऐसी स्थिति में स्वगत/स्वकथन (पात्र ऐसा बोलता है और विचार प्रकट करता है मानो और कोई सुन न रहे हों) का प्रयोग होता है।

स्व-वार्तालाप का प्रयोग फिल्मों में आंतरिक संघर्ष की अभिव्यक्ति के रूप में प्रायः दिखाई पड़ता है जहाँ व्यक्ति के दो स्वरूप - प्रायः एक अच्छा और एक बुरा - आमने-सामने आते हैं

ापस में बात करते हैं। स्वभाषण की स्थिति में वक्ता किसी दृश्य या घटना को देख वातिरेक से बोल बैठता है। विस्मयादिबोधक अथवा उद्गारात्मक अव्यय तो स्वभाषित से ओह् करते समय आप किसी श्रोता की उपस्थिति की अपेक्षा नहीं करते।

प्रोक्ति के प्रारूप : लिखित संदेश भी वार्तालाप, भाषण तथा स्वालाप के समान त किया जा सकता है। पत्र वार्तालाप-प्रवण होते हैं क्योंकि पत्र के पाठक से पत्र का पत्रोत्तर की अपेक्षा रखता है। उपन्यास, कहानी आदि में वार्तालाप मिलते हैं, नाटक ा वार्तालाप आधारित हैं ही - किंतु ये सब मौखिक वार्तालाप के प्रतिफलन हैं।

संदेश मुख्य रूप से भाषणवत् है जहाँ एक संदेश देने वाला और असंख्य संदेश लेने सका प्रभेदीकरण प्रतिपाद्य विषय के आधार पर होता है। विषय के अनुसार उसमें ी शब्दावली, वाक्यरचना, तार्किक संरचना आदि होती है। विषयानुवर्तिनी भाषा-विकल्प ाषा विज्ञान में 'रजिस्टर' नाम से विदित है।

ात् लिखित रूप डायरी लेखन तथा कुछ मात्रा में संस्मरण होते हैं। कविता को प्रायः जाता है कि वह और के पढ़ने के लिए नहीं है, किंतु यथार्थतः ऐसा होता नहीं है।

प्रोक्ति विश्लेषण

ी भाषाई अभिव्यक्ति, जो मूर्त रूप में हमें सुनाई या दिखाई पड़ती है, का निक विवेचन 'प्रोक्ति-विश्लेषण' कहा जाता है। प्रत्येक संरचना के समान प्रोक्ति-के भी एक से अधिक संरचक होते हैं, प्रत्येक का अपना प्रकार्य होता है, प्रत्येक उसे ार से स्वरूप देते हैं और प्रत्येक ऐसे प्रतिबंध (कान्स्ट्रेन्ट) प्रस्तुत करते हैं जिससे भिव्यक्ति के असीमित विकल्पों को नियमित रूप से बद्ध होकर ही आना पड़ता है। ा (कांस्ट्रेन्ट्स) मूलतः परंपरा या रूढ़ द्वारा निर्धारित होते हैं और मूलतः सामाजिक-क होते हैं। नीचे इन संरचक/अभि-निर्धारकों का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

सामाजिक परिवेश

भी शून्य में भाषा-व्यवहार नहीं करता है, वह किसी-न-किसी सामाजिक परिवेश में व्यवहार करता है। ये सामाजिक परिवेश (डोमेन) भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। मुख्य :

i) घर-परिवार का परिवेश
ii) जीविका कार्य का परिवेश
iii) सामाजिक-धार्मिक कृत्य कार्यो का परिवेश
iv) शिक्षण प्रशिक्षण का परिवेश
v) सामाजिक प्रबंधन का परिवेश - राजनैतिक परिवेश

र परिवार का परिवेश : मनुष्य का अधिकांश जीवन घर-परिवार में बीतता है, घर-रिवार एक जीवशास्त्रीय संस्था है, आवास-भोजन-आच्छादन - इन तीन मूल ावश्यकताओं का तथा शिशु पालन द्वारा स्पीशीज संवर्धन व्यवस्था का प्रबंधन यही रता है। भाषा तथा संस्कार बच्चा यहीं सीखता है। इस परिवेश की मुख्य भाषा-प्रेषण विधा वार्तालाप है। गृहणियों का तो लगभग सारा समय इस परिवेश में ीतता है और वार्तालाप में उनका कौशल सुप्रसिद्ध है।

ीविका कार्यक्षेत्र का परिवेश : घर परिवार के बाद मनुष्य का अधिकांश समय ीविका कार्यक्षेत्र में बीतता है। क्या किसान, क्या मज़दूर, क्या अन्य सेवा संलग्न

व्यक्ति - सभी दिन के पर्याप्त समय में इनमें लगे रहते हैं। इस परिवेश में भी वार्तालाप संप्रेषण विधा का प्रयोग होता है। यह वार्तालाप कभी-कभी गंभीर व्यावसायिक होता है किंतु अधिकतर सामान्य सूचनापरक होता है अथवा शिथिल क्षणों में गप-शप, पर निंदा आदि।

(iii) **सामाजिक-धार्मिक कृत्य कार्यों का परिवेश :** धार्मिक कृत्य, पर्व-उत्सव, सामाजिक नृत्यगान समारोह, विवाह आदि संस्कार, तथा सामान्य आमोद-प्रमोद एवं खेलकूद के आयोजन - सभी इस परिवेश के अंग हैं। प्रवचन (भाषण), क़थावाचन, यज्ञ-हवन में सामूहिक मंत्रोच्चार, कीर्तन-भजन, धर्म ग्रंथ पाठ आदि इस परिवेश के प्रमुख भाषा व्यवहार हैं। वार्तालाप का प्रयोग सामान्यतया प्रश्नोत्तर तथा चर्चा परिचर्चा में ही होता है।

(iv) **शिक्षण-प्रशिक्षण का परिवेश :** जीविका कार्य क्षेत्र में काम करने के लिए उस क्षेत्र में शिक्षण-प्रशिक्षण आवश्यक है। यह औपचारिक रूप से या तो प्रत्यक्षतः स्कूल, कालेजों आदि में होता है या ओपन स्कूल आदि के माध्यम से दूरस्थ पद्धति से होता है, अनौपचारिक रूप से परिवार तथा व्यावसायिक कार्य क्षेत्र के पूर्व प्रशिक्षित व्यक्तियों के द्वारा। इस परिवेश में व्याख्यान (भाषण) आजकल प्रमुख हैं। कौशल कार्यों में अनुदेशात्मक तथा अनुकरणात्मक भाषा व्यवहार प्रयुक्त होता है। उच्च शिक्षा में वाद-विवाद, संगोष्ठी, विचारगोष्ठी, सम्मेलन तथा दीक्षांत-सत्रारंभ-सत्रावसान आदि समारोहों में भाषा व्यवहार मिलता है। ये सभी भाषण-प्ररूप के हैं। वार्तालाप विधा प्रश्नोत्तर, चर्चा-परिचर्चा, मौखिकी परीक्षा आदि में मिलती है। अब सूचना-तकनीक तंत्र के विकास के साथ यह सब अन्य भाषा-चैनलों - रेडियो, टी.वी., कंप्यूटर-डिस्क तथा कंप्यूटर नेटवर्क से मिलने लगे हैं।

(v) **सामाजिक प्रबंधन परिवेश :** आरंभ से ही समाज के सदस्यों में से कुछ इसका दायित्व निभाते थे बाहरी तत्वों के आक्रमण से रक्षा, आंतरिक झगड़ों का निपटान, मर्यादा (नार्म) तोड़ने वालों को दंड, तथा मूलभूत सुविधाओं को मुहैया कराने की व्यवस्था हो। देश और राष्ट्र की संकल्पनाओं के साथ समाज विस्तृत हो गया और यह दायित्व राजा, राष्ट्राध्यक्ष, प्रधानमंत्री आदि पर आ गया। आजकल इस राजनैतिक संस्था पर रक्षा, आंतरिक सुरक्षा, विधि-दंड विधान, विधायिका तथा कुछ सेवाओं, जैसे - वित्तीय, परिवहन, संचार, स्वास्थ्य आदि का दायित्व पड़ा है। भाषाई व्यवहार की संप्रेषण विधा भाषण तथा समिति संचालन प्रमुख है। राष्ट्रपति का संदेश, प्रधानमंत्री का लाल किले पर भाषण, संसद में भाषण-परिभाषण, विभिन्न समितियों, सम्मेलनों, संगोष्ठियों आदि के भाषण इसी कोटि के हैं। वार्तालाप का रूप विदेशाध्यक्षों के साथ बातचीत तथा समितियों में चर्चा परिचर्चा ने ले लिया है।

13.5.2 सामाजिक संबंध (प्रस्थिति)

प्रत्येक समाज में सदस्यों के बीच उत्तराधर-क्रम अवश्य मिलता है। यह उत्तराधरक्रम सत्ता (सत्+ता= अस्तित्व का गुण) का होता है। सत्ताधारी अपने क्षेत्र में निर्णय ले सकता है, अपने से अधरक्रम को कार्य वितरण तथा कार्य पर्यवेक्षण (मॉनीटरिंग) कर सकता है और अपने से उत्तरक्रम के अनुसार कार्य संपादन तथा कार्य संचालन कर सकता है। परिवार-परिवेश में संयुक्त परिवारों में मुखिया प्रमुख सत्ताधारी होता है, जीविका क्षेत्र में आजकल सर्वोच्च प्रबंधक व्यक्ति अथवा मंडल सर्वोच्च सत्ताधारी होता है। धर्म-परिवेश में सभी धर्मों में गुरुओं-आचार्यों तथा मठाध्यक्षों में उत्तराधर क्रम है। राजनैतिक क्षेत्र में तो राष्ट्रपति से आरंभ होकर बड़ी सीमा तक प्रोटोकोल-सूची में उत्तराधर क्रम अंकित है। इस कारण प्रत्येक सामाजिक व्यवहार में दो या अधिक सदस्यों के बीच सत्ता (=प्रास्थिति status) प्रवर-अवरता विद्यमान होती है। किंतु प्रायः व्यक्ति भिन्न-भिन्न परिवेश में भिन्न-भिन्न प्रास्थिति रखता है। घर का

बड़ा भाई कार्यालय में अधीनस्थ भी हो सकता है। धार्मिक परिवेश में शंकराचार्य के सामने राजनैतिक क्षेत्र के सर्वोच्च राष्ट्रपति भी नतमस्तक हो सकते हैं। यह बात दूसरी है कि समाज में विभिन्न परिवेशों में समय-समय पर पारस्परिक भिन्न-भिन्न उत्तराधरक्रमी प्रतिष्ठा का भाव होता है। पहले गुरु शैक्षिक परिवेश के बाहर भी, अन्य परिवेशों में समुचित समादर पाता था, अब वह स्थान शायद राजनेताओं ने ले लिया है। यह सत्ता-विभिन्नता भाषा व्यवहार में स्पष्टतः प्रतिफलित होती है। समादरता का स्केल और घनिष्ठता-आत्मीयता का स्केल विशेषणों, क्रियाविशेषणों, संज्ञाओं तथा क्रियाओं के चयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

13.5.3 सामाजिक प्रयोजन

प्रत्येक वक्ता श्रोता के पास कुछ संदेश पहुँचाना चाहता है और यह चाहता है कि श्रोता संदेश को यथानुकूल ग्रहण करे और तत्पश्चात् कुछ करे। श्रोता क्या करे यह वक्ता का प्रयोजन (आशय) (intention) होता है। वक्ता की श्रोता से ये अपेक्षाएँ होती हैं :

(i) वक्ता से तथ्यात्मक जानकारी पाकर श्रोता अपनी संचित ज्ञानराशि को संवर्धित और पुनः संयोजित करे तथा फलस्वरूप उसके विचारों, दृष्टिकोणों, आस्थाओं तथा मूल्यों में वक्ता-अपेक्षित परिवर्तन आए।

(ii) श्रोता संदेश ग्रहण के बाद अपने मनोभावों, संवेगों, मनोवृत्तियों में वक्ता से वांछित परिवर्तन करे।

(iii) श्रोता संदेश ग्रहण के बाद अपने क्रिया-व्यवहार तथा कार्य संपादन रीति में परिवर्तन लाए।

वक्ता इन अपेक्षाओं के अनुसार अपने संदेश का रूप देता है इस कारण अभिव्यक्ति शैली पर इन प्रयोजनों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

13.5.4 सामाजिक भाषा-व्यवहार के पैटर्न

प्रोक्ति प्ररूप, जैसे वार्तालाप, भाषण और स्वालाप की चर्चा हम पहले कर आए हैं। कौन-सा पैटर्न अपनाया जाए यह सामाजिक परिवेश, सामाजिक प्रास्थिति (वक्ता-श्रोता की) तथा सामाजिक प्रयोजन बहुत कुछ निश्चित कर देता है।

उपरिलिखित निर्धारित तत्व मुख्यतया सामाजिक हैं। ये तत्व यह निर्धारित करते हैं कि अभिव्यक्ति की भाषा, बोली क्या हो (संदेश की भाषा स्वाभाविकतया वही होगी जो दोनों को बोधगम्य हो), अभिव्यक्ति किस भाषाई चैनल-लिखित या मौखिक - को अपनाए (व्यक्ति यदि सामने है तो वक्ता मौखिक चैनल ही अपनाएगा), और अभिव्यक्ति शैली क्या हो। इसका विवेचन आगे किया जा रहा है।

13.5.5 अभिव्यक्ति शैली

अभिव्यक्ति शैली तीन आयामों से बद्ध है :

(1) समादरता मापक्रम (स्केल)
(2) घनिष्ठता मापक्रम (स्केल)
(3) कोडटोन मापक्रम (स्केल)

(1) **समादरता स्केल :** इसकी पाँच कोटियाँ बनती हैं :

(i) '+ + समादर' - अत्यधिक आदर। जेसे 'महामहिम' 1008 परम श्रद्धेय...'
(ii) '+ समादर' - सामान्य आदर सूचक भाषा। 'अप', 'हुजूर'।
(iii) '0 समादर' - समभाव, जहाँ आदर-अनादर का प्रसंग ही नहीं होता।
(iv) '- समादर' - आदर का भाव नहीं, थोड़ा निरादर भी हो सकता है।

(v) '- - समादर' - स्पष्ट निरादर, कुछ मात्रा में तिरस्कार-उपेक्षा भी।

ये भाव संज्ञा, विशेषण, क्रिया शब्दों से, सर्वनाम से, विशिष्ट संबोधकों से तथा वाक्य शैली से प्रकट होते हैं। इनका समावेशी नाम 'honorific' है।

(2) **घनिष्ठता स्केल :** इसकी भी पाँच कोटियाँ हैं :

(i) अतिऔपचारिक (रूढ़) शैली - 'महामहिम, पधारिए, पधारिए'

(ii) औपचारिक (शैली) - 'मैं बहुत आभारी होऊँगा यदि आप आ जाएँ।'

(iii) सामान्य-परिचय (शैली) - कृपया भीतर आ जाइए।

(iv) घनिष्ठ-परिचय (शैली) - भीतर आ जाओ

(v) अतिघनिष्ठ (शैली) - अमाँ, भीतर क्यों नहीं आ रहे हो।

(3) **कोडटोन :** वास्तव में बहुत कम वाक्य उदासीन भाव से बोले या लिखे जाते हैं - प्रायः कुछ-न-कुछ हृदयगत भावनाएँ लिप्त रहती हैं। वार्तालाप की तो ये प्राण हैं। हाईम्स (1977) ने इसे संप्रेषण की 'key' कहा है और उनके अनुसार 'टोन वह रीति या भावना है जिससे क्रिया की जा रही है।' मनबी (1978) ने 51 टोन-सरणियाँ प्रतिपादित की हैं। उक्त ग्रंथ के पृष्ठ 50-51 में 'सुझाव' के बीस प्रकार के उपवाक्य दिए गए हैं, जिनमें 'suggestion' के साथ टोन [+personal] [+deferential] [+ encouraging) वाले दो उपवाक्य हैं :

"would you care to try the ...."

May I suggest (that you try) the ...."

13.6 पाठ

यह तकनीकी शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है - विस्तृत और संकुचित विस्तृत अर्थ में यह 'प्रोक्ति' के समकक्ष है। इस दृष्टि से कोई भी वार्तालाप, कोई भी भाषण, या कोई भी लिखित अभिव्यक्ति, चाहे छोटी या बड़ी, 'टेक्स्ट' है। "A text may be spoken or written, prose or verse, dialogue or monologue. It may be any thing from a single proverb to a whole play, from a momentary cry for help to an all day discussion in a committee."। किंतु अपने संकुचित अर्थ में प्रोक्ति या प्रोक्ति का वह अंश जिसका विश्लेषणात्मक विवेचन किया जाना है, पाठ (टेक्स्ट) है। पाठ का ऐसा विवेचन मुख्यतया भाषाई/ भाषावैज्ञानिक होता है। प्रोक्ति के सामाजिक निर्धारक तत्व किस प्रकार भाषा-रचना में प्रतिफलित हो रहे हैं यह दिखाना पाठ्य विश्लेषण है। अतएव पाठ अनेक वाक्यों के समुच्चय (एक वाक्यीय टेक्स्ट नोटिस, नारों, चेतावनियों, शीर्षकों आदि तक सीमित होते हैं) में सभी वाक्य किस प्रकार एकात्मकता की स्थिति को पैदा करते हैं, इसे स्पष्ट करता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्यों के झुंड को लीजिए :

1. खाली समय में किसान बैल की खूब देख-रेख करता था।
2. दोनों कड़ी मेहनत करते थे।
3. बेचारे बैल को भी रूखा-सूखा ही मिलता था।
4. उसके पास एक बैल था।
5. उसको अपने मालिक से कोई शिकायत न थी।
6. एक किसान था।
7. पर बैल बड़ा संतोषी था।
8. किसान के साथ रहते-रहते बैल बूढ़ा हो गया।
9. फिर भी किसान का गुजारा मुश्किल से चलता था।

) पाठ्य में कौन-कौन पात्र हैं। जिस परिवेश से पाठ्य लिया गया उसमें उनकी क्या प्रास्थिति है? उनमें क्या उत्तराधर क्रम है? अन्य प्रास्थितियों तथा पारस्परिक संबंधों का उल्लेख करें।

) किस आशय की पूर्ति यह पाठ कर रहा है?

) यह किस प्रोक्ति-प्ररूप का है? वार्तालाप, भाषण आदि।

किस भाषा/बोली, किस भाषा चैनल तथा किस अभिव्यक्ति शैली में पाठय प्रस्तुत है?

टापिक और प्रास्थिति देखते हुए अभिव्यक्ति शैली में किस प्रकार समादरता, घनिष्ठता तथा कोड-टोनों को अभिव्यंजित किया गया है?

प्रोक्ति प्ररूप का प्रस्तुति-वैशिष्ट्य किस प्रकार यहाँ दिखाया गया है, वार्तालाप में वार्तालाप वैशिष्ट्य बिंदु बताएँ - जैसे कब साथ-साथ बोलना हुआ और कम सभी चुप, कैसे विषय या आरंभ हुआ कैसे अंतः कैसे विषय का पुनरारंभ हुआ और कैसे पूर्व विषय को स्थगित, कैसे समर्थन किया गया कैसे खंडन, आदि आदि) इसी प्रकार भाषण शैली की सुगुम्फित पर प्रकाश डालें।

पैराग्राफ किस प्रकार व्याकरणिक और आर्थी संसक्ति से जुड़े हुए हैं। उनमें विषयपरक संगति किस प्रकार विद्यमान है।

तार्किक दृष्टि से पैराग्राफ में वाक्यों तथा पूरी बृहत् प्रोक्ति में पैराग्राफ का आसंजन स्पष्ट करें।

प्रकार इस पाठ में प्रोक्ति तथा पाठ्य के स्वरूप का तथा प्रोक्ति तथा पाठ्य के विश्लेषण संक्षिप्त विवेचन किया गया है। इन विश्लेषण-कार्यों का अभ्यास बहुत आवश्यक है क्योंकि वेश्लेषण आजकल के सूचना नेटवर्क में बहुत महत्वपूर्ण हैं। सूचना तंत्र से जुड़े सभी लोग ांवाददाता, संपादक, चर्चा-संयोजक, स्तंभ लेखक, अनुवादक आदि किसी-न-किसी स्तर अनजाने में अपनी प्रतिभा के अनुसार ये विश्लेषण करते आए हैं, किंतु अब सभी कार्यों के क्षण की आवश्यकता है और उसकी विश्लेषण पद्धति स्फुटित रूप में आनी चाहिए। इग्नू ावेद्यालय के एम.ए. पाठ्यक्रम में यह पाठ इसी रिक्तता की पूर्ति का प्रयास है।

.9 सांराश

तकात्मक मतलब है बड़ी युक्ति। भाषा के सामान्य व्यवहार के सभी संदर्भ जैसे बातचीत, कहानी या पत्र प्रोक्ति कहलाएँगे। इन्हें प्रोक्ति कहने का एक आधार है, जब व्यापक ं में भाषा का प्रयोग होता है तो सनशक्ति आदि कुछ विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं जैसे ाम, प्रोक्ति का सबसे प्रमुख उदाहरण है। हम एक वाक्य में व्यक्ति का नामोल्लेख करते ा उसके बाद सर्वनाम से उसका पुनः उल्लेख करते हैं। आमतौर पर यह माना जाता है वाक्य में भविष्य और विधेय दो अनावरण घटक हैं। लेकिन हम कई वाक्यों में कर्ता को देते हैं जैसे 'यहाँ आओ' यह अध्येहार इसलिए प्रोक्ति में संभव है और अकेले वाक्य में वरण घटक छूट नहीं सकते। इस कारण प्रोक्ति के अध्ययन में हम भाषा के सामान्य न के अतिरिक्त भाषा की कुछ और विशेषताएँ देखते हैं और उनका उल्लेख करते हैं।

सामाजिक वस्तु है। सामाजिक संदर्भ में भाषा के प्रयोग की अपनी कई विशेषताएँ हैं। किससे बात कर रहा है और वह किस संदर्भ में बात कर रहा है : या प्रश्नोत्तर चर्चा-र्चा या रेडियो वार्ता आदि संदर्भ में किस तरह की भाषा का इस्तेमाल होगा इसकी चर्चा प्रोक्ति के संदर्भ में ही कर सकते हैं।

प्रोक्ति विश्लेषण सहज भाषा के नमूने को 'पाठ' मानता है। यह पाठ एक छोटा-सा वाक्य भी हो सकता है या एक महाकाव्य भी। उस पाठ को संप्रेषण का आधार मानकर हम उसकी रचना का विश्लेषण करते हैं जिसे पाठ विश्लेषण कहा जाता है। पाठ विश्लेषण उस पाठ के परिवेश उसकी रचना कथ्य की विशेषताएँ और उस पाठ की भाषा शैली आदि की समग्र रूप से चर्चा करता है। इस विश्लेषण से हम भाषा के प्रयोग की विशेषताओं को जान सकते हैं जो अच्छे लेखक के लिए आवश्यक है। प्रोक्ति के अध्ययन से ही हम भाषा की प्रकार्यात्मकता, सर्जनशीलता और का सही मूल्यांकन कर सकते हैं।

13.9 अभ्यास प्रश्न

1. **निबंधात्मक प्रश्न**
   (1) प्रोक्ति की संकल्पना को सपष्ट करते हुए प्रोक्ति विश्लषण का महत्व समझाइए।
   (2)

2. **टिप्पणी लिखिए**
   (1) भाषा के प्रकार्य क्या हैं
   (2) प्रोक्ति विश्लेषण में समाज का महत्व

इस खंड के लिए उपयोगी संदर्भ ग्रंथ

Bloomfield, L. (1933) : *Language*, Nyork, Holt, Rienhart and Winstion.

Halliday, (1976) : *System and Function in Language* (Selected Papers), G.R. Kress (Ed.), Oxford University Press.

S.A. Shane (1973) : *Generative Phonology*, Prentice Hall INC, London.

जगन्नाथन वी.रा. (1981) : *प्रयोग ओर प्रयोग*, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव एवं रामनाथ सहाय (1976) : संपादित : *हिंदी का सामाजिक संदर्भ*, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।

रवींद्रनाथ श्रीवास्तव (1995) : *हिंदी भाषा संरचना के विविध आयाम*, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

सुरेश कुमार (1987) : *सम्प्रेषणपरक व्याकरण : सिद्धांत और स्वरूप*, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा। विशेषतः रमानाथ सहाय - '*संप्रेषणपरक व्याकरण : प्रकृति और स्वरूप* (पृष्ठ 145-172)।

कैलाश चंद्र भाटिया और रचना भाटिया ((2001) : *प्रयोजनमूलक व्यावहारिक हिंदी भाषा*, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, *हिंदी संरचना, ई.एच.डी.-7.*

भोलानाथ तिवारी (1989) : *हिंदी भाषा की ध्वनि संरचना*, साहित्य सहकार, दिल्ली।

भोलानाथ तिवारी (1974) : *हिंदी भाषा की संरचना*, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

सूरजभान सिंह (1991) : *हिंदी भाषा : संदर्भ और संरचना*, साहित्य सहकार, 29/62-बी, गली-1, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-110 032.

सूरजभान सिंह (1985, 1992) : *हिंदी का वाक्यात्मक व्याकरण*, साहित्य सहकार, ई/10-4, कृष्णनगर, दिल्ली-110 005.

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

MAHI-03 (N)

। – भाषा विज्ञान

खंड

3

अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान

इकाई 14
मनोभाषाविज्ञान 5

इकाई 15
भाषा-शिक्षण-I 26

इकाई 16
भाषा-शिक्षण-II 41

इकाई 17
अनुवाद 57

इकाई 18
भाषा तुलना 86

इकाई 19
शैलीविज्ञान 97

इकाई 20
कोशविज्ञान 118

३ परिचय

ज्ञान के अनुप्रयोग (application) से क्या तात्पर्य है? भाषाविज्ञान हमें भाषा की का, उनके विश्लेषण का ज्ञान देता है। अगर हम इस ज्ञान का अन्य क्षेत्रों में कर सकें तो इसे भाषाविज्ञान का अनुप्रयोग कहेंगे।

रह भौतिक विज्ञान के सिद्धांतों का प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अनुप्रयोग कर हम पंखे, गादि उपकरणों का निर्माण करते हैं, उसी तरह कोशकार अच्छे कोशों के निर्माण में ान की मान्यताओं और सिद्धांतों का उपयोग कर सकता है। इसी संदर्भ में अनुवाद, ान आदि को अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान (Applied Linguistics) का क्षेत्र कहा जा है।

अपने में परिपूर्ण और विकसित कला (या विज्ञान). है। उसे भाषाविज्ञान के की शाखा कहना कहाँ तक उचित है? कई अनुवादक यह मानते हैं कि बिना ान के अध्ययन के वे अपना काम बखूबी कर सकते हैं। फिर उसे 'अनुप्रयुक्त' यों कहा जाए? अनुवाद या कोश निर्माण एक भाषिक कला है। इसमें भाषाओं का ान तो आवश्यक है ही, भाषाविज्ञान की सहायता से कम प्रतिभा संपन्न व्यक्तियों व्यावहारिक अनुवाद का अच्छा प्रशिक्षण दे सकते हैं। व्याकरण के ज्ञान के बिना र कोश में शब्दों के संदर्भ में व्याकरणिक सूचनाएँ नहीं दे सकता। आजकल अच्छे कोशों में हर शब्द के हर विशिष्ट अर्थ में वाक्य में उसके स्थान आदि की भी दी जाती हैं। इससे कोश का महत्व कई गुना बढ़ जाता है। अगर कोशकार ान का अध्ययन न करे, तो वह इस तरह की सूचनाएँ नहीं दे सकता।

अध्यापक के सामने अक्सर छात्रों की गलतियाँ प्रकट हो जाती हैं। अध्यापक पहले के यह दोष क्यों हुआ, फिर यह तय करे कि इस दोष का निवारण कैसे किया सिर्फ़ गलतियों को सुधार कर शुद्ध रूप लिखता जाए, तो इससे छात्रों को कोई मिलेगा। भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से अध्यापक दोष का निदान कर सही ो कर सकता है।

से इन विषयों या कार्य क्षेत्रों को अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान कहा जाए या कोई और जाए, यह प्रासंगिक प्रश्न है। यह निर्विवाद सत्य है कि इन क्षेत्रों में नियमित में भाषाविज्ञान का ज्ञान उपयोगी है। इसी उद्देश्य से भाषाविज्ञान के सामान्य ौर हिंदी संरचना की चर्चा के उपरांत इस पाठ्यक्रम के तीसरे खंड के रूप में विषयों को रखा है। इससे आपको दो लाभ मिल सकते हैं। एक ओर आप यह ो हैं कि भाषाविज्ञान का ज्ञान भाषिक कलाओं के अध्ययन में कितना उपयोगी है। र, आपमें रुचि या प्रवृत्ति हो, तो इन क्षेत्रों में आगे ज्ञान अर्जित कर सकते हैं और विशिष्ट कार्य क्षेत्र चुन सकते हैं।

भाषाविज्ञान के अंतर्गत हमने पाँच क्षेत्रों को रखा है। ये हैं : भाषाशिक्षा, अनुवाद, , शैलीविज्ञान और वाक् विकार सुधार। वाक् विकार के सुधार का क्षेत्र तकनीकी कारण अधिक विस्तार दिए बिना इसे मनोभाषाविज्ञान के अंग के रूप में प्रस्तुत ा है। भाषा तुलना इन सभी कार्यक्षेत्रों में सहायक अंग है। इसलिए इसे अलग रूप में प्रस्तुत किया गया है। हमारा यत्न यह रहा है कि हर क्षेत्र के बारे में संक्षेप बातों की चर्चा हो। अगर आप किसी एक क्षेत्र में अधिक गति पाना चाहें तो खंड दिए गए संदर्भ ग्रंथ सूची देखें।

शुभकामनाओं के साथ!

इकाई 14 मनोभाषाविज्ञान

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 मनोभाषाविज्ञान
14.3 बालक में संज्ञानात्मक विकास
14.4 भाषा अर्जन
14.5 भाषा अधिगम
14.6 वाक् विकार
14.7 सारांश
14.8 अभ्यास/प्रश्न

14.0 उद्देश्य

इस इकाई में भाषा से संबंधित मनोवैज्ञानिक पहलुओं की चर्चा की गई है। जैसे, हम भाषा कैसे सीखते हैं, बच्चों में भाषा का विकार कैसे होता है, मातृभाषा और अन्य भाषा सीखने में क्या अंतर आता है, लोगों में सामान्य रूप से दिखाई देने वाली वाक् विकृतियाँ या वाग्दोष क्या हैं आदि।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- मनोभाषाविज्ञान की परिभाषा दे सकेंगे;
- बालकों के संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया समझा सकेंगे;
- बच्चों में भाषा विकास की प्रक्रिया और चरण का वर्णन कर सकेंगे;
- वयस्कों में अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया समझा सकेंगे;
- भाषा अर्जन और भाषा अधिगम में अंतर कर सकेंगे, और
- वाक् विकृतियों के प्रकार की व्याख्या कर सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

भाषा मानव की अमूल्य निधि है। संसार में और कोई प्राणी उस रूप में भाषा का व्यवहार नहीं करता जैसे मनुष्य करता है। इस संदर्भ में चाम्स्की कहते हैं कि भाषा के व्यवहार की क्षमता मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है, मानव मस्तिष्क की अंतर्निहित क्षमता है। इस तरह भाषा के अध्ययन में मन या मनोवैज्ञानिक दृष्टि का महत्व है।

हम भाषा का अध्ययन विविध संदर्भों में करते हैं। भाषा ध्वनियों से निर्मित शाब्दिक प्रतीकों की व्यवस्था है। इस दृष्टि से हम भाषा को एक संरचना या व्यवस्था के रूप में देखते हैं और व्याकरण के तौर पर भाषा की संरचना का अध्ययन करते हैं। भाषा सामाजिक वस्तु है, सामाजिक संप्रेषण का माध्यम है।

समाज में भाषा की स्थिति विभिन्न सामाजिक संदर्भों में भाषा का प्रयोग और सामाजिक संगठन और क्रियाकलापों में भाषा की प्रक्रिया इन सबके बारे में हम समाज भाषाविज्ञान में चर्चा करते हैं। इस तरह समाज भाषाविज्ञान भाषा के संदेश (संप्रेषण) के पक्ष पर बल देते हैं।

इसी प्रकार भाषाविज्ञान की एक और शाखा है जिसमें कि भाषा से संबंधित मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर चर्चा करते हैं। जैसे आधुनिक भाषाविज्ञान में मनोभाषाविज्ञान की संज्ञा दी जाती है। मनोभाषाविज्ञान में इस बात का अध्ययन किया जाता है कि हम भाषा सीखते कैसे हैं। मनोविज्ञान आमतौर पर अर्जन की विविध विधियों की चर्चा करता है और उस संदर्भ में अभिरुचि, स्मरण आदि कारक तत्वों की चर्चा करते हैं। हम मनोभाषाविज्ञान में यही कार्य भाषा के संदर्भ में करते हैं। मनोभाषाविज्ञान का एक दूसरा प्रमुख क्षेत्र वाक् विकार है। ये विकार वास्तव में मन के विकास से ही जुड़ता है और व्यक्ति किन्हीं मानसिक स्थितियों के वशीभूत होकर सामान्य भाषिक संप्रेषण में सक्षम हो जाता है। इस इकाई में हम मनोभाषाविज्ञान के इन दोनों प्रमुख पहलुओं की चर्चा करेंगे। ये विषय अपने में काफी बृहत है। फिर भी हमने संक्षेप में विषय को समेटने का यत्न किया है जिससे आपको इस विषय क्षेत्र का सामान्य और समग्र परिचय मिल जाएगा।

14.2 मनोभाषाविज्ञान

मनोभाषाविज्ञान एक अंतरविज्ञानीय (Inter disciplinary) क्षेत्र है। और यह दो क्षेत्रों के मिलने और समान क्षेत्र के भागीदार बनने से अधिक है। वास्तव में 1940 के अंत तक भाषाविद् भाषार्जन की जिज्ञासाओं के लिए उत्पादन और बोधन के रहस्य समझने के लिए मनोविज्ञान की ओर झुके। 1950 में थॉमस सीबक और चार्ल्स आसगुड (एक भाषा वैज्ञानिक और एक मनोविज्ञानी) ने मिलकर भाषाविज्ञान ओर मनोविज्ञान के बीच अंतःक्रियाओं के लिए एक समिति की स्थापना की। इस अंतःक्रिया का परिणाम था दो क्षेत्रों के मिलने से एक नये क्षेत्र का अस्तितव में आना, जिसे मनोभाषाविज्ञान कहा गया।

भाषाविज्ञान यदि भाषा की भाषाई व्यवस्था का वैज्ञानिक सिद्धांत है, तो मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं के भाषाई ज्ञान का सिद्धांत है। मनोभाषाविज्ञान इन दोनों का समन्वित उपागम है। वस्तुतः मनोभाषाविज्ञान का उद्देश्य इस तथ्य को स्पष्ट करना है कि भाषाई ज्ञान संज्ञानात्मक व्यवस्थाओं में किस प्रकार द्योतित होता है। इसके साथ ही साथ वह इन मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं की ओर भी संकेत करता है जो इसका उपयोग करती है। भाषा सिद्धांत तथा अधिगम सिद्धांत परस्पर संबंध होकर भाषा अधिगम के सिद्धांतों का गठन करते हैं। इस प्रकार मनोभाषाविज्ञान, मनोविज्ञान तथा भाषाविज्ञान की समन्वित निष्पत्ति है। एक ओर वह भाषा अधिगम से संबद्ध है, तो दूसरी और भाषा निष्पादन से। मनोभाषाविज्ञान का मुख्य कार्य उन समस्त मानसिक प्रक्रियाओं का विवेचन करना है, जो भाषा ज्ञान, भाषा संप्राप्ति और भाषा व्यवहार से संबंध हैं। भाषा अर्जन में बालक क्या अर्जित करता है, किस प्रकार अर्जित करता है तथा संदेशों के बोधन एवं अभिव्यक्ति में इनका किस प्रकार उपयोग करता है आदि इसमें प्रमुख हैं। अतः इसके क्षेत्र को भाषा के अर्जन, बोधन तथा अभिव्यक्ति से संबंधित मनोवैज्ञानिक एवं भाषाई प्रक्रियाओं के अध्ययन के संदर्भ में लिया जा सकता है।

ए.आर. डीबोल्ड जूनियर के अनुसार मनोभाषाविज्ञान मुख्य रूप से संदेशों और मानव व्यक्तित्वों की विशेषताओं के मध्य संबंधो से संबद्ध है, जो इस संदेश का चयन और व्याख्या करते हैं "Psycholinguistics is concerned in the broadest sense with relations between messages and the characteristics of human individuals who select and interpret them." पॉल-फ्रीज़ के अनुसार 'मनोभाषाविज्ञान हमारी अभिव्यक्ति की आवश्यकताओं और संप्रेषण के बीच संबंधों का अध्ययन है और हमारे बाल्यकाल या बाद में सीखी गयी भाषा द्वारा प्रदत्त माध्यम से संबद्ध है।'

जार्ज मिलर (1964) ने इस संबंध में लिखा है कि इस नये विज्ञान का केंद्रीय कार्य है उन मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं का वर्णन करना जो व्यक्ति के वाक्य प्रयोग के समय घटित होती है।' अब प्रश्न यह है कि ये मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ क्या हैं? अगर श्रोता (Receptor) के

दृष्टिकोण से देखा जाए तो इन प्रक्रियाओं में है–विभिन्न स्तरों पर किसी एक वाक्य का सुनना, उसका दोहराया जाना, श्रोता के व्याकरणिक ज्ञान के संदर्भ में उस वाक्य को समर्थन मिलना, अर्थव्यवस्था के अंतर्गत उसकी अर्थपूर्ण व्याख्या, संदर्भगत ज्ञान के संदर्भ में उसका समझा जाना और अंतिम है उसके अपने आचरण के संदर्भ में वैध होना।

सलमा कजाकू (1973) मनोभाषाविज्ञान के उद्देश्यों के बारे में लिखती है 'मनोभाषाविज्ञान का उद्देश्य है संप्रेषण की स्थूल क्रिया (Act) के दौरान संदेश में सुधार या परिवर्तन का अध्ययन, श्रोता या वक्ता के संबंध और उनके कथन को अर्थ देना, जैसे–मानसिक क्षमता, पारस्परिक प्रभाव, सामान्य संदर्भ के प्रभाव आदि।'

मनोभाषाविज्ञान की संप्रेषण की क्रिया को ध्यान में रखना होता है। वक्ता और श्रोता अपने को संदेश की जिस स्थिति में रखता है उसका प्रतिबिंब भी वह दर्शाता है वह मानसिक स्थिति (Psychic state) के संदर्भ में स्थिति बताता है, और स्मृति में भंडारण की क्षमता, स्वभाव, सामान्य संकल्पना, चिंतन और प्रेरणा में बाधा को भी स्पष्ट करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि मनोभाषाविज्ञान दो दिशाओं में कार्य करता है (1) मनोविज्ञान वक्ता और श्रोता की प्रक्रिया की व्यवस्था, संकेतन और विसंकेतन, साथ ही मानसिक घटना (Phenomenon) के बारे में अध्ययन करता है जो कि भाषा के उत्पादन में सहयोग करता है, साथ ही साथ यह सामाजिक या व्यक्तिगत समूहों के बीच संबंधों के मानसिक प्रभाव का भी अध्ययन करता है; (2) भाषाविज्ञान भाषा के इन पक्षों का अध्ययन करता है–कूट (Code) की सामान्य व्यवस्था संदेश के घटक और उनके कूट में रूपावली की व्यवस्था, संयोजक अनुक्रम की प्रकारता (Modalities) और अंतिम है वाक्य विन्यासात्मक (Syntagmatic) व्यवस्था की गतिकी (Dynamics) एवं भाषा का उद्भव।

मनोभाषाविज्ञान शब्द का प्रयोग संकुचित तथा व्यापक दोनों ही अर्थों में किया जा रहा है। संकुचित अर्थ में भाषाविज्ञान को कोडीकरण तथा विकोडीकरण की क्रियाओं से संबद्ध किया गया है। इस अर्थ में मनोभाषाविज्ञान उन प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है जिनके द्वारा वक्ता का अभिप्रेत सांस्कृतिक दृष्टि से ग्रहीत कोड संकेतों में परिणत होता है और ये संकेत श्रोता द्वारा संदेशों के रूप में व्याख्यायित होते हैं। व्यापक अर्थ में मनोभाषाविज्ञान संदेशों तथा उनके चयनकर्ता और व्याख्याता मानव के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन माना गया है।

मनोभाषाविज्ञान का कार्य केवल भाषाई प्रदत्तों का विश्लेषण करना नहीं है, वरन् भाषा अर्जन और उसके अनुरक्षण से संबंधित वास्तविक भाषाई व्यवहार का भी अध्ययन करना है। वस्तुतः भाषा के प्रयोक्ता मानव का भाषाई व्यवहार सूक्ष्म एवं जटिल मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं पर आधारित है। मनोभाषाविज्ञान को मानवीय क्रिया के रूप में भाषा के अध्ययन, उपार्जन एवं व्यवहार से संबद्ध मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं का समुच्चय कहा जा सकता है।

विस्तृत परिप्रेक्ष्य में मनोभाषाविज्ञान के अध्ययन के प्रमुख विषय ये हो सकते हैं :

1) **सामान्य अधिगम सिद्धांत (General learning theory) :** इसमें केवल कुछ आधारभूत मान्य अधिगम सिद्धांतें की चर्चा होती है जो कि भाषार्जन की प्रक्रिया को समझने में सहायक होते हैं।

2) **वाचिक व्यवहार और अनुबंधन (Verbal behaviour and conditioning) :** इसमें भाषिक तत्वों तथा मनोवैज्ञानिक क्रियाओं का संपृक्त अध्ययन किया जाता है।

3) **भाषा अधिगम के प्रमुख मानक सिद्धांत :** इनमें दो या तीन ही ऐतिहासिक महत्व के हैं, उन्हीं का उल्लेख किया जाता है। आजकल बहुभाषी वातावरण में अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया जानने का कुतूहल महत्वपूर्ण होता जा रहा है।

4) **भाषा और संज्ञान में संबंध :** व्होर्फ का 1930 और 1940 के प्रारंभ में भाषा और विचार के संबंध में किया गया कार्य इस विषय के केंद्र में है, जो भाषा और संज्ञान के बीच का संबंध है। संज्ञानात्मक व्यवहारों में भाषा के योगदान पर आजकल व्यापक अनुसंधान हो रहे हैं। मनोभाषाविज्ञान का यह महत्वपूर्ण विषय है।

5) **सार्वभौमिक तत्वों (Languistic universals) की प्रकृति :** संरचनात्मक भाषाविज्ञान के संदर्भ में इस पर कुछ काम हुआ है। इधर ग्रीनबर्ग (1963, 1966), बाश और हार्मस (1968) का कार्य उल्लेखनीय है। इसके कार्यों से सार्वभौमिक तत्वों के नये-नये आयाम खुल रहे हैं। मानव भाषाओं में मानव चिंतन की समरूपता के अनुरूप एक रूपता के लक्षण पाए जाने की संभावनाएँ बढ़ रही हैं।

द्वितीय भाषा अधिगम और द्विभाषिकता ये दोनों एक समस्या के दो पक्ष हैं, जैसे भाषार्जन और दो तीन भाषाओं का एक समय में पाया जाना। द्वितीय भाषा शिक्षण के क्षेत्र में भी इस काम का उपयोग किया जा सकता है।

भाषाई प्रक्रियाओं के संदर्भ में मनोभाषाविज्ञान में न केवल भाषिक रूपों को सीखने की प्रक्रिया और संप्रेषण के प्रकार्य के विकास पर चर्चा होती है, अपितु संदेशों की विचित्रता (विचार की विशिष्टताओं के संदर्भ में), बालक द्वारा संवेदना आदि भी इसके वर्ण्य विषय है। ये विषय मात्र भाषा शिक्षण के लिए महत्वपूर्ण नहीं हैं, अपितु भाषा वैज्ञानिकों के लिए भी उपयोगी हैं जो व्युतपादन नियमों के मार्ग ढूँढ़ते हैं, और बाल भाषा के आधार पर भाषा को समझने की कोशिश करते हैं। इसके अतिरिक्त मनोभाषाविज्ञान व्याधिकीय स्थितियों के कुछ परिवर्तनों में सहायता मिलती है, ताकि वाक् चिकित्सा में प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो सके। एक भाषा का ज्ञान दूसरी भाषा की अभिव्यक्ति या ग्रहण में प्रभाव के कारण वक्ता के अचेतन में भाषाओं के संपर्क का कार्य करता है। इसके अंतर्गत अन्य भाषा शिक्षण की समस्या, अनुवाद की समस्या, और द्विभाषिकता का भी अध्ययन होता है।

मनोभाषाविज्ञान के सामने कुछ प्रमुख ज्वलंत समस्याएँ हैं, जिनके संतोषजनक तथा विश्वसनीय समाधान में वह लगा हुआ है :

1) बालक अपनी मातृभाषा कैसे सीखता है?

2) बाल भाषा और वयस्क भाषा में क्या अंतर है? पहली दूसरी में कैसे बदलती है?

3) भाषा अधिगम सार्वभौमिक है। तब भी यह पता लगाना है कि इसका अधिगम कैसे होता है?

4) भाषिक रूप से सर्जित की गई और संवेदनात्मक रूप से उत्पन्न भाषा की इकाई में क्या संबंध है?

5) वाक्यों का उत्पादन कैसे होता है और वे कैसे समझे जाते हैं?

इन समस्याओं का सबंध मात्र भाषा की प्रवृत्ति और संरचना के समझने में सहायक नहीं है, वरन् भाषा योजना बनाने, भाषा पाठ्यक्रम तैयार करने तथा शिक्षण तकनीक के निर्माण में भी ये समस्याएँ सकारात्मक या नकारात्मक भूमिका निभा सकती हैं।

14.3 बालक में संज्ञानात्मक विकास

व्यक्ति में गर्भागमन (Conception) के क्षण से मृत्यु तक हमेशा परिवर्तन होता रहता है। वह कभी एक-सा नहीं रहता। शैशवावस्था और बाल्यावस्था भर उसकी शारीरिक और बौद्धिक उन्नति होती रहती है, जो कि युवावस्था की ओर बढ़ने की निशानी है। तब भी परिवर्तन रुकते नहीं, वे धीमी गति से निरंतर होते रहते हैं, तब तक जब तक कि ह्रास की

स्थिति नहीं आ जाती! अतः विकास एक सातत्य प्रक्रिया है, जो जन्म के पूर्व से ही प्रारंभ हो जाती है। परिवर्तनों की लंबी निरंतर प्रक्रिया में जन्म केवल एक आकस्मिक घटना ही है, प्रारंभ नहीं।

कोई भी व्यक्ति सभी शारीरिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों से अवगत नहीं हो सकता। प्रारंभिक वर्षों में, जबकि परिवर्तनों की गति काफी तीव्र रहती है, परिवर्तन स्पष्ट ध्यान में रहते हैं, क्योंकि व्यक्ति को उनके अनुसार अपना व्यवस्थापन करना पड़ता है। और यह भी कि व्यक्ति इन परिवर्तनों का स्वागत करता है, क्योंकि इनसे बुद्धिशील या विकासमान स्थिति का आभास होता है। इसके विपरीत यौवनावस्था के बाद बूढ़े होने के चिह्न स्पष्ट होने लगते हैं।

(क) **विकास का का अर्थ :** विकास का अर्थ विशाल या वृद्धिशील होने तक ही सीमित नहीं है, अपितु यह एक क्रमिक व्यवस्थित विकास की संबंधित अवस्थाओं का नाम है, जिसका उद्देश्य परिपक्वता है। आगे के उद्धरण में Progressive शब्द से ही स्पष्ट है कि इसकी दिशा अग्रगामी है, पश्चगामी नहीं।

"Development is not limited to growing larger. Instead, it consists of a progressive series of changes of an orderly coherent type towards the goal of maturity."

Orderly और coherent शब्द से स्पष्ट है कि विकास अव्यवस्थित नहीं, अपितु व्यवस्थित है। इसमें विराम नहीं है। विकास की प्रत्येक स्थिति में आपसी निश्चित संबंध है। प्रत्येक स्थिति अपने से पूर्व स्थिति से और भविष्य की स्थिति से संबद्ध है।

जैसेल के अनुसार "Development is more than a concept, it can be observed, appraised, and to some extent even measured in three major manifestations : (A) Anatomic, (B) Physiologic and (C) Behavioural."

विकास केवल एक संकल्पना नहीं, वह उससे अधिक भी कुछ है। उसकी भौतिक सत्ता है: उसे देखा, परखा और मापा जा सकता है। विकास की तीन प्रमुख दिशाएँ मानी गई हैं–(1) आंतरिक संरचनागत, (2) शारीरिक और (3) व्यवहारिक।

ख) **विकास का अध्ययन :** व्यक्ति का विकास नई क्षमताओं और नये गुणों के रूप में होता है। यह निम्न स्तर से उच्च स्तर की क्रियाओं के मध्य संक्रमण की तरह होता है। परिपक्वता के प्रारंभिक वर्षों से अधिक शीघ्रता से विकास होता है, बाद में कम। मानव विकास के काल को समझने के लिए दो पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं। प्रथम में विभिन्न आयु के समूहों में बालकों का मूल्यांकन करके आयु के विकास का प्रतिमान निकाला जाता है। दूसरे प्रकार में एक ही व्यक्ति का बाल्यकाल से किशोरावस्था तक सदा निरीक्षण करके उसका विकास देखा जाता है। दूसरा प्रकार बहुत ही उचित परिणाम देता है, लेकिन यह व्यावहारिक दृष्टि से कठिन है। इन दोनों प्रकारों से आज हम कई परिणाम देख सकने में सफल रहे हैं।

ालक के साधारण विकास को जानने के कई महत्वपूर्ण लाभ हैं। इससे यह पता लग ाकता है कि एक बालक प्रत्येक आयु में क्या-क्या क्रियाएँ करता है और किस आयु में ेभिन्न क्रियाएँ मिलकर एक परिपक्व अवस्था को प्राप्त होती हैं। शारीरिक अंगों में प्रमुख हैं थम और द्वितीय बार आने वाले दाँत एवं प्राथमिक और द्वितीय लैंगिक चिह्न। बौद्धिक ाप्तियों में उत्सुकता (विशेषकर लैंगिक ज्ञान), काम वासनानुभूति का ज्ञान, नैतिक स्तर,

धार्मिक विश्वास, विभिन्न भाषाएँ और सभी तरह की मनस्तापीय प्रवृत्तियों के विकास की स्थितियों का बोध होता है।

मानव विकास की कुछ विशेषताएँ हैं जो इसके रूप निर्माण पर प्रभाव डालती हैं। उनका उल्लेख आगे किया जा रहा है।

(क) **विकास एक व्यवस्था पर चलता है :** प्रत्येक मनुष्य या प्राणी विकास के एक साँचे पर चलता है। विकास की गति और सीमाएँ सभी के लिए एक-सी हैं। मनुष्य में विकास अव्यवस्थित और बेढ़ंगा नहीं होता, बल्कि एक व्यवस्थित साँचे में ढला हुआ होता है। प्रत्येक स्थिति विगत स्थिति का फल है, और आने वाली स्थिति की पूर्व स्थिति है। एक बच्चा चलने से पहले खड़ा होता है और दाढ़ से पहले दाँत आते हैं।

व्यावहारिक साँचा अनुभव से प्रेरित रहता है। यद्यपि सब बच्चे एक से नहीं होते पर उनके विकास का ढंग एक-सा होता है। प्रसवपूर्व और प्रसव पश्चात् स्थिति शिरः पादाभिमुख अनुक्रम (Cephalocaudal sequence) में विकास होता है। ऊपरी भाग की चमड़ी पहले संवेदनशील होती है और नीचे वाली बाद में। यही स्थिति गतिवाही प्रकार्य (Motor function) में भी देखी जा सकती है। विकास सिर्फ सिर से पैर की ओर ही नहीं होता अपितु केंद्र से परिधि की ओर भी होता है। विकास का सामान्य साँचा इस प्रकार होता है:

1. 4–6 सप्ताह में 12 Occulomotor muscles पर नियंत्रण।
2. 16–18 सप्ताह में गर्दन और हाथों की मांस पेशियों पर नियंत्रण।
3. 28–40 सप्ताह में पेट और हाथों पर नियंत्रण जिसके कारण वह बैठ और खिसक सकता है।
4. 40–52 सप्ताह में पैर, उंगलियों और अँगूठों पर नियंत्रण।
5. दूसरे साल में चल सकता है, दौड़ सकता है, शब्द और पदांश बोलता है, व्यक्तियों को पहचानता है।
6. तीसरे साल में वाक्य बोलता है, शब्दों को प्रस्तुत करता है।
7. चौथे साल प्रश्न पूछता है, दैनिक कार्यों पर आत्मनिर्भर हो जाता है।
8. पाँचवें साल बालक गतिवाही नियंत्रण में पूर्णतया समर्थ हो जता है। वह कूद सकता है, उछल सकता है। बाल-भाषा (Infantile talk) बोलता है औः कहानी सुना सकता है।

(ख) **विकास सामान्य से विशिष्ट प्रतिक्रिया की ओर बढ़ता है :** गतिवाही हो या बौद्धिक विकास-सामान्य से विशिष्ट की ओर होता है। बच्चा पहले पूरा शरीर घुमाता है, बाद में एक-एक भाग को। पहले वह खिसकना, चलना सीखाता है, बाद में ठोकर मारता हैं।

पहले वह बड़ी चीज़ें देखता है, बाद में छोटी चीज़ें। बच्चे साधारण कार्य पहले करते हैं, जटिल बाद में। बोलने में भी वह पहले बबलाता है बाद में शब्द कहता है।

(ग) **विकास निरंतर होता है :** विकास हमेशा होता है। यह धीरे-धीरे होता है। शारीरिक और बौद्धिक विकास किशोरावस्था खत्म होने तक होता रहता है। कोई भी चिह्न एकाएक विकसित नहीं होता। दाँत एकाएक नहीं आते, उनका विकास गर्भावस्था में ही होता रहता है, पर उनका अस्तित्व बाद में दिखाई देता है। बोलना भी रोने से ही धीरे-धीरे विकसित होता है। विकास में निरंतरता है, अतः एक स्थिति दूसरे को प्रभावित करती है।

(घ) **विकास की गति में वैयक्तिक भिन्नताएँ एक (स्थिर) ही रहती है :** विकास की गति स्थिर रहती है। जो बालक पहले एकदम बहुत तेज़ी से वृद्धि करते हैं, उनकी गति तेज ही रहती है। जिनकी गति कम रहती है, वे विकास में भी पीछे रहते हैं।

(ङ.) **विभिन्न अंगों का विकास विभिन्न गति से होता है :** सभी अंग एक-सी गति से विकसित नहीं होते। शारीरिक और बौद्धिक अंगों का विकास भिन्न गति से होकर अपने-अपने समय पर पूर्णता प्राप्त करता है। कुछ अंगों का विकास तीव्र रहता है, जबकि दूसरों में कम या रुक-रुक कर।

(च) **अधिकांश गुण या लक्षण विकास से संबद्ध रहते हैं :** क्षतिपूर्ति का सिद्धांत यहाँ नहीं लागू होता। यह नहीं हो सकता कि एक बालक जो एक क्षेत्र में बहुत होशियार है, दूसरे क्षेत्र में बुद्धू निकले। जैसेल ने कहा है – "The products of growth are envisaged as a fabric in which threads and designs are visible."

सशक्त बालक ही बुद्धिमान होता है मंद बुद्धि बालक शारीरिक रूप से भी कमज़ोर ही रहेंगे। **विकास को प्रभावित करने वाले तत्व** विकास की गति और रीति को शरीर के बाहर या भीतर की परिस्थितियों के परिवर्तन से परिवर्तित किया जा सकता है। शारीरिक वृद्धि, भोजन एवं परिस्थितियों जैसे ताजी हवा, मौसम आदि से प्रभावित होती है। विकास किसी भी कारण से नहीं,बल्कि कई संबद्ध कारणों से होता है। इन कुछ महत्वपूर्ण कारणों की चर्चा आगे की जाएगी।

(क) **बुद्धि :** यह सबसे प्रमुख कारण होता है। उच्चस्तरीय बुद्धि विकास बढ़ाती है जबकि निम्नस्तरीय कम करती है। प्रतिभावान लड़के 13 महीने में, औसत लड़के 14 महीने में, मंद 22 महीने में और जड़ 30 महीने में सामान्य विकास की स्थिति को प्राप्त करते हैं।

(ख) **यौन (Sex) :** शारीरिक और बौद्धिक विकास में यौन महत्वपूर्ण है। जन्म के समय लड़के लड़कियों से बड़े रहते हैं, पर लड़कियाँ अधिक तेज़ी से बुद्धि प्राप्त करती हैं। वे लड़कों से एक वर्ष पहले से युवा हो जाती है। लड़कों से पहले ही उन्हें बौद्धिक पूर्णता प्राप्त होती है।

(ग) **आंतरिक रस स्राव की ग्रंथियाँ (Glands of internal secretion) :** ग्रंथियाँ रस स्राव के कारण शारीरिक और बौद्धिक विकास को प्रभावित करती हैं। बहुत अधिक सक्रिय बाल्य ग्रंथि (Thymus glands) बालक को अधिक देर तक बौद्धिक रूप से बालक बना देती हैं। यौन ग्रंथियों में स्राव की कमी से परिपक्वता देर से होती है।

(घ) **भोजन :** प्रारंभिक वर्षों में भोजन का विकास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। केवल खाने की मात्रा का महत्व नहीं है, वरन् उसमें पाए जाने वाले विटामिन का भी महत्व है। विटामिनों की कमी से खराब दाँत और चमड़ी की बीमारी आदि देखी जा सकती है।

(ङ.) **ताजी हवा और प्रकाश :** प्रारंभिक वर्षों में ताजी हवा और प्रकाश का भी महत्व है। इससे बौद्धिक विकास भी प्रभावित होता है।

(च) **बीमारी और चोट :** सिर में चोट, अन्य घाव, वह चाहे बीमारी से हो या दवा से, टाईफाइड ज्वर आदि विकास में रुकावट डालते हैं।

(छ) **जाति :** उत्तरी योरोप में बालकों की अपेक्षा भूमध्यसागरीय बालक शीघ्र बड़े हो जाते हैं। नीग्रो और भारतीय जातियाँ दूसरी गोरी-पीली जातियों की अपेक्षा धीरे-धीरे विकसित होती हैं।

(ज) **संस्कृति :** विकास को संस्कृति भी प्रभावित करती है, पर अधिक नहीं।

(झ) **परिवार में स्थान :** प्रथम बालक की अपेक्षा दूसरे बालक अधिक शीघ्र विकसित होते हैं, क्योंकि उनको अनुकरण की सुविधा प्राप्त होती है।

पियाजे के विचार

संज्ञानात्मक शब्द या संज्ञानात्मक विकास एक उच्च प्रजातिगत (Genetic) शब्द है, जो व्यवहार का हर पक्ष समेट लेता है। ब्रूनसविक (1957) के अनुसार संज्ञानात्मक ज्ञानार्जन की प्रक्रिया है। पियाजे के चिकित्सकीय पद्धति के अनुसार एक व्यक्ति की संज्ञानात्मक विकास की अनुक्रमिक अवस्थाएँ ये हैं : (1) संवेदी गति (Sensory motor) (2) पूर्व संकार्यात्मक (Preoperational) (3) मूर्त संकार्यात्मक (Concrete operational) और (4) रूपात्मक संकार्यात्मक चरण (Formal operational Stages) इनमें स्पष्ट रूप से गुणात्मक परिवर्तन या भेद है।

पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास के तीन महत्वपूर्ण संप्रत्यय हैं–संज्ञानात्मक संरचना, संज्ञानात्मक प्रकार्य और संज्ञानात्मक विषयवस्तु। संज्ञानात्मक संरचना जो कि एक समैकित पूर्णता है, अनेक एकल संरचनाओं से बनी होती है जो कि गुणात्मक और संख्यात्मक रूप से विकास के दौरान परिवर्तनों से गुजरती है। वास्तव में संज्ञानात्मक विकास संज्ञानात्मक संरचना के परिवर्तनों का पर्याय है।

संज्ञात्मक प्रकार्य में महत्वपूर्ण है–व्यवस्था और अनुकूलन। पहला समैकिंकता के लिए होता है और दूसरा समीकरण और समायोजन के लिए। संज्ञानात्मक विषयवस्तु वातावरण के आंतरिक प्रतिनिधित्व से संबद्ध है और व्यक्ति के व्यवहार से भी। पियाजे संज्ञानात्मक विकास की तीन प्रक्रियाएँ मानते हैं :

1. जीव का अपने वातावरण के हिसाब से अपने विकास के दौरान अनुकूलन।
2. अपनी संरचना के निर्माण के दौरान बुद्धि का विकास।
3. संज्ञानात्मक संबंधों का संगठन।

ज्ञान को भी पियाजे ने दो प्रकार का माना है–(अ) संक्रियात्मक (ब) आलंकारिक। संक्रियात्मक ज्ञान में सत्य को रूपांतरित किया जाता है। आलंकारिक ज्ञान में सत्य जैसा है उसे वैसा ही दिखाया जाता है। पियाजे (1952) का काम बहुत पुराना होने पर भी आज भी संज्ञानात्मक विकास में उसकी विचारधारा महत्वपूर्ण है। आधुनिक मनोभाषाविज्ञान में पियाजे का यह मत महत्वपूर्ण है कि मनुष्य की तार्किक क्षमता अंतर्निहित है, न कि सीखी हुई। मनोभाषाविज्ञान में उसने बच्चों की भाषा की संरचना के संदर्भ में यह माना है कि संवेदनात्मक गतिविकास महत्वपूर्ण है। इस पृष्ठभूमि के आधार पर उसने बुद्धि को मानसिक संरचनाओं के संदर्भ में वर्णित किया, जो कि बच्चे में उस समय आती है जब अपने को वातावरण से समायोजित करने में यह विभिन्न चरणों से गुजरता है। कुछ विद्वानों ने पियाजे के चरणों को वास्तविक भाषा विकास का अनुक्रम समझने में सहायक माना। पियाजे की रुचि इस बात में भी है कि विभिन्न चरणों में बच्चे क्या जानते हैं? कैसे जानते हैं? उसका ध्यान इस बात की ओर भी था कि बच्चे अपूर्ण ज्ञान के किन चरणों से होकर वयस्कों के ज्ञान और संकल्पनात्मकता तक पहुँच पाते हैं।

प्रथमतः पियाजे का ध्यान विचार के विकास पर था, न कि भाषा पर। वे बच्चे के विकास में दो चरण मानते हैं–अहंकेंद्रित भाषा और समाज सापेक्षित भाषा। अहंकेंद्रित भाषा तब देखी जाती है, जब बच्चा अकेला होता है या दूसरों के सामने होता है। बच्चा संप्रेषण में रुचि न लेकर स्वयं ही बोलता जाता है। समाज सापेक्षित भाषा के समय वह दूसरों की बात सुनता है, संप्रेषण में रुचि लेता है। पियाजे के संदर्भ में संज्ञानात्मक विकास का अपना विकासात्मक अनुक्रम है। यद्यपि भाषा कुछ मामलों में संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र को भी छूती चलती है, तथापि दोनों अलग क्षेत्र है। बालक वस्तुओं के प्रत्यक्ष संपर्क में आकर बहुत कुछ सीखता है, अपने वातावरण को समझने के लिए विचारों को बनाता है और तब संज्ञानात्मक विकास तेजी से होता है।

संज्ञानात्मक विकास मुख्यतः मानसिक विकास है। मानसिक विकास में पियाजे ने भाषा विकास पर भी विशद अनुसंधान किया है। पियाजे के अनुसार बालक की 2 से 7 वर्ष की आयु पूर्वोक्त पूर्व संकार्यात्मक या अंतःप्रज्ञात्मक चरण भाषा विकास की दृष्टि से स्वर्णिम अवधि मानी गई है। इस आयु में शब्दावली (संकल्पनाएँ) तथा व्याकरणिक वाक्यों का विकास नाटकीय ढंग से होता है। शब्दों के बोध और प्रयोग की क्षमता भी तीव्र गति से बढ़ती है। औसत दो वर्ष का बालक 200 से 300 शब्दों तक समझने लगता है। औसत 5 वर्ष का बालक 2000 शब्दों (1000% वृद्धि) को समझने में सक्षम हो जाता है। दो वर्ष का बालक एक या दो शब्दों के वाक्य, और एक वर्ष बाद ही आठ से दस शब्दों के वाक्य बोलता है। इस आयु में सामूहिक एकालाप (Collective Monologue) की प्रतिभा भी विकसित होती है। इस भाषिक क्षमता का कारण बालक के मस्तिष्क में बिंबों या प्रतिमाओं के संचयन की क्षमता है। इस काल में अंतः प्रज्ञात्मक कार्य अधिक होते हैं, भले ही कार्य कभी-कभी अतार्किक लगें। यह आयु उच्चस्तरीय कल्पनाशील की है। जादुई विचारों और अतिकल्पनाओं के साथ बच्चे स्वप्न द्रष्टा होते हैं।

बालक अपनी आयु के 7 से 11 वर्ष में (संक्रियात्मक चिंतन) तार्किक, प्रत्यक्षवादी युवा बन जाता है। इस अवस्था में बालक की मानसिक संरचना और अधिक संगठित हो जाती है। समस्याओं के अंतर्संबंध को समझ कर उनके परीक्षण में वह समर्थ बन जाता है। माप, तौल और गणना की क्षमता युक्त दुनिया को तार्किक विधि से जानने का प्रयास करता है। चिंतन के सकारात्मक और नकारात्मक पक्षों को भी समझने लगता है। नियमबद्ध कामों में रुचि लेता है और कौशल तथा स्थूल कार्यकलाप उसे पसंद आते हैं।

11 से 16 वर्ष की आयु में बालक रूपात्मक संक्रियाएँ करता है। उसका रूपात्मक चिंतन और अधिक संगठित हो जाता है। प्रतीकात्मक अर्थ, लक्षण, व्यंजना को वह समझने लगता है। तार्किक, तर्काधार (रैशनल) और भावात्मक रचना कौशलों (स्ट्रैटेजीज़) के अर्जन में वह अब समर्थ है, क्योंकि वह अब वयस्क बन गया है।

14.4 भाषा अर्जन

भाषिक विकास मानव प्राणी की एक विशिष्टता माना जाता है। भाषा को मानव व्यवहार की विशिष्टता कहने में भाषा की अपनी ही आंतरिक तथा बाह्य जटिल संरचना का हाथ है। प्रसिद्ध भाषा शास्त्री ब्लॉक एंड ट्रेंगर ने भाषा को यों परिभाषित किया है– "भाषा यादृच्छिक वाक् प्रतीकों की व्यवस्था है, जिसके द्वारा उस भाषाई समुदाय के लोग परस्पर विचारों का आदान-प्रदान एवं सहयोग करते हैं।" इस परिभाषा के आधार पर भाषा की वस्तु और रूप के संबद्ध में ये पाँच विशेषताएँ स्पष्ट करती हैं :

(1) भाषा एक व्यवस्था है, (2) यह व्यवस्था प्रतीकों से बनी है, (3) ये प्रतीक वाचिक हैं, (4) वाचिक प्रतीकों तथा अर्थ के बीच संबंध यादृच्छिक है, अनिवार्य नहीं, और (5) भाषा का यह रूप या वस्तु एक साधन के रूप में समाज के उपयोग के लिए है, निश्चय ही यह

साधन मानव विकास और संस्कृति की एक विशिष्ट उपलब्धि है। इसलिए मानव शिशु भाषा सीखता है, मानवेतर प्राणियों के शिशु शुरू से आखिर तक इस साधन से वंचित ही रहते हैं। शिशु की भाषा संप्राप्ति की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के लिए दो शब्द आजकल प्रचलित हैं : (1) अर्जन (Acquisition) और (2) अधिगम (Learning) भाषा अर्जन तथा भाषा अधिगम तत्वतः दो नितांत अलग प्रक्रियाएँ नहीं हैं।

अर्जन अपने ही प्रयत्नों और अनुभवों से कुछ प्राप्त करने की प्रक्रिया है, जबकि अधिगम किसी विषय या कौशल के संबंध में ज्ञान या सूचना प्राप्त करने की प्रक्रिया है। अर्जन के लिए स्वाभाविक वातावरण तथा तद्गत अनुभव प्रमुख तत्व हैं और अधिगम के लिए अध्ययन-अध्यापन प्रमुख तत्व हैं।

बालक अपनी मातृभाषा सहज वातावरण में अपनी ही अंतर्दृष्टि या प्रयासों में सीखता है, इसीलिए इसे भाषा अर्जन कहा जाता है, और अनुभव तथा अध्ययन या प्रशिक्षण से सीखी गई भाषा की प्रक्रिया को भाषा अधिगम कहा गया है।

अब प्रश्न उठता है कि बालक भाषा का अर्जन या अधिगम केसे करता है? इस संबंध में मनोविज्ञान के दो संप्रदायों के विचार महत्वपूर्ण हैं। व्यवहारवादी मनोविज्ञानी यह मानते हैं कि बालक के भाषा अधिगम में कोई विशिष्टता नहीं होती। चलना, फिरना, खाना, पीना आदि कौशल जिस प्रकार सीखे जाते हैं, उसी प्रकार भाषा भी केवल अनुभव द्वारा या अभ्यास द्वारा सीखी जाती है। बालक में भाषा अर्जन की कोई जन्मज़ात क्षमता नहीं होती बालक कोरा कागज होता है। प्रशिक्षण के द्वारा उसके मन पर कुछ भी अंकित किया जा सकता है। इन विचारों को मानने वालों को अनुभववादी (Empiricist) कहा जाता है।

वास्तविकता यह है कि मातृभाषा अर्जन के संबंध में व्यवहारवादी या साहचर्यवादी मनोवैज्ञानिकों का कोई विशेष योगदान नहीं है, क्योंकि उनकी दृष्टि में सभी अधिगम रूप (Learning form) समान हैं। भाषा अधिगम बालक के मानसिक विकास या संप्रत्ययात्मक विकास का ही एक अंग है। इससे अधिक कुछ नहीं। भाषा अर्जन और भाषा अधिगम में भी व्यवहारवादी कोई भेद नहीं देखते। अर्जन और अधिगम का अलग-अलग संप्रत्यय पाँचवीं-छठीं दशाब्दी की देन है, जब संज्ञानवाद या बुद्धिवाद के चिंतन पर बल दिया जाने लगा। बाद में मनोभाषाविज्ञानियों ने भी भाषा अर्जन की धारणाओं को आगे बढ़ाया। अतः भाषा अर्जन के आधुनिक चिंतन को समझने के लिए संज्ञानवाद और मनोभाषाविज्ञान के इस संबंध में मूलभूत संप्रत्ययों को समझना आवश्यक है।

संज्ञानवादियों या बुद्धिजीवियों के अनुसार भाषा मानव की अपनी संपत्ति है। मानव शिशु भाषा अर्जन की सहजात (Innate) प्रक्रिया के साथ जन्म लेता है। बालक के मस्तिष्क में पहले से ही एक प्रदत्त संसाधक यांत्रिक व्यवस्था (Data Processing Mechanism) होती है। बालक भाषा के दत्त सामग्री को सुनता है (Input) और उसके बारे में प्राक्कल्पनाएँ करता है और मस्तिष्क के डाटा प्रोसेसिंग की सहायता से क्रमशः नियमों की खोज करता है और उन नियमों का आत्मीकरण या इंटर्नलाइजेशन (Internalisation) करता है। प्रदत्त संसाधन (डाटा प्रोसेसिंग) के बाद उन नियमों की खोज में कभी-कभी बालक गलतियाँ करता है, लेकिन ये गलतियाँ भाषा सीखने की प्रक्रिया में बालक की प्राक्कल्पनाओं और पूर्वपरीक्षण (Try out) का प्रतिनिधित्व करती हैं। भाषा अर्जन में उद्भासन (exposure) का महत्व नहीं है, महत्व है उसकी प्राक्कल्पना से निर्माण और समस्या समाधान की प्रक्रिया का। बालक अपने अंदर निहित एक निश्चित कार्यविधि (मैकेनिज्म) द्वारा भाषा सीखता है। भाषा अर्जन बालक की एक सर्जनात्मक प्रक्रिया है और यह एक अनिवार्य प्रक्रिया है। मंद से मंद बुद्धि वाला बालक एक भाषा अवश्य सीख लेता है।

ग्रके लिए सामान्य प्रतिभा की भी आवयकता नहीं होती। बालकों के मस्तिष्क में एक विक घड़ी होती है, जो उसके भाषा अर्जन की समय-सारणी को निर्धारित करती है। सीलिए भाषा अर्जन एक निश्चित चरणों में संपन्न होता है। और सर्वप्रथम जो भी भाषा र्जित की जा रही है, बालक की एक संभाव्य अनुमेय आयु में भाषा अर्जन के लगभग मान गुण और गति दिखाई पड़ती है।

पर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि संज्ञानवादी या मनोवादी (Mentalist) विद्वान भाषा को नव जाति की एक विशिष्ट संपत्ति (एंडोमेंट) मानते हैं और भाषा अर्जन को मानव शिशु ी सहजात और अनिवार्य प्रवृत्ति मानते हैं।

ज्ञानवादी इन धारणाओं से मिलती-जुलती बाते ही मनोभाषाविज्ञानी कहते हैं। इनकी भी ही मान्यता है कि शिशु में सहज भाषा अर्जन की व्यवस्था (इनेट लैंग्वेज़ एक्विजिशन ास्टम) होती है। इस मान्यता का आधार बालक का जैविक (जैनेटिक) विकास है। भाषा र्जन एक विशिष्टता है अर्थात् पशु-पक्षी की तुलना में मनुष्य जाति को यह कौशल, एक रदान के रूप में प्राप्त है, क्योंकि ध्वनियाँ उत्पन्न करने और कुछ हद तक तोते की तरह हराने की क्षमता पशु-पक्षियों में भी है, पर वाग्-यंत्रों पर नियंत्रण करके बोलने योग्य ानियों की श्रृंखला उत्पन्न करना मनुष्य जाति की विशेषता है। शिशु भाषा कैसे अर्जित रता है, इसके लिए संज्ञानवादी बालक के प्रदत्तसंसाधन (डाटा-प्रासेसिंग) क्षमता का ल्लेख करते हैं, और मनोभाषाविज्ञानियों के अनुसार इस प्रक्रम (प्रोसेग) से वह भाषा के ायमों की खोज नहीं करता, अपितु उसके मस्तिष्क में पहले से ही ये नियम विद्यमान रहते । शिशु के मस्तिष्क की तुलना कम्प्यूटर तकनीक से की जाती है। कम्प्यूटर में पहले से सामग्री भरी जाती है। बाद में संसाधन (प्रासेसिंग) के माध्यम से वांछित परिणाम निकाले ाते हैं। उसी प्रकार शिशु का मस्तिष्क जैविक रूप से अभिक्रमित (प्रोग्राम्ड) होता है। र्थात् शिशु में जन्म से ही एक जैविक उपकरण (जेंनेटिक अपरेटस) होता है, जो भाषा र्जन में सहायक होता है। इस अपरेटस में पहले से ही भाषा नियम या अर्जन संबंधी र्देश भरे होते हैं। जब वह भाषा का प्रयोग करता है, तो स्वतः खोजे गए नियमों के आधार र नए वाक्य नहीं बनाता, अपितु उसके मस्तिष्क के पूर्व से ही विद्यमान नियमों को भाषा योग द्वारा निश्चित (कन्फर्म) करते हैं। ये नियम उसके मस्तिष्क में किस रूप में रहते हैं सके लिए भाषा अर्जन युक्ति (Language acquisition device) की बात की जाती ।

ाषा अर्जन में चार प्रमुख क्रियाओं पर अधिकार करना होता है। ये क्रियाएँ एक दूसरे से बंधित हैं। एक में सफलता का अर्थ है दूसरे में सफलता। ये चार क्रियाएँ हैं :

1. दूसरों की भाषा को समझना
2. शब्द समूह का निर्माण
3. शब्दों को संयुक्त करके वाक्य निर्माण
4. उच्चारण

न क्रियाओं पर आगे के प्रसंगों में विस्तार से प्रकाश डाला जाएगा।

ीवन के प्रारंभिक छह महीनों में चीखने और बबलाने से शिशु की भाषा की प्रगति शुरू ाती है। पहले शिशु एकाक्षरीय ध्वनियाँ बोलता है, जैसे, मा, ऊ, दू, आ इत्यादि। उसके बाद ही पुनरावृत्ति द्वारा द्विअक्षरीय ध्वनियाँ बन जाती हैं। जैसे बा-बा, मा-मा, चा-चा। इसके बाद ी स्थिति निष्क्रिय भाषा की प्राप्ति की है, जिसमें बालक समझता है, पर प्रयोग नहीं कर ाता। ऐसा वर्ष के अंतिम भाग में होता है। दूसरे वर्ष के प्रारंभिक भाग में बालक क्रिया से ताता है कि वह पानी, कुत्ता, दूध और नहाने का अर्थ जानता है, पर शब्द बोल नहीं पाता।

यह समझने की शक्ति अनुबंधन (Conditioning) का परिणाम है, क्योंकि शब्दों का सुनना वस्तु की उपस्थिति के ही साथ होता है।

इस निष्क्रिय भाषा की स्थिति के बाद ही सक्रिय शब्दावली की प्रगति शुरू हो जाती है। शिशुओं के बबलाने में da, ma, wa, poo जैसे शब्द सुनाई पड़ते हैं, जिसे प्रौढ़ लोग Ready, mama, water, spoon के अर्थ में लेते हैं।

शिशु में वाक् विकास अधोलिखित क्रम से होता है :

1.	क्रंदना	12 सप्ताह	स्वरों की तरह मुस्कराना
2.	किलकना	16 सप्ताह	कुछ ध्वनियाँ स्वरों जैसी
		20 सप्ताह	व्यंजनों को साथ
3.	बबलाना	6 महीने	किलकने से बबलाने की ओर
		8 महीने	बार-बार अभ्यास, अनुतान पैटर्न
		10 महीने	गरगलाहट के साथ आवाज का मिश्रण
4.	प्रारंभिक वाक्यविन्यास		शब्दों के बीच अंतर समझना
	4.1 प्रथम शब्द	12 महीने	एक शब्द, आदेश का बोधक, मामा, दादा आदि
		1½ वर्ष	3-50 तक शब्द, अनुतान साँचा जटिल
	4.2 द्विशब्दीय वाक्य	2 वर्ष	दो शब्दों के वाक्य, आसपास की जटिल वस्तुओं के नाम
	4.3 पाइवट व्याकरण	2½ वर्ष	शब्दावली में तेजी से विकास बाल व्याकरण के लक्षण
5.	उत्तर वाक्य विन्यास	3 वर्ष	शब्दावली में आश्चर्याजनक विकास
	(टेलीग्राफ़िक भाषा)	4 वर्ष	वयस्कों जैसा व्याकरण भाषा का पूर्ण विकास

आगे की तालिका से शिशु का उच्चारण विकास और अधिक स्पष्ट हो जाएगा :

उच्चारण/ध्वनि विकास का क्रम

आयु	स्वर	व्यंजन और शब्द
18 मास से	अ, आ, इ, ई, उ, ऊ ए	प, म, त, ब, द, व, न, र,
22 मास तक	आई, ओई	पापा, बाबा, मम मामा,
23 मास से	एय, उई, अय	जज, ज, नन, दद,
24 मास तक		दादा, दाई
25 मास से	आओ	बब, ल बद, आप
30 मास तक		
31 मास से लेकर		क, ग,

(सुगन भाटिया, 1983, पृ. 27 साभार उद्धृत)

शब्द-समूह का विकास

शब्द-समूह के विकास में दो विभिन्न रूप देखे जा सकते हैं :

(i) साधारण शब्द-समूह, जिसमें साधारण अर्थ वाले शब्द आते हैं, जो विभिन्न स्थितियों में प्रयुक्त हो सकते हैं। पानी, दूध, रोना, सोना, छोटा और क्रिया खाना, पीना, आना, जाना आदि इस श्रेणी में आते हैं।

(ii) विशिष्ट शब्द-समूह जिसका विशिष्ट अर्थ हो और जो कुछ ही परिस्थितियों में प्रयुक्त हो।

साधारण शब्द-समूह के शब्द अधिक उपयोगी होते हैं। अतः उन्हें पहले सीखा जाता है। प्रत्येक स्थिति में साधारण शब्द समूह विशिष्ट शब्द समूह से बड़ा होता है।

ाक्य विकास

क वर्ष और डेढ़ वर्ष की आयु के मध्य शिशु अपने जीवन का प्रथम शब्द बोलता है। एक ाब्दीय वाक्य को अभिव्यक्ति के स्तर पर पूरे वाक्य का रूप देता है। वाक्य रचना के वेश्लेषण में इसे वाक्य का प्रारंभिक रूप माना जाना चाहिए। व्याकरण का प्रारंभ भी इसी ावस्था से माना जाना चाहिए।

ा' कहकर गुड़िया की ओर संकेत करने का अर्थ है 'मुझे गुड़िया दो' और 'गेंद' कहकर ांकेत करने का अर्थ भी 'गेंद दो' है। इस प्रकार के एक शब्दीय वाक्य 12 से 18 महीने ी उम्र तक देखे जाते हैं, जिसके बाद बालक दो या तीन शब्द मिलाकर बोलता है।

ोन वर्ष में बालक व्याकरण पर अधिकार ज़माना शुरू करता है और हर साल इसमें प्रगति रता है। स्कूल और कालेज तक भी यह प्रगति चलती रहती है। लिखने में भी समान ्रुटियाँ होती हैं। कुछ तो भाषा की रचना ही ऐसी होती है कि बालक अनुमान करते हैं और ्ल भी करते हैं।

त्रिशब्दीय वाक्य से पहले भी पूर्ण अर्थ देने वाले सरल वाक्य मिलते हैं, जैसे 'मन्ना जान' ार्थात् मन्ना जाएगा, 'बाबा दाना' गाना लगाओ (रेडियो लगाओ) आदि त्रिशब्दीय वाक्य क आते-आते तार-नुमा (टेलीग्रैफ़िक भाषा सामने आने लगती है। इस तरह की भाषा ानुकरण और अल्पीकरण की प्रक्रिया की वजह से हो जाती है। बालक इस तरह की भाषा तार की भाषा की तरह ही संज्ञाएँ, क्रियाएँ तथा विशेषण सम्मिलित करता है, पर कुछ ाब्द छोड़ देता है, जो प्रकार्यात्मक होते हैं। शब्द क्रम अधिकतर सही होता है। जहाँ तक ान्विति का सवाल है, वह कुछ लचीली होती है। खास कर वचन और लिंग के संदर्भ में ांयुक्त वाक्य पहले तो दो वाक्य एक के बाद दूसरे वाक्य रख कर ही बनते हैं, बिना किसी ांयोजक के प्रयोग के। जैसे :

'मन्ना अहा, छोटे अहा' मनु अच्छा है, छोटू अच्छा है।

िषेधात्मक वाक्य : बालक में नकारात्मक या निषेधात्मक वाक्यों का विकास बहुत शीघ्र ोता है, पर प्रारंभ में केवल सिर हिलाकर, मुँह मोड़कर अस्वीकृति जताई जाती है। यहाँ क कि बहुत छोटा शिशु भी दूध न पीने की अस्वीकृति हाव-भाव से जता सकता है। प्रथम कारात्मक शब्द 'नहीं' ही है। द्विशब्दीय वाक्य में ही नहीं एक शब्दीय वाक्य में भी 'नई' नहीं) के रूप में यह मिल जाता है। 'मत' और 'न' का प्रयोग बहुत बाद में देखा जाता है ार्थात् तीन वर्ष के बाद।

ाज्ञार्थक वाक्य : विविध विधि या आज्ञार्थक वाक्य का विकास बहुत प्रारंभिक अवस्था में ो देखा जाता है। 'आ' शब्द आओ के लिए एक शब्दीय वाक्य में मिल सकता है। अनुरोध, ाग्रह वाले विविध वाक्य जैसे दो, लो, आओ, बहुत देखे जाते हैं। आदरार्थक आइए, ाइए, बैठिए, आदि बहुत बाद में आते हैं।

4.5 भाषा अधिगम

ार्जन बालक के सहज विकास के साथ चलने वाली प्रक्रिया है। विकास के अनुक्रम में ालक अनेक कौशलों, जैसे—चलना, बैठना, दौड़ना, खाना-पीना आदि का अर्जन करता है। ाषा का विकास भी इसी क्रम में यथासमय प्रारंभ हो जाता है। भाषा का अर्जन भी मानव शिशु के व्यक्तित्व निर्माण का ही प्रयास है। इसलिए अर्जन क्रिया को भी सहज क्रिया माना ा सकता है, लेकिन अधिगम स्वाभाविक क्रिया नहीं है। मनोविज्ञानी गेट्स के अनुसार शिक्षण एवं अनुभव के द्वारा व्यवहार में होने वाले परिवर्तन या परिवर्धन अथवा संशोधन को ाधिगम कहते हैं। वुडवर्थ का कहना है 'नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करने ी प्रक्रिया ही अधिगम की प्रक्रिया है।' स्किनर की मान्यता है— 'अधिगम व्यवहार में

उत्तरोत्तर सामंजस्य की प्रक्रिया है।' इन परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है—अधिगम प्रशिक्षण तथा अनुभव द्वारा व्यवहार में ऐसा परिवर्तन है जो कि अपेक्षाकृत स्थायी होता है। वस्तुतः अधिगम एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिसमें अनेक प्रकार की क्रियाएँ तथा प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं।

अधिगम की क्रिया कैसे सम्पन्न होती है? मुख्य रूप से व्यवहारवादी (Behaviourists), बुद्धिवादी या संज्ञानवादी (Mentalists or cognitivists) मनोवैज्ञानिकों के विचार इस संबंध में भिन्न-भिन्न हैं। व्यवहारवादी अधिगम के संदर्भ में वातावरणगत तत्वों को अधिक महत्व देते हैं। उनका मत है कि बालक अपने आपमें निष्क्रिय रहता है, उसका व्यवहार आंतरिक तथा बाह्य तत्वों से नियंत्रित रहता है। वह एक साधन मात्र है, जिसे विशेषकर बाह्य वातावरणगत तत्व कुछ नया सीखने के लिए बाध्य करते हैं। किसी विशिष्ट वातावरण में उद्दीपन 'एस' और अनुक्रिया 'आर' का बंधन (Bond) ही अधिगम है। यह बंधन किसी नाड़ी तंत्र में स्थापित होता है। 'एस' और 'आर' के साहचर्य स्वरूप जो बंधन बनते हैं वे प्रकृति में सार्वभौम (Universal) होते हैं। इसलिए व्यवहारवादी अधिगम 'आर-एस' सिद्धांत माना जाता है।

आदत को यंत्रवत स्वचालित बनाने के लिए व्यवहारवादियों ने अनेक सिद्धांत सुझाए हैं। थार्नडाइक ने प्रयास और त्रुटि के सिद्धांत और उसके लिए प्रभाव, अभ्यास और तत्परता के नियमों का प्रतिपादन किया है। स्किनर ने पुरस्कार या पुनर्बलन के सिद्धांतों पर बल दिया है। पावलाव के अनुबंधन ने सहज प्रतिक्रिया के सिद्धांत का प्रतिपादन किया है।

अधिगम की इन मूलभूत धारणाओं की पृष्ठभूमि में व्यवहारवादी के विचार भाषा अधिगम के संबंध में इस प्रकार हैं—भाषा के अधिगम रूप में और अन्य विषयों या कौशलों के अधिगम रूपों में कोई सैद्धांतिक भेद नहीं है। भाषा वैसे ही सीखी जाती है जैसे गणित या विज्ञान सीखे जाते हैं। भाषा अधिगम का अर्थ है भाषाई आदत डालना। भाषा का यंत्रवत और स्वचालित ढंग से प्रयोग करना ही भाषा अधिगम का लक्ष्य है। भाषा सीखने के लिए भाषा को सूक्ष्म तत्वों में विभाजित करके उनको रटना, आवृत्ति करना या अभ्यास करना और उद्देश्यों से अभिप्रेरित होना भी आवश्यक है। भाषा प्रयोगों का अर्थ 'समझना' उतना आवश्यक नहीं है जितना कि उचित संदर्भ में उसका अनुकरण तथा आवृत्ति या कंठस्थ करना है। व्यवहारवादियों के अनुसार भाषाई वातावरण महत्वपूर्ण है। अर्थात् भाषा अधिगम उसके निविष्ट (Input) की प्रकृति पर निर्भर है। बालक जो कुछ सुनता है उसका अनुकरण और अभ्यास करता है। यदि यह निविष्ट आदर्श है तो उसकी अभिव्यक्ति या निर्गत (output) भी आदर्श होगा। अतः भाषा अधिगम में बालक की भाषा के प्रति अपना उद्भासन या संपर्क (Exposure) अधिक महत्वपूर्ण है। सभी प्रकार की भाषाओं के अधिगम में और उनकी आदतों को दृढ़ करने में आवृत्ति और यंत्रवत अभ्यास को बहुत उपयोगी माना गया है। भाषा प्रयोग की त्रुटियाँ भाषा अधिगम में बाधक हैं। अतः भाषा पर त्रुटि रहित अधिकार होने तक अभ्यास जारी रहना चाहिए।

इन व्यवहारवादी अधिगम सिद्धांतें ने अन्य/विदेशी भाषा के सीखने-सीखाने की प्रविधि को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। स्किनर के पुनर्बलन सिद्धांत पर अभिक्रमित शिक्षण विधि चल पड़ी। व्यवहारवादी धारणाओं के आधार पर ही संरचनावादी भाषाविज्ञानियों ने संरचना विधि का प्रतिपादन किया। संरचनावादी विलियम माउलटन के अधिगम के संदर्भ में भाषा की ये पाँच विशेषताएँ बतायीं हैं :

(1)भाषा मौखिक है, लिखित नहीं, (2) भाषा आदतों का समूह है, (3) भाषा सिखाने का उद्देश्य भाषा (भाषा कौशल) सिखाना है न कि भाषा के संबंध में जानकारी देना है, (4) भाषा का यथार्थ रूप वह माना जाना चाहिए जिसे मातृभाषा-भाषी वक्ता (आदर्श) बोलता है।

ीज (1955) और कार्नोलियस (1953) के अनुसार मातृभाषा भी याद की जाती है। इसी कार अन्य भाषा भी अनुकरण करके याद करनी चाहिए। भाषा के विविध असंख्य रूप टकर या कंठस्थ करके ही सीखे जा सकते हैं। अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त भाषा शिक्षण ास्त्री राइवर्स (1964) का मत है–अन्य भाषा अधिगम मूलतः आदत निर्माण या यांत्रिक क्रिया है। पुनर्बलन से भाषा दृढ़ होती है। भाषा एक व्यवहार है। व्यवहार करके ही भाषा ा अधिगम हो सकता है। श्रवण और भाषण भाषा के मूल कौशल हैं इसलिए पठन और ।खन से पहले श्रवण तथा भाषण कौशल सिखाना चाहिए। भाषा सीखने के लिए विश्लेषण ी अपेक्षा सादेश्यता बेहतर आधार है। एक समय एक ही शिक्षण बिंदु लेना चाहिए। प्रथम ांदु पर अधिकार करने के बाद ही दूसरा बिंदु लेना चाहिए।

नोविज्ञान के क्षेत्रीय सिद्धांत का मत अधिगम की प्रक्रिया और स्वरूप के संबंध में ।वहारवादियों से बिल्कुल अलग है। गेस्टाल्टवाद या अवयवीवाद अथवा समग्राकृतिवाद इस ाप्रदाय का अग्रणी है। इसके प्रवर्तक मैक्स वरदीमीयर (Max Worthemier), कोफ्का Kafka) और कोहलर (Kohler) हैं। गेस्टाल्टवादी की मान्यता है कि सीखने वाला अपने त्यक्षीकरण और विचारों को संगठित और पुनःसंगठित करता रहता है। अधिगम की इस क्रिया को 'सूझ' अंतर्दृष्टि द्वारा सम्पन्न मानते हैं। इसलिए इनका सिद्धांत 'सूझ या ांतर्दृष्टि द्वारा सीखना माना गया है। इनके अनुसार अधिगम में सूझ का अर्थ है व्यक्ति स्थिति को सम्पूर्ण रूप में समझने में समर्थ है। सूझ वहीं काम करती हैं जहाँ समस्या का त्यक्षीकरण होता है तथा कठिनाई के तत्वों को और उद्देश्यों को समझने की क्षमता होती । सूझ बहुत कुछ प्रत्यक्षीकरण की क्षमता पर निर्भर है। अधिगम उसी सीमा तक भावशाली होता है, जहाँ तक कि व्यक्ति आवश्यक साधन और साध्य के संबंधों की त्यक्षीकरण कर सकता है। सूझ या अंतर्दृष्टि वह मानसिक संगठन है जिसके द्वारा एक ामस्या सहसा अपने सब संबंधों के साथ स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगती है। सूझ से ीखने वाले की विशेषता यह है कि वह समस्या को निष्पक्ष रूप से देखता है। जब वह ेष्पक्ष भाव से किसी समस्या का विश्लेषण करता है तो उसकी यह सूझ ही सहायता ारती है। वस्तुतः सूझ अवधान के केंद्रीयकरण के आगे की स्थिति है, जिसके ऊपर संपूर्ण ाफलता निर्भर करती है। सूझ में हम मस्तिष्क का वस्तु से एकीकरण करते हैं। वे क्रियाएँ ाूझ से सीखने की क्रियाएँ मानी जा सकती हैं, जो व्यक्ति को स्थिति का अवलोकन ाराके समस्या को पूर्ण रूप से समझने के योग्य बनाती है। गेस्टाल्टवादी किसी उद्दीपन की ांत्रवत अनुक्रिया को नहीं मानते। उनका मानना है कि समस्या को देखकर या वातावरण से भावित होकर व्यक्ति मानसिक पूर्वानुमान या प्राक्कल्पना करता है और तब अनुक्रिया ारता है। इस प्रक्रिया में दो मानसिक क्रियाएँ प्रधान रूप से काम करती हैं– (1) ामान्यीरकण और (2) विभेदीकरण। इस सूझ द्वारा सीखने में इन चार तत्वों की उपस्थिति ानिवार्य है – (1) पूर्ण समस्या का प्रस्तुतीकरण (3) अधिगम की गतिशीलता (4) ानात्मक तथा संवेगात्मक तत्परता और (5) सफलता प्राप्ति के लिए मार्ग दर्शन।

ास्टाल्टवाद वस्तुतः संज्ञानात्मक या बुद्धिवादी चिंतन धारा के अति निकट है। संज्ञानवादी भी ावहारवादी अधिगम की धारणा के आलोचक हैं। उनका मत है कि 'एस-आर' द्वारा ांत्रिक अभ्यास अनुत्पादक है और नासमझ (Mindless) अभ्यास है। अधिगम वस्तुतः ामस्या समाधान है, खोज है। सही नियमों की खोज करते हुए ही बालक सीखता है, केवल अंधानुकरण या यंत्रवत अभ्यास से नहीं। अधिगम आदत निर्माण नहीं है। अधिगम ाहज है (innate), तार्किक गुणों से समझ का विकास करना है। विविध संरचनाओं के ारस्पर संबंधों की खोज ही समझ है। वातावरण की अपेक्षा वातावरण की समझ महत्वपूर्ण ै। बाह्य वातावरण की अपेक्षा आंतरिक वातावरण की संरचना अधिक महत्वपूर्ण है। ावहारवादी अधिगम प्रक्रिया को संज्ञानवादी पशुओं की अधिगम प्रक्रिया मानते हैं, मानव ी नहीं। बालक या वयस्क के अधिगम में चिंतन, तर्क, प्रत्यक्षण, अंतर्दृष्टि प्राक्कल्पना,

समस्या समाधान की मानसिक क्रियाओं का अधिक योगदान है। संज्ञानवाद की मूल प्रकृति अंतःप्रज्ञात्मक (Intuitive) है।

इस सैद्धांतिक पृष्ठभूमि में रूपांतरण-वयुत्पादनवादी (Transformation generative) भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा अधिगम/शिक्षण जगत को कुछ सूत्र दिए हैं–(1) भाषा यंत्रवत् व्यवहार नहीं है, (2) भाषा सीखने का मतलब शारीरिक या आंतरिक आदत डालने से नहीं है, वरन् भाषा की सर्जनात्मकता से है, (3) भाषा उत्तेजना-अनुक्रिया का परिणाम नहीं है। मनुष्य भाषा सीखने के वैशिष्ट्य के साथ पैदा होता है। मनुष्य और पशु में यही अंतर है कि पशुओं में यह वैशिष्टय नहीं पाया जाता, (4) भाषा का निष्पादन (Performance) वक्ता के भाषाई क्षमता या सामर्थ्य (Competence) सापेक्ष है, (5) जीवंत भाषा को ही भाषा का मानक रूप मानना चाहिए। जीवंत भाषा की विशेषताएँ व्याकरण के नियमों की व्युत्पादकता से अनुशासित होती हैं, (6) व्याकरण के नियम मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यथार्थ हैं, (7) निगमनात्मक उपागम आगनात्मक उपागम से अधिक बुद्धि गम्य है, (8) सादृश्य और विश्लेषणात्मक युक्तियों में संश्लेषणात्मक युक्ति मानव अधिगम प्रक्रिया के अधिक निकट है।

अधिगम का अंतरण

थार्नडाइक ने 'समान अंशों का सिद्धांत' प्रतिपादित किया। इसी समय के आस-पास विद्वान युड., ने अंतरण के 'सामान्यीकरण का सिद्धांत' का और स्पीयरमैन ने 'सामान्य और विशिष्ट अंश का सिद्धांत' का प्रतिपादन किया। इस संबंध में अवयवीवाद के मनोविज्ञान पर आधरित 'क्षेत्रीय संपूर्णता का सिद्धांत' बीसवीं शती के प्रारंभ से काफी लोकप्रिय हुआ। लेकिन थार्नडाइक का समान तत्वों का सिद्धांत अधिक लोकप्रिय रहा। वस्तुतः अंतरण को समझने के लिए 'समान तत्वों का सिद्धांत' और 'क्षेत्रीय संपूर्णता का सिद्धांत' दोनो ही महत्वपूर्ण हैं। थार्नडाइक के अनुसार पूर्वार्जित ज्ञान या अनुभव से नया ज्ञान या अनुभव जितना अधिक समान होगा उतनी मात्रा में अंतरण होता है, और जितने अंश में यह विषम होगा उतनी मात्रा में नकारात्मक या शून्य अंतरण होगा। क्षेत्रीय सिद्धांत के अनुसार वस्तुओं का निरीक्षण, परीक्षण और प्रत्यय ज्ञान प्राप्त करना ही अधिगम है। उसका अनुभव एक इकाई है।

मनोवैज्ञानिक सोरेन्सन ने अंतरण को इस प्रकार समझाया है– 'अंतरण एक परिस्थिति में प्राप्त किए हुए ज्ञान, प्रशिक्षण और आदतों की दूसरी परिस्थिति में स्थानांतरण किए जाने की चर्चा करता है।' अर्थात् सीखे हुए किसी ज्ञान को अन्य समान परिस्थितियों में अथवा जीवन को अन्य क्षेत्रों में उपयोग में लाना ही अधिगम अंतरण है। द्वितीय भाषा के संदर्भ में यह अंतरण निर्विवाद है।

अंतरण वस्तुतः वर्तमान अधिगम पर अतीत अधिगम के प्रभाव से संबंधित है। यह प्रभाव जब नये अधिगम में सहायक होता है, तब सकारात्मक अंतरण कहलाता है। अर्थात् पूर्व अधिगम अनुक्रियाएँ जब नये परिवेश में पुनः उत्पन्न होती है तो सकारात्मक (पोजिटिव) अंतरण होता है। और जब उक्त प्रभाव नये अधिगम में बाधक बनता है, तब नकारात्मक (नेगेटिव) अंतरण कहलाता है। दूसरे शब्दों में उसी परिचित परिवेश में पूर्वार्जित अनुक्रियाएँ नई अनुक्रियाएँ उत्पन्न करती हैं, तो नकारात्मक अंतरण होता है और जब कोई अतीत अधिगम वर्तमान के अधिगम पर न सकारात्मक प्रभाव डालता है और न नकारात्मक, तब शून्य (जीरो) अंतरण होता है। सारांश यह है कि किसी भी अंतरण में सकारात्मक, नकारात्मक और शून्य ये तीनों अंतरण न्यूनाधिक देखे जा सकते हैं।

द्वितीय भाषा में होने वाली त्रुटियों की विशिष्टताएँ : अन्य भाषा के प्रयोग एवं व्यवहार में होने वाली त्रुटियों की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं :

) चूँकि अध्येता/प्रयोक्ता के पास पहले तक एक भाषा होती है, अतः अन्य भाषा को वह उसी के माध्यम से सीखने के लिए बाध्य होता है। (स्वीट, 1899)।

i) अन्य भाषा के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक संदर्भ प्रयोक्ता के लिए नए होते हैं। अतः उनके मूल्यों के अनुकूल भाषाई आदतों का निर्माण कर पाने में उसे काफी कठिनाई होती है।

ii) अन्य भाषा के प्रयोग एवं व्यवहार में होने वाली त्रुटियाँ प्रारंभ में अत्यंत अधिक होती हैं, बाद में क्रमशः कम होती जाती हैं।

v) अन्य भाषा के प्रयोग एवं व्यवहार में प्रयोक्ता त्रुटियों से बचने के लिए चेष्टा करता है। उसकी सतर्कता जहाँ उसे अन्य भाषा के शुद्ध रूप की ओर ले जाती है, वहीं अन्य भाषा की आदत के निर्माण में विलंब करती है।

तीय भाषा में होने वाली त्रुटियों के कारण :

) **मातृभाषा का व्याघात :** व्यक्ति जगत को भाषा के माध्यम से ही पहचानता, समझता है। इसमें भी उनके दैनिक जीवन के समस्त सामान्य संदर्भ मातृभाषा के माध्यम से ही अनुभूत एवं प्रकट होते हैं। अन्य भाषा अधिगम की प्रक्रिया में जो भी विचार या वस्तु उसके समक्ष उपस्थित होते हैं, उन्हें वह मातृभाषा के माध्यम से ही ग्रहण करता है। तदनंतर अन्य भाषा में किया जाने वाला व्यहवार वस्तुतः उसकी मातृभाषा का भाषानुवाद ही होता है।

भाषानुवाद की अवस्था में अन्य भाषा के व्यवहार में अत्यधिक त्रुटियाँ होती हैं। इन त्रुटियों के मूल में मातृभाषा की संरचना के नियमो द्वारा अन्य भाषा की संरचना को नियंत्रित करने की मनोवैज्ञानिक चेष्टा और प्रक्रिया होती है। व्याघात की समस्याओं पर पिछले प्रसंग (5.7) में विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

) **लक्ष्य भावा की संश्लिष्टता :** संश्लिष्टता में क्लिष्टता होती है। अन्य भाषा की ऐसी संरचनात्मक व्यवस्थाएँ जो संश्लिष्ट एवं क्लिष्ट होती हैं और जिनके प्रयोग एवं व्यवहार में उस भाषा के बोलने वाले ही गलतियाँ करते हैं, किसी अध्येता के लिए समस्यात्मक बिंदु होती हैं। ऐसे समस्यात्मक बिंदुओं को अध्येता बड़ी कठिनाई से समझ पाता है, और जब तक इन्हें पूरी तरह समझकर अपने व्यवहार में उतार नहीं पाता, गलतियाँ करता रहता है। उदाहरण के लिए अन्य भाषा के रूप में हिंदी का अध्ययन करने वाले 'ने' और 'लिंग' संबंधी बिंदुओं पर अत्यधिक त्रुटियाँ करते हैं। इसी प्रकार लिंग संबंधी अन्विति और संयुक्त क्रिया पदों की रचना में भी हिंदी को अन्य भाषा के रूप पढ़ने वाले गैर हिंदी भाषी लोग त्रुटियाँ करते हैं।

i) **मनो-सामाजिक सांस्कृतिक अंतराल :** अन्य भाषा के मनोसामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश एवं मूल्य लगभग भिन्न-भिन्न होते हैं। अध्येता उन्हें जल्दी आत्मसात नहीं कर पाता। फलतः अन्य भाषा में प्रयोग संबंधी त्रुटियाँ करता है।

/) **भाषा अधिगम प्रक्रिया में दोष :** अन्य भाषा के अधिगम की प्रक्रिया में यदि अध्येता अन्यान्य अधिगम युक्तियों के माध्यम से कुछ दोष पाल बैठता है तो उसके व्यवहार की अन्य भाषा दोषपूर्ण हो उठेगी। इस तरह अधिगमांतरण की प्रक्रिया में अध्येता द्वारा अपनाए गए दोष गलतियों के कारण बन जाते हैं।

.6 वाक् विकार

षा में दो प्रकार की विकृतियाँ दिखाई देती हैं। भाषा दोष या भाषा त्रुटियाँ अर्जन की मी के कारण अन्य भाषा या विदेशी भाषा के अध्येताओं में दिखाई देते हैं। ये अर्जन की

प्रक्रिया के सहज अंग हैं, इसीलिए इन्हें अध्येता दोष (learners' errors) कहा जाता है। नए अध्येताओं में दोषों की संख्या ज्यादा होती है, धीरे-धीरे कम होती जाती है। कुछ अध्येताओं के कुछ दोष कभी दूर नहीं होते। उन्हें हम जड़ीभूत दोष (fossilized errors) कहते हैं। जब बच्चे मातृभाषा सीखना शुरू करते हैं, तो उनकी भाषा में भी कई तरह के दोष दिखाई देते हैं। आमतौर पर मातृभाषा-भाषी वयस्क होने पर सामान्य गलतियाँ नहीं करता, फिर भी उनमें भी वर्तनी, शब्दार्थ संबंधी जड़ीभूत दोष आजीवन देखे जा सकते हैं। इस प्रकार की भाषा को हम बाधित (affected) भाषा कहेंगे।

भाषा में वाक् विकार (speech defects) मातृभाषा-भाषी की विशेषता हैं। वाक् विकार भौतिक या मानसिक कारणों से होता है। इस कारण ये व्यक्ति दूसरी भाषा सीखें तो उसमें भी वाक् विकार आ जाता है। ऐसी भाषा को हम विकृत (defective) भाषा कहेंगे।
वाक् विकार दो तरह के होते हैं।

14.6.1 आंगिक (शरीरजन्य) विकार

ये विकार शरीर रचना संबंधी असामान्यता के कारण होते हैं।

1. **श्रवण मंदता :** कान में विकार के कारण व्यक्ति पूर्ण या आंशिक रूप से बधिर हो सकता है। श्रवण बढ़ने के लिए शल्य चिकित्सा आवश्यक हो सकती है। हियरिंग एड कहीं सुधार ला सकता है। ये उपचार संभव न हों, तो विविध युक्तियों से लिखना, पढ़ना, बोलना सिखाया जा सकता है।

2. **मंद बुद्धिता :** यह मानसिक विकार है, जिसके कारण बच्चे सहज रूप से भाषा नहीं सीख पाते। मानसिक उपचार ही बालक के विकास में सहायक होता है।

3. **वाचाघात (Aphasia) :** मस्तिष्क की क्षति, पक्षाघात आदि के कारण संप्रेषण, अर्थ ग्रहण, चिंतन, सभी प्रभावित होते हैं।

4. खंड तालु, कटे होंठ आदि शारीरिक विकारों के कारण उच्चारण प्रभावित होता है। शल्य चिकित्सा से सुधार लाया जा सकता है।

14.6.2 मनोजन्य विकार

इन दोषों का प्रमुख कारण मानसिक है, यद्यपि इनमें भी शारीरिक क[illegible]ण कहीं निहित रहते हैं। तीन प्रमुख विकार हैं :

1. **तुतलाना :** यह बालकों की सहज प्रवृत्ति है, जब वे मातृभाषा का अर्जन कर रहे हों। वे एकाध ध्वनियाँ नहीं बोल पाते हैं और उनकी जगह दूसरी ध्वनि का उपयोग करते हैं। जैसे 'करो' के स्थान पर 'कलो', 'डाँटना' के स्थान पर 'दाँतो'। बच्चे बड़े होते जाते हैं और अर्जन के साथ तुतलाहट दूर हो जाती है। लेकिन बड़े लोगों में तुतलाहट बनी रहे तो यह दोष माना जाएगा।

2. **हकलाना (stammering & stuttering) :** इस विकार में व्यक्ति शब्दारंभ की किन्हीं ध्वनियों के उच्चारण पर अटक जाता है और तीन-चार बार हकलाने के बाद शब्द का उच्चारण पूरा कर पाता है। जैसे, क्....क् कलम।

3. **विस्मृति (Amuesia) :** इस वर्ग में सहज रूप में भाषिक तत्वों का उपयोग न कर पाने का दोष दिखाई पड़ता है। कई प्रकार के विस्मृति दोष हैं, जैसे पठन अक्षमत (alexia - वर्ण न पहचान पाना), लेखन अक्षमता (agraphia - पद, शब्द आदि आवश्यक रूप न लिख पाना), व्याकरण के नियमों का अज्ञान (agrammaria), असंबोधिता (agnosia - प्रत्यक्षीकरण की अक्षमता याने देखकर भी न पहचानना) आदि।

14.6.3 वाक् विकार सुधार (speech therapy या speech patholo...

वाचाघात या मानसिक कारणों से उत्पन्न विकारों के उपचार हेतु हम जो युक्तियाँ अपनाते हैं उन्हें वाक् विकार सुधार की संज्ञा दी जाती है। अलग-अलग विकारों के लिए अलग-अलग उपचार हैं। विकार के मूल उत्स का अनुमान करने के बाद उसके निवारण के उपाय किए जाते हैं। उदाहरण के तौर पर हकलाने के मानसिक कारण हैं। हमें कोशिश करनी होगी कि व्यक्ति में आत्मविश्वास जगाएँ। फिर यह देखा ज़ाए कि वक्ता किन ध्वनियों में अटकता है। उन ध्वनियों की शब्द सूची से अभ्यास कराना आत्मविश्वास बढ़ाता है। इसी तरह तुतलाने वाले के लिए भी भय, आशंका, तनाव से मुक्त कर बोलने का अभ्यास कराया जा सकता है। अभ्यास में शब्द सूचियों के उपयोग के साथ गायन, खेल, सस्वर पाठ आदि को भी शामिल किया जाना चाहिए, क्योंकि ये तनाव कम करते हैं।

विभिन्न प्रकार के स्मृतिजन्य दोषों के निवारण के लिए सबसे पहले व्यक्ति का मानासिक उपचार करना होगा, जिससे वे सहजता की स्थिति में आएँ। मानसिक स्वस्थता अपने आप ही भाषिक अक्षमता को दूर कर देती है। लेकिन दुनिवार्य स्थितियों में उपचार के लिए कुछ निर्देशः

1. **अभिप्रेरणा की आवश्यकता :** यदि प्रयास अधिक है और प्रगति कम तो निरुत्साहित रोगी प्रयास में कमी कर देगा। रोगी के परिवार वालों को और मित्रों को बहुत शीघ्र एवं तेज गति से सुधार की आशा नहीं रखनी चाहिए।

2. **अभिप्रेरणा की दिशा और मात्रा :** अत्यधिक सफलता का वचन देना कुंठा को जन्म देना है और कम सफलता का वचन भी रोगी के प्रयास को कम कर देगा। उद्देश्य का ठीक ज्ञान होना चाहिए एवं साथ ही रोगी के व्यावसायिक उद्देश्य को ध्यान में रखना चाहिए। रोगी के व्यावसायिक परीक्षण के लिए प्रश्नावली बना लेनी चाहिए। उसकी संवाहक और गतिवाहक शक्ति की सीमाओं को ध्यान में रखना चाहिए। उसकी विगत रुचि, शौक आदि का भी ध्यान रखना चाहिए।

3. **महत्वकांक्षा का स्तर :** सामान्य व्यक्ति अधिकतर अति सफलता या कम सफलता का अनुभव करते हैं। इस बात की संभावना हो सकती है कि वाचाघात का रोगी अपनी प्रगति के बारे में बहुत ऊँची कल्पना करे और प्रयास कम कर दे। अतः अभिप्रेरणा और सफलता की मात्रा के अनुमान में संबंध रखना चाहिए। कम सफलता की आशा रखने से भविष्य की असफलता और कुंठा को सहा जा सकता है।

4. **मूर्तता (Concretism) :** हर एक रोगी में विशिष्टता और मूर्तता या दृढ़ता की प्रवृत्ति उत्पन्न करना चाहिए। सांज्ञिक वाचाघात में चिकित्सक को कई प्रकार से प्रश्न करके नाम याद दिलाना चाहिए। इस कार्य में कौशल की आवश्यकता है। पद्धति में परिवर्तन होना चाहिए और पद्धति में विविधता भी होनी चाहिए, जिससे रोगी की शब्दों की साहचर्य की क्षमता सीमित न हो।

5. **परिरक्षण (Preservation) :** सामान्यतः व्यक्ति थके होने पर बचने की कोशिश करते हैं। चिकित्सक को जान लेना चाहिए कि यदि रोगी थका हुआ है, क्षुब्ध है और अरुचि प्रकट कर रहा है, तो सफलता कम मिलेगी।

6. **विध्वंसात्मक प्रतिक्रिया :** यह मानसिक और शारीरिक ह्रास की स्थिति है। इसमें कार्य हो नहीं पाता। अत्यधिक चरमावस्था की स्थिति में संज्ञाहीन स्थिति भी हो सकती है।

7. **मनोचिकित्सा :** रोगी को अपने चारों ओर के वातावरण मित्र संबंधी, परिवार आदि से सामान्य संबंध बनाने के लिए समय देना चाहिए। मनोचिकित्सा का लाभ तब तक नहीं है, जब तक कि रोगी का भाषा-ज्ञान पर्याप्त न हो।

8. **समूह चिकित्सा (Group Therapy)** : इससे रोगी को सामाजिकता का अनुभव होता है और एकांत को भूल जाता है। इस तरह के वातावरण में वह सामाजिक स्पर्धा एवं सामाजिक मान्यता का आनंद भी लेता है। लोकप्रिय गीतों का सामूहिक गान, सामाजिक व्यवहार का अभिनय आदि भाषा संबंधी अभ्यास में वृद्धि करते हैं।

भाषाहीन स्थिति में संगीतमय वातावरण का निर्माण किया जा सकता है। इसमे कुछ व्यक्तियों को गाने के लिए, कुछ को सीटी बजाने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

जब समूह में एक सौहार्द्रमय वातावरण बन जाए तो उन्हें हास्य एकांकी एवं पहेली का कार्यक्रम करने के लिए कहा जा सकता है। अन्य व्यक्तियों से अभिप्रेरणा का माध्यम सामूहिक प्रशिक्षण हो सकता हे। एक रोगी से आने वाली अभिप्रेरणा अधिक प्रभावपूर्ण है, अपेक्षाकृत किसी स्वस्थ व्यक्ति या वाणी सुधारक के सामूहिक चिकित्सा में हर रोगी को वाचाघात के उपचार की प्रक्रिया देखने को मिलती है। जबकि अन्य रोगी समझने या बोलने की चेष्टा करते हैं। उसे भी सहानुभूतिपूर्ण श्रोता मिल जाते हैं, जो निश्चय ही उपहास नहीं करते।

विविध तकनीकों का प्रयोग देखकर रोगी को भाषा प्रयोग का ढंग समझ में आ जाता है। अंतिम लाभ यह है कि सामूहिक चिकित्सा में रोगी को भावों की अभिव्यक्ति का और पीड़ा को व्यक्त करने का अवसर मिलता है। उसमें क्रूरता और आक्रामकता की भावना कम हो सकती है, जो ऐसे अवसरों पर बाहर आ जाती है। इस तरह वह बाद में स्वस्थ व्यक्तियों से अधिक अलगाव एवं ईर्ष्या का अनुभव नहीं करेगा।

14.7 सारांश

मनोभाषाविज्ञान मन और भाषा के संबंध को प्रकट करता है। संरचनात्मक भाषाविज्ञान भाषा को आदतों का समुच्चय मानता था। इस कारण उसमें मन का केंद्रीय महत्व नहीं था। चॉम्स्की भाषा को जन्मजात प्रवृत्ति मानते हैं और भाषा को मन में स्थापित नियमों का समुच्चय मानते हैं। इस कारण उनके उपागम में मन की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका है। भाषा विश्लेषण की दृष्टि से भी वे अर्थ की अभिव्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में भाषा की अंतर्निहित संरचनाओं के विश्लेषण पर बल देते हैं।

दोनों ही उपागमों में मनोभाषाविज्ञान मुख्य रूप से दो भाषा से संबंधित दो पहलुओं पर कार्य हुआ है।

पहला पहलू है भाषा का अर्जन (प्रथम भाषा के रूप में) और भाषा का अधिगम (द्वितीय/विदेशी भाषा के रूप में)। भाषा को आदत मानने के कारण संरचनात्मक भाषाविज्ञान अर्जन और अधिगम में अधिक अंतर नहीं करता। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि संरचनात्मक भाषाविज्ञान में अधिगम पर ही अधिक कार्य हुआ है, जिससे वे आदतों के अंतरण (transfer) की समस्याओं की चर्चा कर सकें। अधिगम के अंतरण की चर्चा करते हुए वे अंतरण में बाधा डालने वाले रचना तत्वों की व्याख्या करते हैं और तुलनात्मक अध्ययन द्वारा इन तत्वों का अध्ययन करते हैं।

चॉम्स्की का प्रजननात्मक व्याकरण अर्जन को सबसे अधिक महत्व देता है, क्योंकि अर्जन की प्रक्रिया सहज है, जन्मजात है और अर्जन के अध्ययन से भाषा के स्वरूप का भी पता चलता है। अर्जन की तुलना में अधिगम आरोपित व्यापार है। चॉम्स्की के सिद्धांत को मानने वाले भाषा शिक्षणविद् यह भी मानते हैं कि आरोपित भाषा अधिगम की प्रविधि से मातृभाषा-

ाषी जैसी सहज अर्जन की प्रक्रिया अपनायी जाए, तो अध्येता सहज रूप में भाषा सीख कते हैं।

ा संदर्भ में इस इकाई में बालक के संज्ञानात्मक (cognitive) और भाषाई विकास की चर्चा की गई है। संरचनात्मक भाषाविज्ञान मूलतः व्यवहारवादी है, चॉम्स्की का षाविज्ञान संज्ञानात्मक उपागम को लेकर चलता है। इस उपागम के पूर्ववर्ती विद्वान हैं स्टाल्ट मनोविज्ञान के अनुयायी और फ्रेंच मनोवैज्ञानिक प्याज़े। प्याज़े ने बच्चों के ज्ञानात्मक विकास पर महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। भाषाविज्ञान के क्षेत्र में चॉम्स्की के ुयायियों ने अर्जन प्रक्रिया के अध्ययन के संदर्भ में बच्चों के भाषाई विकास पर कई त्वपूर्ण कार्य किए हैं। इस तरह मनोभाषाविज्ञान आधुनिक अवधारणाओं के संदर्भ में भाषा, द्धि, चिंतन सभी के विकास का भी अध्ययन करता है।

स्की का सिद्धांत यह भी मानकर चलता है कि मातृ/अन्य/विदेशी भाषा के सीखने में टियों का होना सहज है। वे कहते हैं कि नियमबद्ध रूप से भाषा सीखने में होने वाली टियों से अर्जन की प्रक्रिया का भी बोध होता है। इस कारण वे भाषा तुलना की अपेक्षा ा दोष विश्लेषण को महत्वपूर्ण मानते हैं।

दोनों उपागमों के कारण भाषा की दृष्टि में, भाषा शिक्षण की दार्शनिक पृष्ठभूमि को झने में बहुत अंतर आया और भाषा शिक्षण की विविध विधियों में इसका प्रस्फुटन हुआ। ा पूर्ववर्ती इकाइयों में इसके बारे में अध्ययन कर चुके हैं।

भाषाविज्ञान का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है भाषा संबंधी विकारों का अध्ययन और उपचार उपाय ढूँढ़ना। भाषा बोलने वालों की त्रुटियाँ अर्जन की कमी के कारण होती है। ये दोष न की प्रक्रिया के साथ कम होते जाते हैं। भाषा विकार शारीरिक या मानसिक कारणों पैदा होते हैं। बधिरता, कटे होंठ आदि शारीरिक कारण भाषा को प्रभावित करते हैं। कित्सा से इनका निवारण किया जा सकता है। वाचाघात के कई रूप हैं, जो शारीरिक णों से उत्पन्न विकार हैं।

य, आशंका आदि मानसिक कारणों से तुतलाना, हकलाना जैसे विकार भी होते हैं। का उपचार भौतिक या शारीरिक रूप से नहीं हो सकता। भाषा विकृति सुधार (speech rapy) नामक विषय क्षेत्र में यह सिखाया जाता है कि किस तरह सुधारक तनाव कम के, उचित अभ्यासों के द्वारा इन विकारों को दूर कर सकते हैं। वाचाघात जैसी स्थितियों ो शारीरिक उपचार के साथ वाक् सुधार का अभ्यास कराया जाए, तो व्यक्ति सहज ते में आ सकता है।

8 अभ्यास प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

(1) मनोभाषाविज्ञान का परिचय देते हुए बताइए कि उससे क्या लाभ हैं?

(2) भाषा अर्जन और भाषा अधिगम की प्रक्रिया समझाइए।

टिप्पणियाँ

(1) वाक् विकार

(2) बालकों में भाषा का विकास

इकाई 15 भाषा-शिक्षण-I

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 भाषा-शिक्षण और भाषा
 15.2.1 मातृभाषा
 15.2.2 प्रथम भाषा
 15.2.3 अन्य भाषा (द्वितीय भाषा)
 15.2.4 विदेशी भाषा
15.3 भाषा-शिक्षण की प्रमुख विधियाँ
 15.3.1 व्याकरण विधि
 15.3.2 व्याकरण-अनुवाद विधि
 15.3.3 प्रत्यक्ष विधि
 15.3.4 संप्रेषणपरक भाषा-शिक्षण
15.4 भाषा-शिक्षण और सामग्री निर्माण
 15.4.1 भाषा व्यवहार से संबंधित सामग्री
 15.4.2 माध्यम एवं उपकरण
 15.4.3 बहुसंचार सामग्री
15.5 भाषा-शिक्षण की अधुनातन भूमिका
 15.5.1 संचार व्यवस्था में
 15.5.2 अनुवाद में
 15.5.3 अंतर्राष्ट्रीय संबंध निर्वाह में
15.6 सारांश
15.7 अभ्यास

15.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में भाषा-शिक्षण से संबंधित विविध संकल्पनाओं, शिक्षण विधियों, सामग्रियों तथा भाषा-शिक्षण की अद्यतन भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई द्वारा आप भाषाविज्ञान और अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के बीच के भेद तथा इन दोनों के अंतःसंबंध को समझ सकेंगे। इस इकाई में आपको अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के व्यापक क्षेत्र का भी परिचय मिलेगा और इसमें भाषा-शिक्षण का स्थान आप निर्धारित करेंगे।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- प्रथम भाषा/मातृभाषा, अन्य/द्वितीय भाषा, विदेशी भाषा, की संकल्पना स्पष्ट कर सकेंगे;
- व्याकरण के अनुवाद, प्रत्यक्ष विधि तथा सम्प्रेषणपरक भाषा-शिक्षण की विधियों की व्याख्या कर सकेंगे;
- भाषा-शिक्षण के लिए आवश्यक सामग्री के निर्माण की व्याख्या कर सकेंगे; और
- भाषा-शिक्षण की वर्तमान युग में भूमिका स्पष्ट कर सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

इस प्रस्तावना में हम अनुप्रयुक्त भाषा-विज्ञान के संदर्भ में भाषा-शिक्षण की भूमिका उसकी पृष्ठभूमि तथा उसकी उपादेयिता पर विचार करेंगे। अन्य इकाइयों से आप को यह ज्ञात हो गया होगा कि आज मानव विज्ञानों में भाषाविज्ञान सबसे अधिक व्यापक एवं विकसित शास्त्र के रूप में अपना स्थान बना चुका है। आपने यह भी देखा होगा कि एक ओर भाषाविज्ञान की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि है जो किसी भी भाषा के संरचनात्मक विश्लेषण की

ज्ञानिक दृष्टि हमे प्रदान करती है, दूसरी ओर भाषाविज्ञान अपने कार्य और प्रयोजन में एक विध्यपूर्ण शास्त्र है और तीसरी ओर अन्य कई शास्त्रों से उसका अटूट संबंध है। यही ारण है कि आज भाषाविज्ञान ने अपने आपको मानविकी विषयों में सबसे वैज्ञानिक विषय रूप में और वैज्ञानिक विषयों में सर्वाधिक मानव केंद्रित विषय के रूप में स्थापित कर गया है।

ाषाविज्ञान की वैज्ञानिकता और उसकी व्यापकता ने यह भी विचारणीय तथ्य सामने रखा कि कई ऐसे प्रश्न हो सकते हैं जो हमें भाषा अध्ययन की ओर प्रेरित करते हैं। भाषा श्लेषण के माध्यम से हम 'और कुछ' जानने सीखने और करने का प्रयास कर सकते हैं। भवतः इसीलिए प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक हैलीडे ने संभावनाओं की खोज की दृष्टि से भाषा र भाषाविज्ञान को अनेक संभावनाओं का पुंज माना है। ऐसे अनेक विचार इस बात को ाणित करते हैं कि भाषाविज्ञान मात्र अपने अध्ययन की वैज्ञानिकता या अपनी वैज्ञानिक श्लेषण प्रक्रिया के कारण ही विश्वव्यापी ज्ञान के क्षेत्र के रूप में मान्य एवं लोकप्रिय नहीं ा है। उसकी मान्यता और लोकप्रियता का मुख्य कारण उसका प्रभावशाली अनुप्रयोग pplication) के उपयुक्त होना है। हम भाषावैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुप्रयोग को सामान्य प से इस रूप में सामने रख सकते हैं कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भाषा वैज्ञानिक सिद्धांतों ा अनुप्रयोग ही उसके अनुप्रयुक्त पक्ष को तीन संदर्भों में सामने लाता है।

) अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान के तीन संदर्भ

ज्ञान के क्षेत्र का संदर्भ

विधा विशेष का संदर्भ

भाषा-शिक्षण का संदर्भ

) **ज्ञान क्षेत्र का संदर्भ** : ज्ञान क्षेत्र का संदर्भ भाषाविज्ञान और उसके सिद्धांत का अनुप्रयोग ज्ञान के किसी अन्य क्षेत्र को स्पष्ट करने के लिए करता है। यहाँ उदाहरण स्वरूप समाजशास्त्र और मनोविज्ञान को ज्ञान के अन्य क्षेत्रों के रूप में देखा जा सकता है। भाषा और समाज के अंतःसंबंधों का अध्ययन जब भाषा की प्रकृति और उसके प्रयोजनों को ध्यान में रखकर किया जाता है तब अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की इस शाखा को समाज भाषाविज्ञान कहा जाता है। इसी प्रकार भाषाविज्ञान का सहारा लेते हुए संज्ञानात्मक बोध और मन की वृत्तियों से संबंधित अध्ययन को मनोभाषाविज्ञान कहा जाता है।

) **विधा विशेष का संदर्भ** : यह संदर्भ अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान को विशेष विधाओं से जोड़ता है। इसके अंतर्गत शैली विज्ञान, अनुवाद विज्ञान, कोश विज्ञान आदि आते हैं। भाषा वैज्ञानिक सिद्धांत एवं प्रणाली का अनुप्रयोग इन विधाओं को एक निश्चित सैद्धांतिक संदर्भ देता है। यह इनके अध्ययन विश्लेषण के लिए एक सुनिश्चित तकनीक का भी विकास करता है और ऐसी संक्रियात्मक प्रणाली भी निर्मित करता है जिनके सहारे इन क्षेत्रों में अधिक नियमबद्ध ढंग से कार्य कर पाना संभव हो पाता है।

भाषा-शिक्षण का संदर्भ : यह संदर्भ अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का सर्वाधिक प्रचलित संदर्भ है। प्रस्तुत इकाई में हम इसी संदर्भ पर विचार और अध्ययन करने जा रहे हैं। इस संदर्भ या क्षेत्र में भाषाविज्ञान की देन ने अपना अलग इतिहास ही बना लिया है। मातृभाषा और अन्य भाषा-शिक्षण, शैक्षिक व्याकरण और शिक्षण सामग्री, शिक्षण प्रणाली और शिक्षण तकनीक आदि सभी में भाषा वैज्ञानिक अंतर्दृष्टि ने अपनी अनिवार्यता सिद्ध कर ली है।

) भाषिक और अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान

ाविज्ञान की प्रकृति उसके उद्देश्यों और उसके कार्यों को तथा अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान प्रकृति स्वरूप और प्रयोजन को यदि साफ-साफ देख लिया जाए तो हम अभी तक की

गई चर्चाओं को और भी स्पष्ट ढंग से समझ सकते हैं :

भाषाविज्ञान	अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान
1. भाषाविज्ञान भाषा की आंतरिक प्रकृति पर प्रकाश डालता है।	1. अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान उपभोक्ता सापेक्ष (consumer oriented) होता है।
2. उसका मूल उद्देश्य भाषा संबंधी सिद्धांत का विवेचन और प्रतिपादन है।	2. यह उपभोक्ता की आवश्यकताओं द्वारा नियंत्रित लक्ष्य का परिणाम होता है।
3. सिद्धांतों के औचित्य और उसकी सार्थकता की सिद्धि के लिए ही वह भाषा संबंधी तथ्यों का संकलन और विश्लेषण करता है।	3. इसका क्षेत्र भाषा के उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं द्वारा निर्धारित लक्ष्य संदर्भ में भाषा-संबंधी सिद्धांतों के अनुप्रयोग का क्षेत्र है।
4. भाषा वैज्ञानिक सिद्धांत यह बताता है कि 'भाषा क्या है'।	4. इसका क्षेत्र इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि 'भाषा से हम क्या काम ले सकते है।'
5. वह हमें भाषा संबंधी सैद्धांतिक और व्यावहारिक अंतर्दृष्टि देने में समर्थ है।	5. यह अपने सिद्धांत और प्रणाली के आधार पर भाषा से संबंधित ज्ञान के अन्य क्षेत्रों के अध्ययन-विश्लेषण के लिए संक्रियात्मक (operational) दक्षता का रास्ता खोलता है।
6. भाषाविज्ञान की विषयवस्तु 'भाषा' है और अध्ययन प्रणाली वैज्ञानिक।	

जैसा कि अभी तक कही गई बातों से आपके सामने यह स्पष्ट हो गया होगा कि अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का एक संदर्भ भाषा-शिक्षण भी है। इतना ही नहीं भाषाओं के शिक्षण का क्षेत्र भाषाविज्ञान के उन अनुप्रयुक्त क्षेत्रों में से एक है जिनके साथ सर्वाधिक लोग संबद्ध हैं। मातृभाषा और अन्य भाषा दोनों के शिक्षण में भाषा वैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रयोग भाषाओं का बेहतर विवरण प्रस्तुत करने के लिए किया जाता है। भाषा-शिक्षण के संदर्भ में भाषाविज्ञान की इस संबद्धता को समझने के लिए हमें निम्नलिखित विचारों पर ध्यान देना चाहिए :

(1) भाषा-शिक्षण में भाषा शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है लेकिन भाषाशिक्षक भाषाविज्ञान नही पढ़ाता। वह 'भाषा' पढ़ाता है जो भाषाविज्ञान की अध्ययन वस्तु है। भाषाविज्ञान भाषा-शिक्षण के लिए भाषा का अच्छे से अच्छा विवरण उपलब्ध कराता है। यह भी कहा जा सकता है कि भाषा शिक्षक अनुप्रयुक्त भाषावैज्ञानिक सिद्धांतों का उपभोक्ता होता है।

(2) भाषा वैज्ञानिक द्वारा प्रदत्त भाषा विवरणों का प्रयोग भाषा शिक्षक करता है। इनका प्रयोग वह भाषा-शिक्षण कार्यक्रम की योजना बनाने के लिए करता है अतः भाषा शिक्षक स्वयं सिद्धांतों का सर्जक या निर्माता नहीं होता, उपभोक्ता होता है।

(3) भाषाविज्ञान द्वारा प्रदत्त विवरण भाषा-शिक्षण की पाठ्य सामग्री बनाने में भी सहायक होते हैं। यह निश्चित है कि भाषा विज्ञान द्वारा प्रदत्त विवरण स्वयं भाषा-शिक्षण की सामग्री नहीं बन सकते। इन विवरणों के आधार पर पाठ सामग्री निर्माता को यह पता लगता है कि कौन-सा विवरण बेहतर है और उसे किस रूप में शिक्षण कार्यक्रम में स्थान देना है। अच्छे विवरणों को रेखांकित करके उनका चयन करके और उन्हे पढ़ाने के लिए शैक्षिक (pedagogical) विधियों का उपयोग करते हुए वह अभिक्रमित (graded) पाठ्य सामग्री निर्मित करता है। इस प्रकार पाठ्य पुस्तक एवं शिक्षण सामग्री लेखक के लिए भी भाषा वैज्ञानिक अनुप्रयोग अभीष्ट ही नहीं, अनिवार्य भी है।

(4) भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का लक्ष्य उन विषयों और पक्षों को दृढ़ करना है जो कक्षा की पृष्ठभूमि में कार्य करते हैं जैसे भाषा विवरणों का अभिक्रम तय करना, पाठ्य पुस्तकों का मूल्यांकन करना, भाषा पाठ्यक्रम को नियोजित करना, शिक्षार्थियों की अभिवृत्ति (attitude) का परीक्षण करना और भाषा-शिक्षण की सामग्री और शिक्षार्थी अधिगम (learning) का मूल्यांकन करना आदि।

(5) अन्य भाषा-शिक्षण में अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का योगदान एक अन्य धरातल पर भी है। यह धरातल अन्य भाषा की मातृभाषा से तुलना का है। विवरण और तुलना इन दोनों अनुप्रयोगों से जुड़ कर ही अन्य भाषा-शिक्षण वैज्ञानिक बनता है। इसे ही व्यतिरेकी भाषाविज्ञान (contrastive linguistics) कहा गया है।

प्रस्तुत इकाई में हम भाषा-शिक्षण से संबंधित इन सभी संकल्पनाओं पर विचार करेंगे।

15.2 भाषा-शिक्षण और भाषा

भाषा-शिक्षण का सीधा संबंध 'भाषा' से होता है। यहाँ सीखने और सिखाने वाली 'वस्तु' भाषा ही होती है। अर्थात् भाषा-शिक्षण की अध्ययन वस्तु भाषा होती है। भाषा, जो भाषावैज्ञानिक अध्ययन की 'अध्ययन वस्तु' भी है। अतः भाषा-शिक्षण में भाषा ही साध्य भी है और साधन भी। आज भाषा को एक सामाजिक वस्तु के रूप में भी पहचान मिली है। उसे सामाजिक वस्तु मानने का मूल कारण भाषा से मनुष्य का अटूट अंतःसंबंध है। भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में भी भाषा सीखने सिखाने वाले दोनों ही मनुष्य होते हैं। भाषा-शिक्षण में इसीलिए आज अध्येय भाषा के साथ भाषा-अध्येता, उसके अभिप्रेषण (motivation) तथा उसकी मनोवृत्ति को केंद्रीय स्थान प्रदान किया गया है। इस दृष्टि से भाषा अधिगत (language acquistition) का महत्व भी रेखांकित हुआ है। भाषा-शिक्षण का लक्ष्य अनिवार्यतः उद्देश्य बाधित होता है। भाषा अध्येता भाषा किसी न किसी विशेष उद्देश्य या प्रयोजन के संदर्भ में ही सीखता है और इन्हीं संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में उसे भाषा सिखाई भी जाती है।

आज भाषा-शिक्षण को भाषा अध्येता और भाषा प्रयोक्ता की विभिन्न आवश्यकताओं के संदर्भ में गहराई से देखा जा रहा है। इसका कारण यही है कि भाषा-शिक्षण के उद्देश्य और प्रयोजन के निर्धारण को भाषा-शिक्षण की अपेक्षित सफलता के अनिवार्य घटक के रूप में देखना अब आवश्यक माना जा रहा है। यह भी माना जा रहा है कि भाषा-शिक्षण के उद्देश्य-प्रयोजन की सिद्धि प्रयोक्ता हैं (शिक्षार्थी या अध्येता) सापेक्ष होती है। अध्येता सापेक्ष भाषा-शिक्षण की संकल्पना ने अध्येय वस्तु भाषा के एकाधिक भेद किए। इन भाषा प्रकारों को हम भाषा-शिक्षण की उद्देश्य सिद्धि के साधक भेद भी कह सकते हैं। ये भेद दो हैं :

1. मातृभाषा (Mother tongue)
2. अन्य भाषा (other tongue)

भाषा-समूहों और भाषा-समाजों में भाषिक-स्थिति के भेद के कारण इन दोनों प्रकारों को कुछ उप प्रकारों में भी विभाजित किया गया है। इस विभाजन को रवींद्रनाथ श्रीवास्तव (1992) ने विवेचित किया है। उनके इस विवेचन को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है :

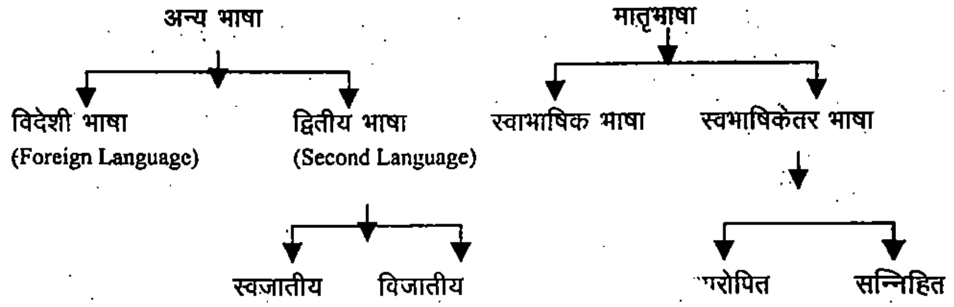

स्पष्ट है कि भाषा-शिक्षण के संदर्भ में मुख्य विभाजन मातृभाषा और अन्य भाषा के रूप में उभरता है। मातृभाषा के रूप में तथा अन्य भाषा के रूप में भाषा-शिक्षण अपनी प्रकृति, प्रणाली तथा अध्येता की अपनी आवश्यकता, प्रयोजन एवं अभिप्रेरण के कारण भिन्न हो जाता है। अब हम मातृभाषा और अन्य भाषा को केंद्र में रखकर भाषा-शिक्षण की भिन्नता पर विचार करेंगे।

15.2.1 मातृभाषा (Mother tongue)

मातृभाषा एक संस्थागत (instiitutional) यथार्थता है। इसका कारण यह है कि मातृभाषा ही व्यक्ति को बृहत्तर सामाजिक संदर्भों से जोड़ती है। मातृभाषा के द्वारा ही व्यक्ति अपनी सामाजिक अस्मिता निर्धारित करता है। यहाँ हम उदाहरण के लिए हिंदी भाषा को मातृभाषा के रूप में सीखने वालों की चर्चा कर सकते हैं। हिंदी भाषा समुदाय मूल रूप में बोली भाषी समूहों से निर्मित है। हिंदी की इन बोलियों को हम हिंदी की अधीनस्थ बोलियाँ (suboridnate language) कहते हैं, जैसे : ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली, मगही आदि। इन बोलियों के प्रयोक्ता अपने बोली-क्षेत्र के बाहर के एक बृहत्तर समाज से जुड़ने तथा अपनी सामाजिक अस्मिता स्थापित करने के लिए हिंदी को मातृभाषा के रूप में स्वीकारते और सीखते हैं। इस प्रकार व्यक्ति के समाजीकरण में मातृभाषा की अहम् भूमिका होती है। वास्तव में व्यक्ति मातृभाषा अधिगम (Mother tongue learning) द्वारा कई क्षमताएँ अर्जित करता है :

1. मातृभाषा के माध्यम से व्यक्ति ज्ञान (knowledge) को अनुभवसिद्ध करने की क्षमता अर्जित करता है।
2. मातृभाषा के माध्यम से व्यक्ति की बोधन क्षमता (comprehensive competence) विकसित होती है।
3. मातृभाषा के माध्यम से ही व्यक्ति अपनी अनुभूतियों और संवेदनाओं को बहुविध ढंग से व्यक्त कर पाने में सक्षम बनता है।
4. मातृभाषा के माध्यम से ही व्यक्ति अपने समाज और संस्कृति में अपना स्थान ढूँढ़ने और निर्धारित करने में समर्थ होता है।
5. मातृभाषा ही व्यक्ति को उसके अनेक बौद्धिक व्यवहारों को साधने, नियंत्रित करने और संपन्न करने में सक्षम बनाती है।

इस प्रकार किसी भी भाषा-समाज (Language community) के लिए उसकी मातृभाषा एक सामाजिक यथार्थ (social reality) है। यदि शिक्षा के संदर्भ में देखा जाए तो व्यक्ति की मातृभाषा ही सामान्यतः उसकी साक्षरता (literacy) का आधार बनती है। साक्षरता का आधार वही भाषा बनती है जिसे व्यक्ति सहज और स्वाभाविक रूप में बोलने-समझने में समर्थ होता है, अर्थात् उसकी अपनी मातृभाष। शिक्षा के ही संदर्भ में हम यह देखते हैं कि एक ओर मातृभाषा स्वयं साध्य बनती है क्योंकि व्यक्ति अपनी मातृभाषा का औपचारिक शिक्षण प्राप्त करता है और दूसरी ओर मातृभाषा अन्य विषयों के शिक्षण के लिए माध्यम

षा के रूप में कार्य करती है। जब हम कोई भी विषय पढ़ते हैं तो उसके साथ उसकी ध्यम भाषा जुड़ी होती है। अतः यदि हम किसी विषय को जानना-समझना चाहते हैं तो ारे लिए उस माध्यम भाषा को समझना भी अनिवार्य है जिसमें वह विषय व्यक्त करता मातृभाषा-शिक्षण की दृष्टि से यह आवश्यक है कि हम यह विवेचित कर सकें और चान सकें कि हमारी भाषा भौतिक विज्ञान, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि विषयों को स प्रकार व्यक्त करती है। यह ध्यान रखें कि भिन्न विषयों को व्यक्त करने वाली शैली न्न होती है। अपनी मातृभाषा में इन शैलियों को पहचानना और प्रयोग में ला पाने की मर्थ्य उत्पन्न करना मातृभाषा-शिक्षण के महत्वपूर्ण उद्देश्यों में से एक है। अतः मातृभाषा-क्षण को यथार्थपरक और सार्थक बनाने के लिए उसे शिक्षा क माध्यम भाषा के रूप में ारना और बहुआयामी बनाना अनिवार्य है।

ा कि पहले भी बताया गया कि मातृभाषा व्यक्ति के लिए समाजीकरण का साधन होती मातृभाषा-शिक्षण में भी इस तथ्य पर ध्यान देना चाहिए कि शिक्षार्थी अपने समाजीकरण अधिकाधिक उपलब्ध कर सके। भारतीय संदर्भ में, विशेषकर हिंदी भाषा के संदर्भ में यह य और भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

.2.2 प्रथम भाषा (First Language)

नक समाज में भाषा का अर्जन करता है। प्रथम भाषा वह भाषा है जिसे बालक भाषा के में सबसे पहले स्वाभाविक व्यापार के रूप में सीखता है। हिंदी भाषा के संदर्भ में यह ा जा सकता है कि सामान्यतः हिंदी की विभिन्न बोलियाँ उसके प्रयोक्ता के लिए प्रथम ा होती हैं। इन बोलियों का प्रयोग ही बालक के परिवार में तथा उसके आत्मीय परिवेश होता है और सबसे पहले बालक इन्हें ही प्रथम भाषा के रूप में अर्जित करता है। यह भी ा जा सकता है कि हिंदी भाषा समुदाय का बालक बोली को ही अपनी माँ की गोद में ते हुए प्रथम भाषा के रूप में सीखता है। बोली के सहारे ही बालक अपने परिवार के स्यों तथा निकट परिवेश मे रहने वाली पड़ोसियों, रिश्तेदारों आदि से संबंध स्थापित ते हुए सामाजिकता की ओर बढ़ता है। प्रथम भाषा और मातृभाषा की संकल्पना में कई ानताएँ हैं और कुछ सूक्ष्म भेद भी हैं। कई विद्वानों ने प्रथम भाषा को 'मातृ बोली' वारी : 80) कहना उपयुक्त समझा है क्योंकि हिंदी भाषियों की प्रथम भाषा ये बोलियाँ हैं जो बालक के परिवार तथा अन्य आत्मीय क्षेत्रों में प्रयुक्त होती हैं। भाषा$_1$ और भाषा$_2$ संकल्पना पर विचार करते हुए कैटफर्ड (59 : 265) ने प्रथम भाषा की परिभाषा इन ों में दी है : "प्रथम भाषा वक्ता के व्यक्तिगत दैनिक जीवन की भाषा होती है।"

नक प्रथम भाषा से मातृभाषा का ओर बढ़ता है। शिक्षा के लिए और साक्षरता के लिए ी भाषी हिंदी भाषा को मातृभाषा के रूप में अपनाता है। यह भी कहा जा सकता है कि ी भाषा समुदाय के लिए उसकी बोलियाँ प्रथम भाषा हैं और हिंदी मातृभाषा के रूप में द्ध भाषा है। हिंदी भाषा के सहारे ही इस भाषा समाज के लोग अपनी सामाजिक अस्मिता ापित करते हैं। मातृभाषा और प्रथम भाषा के संदर्भ में हिंदी भाषा समुदाय का उदाहरण त ही उपयुक्त है।

.2.3 अन्य भाषा (द्वितीय भाषा और विदेशी भाषा)

ृभाषा से इतर किसी दूसरी भाषा को अन्य भाषा के अंतर्गत रखा जाता है। भाषा-शिक्षण भी मातृभाषा-शिक्षण और अन्य भाषा-शिक्षण को अलग-अलग रख कर देखा गया है। य भाषा की आवश्यकता जिन वैयक्तिक और सामाजिक संदर्भों में पड़ती है वह मातृभाषा आवश्यकता से भिन्न होती है, अन्य भाषा को दो वर्गों में विभाजित किया गया है :

1. द्वितीय भाषा (Second Lanaguage)
2. विदेशी भाषा (Foreign Language)

द्वितीय भाषा

द्वितीय भाषा मातृभाषा के साथ सहयोजित होती है। ये भाषाएँ एक ही राष्ट्र की होती हैं और इनका सामाजिक ऐतिहासिक विकास क्रम भी समान होता है; अर्थात् मातृभाषा और द्वितीय भाषा का परिवेश कई स्थितियों में समान होता है। उदाहरण के लिए यदि यह कहा जाए कि हिंदी किसी की मातृभाषा है तो अन्य भारतीय भाषाएँ जैसे तेलुगु, तमिल, मराठी आदि उसके लिए द्वितीय भाषा होंगी क्योंकि इनका परस्पर संबंध और संपर्क भी है और सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टि से इनमें बहुत दूरी नहीं है। इन्हें इसीलिए 'सजातीय द्वितीय भाषा' भी कहा गया है।

परस्पर संपर्क और लंबे समय तक भारतीय भाषाओं के बीच रहने के कारण भारतीय भाषाओं के संदर्भ में अंग्रेज़ी भाषा को भी द्वितीय भाषा माना गया है। अंग्रेज़ी भाषा सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से भारतीय भाषाओं से नितांत भिन्न है लेकिन द्वितीय भाषा के रूप में परस्पर संपर्क के कारण भारतीय अंग्रेज़ी का ऐसा स्वरूप उभरा है जिससे कि हिंदी या अन्य भारतीय भाषायी समाज के संदर्भ में अंग्रेज़ी भाषा द्वितीय भाषा के रूप में सिद्ध है। अंग्रेज़ी को द्वितीय भाषा के रूप में स्वीकारने के कई कारण हैं। अंग्रेज़ी ने भारतीय भाषा समाज में सामाजिक-सांस्कृतिक आचरण के लिए एक विकल्पवत भाषा के रूप में अपना स्थान बनाया है। अंग्रेज़ी के इस स्थान को देखते हुए ही भारतीय गणतंत्र की सहराजभाषा के रूप में भी अंग्रेज़ी को मान्यता दी गई है। अंग्रेज़ी तकनीकी ज्ञान, उच्च शिक्षा और अन्य औद्योगिक व्यावसायिक क्षेत्रों में प्रचलित भाषा है। इसीलिए भारत में अंग्रेज़ी सीखने के पीछे निरंतर एक सामाजिक दबाव काम करता है। भारतीय संदर्भ में अंग्रेज़ी विजातीय द्वितीय भाषा है क्योंकि उसमें विदेशी भाषा के सामाजिक संदर्भ और सांस्कृतिक मूल्य समाविष्ट है। जिस प्रकार अंग्रेज़ी भाषा द्वितीय भाषा के रूप में सिद्ध है उसी प्रकार भारत के अन्य भाषायी समाज के लिए हिंदी द्वितीय भाषा के रूप में स्थित है। हिंदी भी भारतीय भाषा-भाषियों के सामाजिक आचरण का एक विकल्प है। हिंदी को संघ की राजभाषा घोषित किया गया है। संघ की राजभाषा होने के कारण हिंदीतर प्रदेशों में द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी का प्रचलन बढ़ा है। हिंदी के माध्यम से अब कामकाज के अवसर भी सामने आए हैं इसलिए हिंदी सीखने के पीछे भी अब एक द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी ने संपर्क भाषा का अपना स्वरूप भी विस्तृत किया है। भारत की दो भिन्न भाषाओं को बोलने वाले परस्पर संपर्क के लिए हिंदी का प्रयोग करते हैं। रेलवे प्लेटफॉर्म, बस अड्डों आदि पर प्रमुख संपर्क भाषा का कार्य हिंदी ही करने लगी है। संक्षेप में द्वितीय भाषा के निम्नलिखित लक्षण निर्धारित किए जा सकते हैं :

1. द्वितीय भाषा प्रयोक्ता की अपनी संस्कृति की अभिव्यक्ति का विकल्पवत दूसरा माध्यम होती है।

2. द्वितीय भाषा मातृभाषा के निकट होती है। परस्पर संपर्क और परिवेशगत समानता के कारण द्वितीय भाषा मातृभाषा से प्रभावित होती है और उसे प्रभावित करती है।

3. मातृभाषा के समान द्वितीय भाषा अनिवार्य नहीं होती लेकिन सामाजिक दबाव के कारण उसे सीखना पड़ता है।

4. कई संदर्भों में प्रयोक्ता के मानसिक विकास में द्वितीय भाषा सहायक होती है। कई बार यदि द्वितीय भाषा का ज्ञान न हो तो प्रयोक्ता को कई व्यावहारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है।

5. द्वितीय भाषा प्रयोक्ता की अपनी भाषा के समानांतर होती है। इसीलिए व्यक्ति मातृभाषा के समान ही द्वितीय भाषा में भी वैचारिक और सर्जनात्मक लेखन करने में सक्षम बन जाता है।

6. द्वितीय भाषा का ज्ञान अपने देश की सभ्यता और संस्कृति को समझने में बड़ी सहायता पहुँचाता है।

7. द्वितीय भाषा के प्रति प्रयोक्ता में आत्मीयता का भाव होता है। अभिप्रेरणा के स्तर पर वह उसे उतने ही मनोयोग से सीखने का प्रयत्न करता है जितने मनोयोग से वह अपनी मातृभाषा सीखता है।

8. द्वितीय भाषा के रूप में अपनाई जाने वाली भाषा अपने अलग मानक रूप का निर्माण करती है जैसा कि अंग्रेज़ी भाषा के साथ हुआ है।

9. द्वितीय भाषा मातृभाषा की स्थानापन्न बनने का प्रयत्न नहीं करती। उसे सह अस्तित्व की भावना से मातृभाषा के साथ सहयोजित भाषा के रूप में स्वीकार किया जाता है।

15.2.4 विदेशी भाषा

विदेशी भाषा न तो प्रयोक्ता के भाषायी समुदाय की भाषा होती है और न ही सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टि से वह मातृभाषा के निकट होती है। वास्तव में विदेशी भाषा किसी अध्येयता द्वारा सीखी गई वह भाषा है जो उससे पूर्व न तो उसके संपर्क में आती है और न ही उसका मातृभाषा की सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियों अथवा ऐतिहासिक भौगोलिक परिवेश से कोई संबंध होता है। यदि इस दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय संदर्भ में अन्य भाषा के रूप में रूसी, फ्रेंच, जर्मन आदि विदेशी भाषाएँ हैं। विदेशी भाषा के निम्नलिखित लक्षण हैं :

1. विदेशी भाषा प्रयोक्ता के अपने भाषायी समाज अथवा राष्ट्र से भिन्न किसी अन्य समाज अथवा राष्ट्र की संस्कृति को समझने का माध्यम होती है।

2. विदेशी भाषा सीखने के पीछे कोई गहरा सामाजिक दबाव नहीं होता।

3. विदेशी भाषा का बहुत गहरा असर प्रयोक्ता के मानसिक विकास पर नहीं पड़ता।

4. विदेशी भाषा का प्रयोक्ता उसे ग्रहणशीलता के स्तर पर ही अपनाता है इसलिए विदेशी भाषा में वैचारिक और सर्जनात्मक लेखन बहुत कम ही संभव हो पाता है।

5. विदेशी भाषा का जो मानक रूप होता है उसे उसी रूप में सीखना पड़ता है।

6. विदेशी भाषा सीखने के लिए अध्येयता व्यक्तिगत स्तर पर पहल करता है विदेशी भाषा के प्रति उसमें भावात्मक लगाव प्रायः नहीं होता।

इन लक्षणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय संदर्भ में अंग्रेज़ी को छोड़कर फ्रेंच, जर्मन, रूसी, जापानी आदि भाषाएँ विदेशी भाषाएँ हैं। इन्हें विदेशी भाषा के रूप में वर्गीकृत करने का मूल कारण यह है कि ये न तो अपने देश की मूल भाषाएँ हैं और न ही हम इनका प्रयोग अपने देश की सामाजिक, सांस्कृतिक और सर्जनात्मक क्षमता को बढ़ाने के लिए करते हैं।

15.3 भाषा-शिक्षण की प्रमुख विधियाँ

इस प्रकार भाषा-शिक्षण की दृष्टि से भाषा को मातृभाषा और अन्य भाषा के रूप में वर्गीकृत किया गया है। भाषा-शिक्षण के संदर्भ में विशेष रूप से अन्य भाषा-शिक्षण की दृष्टि से किया गया है और भाषा-शिक्षण की अनेक विधियों की चर्चा की गई है। इन विधियों का उपयोग मातृभाषा-शिक्षण और अन्य भाषा-शिक्षण में किया जाता है। भाषा-शिक्षण का संबंध 'भाषा' से है अतः भाषा अध्ययन और अध्यापन से, संबंधित जो सिद्धांत और प्रणालियाँ विकसित हुई हैं उनमें भाषा अधिगम (Learning) का स्थान प्रमुख है। भाषा-शिक्षण की सफलता इन्हीं विधियों पर निर्भर करती है। समय-समय पर भाषा-शिक्षण प्रणाली में हमें अनेक विधियाँ प्रचलित दिखाई देती हैं। इस क्षेत्र के प्रमुख विद्वान मैके ने पंद्रह शिक्षण विधियों का उल्लेख किया है :

1) प्रत्यक्ष विधि (Direct Method)
2) स्वाभाविक विधि (Natural Method)
3) मनोवैज्ञानिक विधि (Psychological Method)
4) ध्वनि वैज्ञानिक विधि (Phonetic Method)
5) वाचन विधि (Reading Method)
6) व्याकरण विधि (Grammer Method)
7) संकलन विधि (Electic Method)
8) इकाई विधि (Unit Method)
9) भाषा नियंत्रण विधि (Language Control Method)
10) अनुकरणात्मक विधि (Mimicry memorization Method).
11) अभ्यास सिद्धांत विधि (Practice theory Method)
12) सजातीय विधि (Cognate Method)
13) द्विभाषीय विधि (Duel Language Method)
14) अनुवाद विधि (Translation Method)
15) व्याकरण-अनुवाद विधि (Grammer-Translation Method)

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भाषा-शिक्षण विधि के विकास में चार प्रमुख पड़ाव आए हैं :

1. व्याकरण विधि
2. व्याकरण अनुवाद विधि
3. प्रत्यक्ष विधि और
4. संप्रेषणपरक भाषा-शिक्षण

यहाँ इन पर संक्षेप में विचार किया जाएगा।

15.3.1 व्याकरण विधि

व्याकरण विधि के अंतर्गत अन्य भाषा के नियमों को याद कराया जाता है। पहले शब्दों के माध्यम से और फिर शब्द संयोजन और व्याकरणिक नियमों के आधार पर अभ्यास कराए जाते हैं। इनमें व्याकरणिक नियमों की जानकारी को वास्तविक भाषा प्रयोग की अपेक्षा अधिक महत्व दिया गया इसलिए बाद में इस शिक्षण विधि की आलोचना हुई।

15.3.2 व्याकरण अनुवाद विधि

यह विधि पूरे विश्व में 19वीं शताब्दी तक मान्य रही। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, यह विधि दो तत्वों पर आधारित है - व्याकरण और अनुवाद। व्याकरण के स्तर पर यह विधि भाषा$_2$ के रूपात्मक विवरण पर आधारित थी। इसके साथ ही इस विधि में भाषा$_1$ और भाषा$_2$ के बीच अनुवाद प्रक्रिया को महत्व दिया जाता था। इसमें अध्यापक द्वारा निर्देशित शब्द भेद, धातु रूप, कारक और काल रचना आदि नियमों को छात्रों के लिए याद करना और फिर द्विभाषी शब्द कोशों की सहायता से उनका अनुवाद करना अपेक्षित था। इस प्रकार यह विधि सीखी जाने वाली भाषा को मातृभाषा के परिप्रेक्ष्य में रखकर सीखने पर बल देती थी, इसमें लक्ष्य भाषा का महत्व कम था, भाषा के जीवन्त पक्षों पर ध्यान नहीं दिया जाता था तथा छात्र की रुचि एवं अभिप्रेरणा को समाहित नहीं किया जाता था जिसके कारण यह विधि निरर्थक मानी जाने लगी।

15.3.3 प्रत्यक्ष विधि

व्याकरण अनुवाद विधि की सीमाओं को दूर करने तथा भाषा-शिक्षण को व्यावहारिक बनाने की दृष्टि से प्रत्यक्ष विधि सामने आई। इस विधि में शिक्षार्थी की मातृभाषा को मध्यस्थ नहीं

बनाया जाता। अन्य भाषा के सीधे संपर्क में लाकर शिक्षार्थी को मौखिक अभ्यास के सहारे भाषा सिखाई जाती है इसीलिए इस विधि को 'मौखिक वार्तालाप विधि' भी कहा गया है। देर तक वाक्यों को सुनना फिर उनका इस तरह अभ्यास करना कि वे वाक्य आदत के रूप में ढल जाएँ, इस विधि की मुख्य शिक्षण प्रक्रिया है। यह विधि भाषा अधिगत की स्वाभाविक प्रक्रिया पर आधारित है जिसकी प्रमुख मान्यता यह है कि : (1) भाषा का तात्पर्य बोलने से है, लिखने से नहीं, (2) भाषा आदतों का समूह है, (3) भाषा वह है जैसी मूल भाषा भाषी बोलते हैं, वह नहीं जो व्याकरण देता है, (4) भाषा सिखानी चाहिए, भाषा के विषय में नहीं। अपनी इस मान्यता के कारण प्रत्यक्ष विधि भाषा-शिक्षण की एक प्रमुख और लोकप्रिय विधि के रूप में विकसित हुई क्योंकि इसका लक्ष्य था भाषा-शिक्षण के माध्यम से शिक्षार्थी में भाषा-व्यवहार को पुष्ट करना।

15.3.4 संप्रेषणपरक भाषा-शिक्षण

प्रत्यक्ष विधि द्वारा भाषा सीखने से संबंधित व्यावहारिक पक्ष पर बल दिया गया। इसी पक्ष को और प्रबल बनाने के लिए संप्रेषण परक भाषा-शिक्षण विधि सामने आई जिसने भाषा-शिक्षण को निम्नलिखित लक्ष्यों से जोड़ा :

1. भाषा सीखने का तात्पर्य है, भाषा प्रयोग को सीखना। भाषा प्रयोग सीखने के अंतर्गत ही भाषा की संरचना को सीखना समाहित रहता है।
2. भाषा को केवल एक नियमबद्ध व्यवस्था के रूप में ही सीखना पर्याप्त नहीं है उसे एक सामाजिक संप्रेषण की वस्तु के रूप में सीखना सिखाना चाहिए।
3. भाषा सीखने का तात्पर्य है, सीखी जाने वाली भाषा के सामाजिक, सांस्कृतिक नियमों को भलीभँति सीखना,
4. लक्ष्य भाषा की प्रोक्ति संरचना के नियमों को सीखना भी आवश्यक है।
5. किसी विशिष्ट स्थिति के संदर्भ में किन भाषिक इकाइयों का व्यवहार उपयुक्त ढंग से किया जाए यह जानना भी आवश्यक है।
6. कोई भी भाषा सीखने का तात्पर्य है उसकी संप्रेषणपरक युक्तियों को जानना।

इस प्रकार संप्रेषणपरक भाषा-शिक्षण विधि ने भाषा-शिक्षण को एक ऐसा आधार दिया जिसमें भाषा के मौखिक रूप और उसकी समाज सांस्कृतिक विशेषताओं को प्रमुखता प्रदान की गई। इस विधि के द्वारा भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में समाज भाषा विज्ञान और शैली विज्ञान की सहभागिता बढ़ी। प्रत्यक्ष विधि से जुड़ कर इस विधि ने भाषा-शिक्षण को उस रूप में सामने रखा जो यह मानता है कि भाषा सीखने का अर्थ भाषा प्रयोग के नियमों को सीखना है न कि भाषा के व्याकरणिक नियमों को।

15.4 भाषा-शिक्षण और सामग्री निर्माण

भाषा-शिक्षण के लिए शिक्षण-सामग्री अनिवार्य होती है। शिक्षण सामग्री के अंतर्गत पाठ्य पुस्तकें, व्याकरण, शब्दकोश को मूल सामग्री के रूप में तथा अभ्यास-सामग्री, आधुनिक उपकरणों आदि को व्यावहारिक सामग्री के रूप में देखा जा सकता है। भाषा-शिक्षण की उपादेयता को देखते हुए आज शिक्षण-सामग्री को अधिकाधिक प्रयोजनमूलक, संप्रेषणपरक और वैज्ञानिक बनने का प्रयास किया जा रहा है जिस पर संक्षिप्त प्रकाश हम यहाँ डालेंगे।

भाषा शिक्षण की योजना के तीन चरण माने जाते हैं। ये हैं - चयन (selection), अनुस्तरण (gradation) और प्रस्तुतीकरण (presentation)। चयन के चरण में उन पाठ्य बिंदुओं का चयन किया जाता है, जिन्हें पाठ्यपुस्तक में शामिल किया जाना है। ये

पाठ्यबिंदु ध्वनि, लिपि, वर्तनी, शब्द, वाक्य आदि सभी भाषिक तत्व हैं जिनका ज्ञान देना शिक्षण का लक्ष्य है। पाठ्यक्रम निर्माता दो तरह से पाठ्यबिंदुओं का चयन कर सकते हैं। वे भाषा की रचना की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए उन महत्वपूर्ण बिंदुओं को छाँट सकते हैं, जो भाषा के व्यवहार के लिए आवश्यक हैं। दूसरी ओर वे सीखने वालों की भाषा को ध्यान में रखते हुए, तुलना के आधार पर उन बिंदुओं को चुन सकते हैं, जो कठिनाई पैदा कर सकते हैं। यह मान्यता है कि दो भाषाओं में भिन्न संरचना के स्थल कठिनाई पैदा कर सकते हैं। जब पाठ्यबिंदुओं का चयन कर दिया जाए, तो उन्हें पाठ्यपुस्तक में प्रस्तुतीकरण के क्रम से अनुस्तरित किया जाता है। अनुस्तरण का उद्देश्य यह है कि छात्र पहले सरल और आवश्यक तत्व सीखें, बाद में क्रम से अन्य तत्व सीखें। चयन और अनुस्तरण पाठ्य सामग्री निर्माण से संबंधित चरण है। इनके फलस्वरूप जब पाठ्य पुस्तक तैयार हो जाती है, तो प्रस्तुतीकरण (कक्षा अध्यापन) का चरण प्रारंभ होता है।

शिक्षण के तीन प्रमुख पहलू हैं। ये हैं : विद्यार्थी, सामग्री और अध्यापका द्वारा कक्षा में उसका प्रस्तुतीकरण। सबसे उत्तम विद्यार्थी और सामग्री के बावजूद अगर अध्यापक ढंग से उसका पालन और प्रयोग न कर सके तो लक्ष्य पूर्ति नहीं हो सकती। इस संदर्भ में कह सकते हैं कि अध्यापकों का उस विद्यार्थी और उस सामग्री के उपयोग के लिए प्रशिक्षण आवश्यक है। अध्यापक उस सामग्री का प्रयोग कैसे करे। आवश्यकतानुसार कक्षा के लिए अतिरिक्त सामग्री कैसे बनाए। छात्रों में दिखाई देने वाले भाषा दोषों का निवारण कैसे करे। इन सबको हम प्रशिक्षण के माध्यम से समझा सकते हैं। इस तरह अध्यापकों की सामग्री के संदर्भ में तीन विशिष्ट भूमिकाएँ हैं। निर्माण से पूर्व वे अपने अनुभव के आधार पर दिशा-निर्देश दे सकते हैं, सामग्री को विधि सम्मत ढंग से प्रस्तुत कर सकते हैं और पढ़ाते हुए वे अतिरिक्त सामग्री का स्वयं निर्माण कर सकते हैं।

15.4.1 भाषा व्यवहार से संबंधित सामग्री

भाषा, स्वयं में है क्या? भाषा की अपनी प्रकृति क्या है? शिक्षा के व्यापक संदर्भ में भाषा का क्या स्थान होना चाहिए? शिक्षार्थी के समाज और राष्ट्र के प्रति क्या कर्तव्य हैं? भाषा व्यवहार से संबंधित सामग्री का निर्माण करते समय इन सभी का ध्यान रखा जाना चाहिए। भाषा अगर सामाजिक वस्तु के रूप में संप्रेषण व्यवस्था का माध्यम है तो वह मानसिक जीवन की संकल्पनात्मक शक्ति भी है। योग्य शिक्षक का दायित्व है कि वह विषयवस्तु को छात्रों के सम्मुख सही भाषा प्रयोग में बाँध कर शिक्षार्थी तक पहुँचाए।

भाषा प्रयोग या भाषा-व्यवहार के तीन निश्चित संदर्भ देखे जा सकते हैं :

1. भाषा का संरचनात्मक संदर्भ
2. भाषा का बोधात्मक संदर्भ
3. भाषा का सामाजिक संदर्भ

अन्य भाषा को अगर प्रभावी रूप में उपादेय बनाना है तो अध्येता को केंद्र में रखकर अधिगम प्रक्रिया में भाषा व्यवहार में पाई जाने वाली त्रुटियों का निराकरण करते हुए पाठों का निर्माण किया जाना चाहिए।

समाज में भाषा वैविध्य के प्रयोग की भी कुछ सीमाएँ होती हैं जिनका निर्धारण और नियंत्रण समाज स्वयं करता है। सामाजिक अर्थ का संबंध चयन और विकल्प के साथ रहता है। विकल्प के रूप में उपलब्ध दो में किसी एक का चयन करते समय जो त्रुटियाँ होती हैं इनका संबंध भाषायी समाज के आचरणगत उचित व्यवहार की जानकारी का अभाव हो सकता है। कभी-कभी भाषा सही चुनाव के लिए चिह्नक का उपयोग करती है यथा - आदर के लिए श्रीमान, श्रीमती जी, साहब आदि और कभी-कभी इनका उपयोग नहीं भी करती है। इसका पता समुदाय समाज के आचरणगत और सामाजिक व्यवहार के द्वारा ही

ःता है। इसका सीधा संबंध सामाजिक बोध से होता है। यह सामाजिक बोध भाषा ‌दाय के संदर्भ में विषयीकृत होता है।

.4.2 माध्यम एवं उपकरण

ा-शिक्षण के संदर्भ में दृश्य-श्रव्य सामग्री का अपना महत्व है। शिक्षाविदों और ावैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि जिस सीमा तक बालक की ज्ञानेंद्रियों को याशील रखा जाएगा उतना ही अधिक प्रभाव पड़ेगा। बिना दृश्य-श्रव्य सामग्री के अध्येता ार्थी निष्क्रिय श्रोता मात्र रह जाएगा। यही कारण है कि आज शिक्षण विधि को प्रभावी । सजीव बनाने के लिए दृश्य-श्रव्य उपकरणों की आवश्यकता का अनुभव तेजी से किया ो लगा है।

क्ष अनुभव' के लिए दृश्य उपकरणों की आवश्यकता है। दृश्य उपकरणों की सहायता

- पाठ्य सामग्री को सरस तथा सरल बनाया जा सकता है।
- विषय को स्पष्ट किया जा सकता है।
- विषय को रोचक शैली में बोधगम्य बनाया जा सकता है।
- ज्ञानेन्द्रियों को कभी-कभी कर्मेन्द्रियों को क्रियाशील रखा जा सकता है।
- प्रत्यक्ष अनुभव होता है जिससे स्वयं सीखने की प्रेरणा मिलती है।
- क्रमिक रूप से विचार श्रृंखला को स्थायित्व प्राप्त होता है।
- प्रत्यय निर्माण और सही अर्थ ग्रहण में सहायता मिलती है जिससे शब्द भंडार में पर्याप्त वृद्धि होती है।
- कक्षा में जो संभव नहीं है उसे वीडियो आदि के द्वारा दिखाया जा सकता है, कक्षा के बाहर भी अध्येता इन उपकरणों का प्रयोग कर सकता है।

4.3 बहुसंचार सामग्री

यक सामग्री में दृश्य-श्रव्य उपकरणों की आवश्यकता और उनके महत्व के बाद शिक्षक इन सबका सम्यक ज्ञान होना चाहिए कि इस सामग्री में से वह किसका, कब, कैसे कितना उपयोग करे।

-शिक्षण को स्वाश्रित बनाने की दिशा में जो प्रयत्न देखने में आते हैं उन्हें शिक्षक-ार्थी के संपर्क के संदर्भ में देखा जा सकता है। इसके निम्नलिखित चरण हैं :

पहले चरण में ब्लैक बोर्ड, चार्ट, फ्लैश कार्ड, ग्रामोफोन, स्लाइड आदि
दूसरे चरण में भाषा प्रयोगशाला,
तीसरे चरण में रेडियो, टेलीविज़न, तथा
चौथे चरण में कंप्यूटर।

श्रत शिक्षण विधि भाषा-शिक्षण का वह रूप है जिसमें पाठों को अनुस्तरित और जित करके इस रूप में तैयार किया जाता है जिससे वह पूर्ण रूप से 'स्वयं शिक्षक' ाम कर सके।

बार भाषा-शिक्षण की पूरी सामग्री का निर्माण हो जाने के बाद उसे 'कम्प्यूटर' अपने न' द्वारा शिक्षार्थी के लिए उपलब्ध कराता है।

15.5 भाषा-शिक्षण की अधुनातन भूमिका

भाषा व्यक्ति समाज और राष्ट्र के लिए महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा व्यक्ति का समाजीकरण होता है और उसके व्यक्तित्व का विकास होता है। समाज में व्यक्ति को सामाजिक वर्गों में बाँधने और समाज की विभिन्न इकाइयों को एक दूसरे से जोड़ने-बाँधने में भाषा ही सहायक होती है। राष्ट्रीय स्तर पर भाषा हमारी राष्ट्रीय भावना को और राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता को व्यक्त करती है। इस प्रकार भाषा का व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। भाषा का यह महत्व भाषा-शिक्षण द्वारा ही पूरा हो पाता है। भाषा-शिक्षण की सही नीति ही किसी राष्ट्र को आर्थिक विकास की ओर ले जाती है। इसके साथ ही विभिन्न राष्ट्रों से जुड़ने के लिए भी भाषा-शिक्षण की व्यापक भूमिका है। आज कोई भी राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से कट कर अपना विकास नहीं कर सकता। अतः दूसरे देशों की भाषा सीखने-सिखाने की ओर भी अब व्यापक प्रबंध पूरे विश्व में किए गए हैं। आज हम किसी भी देश की कोई भाषा अथवा अपने देश की किसी भाषा को पूरी सुविधा के साथ सीख सकते हैं।

अपने देश में विभिन्न भाषाओं के होने से भाषा-शिक्षण की स्थिति अन्य देशों की तुलना में विशिष्ट है। हम हिंदी, अंग्रेज़ी और भारतीय भाषाओं को प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाषा के रूप में सीखते-सिखाते हैं। हम इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि भारत में शिक्षा के व्यापक संदर्भ में हमारी भाषाओं का स्थान होना चाहिए। भाषा-ज्ञान, विषय के ज्ञान और दूसरी भाषा के ज्ञान पर भी हम संतुलित दृष्टि रखते हैं। इस प्रकार भाषा-शिक्षण की भूमिका समाज और राष्ट्र की आवश्यकता के अनुसार बदलती है और इसी के अनुरूप भाषा-शिक्षण की उपादेयता भी निर्धारित होती है।

15.5.1 संचार व्यवस्था में

आधुनिक विश्व में संचार व्यवस्था का क्रांतिकारी ढंग से विस्तार हुआ है। संचार व्यवस्था के इस विस्तार ने विभिन्न भाषाओं को एक दूसरे के निकट ला दिया है। आज दुनिया भर के समाचार हमें प्राप्त हो जाते हैं। दूरदर्शन आदि पर हम किसी भी भाषा का कार्यक्रम अपनी भाषा में 'डबिंग' द्वारा अथवा 'सबटाइटिल' द्वारा देख पाते हैं। एक भाषा से दूसरी भाषा में जो लोग यह रूपांतर कर रहे हैं उन्होंने भाषा-शिक्षण के माध्यम से अन्य भाषा सीखी है। संचार माध्यमों के विकास ने यह सिद्ध कर दिया है कि मातृभाषा का स्थान हमारे ज़ीवन में पहला होता है लेकिन द्वितीय भाषा का स्थान भी गौण या निरर्थक नहीं है।

15.5.2 अनुवाद में

दो भाषाओं में दक्ष व्यक्ति दोनों भाषाओं के बीच परस्पर अनुवाद में समर्थ होता है। अनुवाद का क्षेत्र भी आज अति व्यापक हो गया है। एक ओर विभिन्न भाषाओं के सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद राष्ट्रीय भाषाओं के बीच भी होने लगा है और विदेशी भाषाएँ भी अनुवाद के लिए स्रोत या लक्ष्य भाषा के रूप में अपनायी जाने लगी हैं। दो भाषाओं में यह दक्षता भाषा-शिक्षण के द्वारा ही प्राप्त होती है। विशेष रूप से औपचारिक और लिखित भाषा का अधिगम हमें शिक्षण के द्वारा ही मिलता है। यह शिक्षण हमारे अनुभव कौशल को भी प्रवीणता प्रदान करता है तथा अपनी मातृभाषा और अन्य भाषा के साहित्य को समझने की दक्षता प्रदान करता है। भारतीय भाषाओं से हिंदी में और हिंदी से भारतीय भाषाओं में अनुवाद करने वालों की एक लंबी परंपरा भारत में रही है जो आज बहुत ही सुदृढ़ बन चुकी है। आज हम भारत की किसी भी भाषा का साहित्य हिंदी में पढ़ सकते हैं। इसी प्रकार हिंदी के श्रेष्ठ साहित्य को हम किसी भी प्रमुख भारतीय भाषा के माध्यम से पढ़ सकते हैं। इसके साथ ही आधुनिक ज्ञान विज्ञान का विस्तार भी अनुवाद के माध्यम से ही होता है। भारतीय भाषाओं में यह ज्ञान विज्ञान अंग्रेज़ी से किए गए अनुवाद के माध्यम से आता है। अतः

ारतीय संदर्भ में अंग्रेज़ी भाषा का शिक्षण हमें आधुनिकता से संबद्ध करने के लिए ावश्यक है।

5.5.3 अंतर्राष्ट्रीय संबंध निर्वाह में

ाधुनिकता और औद्योगिकीकरण ने पूरे विश्व को एक परिवार में बदल दिया है। आज ॆभिन्न भाषाओं का शिक्षण पूरे विश्व में हो रहा है। विश्व के सैकड़ों विश्वविद्यालयों में हिंदी ढ़ाई जा रही है और भारत के अनेक विश्वविद्यालयों में रूसी, जर्मन, फ्रेंच, जापानी, चीनी, टेलियन जैसी भाषाओं के शिक्षण की समुचित व्यवस्था है। इस प्रकार का भाषा-शिक्षण ंतर्राष्ट्रीय संबंधों के निर्वाह में सहायक होता है। राजनीतिक संबंधों के लिए विभिन्न ूतावासों में जो लोग काम करते हैं उनके लिए उस देश की भाषा का ज्ञान आवश्यक ोता है। अनेक राजनीतिक और नेता जो विभिन्न देशों में जाते हैं उनके भाषणों आदि को हाँ की भाषा में प्रस्तुत करने के लिए आज दुभाषियों की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। नके प्रशिक्षण में अन्य भाषा-शिक्षण की अपनी भूमिका है। व्यापारिक स्तर पर भी अब हुराष्ट्रीय कंपनियाँ एक साथ अनेक देशों में अपना औद्योगिक विकास कर रही हैं, इस रिस्थिति में भी विभिन्न आधुनिक भाषाओं के प्रयोग की उन्हें आवश्यकता पड़ती है जिसमें ाषा-शिक्षण उनकी मदद कर सकता है।

ाषा-शिक्षण आज पूरे विश्व में एक ऐसे विद्या क्षेत्र के रूप में मान्य है जिसके माध्यम से ेवल विषयवस्तु का ज्ञान ही प्राप्त नहीं कराया जाता बल्कि शिक्षार्थी के भीतर एक नवीन ाषा संस्कार उत्पन्न कराने में सहयोग दिया जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भाषा-शिक्षण शिक्षार्थी को अपनी भाषा या किसी दूसरी भाषा में अधिक सक्षम बनाता है। आज यह ीकार कर लिया गया है कि द्विभाषी या बहुभाषी व्यक्ति मानसिक और वैचारिक दृष्टि से क भाषी व्यक्ति की तुलना में अधिक समर्थ और शक्तिशाली होता है। यही कारण है कि ाज भाषा-शिक्षण पूरे संसार में बहुत ही गंभीरता से ली जाने वाली एक संकल्पना के रूप स्वीकृत है।

5.6 सारांश

ाधुनिक युग में भाषा-शिक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण विषय बन गया है क्योंकि हम एक बहुभाषी माज में रह रहे हैं और विश्व स्तर पर भी लोगों में संपर्क बढ़ गया है। इस कारण अपनी ाषा से भिन्न एक या अधिक भाषाएँ सिखाने की अनिवार्यता-सी बन जाती है। इसी संदर्भ हम भाषा-शिक्षण के तीन प्रमुख प्रकार देखते हैं। मातृभाषा-शिक्षण व्यक्तित्व के विकास ा चरण है। व्यक्ति मातृभाषा से ज्ञान के संसार में प्रवेश करता है और मातृभाषा में भिव्यक्ति के स्तर पर अधिक से अधिक कुशलता प्राप्त करता है। दूसरा भाषा आमतौर पर पने परिवेश की भाषा, उसकी शब्दावलिक संरचना और शैलियाँ मातृभाषा से मिलती लती हैं। आमतौर पर व्यक्ति अन्य भाषा को जीवन में व्यवहार को लिए सीखते हैं। विदेशी ाषा इस दृष्टि से दूर की भाषा होती है और विदेशी भाषा को ज्ञान पिपासा के कारण ही ीखता है। हम जीवन में विदेशी भाषा का उतना प्रयोग नहीं कर सकते। इस संदर्भ में चर्चा ा विषय यह बन सकता है कि भारत में अंग्रेज़ी शिक्षण का स्वरूप क्या हो?

्क्ति मातृभाषा को समाज में सामान्य सदस्य बनने के लिए सीखता है इसलिए वह ातृभाषा में क्षमता और गति पा जाता है। इसकी तुलना में अन्य भाषा और विदेशी भाषा ीखने वाले इन्हें सीमित परियोजना को अर्जित करते हैं। साथ ही उन भाषा पर मातृभाषा ी संरचना का बराबर आघात (impact) पड़ता है। साथ ही उन भाषा या विदेशी भाषा ीखने वाला छात्र उस भाषा में पूरी दक्षता प्राप्त नहीं कर पाते और उनमें कुछ दोष रह ही ाते हैं। इन्हीं दोषों के संदर्भ में और अन्य या विदेशी भाषा को पूरी क्षमता के साथ सीखने

की आवश्यकता के संदर्भ में हम विधि की चर्चा करते हैं। अच्छी भाषा-शिक्षण की वह विधि है जो कम से कम समय में बहुत अच्छे ढंग से भाषा के अर्जन का मार्ग दिखाए। इस इकाई में तीन प्रमुख विधियों की चर्चा की गई है। व्याकरण, अनुवाद विधि, परंपरागत विधि से विधि के माध्यम से छात्र लिखित भाषा में दक्षता प्राप्त कर लेते हैं। लेकिन उच्चरित भाषा में कमजोर विधि का परवर्धित रूप ही संप्रेषणपरक विधि है जिसमें सहज संप्रेषण द्वारा संप्रेषण के लिए भाषा सीखने पर बल दिया जाता है।

विधि चाहे जो भी हो लेकिन उस विधि के प्रभावी प्रयोग के लिए उचित सामग्री का होना आवश्यक है। अच्छी विधि, उसके माध्यम से पढ़ाने के लिए उपयुक्त सामग्री और अध्ययन के लिए अध्यापकों का सही प्रशिक्षण भाषा शिक्षण के क्षेत्र में सफल बन सकता है। इकाई के अंत में आधुनिक युग में भाषा-शिक्षण की उपयोगिता और भूमिका की चर्चा की गई है।

15.7 अभ्यास प्रश्न

1. निबंधात्मक प्रश्न

(1) मातृभाषा एवं भाषा तथा विदेशी भाषा की संकल्पना स्पष्ट कीजिए।

(2) व्याकरण, अनुवाद, विधि और सम्प्रेषणपरक भाषा-शिक्षण की तुलना कीजिए।

2. टिप्पणियाँ

(1) व्याकरण अनुदाद विधि के गुण-दोष

(2) मातृभाषा-शिक्षण का स्वरूप

(3) बहुसंचार सामग्री

ाई 16 भाषा-शिक्षण-II

ाई की रूपरेखा

) उद्देश्य
1 प्रस्तावना
2 उद्देश्य केंद्रित भाषा-शिक्षण
16.2.1 उद्देश्यों की पूर्ति में भाषा-शिक्षण
16.2.2 भाषा-शिक्षण के उद्देश्यों में निर्धारण
16.2.3 उद्देश्यों की पूर्ति में बाधाओं का विश्लेषण
3 भाषा-शिक्षण और त्रुटि विश्लेषण
16.3.1 त्रुटि विश्लेषण के सिद्धांत
16.3.2 व्यतिरेकी विश्लेषण और त्रुटि विश्लेषण
4 परीक्षण और मूल्यांकन
16.4.1 भाषा परीक्षण के संदर्भ
16.4.2 मूल्यांकन के प्रकार
16.5 अभ्यास सामग्री
16.6 दृश्य-श्रव्य सामग्री
16.7 सारांश
16.8 अभ्यास प्रश्न

.0 उद्देश्य

इकाई में भाषा-शिक्षण की उन मान्यताओं और धारणाओं पर विचार किया गया है नसे संबद्ध होकर ही भाषा-शिक्षण और भाषा-अधिगम की प्रक्रिया सफलतापूर्वक संपन्न ो है। आज भाषा-शिक्षण का केंद्रक 'शिक्षार्थी' है अतः शिक्षार्थी केंद्रित भाषा-शिक्षण में इकाई में विवेचित संदर्भ बहुत ही उपयोगी और महत्वपूर्ण सिद्ध होते हैं।

इकाई को पढ़ने के बाद आप :

भाषा सीखने में उत्पन्न बाधाओं की चर्चा कर सकेंगे;

त्रुटि विश्लेषण की व्याख्या कर सकेंगे;

भाषा परीक्षण और मूल्यांकन का स्वरूप स्पष्ट कर सकेंगे; और

दृश्य-श्रव्य सामग्री के प्रकार प्रयोग की स्थित स्पष्ट कर सकेंगे।

.1 प्रस्तावना

ा-शिक्षण का क्षेत्र आज अतिव्यापक हो गया है। भाषा-शिक्षण की तकनीक अधिक ानिक बन गई है और उसकी विधियाँ-पद्धतियाँ नए रूप में भाषा-शिक्षण के नवीन लक्ष्यों, श्यों को साधने की दृष्टि से सामने आई हैं। इनमें से कुछ का परिचय छात्रों को इसके ले की इकाई में मिल चुका है। आज भाषा-शिक्षण को अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की एक ख़ा के रूप में विवेचित किया जा रहा है। भाषा-शिक्षण में समाज भाषाविज्ञान, ोभाषाविज्ञान, शैलीविज्ञान के सहयोग से एक नई क्रांति उत्पन हुई है। परंपरागत शिक्षण कई अवधारणाएँ अमान्य हुई हैं और नवीन दृष्टि आई है। परीक्षण-मूल्यांकन की रागत धारणा में भी परिवर्तन आया है कि इनका उद्देश्य छात्र को सफल असफल षेत करना मात्र है - आज इन्हें भाषा-शिक्षण के साथ सहयोजित क्रिया के रूप में देखा रहा है। शिक्षार्थी के क्षमता संबंधी विकास की पहचान के लिए अभ्यास-सामग्री तथा य-श्रव्य सामग्री का महत्व भी अन्य भाषा-शिक्षण में बढ़ा है और इनक स्तरों और भाषा-

शिक्षण को इनसे होने वाले लाभों पर विस्तृत चर्चा हमें मिलती है। इन सभी पर इस इकाई में विचार करते हुए 'भाषा-शिक्षण' के अधुनातन संदर्भ इस इकाई में उभारे गए हैं।

16.2 उद्देश्य केंद्रित भाषा-शिक्षण

भाषा-शिक्षण आज उद्देश्य केंद्रित है। भाषा का अध्येता भाषा को किसी न किसी उद्देश्य से सीखता है। मातृभाषा को औपचारिक और लिखित रूप वह इसलिए सीखता है कि एक बड़े लिखित साहित्य से परिचित हो सके। मातृभाषा सीखने का एक उद्देश्य यह भी होता है कि शिक्षार्थी इसके माध्यम से अपने भावों और विचारों को लिखित रूप में व्यक्त करके अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने में समर्थ बनता है। इसी प्रकार द्वितीय भाषा सीखने का उद्देश्य यह होता है कि व्यक्ति अपनी भाषा के परिवेश की कोई दूसरी भाषा सीखकर अपने को सामाजिक संप्रेषण के उन क्षेत्रों से जोड़ सके जिनकी पूर्ति द्वितीय भाषा के माध्यम से ही संभव है। विदेशी भाषा सीखने का उद्देश्य किसी अन्य भाषा के माध्यम से उन लाभों को प्राप्त करना है जो विदेशी भाषा के माध्यम से ही प्राप्त हो सकते हैं जैसे अनुवाद कार्य, दुभाषिए का कार्य, विदेशी दूतावासों में सेवा इत्यादि। इसके साथ ही किसी अन्य राष्ट्र में पर्यटक के रूप में जाने पर भी विदेशी भाषा का सामान्य ज्ञान काफी सहयोगी होता है। विदेशी भाषा के अधिकांश अध्येता इसी उद्देश्य से कोई विदेशी भाषा सीखते हैं।

16.2.1 उद्देश्यों की पूर्ति में भाषा-शिक्षण

भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में मातृभाषा, द्वितीय भाषा और विदेशी भाषा तीनों ही स्तरों पर भाषा-शिक्षण के उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं। इस संदर्भ में भाषा-शिक्षण में 'केंद्रक' के बदलने का भी काफी प्रभाव पड़ा है। भाषा-शिक्षण की आधुनिक विचारधारा यह मानती है कि आज भाषा शिक्षण का केंद्रक शिक्षार्थी है अतः पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम दोनों केंद्र में मूलतः शिक्षार्थी को ही महत्व मिलना चाहिए। अब भाषा-शिक्षण का केंद्रक शिक्षार्थी है और पूरी शिक्षण प्रणाली को शिक्षार्थी की दृष्टि से ही निर्मित और नियंत्रित किया जाता है। इस प्रकार भाषा-शिक्षण का उद्देश्य शिक्षार्थी के भाषा सीखने के पीछे निहित उद्देश्य से सम्बद्ध हो गया है। यहाँ आपको यह भी जानना चाहिए कि शिक्षा की पुरानी परंपरा पाठ्यचर्या के रूप में 'विद्यालय' और 'विषयवस्तु' को केंद्र में रखती थी, यह परांपरागत शिक्षा पद्धति पाठ्यक्रम के केंद्रक के रूप में 'शिक्षक' को महत्व देती थी। परंतु अब यह धारणा बदल गई है। अब यह माना जाने लगा है कि शिक्षार्थी के उद्देश्य को प्रमुखता देनी चाहिए क्योंकि भाषा-शिक्षण का तात्पर्य शिक्षार्थी के अनुभव जगत को उसकी रुचि के अनुरूप सक्षम बनाना है। शिक्षार्थी को केंद्र में रखने वाली आधुनिक भाषा-शिक्षण पद्धति यह मानती है कि शिक्षण सामग्री के रूप में विषयवस्तु चाहे कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो और पाठ्य सामग्री का स्तर कितना ही ऊँचा क्यों न हो, जब तक अध्ययन अध्यापन के समय शिक्षार्थी का अनुभव जगत उसे ग्रहण नहीं करता और उससे प्रभावित नहीं होता तथा उसकी क्षमता, रुचि और अभिवृत्ति के अनुरूप उपयोगी नहीं बनता तब तक शिक्षा का पूरा कार्यक्रम अधूरा ही माना जाएगा। इस प्रकार भाषा-शिक्षण के उद्देश्य भी पूरे नहीं हो पाएँगे।

यही कारण है कि शिक्षार्थी को ध्यान में रख कर भाषा-शिक्षण के उद्देश्यों का निर्धारण किया गया।

16.2.2 भाषा-शिक्षण के उद्देश्यों का निर्धारण

भाषा मनुष्य के जीवन में अनेक कार्य करती है। मनुष्य भाषा के द्वारा ही अपने अनेक सामाजिक दायित्वों की पूर्ति करता है। आजकल यह भी माना जाता है कि मनुष्य को व्यापक संप्रेषण के लिए दो प्रकार की भाषाओं की आवश्यकता होती है। जब वह अपनी किसी प्यारी या आत्मीय वस्तु के बारे में बात करना चाहता है तब उसे घर परिवार की

षा अर्थात् सामान्य भाषा की आवश्यकता पड़ती है लेकिन इसके साथ ही उसे तथ्यपरक षा भी चाहिए। ज्ञान, तर्क और वैज्ञानिक सत्य की भाषा भी चाहिए। ज्ञान, तर्क और ज्ञानिक सत्य की भाषा के बिना भी उसका कार्य नहीं चल सकता। इस भाषा के शब्द धुनिकीकृत होते हैं और उनके अर्थ स्थिर। हम यह जानते हैं कि हिंदी की बोलियाँ घर-वन की भाषा के रूप में हमारी आवश्यकताएँ पूरी करती हैं लेकिन ज्ञान, तर्क आदि के ए हमें हिंदी या अंग्रेज़ी की ओर जाना पड़ता है, अर्थात् हम भाषा-शिक्षण की औपचारिक णाली से किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही जुड़ते हैं। संसार की अनेक छोटी-छोटी भाषाएँ उन भाषा समुदायों की संप्रेषण संबंधी सामान्य ज़रूरतों को तो पूरा कर देती हैं लेकिन पक उद्देश्यों के लिए ये समाज विश्व की विकसित भाषाओं का अधिगम करते हैं और ने को आधुनिक या अंतर्राष्ट्रीय संप्रेषण व्यापार के लिए तैयार करते हैं। सामान्य और शेष्ट दोनों ही प्रकार के भाषा प्रयोगों को देखते हुए भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में कुछ उद्देश्य र्धारित किए गए जो निम्नलिखित हैं :

मन की सर्जनात्मकता : आप और हम यह भलीभाँति जानते हैं कि भाषा हमारे विचार और दृष्टिकोण दोनों को प्रभावित करती है। भाषा मनुष्य को अपने नियंत्रण में रखती है। भाषा के अधिगम या शिक्षण का प्रमुख उद्देश्य यह है कि वह अध्येता को भाषा से नियंत्रित होने की स्थिति से निकाल कर उसमें भाषा को नियंत्रित करने की क्षमता और दक्षता उत्पन्न करे। भाषा-शिक्षण का यह प्रमुख उद्देश्य है कि भाषा का अध्येता आवश्यकता पड़ने पर अपने अनुभवों और अपनी अभिव्यक्तियों को सर्जनात्मक स्तर पर भी व्यक्त कर सके। वह एक ही कथन को अनेक ढंग से कह सके, प्रश्न पूछ सके, भिन्न मनोभावों को व्यक्त करने के लिए भिन्न अभिव्यक्तियों का सटीक उपयोग कर सके इत्यादि। इसे हम भाषा को साधने की स्थिति भी कह सकते हैं। प्रमुख रूप से मातृभाषा अधिगम का यह उद्देश्य होता है कि अध्येता अपनी मातृभाषा को साध कर विविध परिस्थितियों और संदर्भों में मौखिक और लिखित अभिव्यक्ति कर सके।

दृष्टि की मुक्तता : भाषा हमें जीवन और जगत को देखने की दृष्टि भी देती है। हम अपने आसपास की चीज़ों को भाषा के माध्यम से ही पहचानते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि हम संसार को उसी प्रकार देखते हैं जिस तरह भाषा हमें देखने की अनुमति देती है। इतना ही नहीं, हम अपने अनुभवों को भी उसी रूप ढाल सकते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि भाषा का संबंध हमारे परिवेश और समाज से बहुत गहरा होता है। अन्य भाषा-शिक्षण का उद्देश्य इसीलिए विशिष्ट है कि वह हमें दूसरी भाषा के माध्यम से जीवन और जगत को देखने की शक्ति प्रदान करता है। अपनी मातृभाषा में हमें यह शक्ति स्वतः प्राप्त होती है। अन्य भाषा-शिक्षण का यह उद्देश्य है कि मातृभाषा में बंधी हुई संसार को देखने की इस दृष्टि से भिन्न एक दृष्टि भाषा अध्येता को प्राप्त हो सके, उसका आयाम विस्तृत हो सके। अब हम यह मान सकते हैं कि अन्य भाषा शिक्षण का उद्देश्य है कि शिक्षार्थी एक अतिरिक्त भाषा की संस्कृति से आमने-सामने हो सके। दो संस्कृतियों के माध्यम से अध्येता का अनुभव जगत व्यापक बनता है। दो भाषा व्यवस्थाओं में गुंथा उसका अनुभव मानसिक दृष्टि से भी उसे लचीला बनाता है और उसकी मानसिक क्षमताएँ बढ़ती हैं। दृष्टि की मुक्तता का उद्देश्य यही है कि अध्येता एक से अधिक दृष्टिकोण से देख पाने मे समर्थ हो।

बुद्धि की समृद्धता : जैसा कि अभी कहा गया, भाषा ज्ञानार्जन का एक महत्वपूर्ण साधन है। हमने यह भी देखा कि ज्ञान, विज्ञान और तर्क के कई ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ हमें एक विशेष प्रकार की भाषा अथवा अन्य भाषा की आवश्यकता पड़ती है। हमारी अपनी ही भाषा में ज्ञान-विज्ञान से संबंधित नित नए शब्द आते रहते हैं। इनके माध्यम से ही हम बाह्य जीवन की नई-नई वस्तुओं की जानकारी प्राप्त

करते हैं। मातृभाषा और अन्य भाषा, दोनों के शिक्षण का यह उद्देश्य होता है कि ज्ञान और बुद्धि के धरातल पर भाषा अध्येता संमृद्ध बनता चले। भाषा-शिक्षण की प्रक्रिया में पाठ्य सामग्री इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर बनाई जाती है कि भाषा के सहारे अध्येता का बौद्धिक स्तर समृद्ध से समृद्धतर हो सके।

4) **व्यक्तित्व की सामाजिकता :** भाषा केवल संप्रेषण का साधन ही नहीं है, यह व्यक्ति को सामाजिक बनाने का समर्थ माध्यम भी है। हमने इसके पहले की इकाई में यह देखा था कि भाषा के द्वारा व्यक्ति का समाजीकरण होता है। भाषा के सहारे ही व्यक्ति समाज से जुड़ता है और इस जुड़ने की प्रक्रिया में ही वह सामाजिक बनता चलता है। भाषा अधिगम और भाषा-शिक्षण भी इसीलिए एक अनवरत प्रक्रिया माने गए हैं। यही कारण है कि भाषा अधिगम और शिक्षण के समय ही व्यक्ति समाज और संस्कृति को तथा समाज और संस्कृति से सामाजिक व्यक्तित्व को प्राप्त करता है। भाषा-शिक्षण का यह उद्देश्य है कि वह अध्येता के सामाजिक व्यक्तित्व के निर्माण और विकास पर ध्यान दे।

16.2.3 उद्देश्यों की पूर्ति में बाधाओं का विश्लेषण

भाषा-शिक्षण की प्रक्रिया में उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति बहुत आसान नहीं होती, भाषा सीखते समय अनेक ऐसी बाधाएँ आती हैं जो इन उद्देश्यों की पूर्ति में अवरोध उत्पन्न करती हैं। इन्हें दूर करने का प्रयास भाषा-शिक्षण की उपयुक्त विधि अपनाकर अनेक प्रकार के अभ्यासों के माध्यम से किया जाता है यदि हम अति सामान्य स्तर पर भी देखें तो हम अपने स्कूली अनुभव के आधार पर भी यह कह सकते हैं कि भाषा सीखते समय अध्येता कई प्रकार की भूलें करता है जिससे भाषा-शिक्षक की स्वाभाविक गति में रुकावट आती है और निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इन भूलों का निदान करने के बाद ही शिक्षण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाना चाहिए क्योंकि जो भूलें अध्येता के मस्तिष्क में दृढ़ हो जाती हैं। वे केवल उसे ही गलत भाषा प्रयोग की ओर नहीं ले जाती बल्कि भाषा-शिक्षण के उद्देश्यों को ही निरर्थक बना देती हैं। किसी भी भाषा के संरचनात्मक स्तर पर शब्द रूप, विशेषण संज्ञा अन्विति, संज्ञा क्रिया अन्विति महत्वपूर्ण होते हैं। संरचनात्मक अभिरचना निर्माण में अनेक भूलों को बच्चों की भाषा के अधिगम स्तर पर भी देखा जा सकता है। अपनी मातृभाषा के अधिगम के समय भी बच्चा इस प्राकर की भूलें करता है वह संरचनात्मक अभिरचना के सामान्यीकृत नियम बना लेता है और उनका प्रयोग करता है। अधिगम की प्रक्रिया में यह प्रवृत्ति स्वतः अनुकरण के कारण भूलों में सुधार करती चलती है लेकिन भाषा-शिक्षण में यह प्रवृत्ति एक बाधा बनती है जिसे दूर करने के लिए प्रयास करना पड़ता है। ऐसे कुछ उदाहरण नीचे देखे जा सकते हैं :

(क)	मैंने पेड़ काटा।	पेट कटा।
	मैंने राज़ जाना।	*राज़ जना।

(ख) छोटा लड़का - छोटी लड़की
ज़िंदा लड़का - *ज़िंदी लड़की

नोट : *चिह्न वाली अभिव्यक्तियाँ अव्याकरणिक है।

मातृभाषा की अभिरचना व्यक्ति की भाषायी चेतना में आदत के रूप में सिद्ध हो जाती है। जब वह अन्य भाषा सीखने की ओर प्रवृत्त होता है जब मातृभाषा की अभिरचना का अंतरण वह सीखी जाने वाली भाषा पर करने लगता है ऐसे में बाधा उत्पन्न होती है। अगर सीखी जाने वाली भाषा की संरचना मातृभाषा के अनुरूप हुई तब तो उसे संरचना को सीखने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती ऐसी स्थिति में वह केवल अन्य भाषा के शब्दों को सीख कर ही वाक्य को सही रूप में बोल लेता है परंतु यदि मातृभाषा और अन्य भाषा में अंतर होता है तब भाषा व्याघात (Language inteferance) की स्थिति पैदा हो जाती है। भाषा अध्येता

इस स्थिति में मातृभाषा की अभिरचना का अंतरण (Transfer) दूसरी भाषा पर करने लगता है। दो भाषाओं के संरचनात्मक विभेद से उत्पन्न व्याघात की स्थिति में भाषा सीखना कठिन होता है। भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में इन बाधाओं को दूर करने के लिए विशेष प्रकार की शिक्षण पद्धतियों को अपनाने पर बल दिया गया है। यह स्वीकार कर लिया गया है कि इन बाधाओं को दूर करते हुए भाषा अधिगम में दृढ़ता लाने के लिए जो प्रक्रिया आवश्यक है वह **अभ्यास** है। अतः भाषा-शिक्षण को अभ्यासपरक होना चाहिए। यह भी प्रश्न उठा कि अभ्यास भाषा के किस तत्व का कराया जाए और यह निश्चित किया गया कि भाषा-शिक्षण अभिरचना अभ्यास है, वह पैटर्नड्रिल है। इनका परिचय आपको इस इकाई में आगे दिया जा रहा है।

16.3 भाषा-शिक्षण और त्रुटि विश्लेषण

भाषा-शिक्षण की प्रक्रिया में त्रुटि के कारण बाधा उत्पन्न होती है। इन बाधाओं को दूर करने के लिए त्रुटियों और उनके विश्लेषण पर गंभीरता से विचार किया गया है तथा त्रुटियों की पहचान उनके कारणों तथा उनके निदान और उपचार के मार्ग सुझाए गए हैं ताकि भाषा-शिक्षण अपने महती उद्देश्यों की और अपेक्षित लक्ष्यों की प्राप्ति कर सके। त्रुटियों पर विचार करते समय यह खोजने का प्रयास किया गया कि त्रुटियों के मूल स्रोत क्या हैं? स्रोतों की पहचान के बाद इनके विश्लेषण और मूल्यांकन की पद्धति निर्धारित की गई।

भाषा-शिक्षण के संदर्भ में त्रुटियों के निम्नलिखित स्रोत रेखांकित किए गए :

1. भाषा$_1$ का व्याघात
2. भाषा$_2$ के विशिष्ट तत्व
3. नियमों का सामान्यीकरण
4. त्रुटिपूर्ण शिक्षण
5. किसी अन्य भाषा का व्याघात जो अध्येता ने मातृभाषा के अतिरिक्त सीखी हो।
6. मनोवैज्ञानिक कारण

इन सभी स्तरों पर भाषा-शिक्षण की प्रक्रिया में व्यतिरेकी विश्लेषण (Contrastive analysis) का महत्व है जिस पर आगे चर्चा की जाएगी।

त्रुटियों के अनेक स्तरों के कारण त्रुटि विश्लेषण महत्वपूर्ण बनता चला गया है। आधुनिक भाषाओं के शिक्षण की विस्तृत संभावनाओं ने भाषा को अनुप्रयोगात्मक (Applied) बनाया, इसलिए भी त्रुटि विश्लेषण का केंद्रीय महत्व बन गया। आधुनिक भाषा-शिक्षण त्रुटियों को हेय नहीं मानता। वह इन्हें मात्र परीक्षण मूल्यांकन के परंपरागत आधारों तक ही सीमित नहीं करता। पारंपरिक शिक्षा पद्धति त्रुटि विश्लेषण को परीक्षा और उत्तीर्णता से ही जोड़ कर देखती थी जबकि आधुनिक भाषा-शिक्षण इसे अधिगमकर्ता या भाषा अध्येता के भाषा विकास की एक स्वाभाविक प्रक्रिया मानता है, वह इसे अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण भी मानता है। आज इस बात पर बल दिया जाता है कि त्रुटि विश्लेषण के द्वारा भाषा अधिगम के वातावरण को, शिक्षण सामग्री को और शिक्षण विधि को पुनर्गठित किया जा सकता है जिससे कि भाषा-शिक्षण के मूल लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सके।

16.3.1 त्रुटि विश्लेषण के सिद्धांत

जैसी कि हमने पहले चर्चा की है अन्य भाषा-शिक्षण में द्विभाषियों के भाषा व्यवहार में व्याघात की संकल्पना को महत्वपूर्ण माना गया है। व्याघात की संकल्पना इस मान्यता पर आधारित है कि कोई भी दो भाषाएँ पूर्णतया समान नहीं होतीं। उनमें भाषा के हर स्तर पर कुछ न कुछ भिन्नता रहती है। व्याघात की प्रक्रिया के कारण भाषा सीखने में जो

कठिनाइयाँ आती हैं उन्हे जानने के लिए ही भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में व्यतिरेकी विश्लेषण को महत्व मिला है। व्यतिरेकी विश्लेषण एक ओर उस भाषा के व्याकरणिक नियमों को सामने रखता है जो शिक्षार्थी की आदत में ढल गए होते हैं। भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में इस भाषा को स्रोत भाषा (Source Language) कहा गया है। दूसरी ओर व्यतिरेकी विश्लेषण उस भाषा के व्याकरणिक नियमों का भी पता रखता है जिसे सीखा जाता है। सीखी जाने वाली भाषा को लक्ष्य भाषा (Target Language) कहते हैं। स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा की तुलना के आधार पर व्यतिरेकी पद्धति इनके बीच पाई जाने वाली समानता और असमानता का निर्धारण करती है। यह पद्धति इस बात को स्वीकार करती है कि दो भाषाओं के बीच पाई जाने वाली असमानता ही व्याघात का मूल कारण है इसलिए लक्ष्य भाषा सीखते समय जो कठिनाइयाँ आती हैं उन्हें दूर करने के लिए स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के व्यवस्था वैषम्य का पता लगाना अनिवार्य है। व्यतिरेकी विश्लेषण की पद्धति भाषिक इकाइयों के विविध स्तरों पर (ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य) उपस्थित वैषम्य के आधार पर लक्ष्य भाषा के व्याकरण और अध्ययन सामग्री के निर्माण को प्रोत्साहित करती है। इस प्रकार वह मुख्यतः 'शिक्षक का व्याकरण' निर्मित करने पर बल देती है जिससे शिक्षक को यह पता चले कि शिक्षार्थियों को इकाई के किन स्तरों पर भाषा सीखने में कठिनाई की संभावना अधिक है और किन क्षेत्रों में कम। इस प्रकार वह तदनुसार शिक्षण सामग्री तैयार करने और कक्षा में उसे अनुस्तरित रूप में प्रस्तुत करने का एक ठोस आधार भी प्रदान करता है। वास्तव में कठिनाई के क्षेत्र ही त्रुटि का कारण बनते हैं। इसमें संदेह नहीं कि जब कोई व्यक्ति किसी दूसरी भाषा को सीखने की ओर प्रवृत्त होता है तब वह लक्ष्य भाषा के 'अव्यक्त व्याकरण' को उसी प्रकार सीखता है जिस प्रकार वह अपनी मातृभाषा का अव्यक्त व्याकरण सीखता है जैसे बालक अपनी मातृभाषा सीखते समय भैंस, बैल, बकरी सभी के लिए गाय शब्द का प्रयोग करता है। इसी प्रकार वह लड़का आया है के आधार पर पापा आया है, माँ आया है - का प्रयोग करता है। मातृभाषा और अन्य भाषा अव्यक्त व्याकरण को सीखने की प्रक्रिया एक होने पर भी उनमें एक बहुत बड़ा अंतर है। लक्ष्य भाषा को व्यक्ति हमेशा नहीं सीख पाता। इसका कारण यह है कि जिन विविध क्षेत्रों में जितनी सार्थकता के साथ वह अपनी मातृभाषा का प्रयोग अपने दैनिक जीवन में करता है उसी प्रकार लक्ष्य भाषा का नहीं करता। व्यवहार का यह अवसर न मिलने से भी त्रुटियाँ होती रहती हैं। त्रुटि विश्लेषण सिद्धांत ने त्रुटियों के अनेक प्रकारों की चर्चा की है जिनकी प्रकृति एक दूसरे से भिन्न है:

1) **व्यवहार संदर्भित त्रुटियाँ :** इन्हें दोष (Lapses) के रूप में देखा गया है। इस प्रकार की त्रुटियों का संबंध 'अव्यक्त व्याकरण' से न हो घर उस व्याकरण को व्यवहार में लाते समय की गई असावधानी से होता है। ऐसी त्रुटियाँ प्रयोक्ता अनजाने में करता है और बोलने के साथ ही वह ऐसे दोषों को समझ जाता है। इनके प्रति सजग भी हो जाता है या बताने पर अपनी गलत मान लेता है।

2) **अज्ञान संदर्भित त्रुटियाँ :** इस प्रकार की त्रुटियों को गलती (mistakes) कहा जा सकता है। गलती का संबंध लक्ष्य भाषा के नियमों की सही जानकारी के अभाव से होता है। उदाहरण के लिए हिंदी सीखने वाले अन्य भाषा-भाषी शिक्षार्थी आदर सूचक प्रयोग में गलतियाँ करते हैं - आप बैठो, आप कब आओगे जैसे प्रयोग वह प्रयोग के नियम की सही जानकारी न होने के कारण ही करता है।

3) **अंतर भाषा संदर्भित त्रुटियाँ :** भाषा-शिक्षण में इन्हें ही वास्तविक त्रुटियाँ (Errors) माना गया है और त्रुटि विश्लेषण (Error Analysis) की प्रमुख सामग्री के रूप में इन्हीं त्रुटियों पर सर्वाधिक बल दिया जाता है। त्रुटियों के इस वर्ग में वे अशुद्ध प्रयोग आते हैं जिनका मूल कारण 'अंतर भाषा' की अपनी व्यवस्था के साथ होता है। ये अशुद्ध प्रयोग एक निश्चित 'व्यवस्था' को व्यक्त करते हैं। अतः इन्हें

'व्यवस्था संबद्ध त्रुटियाँ' भी कहा जाता है। ये ही शिक्षार्थी की वास्तविक त्रुटियाँ हैं। इन त्रुटियों की प्रवृत्ति गत्यात्मक (Dynamic) होती है। इन्हें भाषा अधिगम प्रक्रिया में स्वाभाविक माना जाता है। शिक्षक इन्हीं को ध्यान में रखकर सामग्री और सुधारात्मक पाठ का निर्माण करता है।

इन त्रुटियों के विश्लेषण का संबंध स्रोतों के विवरण और वर्गीकरण से संबंधित होता है। वर्गीकरणों के आधार पर ऐसी त्रुटियों के अनेक स्रोत हैं जिनका संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत हैं :

1) **अति सामान्यीकरण :** इस प्रक्रिया का संबंध लक्ष्य भाषा की तथ्य सामग्री और भाषा व्यवस्था के आधारभूत नियमों का सादृश्य विधान के आधार पर प्रयोग प्रसार है। जैसे :

   वह पढ़ता है - उसने पढ़ा
   वह रोता है - उसने रोया

2) **उपनियमों की अज्ञानता :** हर भाषा में कुछ सामान्य नियम होते हैं और कुछ उन नियमों के विशेषीकृत प्रयोग, जिनका संबंध उपव्यवस्था या उपनियमों से रहता है जिनके अभाव में भी शिक्षार्थी त्रुटियाँ करता है, जैसे :

   आप पीएं/'पीइए' (पीजिए)
   आप करें/'करिए' (कीजिए)

3) **नियमों का अपूर्ण प्रयोग :** भाषा में नियम गुच्छ रूप में आते हैं, अतः जब एक नियम लागू किया जाता है तो स्वभावतः उस पर आधारित दूसरे नियम को भी लागू करना पड़ता है। पर भाषा अधिगम की प्रक्रिया क्रमिक होती है जिसके कारण त्रुटियाँ होती हैं जैसे :

   मैंन रोटी खाया है।
   मोहन जी बैठा है।

4) **भ्रांतिपूर्ण धारणा :** भाषा सीखने के समय कभी-कभी कुछ धारणाएँ भ्रांति रूप से मन में बैठ जाती हैं जिसके कारण त्रुटियाँ होती हैं जैसे वाच्य संबंधी त्रुटियाँ :

   लड़के ने रोटी खा ली - लड़के ने रोटी को खा ली।
   तुमने किताब पढ़ी - तुमने किताब को पढ़ी।

(क) भाषा का संरचनात्मक संदर्भ और त्रुटियाँ

   (i) रूपात्मक : 'बेटा' से बोला।
   वह राय 'भी' पुर गया था।

   (ii) प्रकार्यात्मक : मोहन को किताब 'बेची'
   सोहन ने मोहन 'को' किताब खरीद ली।

(ख) भाषा की बोधात्मक संदर्भ और त्रुटियाँ :

   (i) शब्दार्थपरक : हिमालय भारत के 'दक्षिण'/उत्तर में है।
   वह लेटकर/'सोकर' सोचता है।

   (ii) वाक्यपरक : मैंने अनजान में गोली चलाई।
   गिलास उससे जानबूझकर टूट गया।

(ग) भाषा का सामाजिक संदर्भ :

   (i) रूपात्मक : शीला 'जी', 'तू'/ आप कहाँ गई थी,
   मास्टर 'साहब' आज 'आया' था।

   (ii) सामाजिक बोधपरक : नाना सब फल 'खा गया'।

धोबी (एक वचन) आज नहीं आए।

(iii) प्रयुक्ति/शैलीपरक : चर्चा के अनुसार तुम कार्रवाई करो/चर्चा के अनुसार कार्रवाई की जाए।
पत्र मिलने की पावती मैंने भेज दी है पत्र मिलने की पावती भेज दी गई है।
(कार्यालयीन हिंदी/लिखित हिंदी)

त्रुटियों के इन कारणों पर ध्यान देना अनिवार्य है। भाषा-शिक्षण को प्रभावी और उपादेय बनाने के लिए शिक्षार्थी की इन त्रुटियों पर ध्यान देते हुए भाषा-शिक्षण को स्वाभाविक बनाया जा सकता है। त्रुटि विश्लेषण सिद्धांत त्रुटियों के इन विभिन्न वर्गों को भाषा सीखने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण मानता है।

16.3.2 व्यतिरेकी विश्लेषण और त्रुटि विश्लेषण

व्यतिरेकी विश्लेषण पर चर्चा करते हुए भाषा-शिक्षण के सिद्धांतों पर चिंतन करने वाले विद्वान रॉबर्ट लैडो (1957) ने यह कहा था, 'जो तत्व अधिगम कर्ता की देशीय भाषा के समान हैं वे उसके लिए सरल होंगे और जो भिन्न हैं वे कठिन होंगे', इन कठिनाइयों की पहचान और निदान में व्यतिरेकी विश्लेषण के महत्व को विवेचित करते हुए इस क्षेत्र के प्रमुख चिंतक पोलितज़र (1967) ने कहा था, 'भाषाओं के शिक्षण में व्यतिरेकी विश्लेषण अध्येता की कठिनाइयों को अर्थवत्ता प्रदान कर सकता है और उनके बारे में अनुमान लगा सकता है।

इस प्रकार व्यतिरेकी विश्लेषण और त्रुटि विश्लेषण के बीच गहरा संबंध है। इन संबंधों को देखते हुए व्यतिरेकी विश्लेषण के तीन उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं – पूर्वानुमान, निरुपण और परीक्षण सामग्री निर्माण। पूर्वानुमान समान स्रोत भाषा-भाषियों की लक्ष्य भाषा अधिगम में होने वाली त्रुटियों का आकलन करता है और इन्हें देखते हुए सामग्री निर्माण में सहायक बनता है। **पूर्वानुमान** को चार दृष्टियों से देखा जा सकता है - वे स्थल जो समस्या को जन्म दे सकते हैं, कठिनाई का पूर्वानुमान, त्रुटियों का पूर्वानुमान और दृढ़ हो चुकी त्रुटियाँ। **निरूपण** के अंतर्गत यह देखा जाता है कि वास्तव में ये त्रुटियाँ क्यों होती हैं, त्रुटि के कारणों की पहचान से छात्र और अध्यापक दोनों को लाभ होता है अध्यापक इसके माध्यम से ही त्रुटियों को दूर करने के लिए सुधारात्मक शिक्षण सामग्री तैयार करता है और उन्हें प्रयोग में ले आता है, **परीक्षण सामग्री निर्माण** में व्यतिरेकी विश्लेषण की दो भूमिका होती हैं। पहली भूमिका के अनुसार पूर्वानुमान के आधार पर यह वह बतलाता है कि क्या-क्या परीक्षणीय है। उसकी दूसरी भूमिका यह बताना होता है कि परीक्षण की आवश्यकता किन सीमाओं पर कितनी मात्रा में अपेक्षित है।

भाषा-शिक्षण के समय भाषा अधिगम प्रक्रिया में जो त्रुटियाँ होती हैं, उनकी व्याख्या और उनका निरूपण व्यतिरेकी विश्लेषण द्वारा ही संभव हो पाता है। शिक्षण प्रक्रिया के अंतर्गत आने वाली इन कठिनाइयों को सांचा अभ्यास (Pattern Practice) द्वारा अधिक वैज्ञानिक तरीके से दूर किया जा सकता है। व्यतिरेकी विश्लेषण और त्रुटि विश्लेषण के अंतःसंबंधों को निम्नलिखित बिंदुओं पर देखना चाहिए :

1) भाषा की सम्यक जानकारी न होने के कारण त्रुटियाँ होती हैं जिन्हें व्यतिरेक द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। व्यतिरेकी विश्लेषण द्वारा $भाषा_1$ से $भाषा_2$ के नियमों की जो भिन्नता है वह भी विवेचित होती है।

2) व्यतिरेकी विश्लेषण $भाषा_1$ और $भाषा_2$ की कठिन-सरल इकाइयों को स्पष्ट करता है। भाषा अधिगम प्रक्रिया में $भाषा_2$ की कठिन इकाइयाँ ही त्रुटि का कारण बनती हैं।

3) कठिनता और सरलता की संकल्पना शिक्षण और अधिगम की प्रक्रिया की दृष्टि से ही की गई है। इस स्तर पर सामग्री का चयन और उसके अनुस्तरण का महत्व जिससे यह भी संभव है कि त्रुटियाँ हों ही नहीं।

4) त्रुटियों का विश्लेषण भाषा के अभिव्यक्ति पक्ष से संबंधित होता है, बोधन पक्ष से नहीं अतः व्यतिरेकी विश्लेषण द्वारा कठिनाइयों के स्तरों का आसानी से पता लगाया जा सकता है।

5) व्यतिरेकी विश्लेषण त्रुटि की संभावना से भी बचा सकता है क्योंकि इसके माध्यम से कठिन संरचनाओं को पहचान कर उनके विकल्प दिए जा सकते हैं।

6) त्रुटियों का विश्लेषण व्यतिरेकी विश्लेषण का ही विकल्प है।

7) त्रुटि विश्लेषण के तीन प्रमुख उद्देश्य हैं : (1) अधिगम की समस्याओं को दूर करना, (2) भाषा$_2$ में निहित विशिष्ट भाषिक तत्वों की पहचान, (3) शिक्षक और शिक्षण सामग्री का सहयोगी बनना।

8) इन तीनों उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए त्रुटियों के स्रोतों की पहचान आवश्यक है।

16.4 परीक्षण और मूल्यांकन

भाषा-शिक्षण में भाषा-परीक्षण (Language Testing) और भाषा मूल्यांकन (Language Evaluation) का एक विशेष स्थान है। परीक्षण और मूल्यांकन दोनों का महत्व शिक्षा के क्षेत्र में पहले से स्वीकृत है। इनका एक लंबा इतिहास भी है। पर आज ये दोनों जिस रूप में भाषा-शिक्षण के एक उपांग के रूप में उभर कर सामने आए हैं वह पिछले पाँच दशकों की ही देन है। अब यह स्वीकार कर लिया गया है कि भाषा-शिक्षण के सैद्धांतिक और तकनीकी ज्ञान के साथ ही भाषा परीक्षण और मूल्यांकन को भी एक निश्चित दिशा और तकनीक मिल गई है। ये दोनों अपने उद्देश्य के अनुरूप अपनी प्रणाली का भी समुचित विकास कर चुके हैं।

16.4.1 भाषा परीक्षण के संदर्भ

शिक्षा के व्यावहारिक संदर्भ में परीक्षण किसी एक (निम्न स्तरीय) पाठ्यक्रम या कक्षा से किसी दूसरे (उच्च स्तरीय) पाठ्यक्रम या कक्षा में प्रवेश पाने के लिए एक निश्चित विधि है। यह विधि संस्थान द्वारा दिए जाने वाले प्रमाण-पत्र के लिए अपनाई जाती है। इस परंपरागत परीक्षण विधि को रूढ़िवादी माना गया है यह रूढ़िवादी मान्यता परीक्षण को सत्रांत की उस परीक्षा से जोड़ती है जो छात्रों को उत्तीर्ण अनुत्तीर्ण अथवा प्रथम, द्वितीय, तृतीय श्रेणियों में विभाजित करते हैं। यह विधि यह भी निर्णय करती है कि किन छात्रों को आगे की कक्षा में प्रवेश दिया जाए और किन्हें नहीं। शिक्षा की आधुनिक दृष्टि परीक्षण की इस पद्धति को उचित नहीं मानती। यह परीक्षण को शिक्षा प्रक्रिया का ही एक अभिन्न अंग मानती है। इसे वह अध्यापन क्षेत्र के भीतर ही रखती है। शिक्षण करते समय ही परीक्षण की प्रक्रिया साथ-साथ चलनी चाहिए - यह इसकी मान्यता है। इस प्रकार यह दृष्टि परीक्षण को छात्रों की अपनी सफलता या असफलता के परिणाम से संबद्ध नहीं करती। यह परीक्षण को उस सामर्थ्य और क्षमता से जोड़ती है जिसे लक्ष्य में रख कर शिक्षण प्रक्रिया चलती है।

परीक्षण और मूल्यांकन में भेद है पर 'सफलता-असफलता' से इसे अलग करने के लिए अब 'मूल्यांकन' शब्द का प्रयोग ही उचित माना जा रहा है। मूल्यांकन उद्देश्य बाधित होता है। यह एक ऐसी नियमित शैक्षिक प्रक्रिया है जो छात्रों की सामर्थ्य या क्षमता को विकसित करते हुए यह प्रयास करती है कि शिक्षण अधिक से अधिक प्रभावी रूप से चल सके।

16.4.2 मूल्यांकन के प्रकार

शिक्षा व्यापार को आधुनिक दृष्टिकोण से जोड़कर और परंपरागत शिक्षा व्यवस्था से उसे अलग करते हुए उसके तीन निश्चित चरण माने गए हैं – पाठ पूर्व, पाठ प्रक्रिया और पाठ पश्च। इन तीनों के अनुरूप भाषा-शिक्षण विभिन्न प्रकार के मूल्यांकन को वर्गीकृत करता है:

1) **प्रवेश मूल्यांकन :** इस प्राकर के मूल्यांकन का उद्देश्य यह जानना होता है कि छात्र की भाषाई क्षमता, निर्धारित पाठ्यक्रम के योग्य है या नहीं। इस प्रकार के परीक्षण के आधार पर शिक्षार्थी को एक या दूसरे पाठ्यक्रम में प्रवेश दिया जाता है।

2) **अभिक्षमता मूल्यांकन :** इस प्रकार का मूल्यांकन अन्य भाषा सीखने में छात्रों के संभाव्य सफलता की सांख्यिकीय सूचना देता है। इससे छात्रों की भाषा संबंधी रुझान का पता चलता है।

3) **वर्ग निर्धारण मूल्यांकन :** इस प्रकार के मूल्यांकन का संबंध नियोजित पाठ्यक्रम में भाषाई क्षमता के संदर्भ में छात्रों के उचित स्थान निर्धारण से रहता है। इससे छात्र की भाषाई क्षमता की स्थिति, योग्यता आदि का पता चलता है, साथ ही यह भी पता चलता है कि निर्धारित पाठ्यक्रम के अपेक्षित स्तर के संदर्भ में किस कौशल पर अध्यापन में कितना बल देना है।

4) **निदानात्मक मूल्यांकन :** इसे दो बातें जानने के लिए किया जाता है – पहली, यह कि पाठ्यक्रम में अभी कितना और क्या पढ़ाया जाना शेष है, और दूसरी यह कि शिक्षार्थी भाषा के किस पक्ष को अभी नहीं सीख पाया है या उसके सीखने में उसे क्या कठिनाइयाँ हैं जिससे उसका उपचार किया जा सके। इसलिए इसे उपचारात्मक मूल्यांकन भी कहा जाता है।

5) **उपलब्धि मूल्यांकन :** इसका उपयोग पाठ निर्देश के संदर्भ में और कक्षा में पढ़ाए गए तथ्यों के आधार पर छात्रों के भाषाई कौशल संबंधी उपलब्धि का पता लगाने के लिए किया जाता है। यह अध्यापन के संदर्भ में छात्रों की अपनी उपलब्धि से संबंध रखता है।

6) **दक्षता मूल्यांकन :** यह छात्रों के भाषा अधिगम संबंधी संयोजित अनुभव से संबद्ध रहता है। इसमें परीक्षण का संदर्भ कक्षा में दिए गए पाठ संबंधी निर्देश नहीं होता। इसका संदर्भ शिक्षार्थी के भाषाई-कौशल में दक्षता का वह अनुपात होता है जिसके माध्यम से वह दी गई परिस्थिति विशेष में भाषा का सक्षम या अक्षम रीति से उपयोग करता है।

16.5 अभ्यास सामग्री

भाषा अधिगम प्रक्रिया में जिन त्रुटियों की संभावना होती है उन त्रुटिपूर्ण संरचनाओं में शिक्षार्थी को अधिक से अधिक प्रयोग कराना चाहिए। इससे त्रुटियों का निदान और उपचार भी संभव होगा और सीखने की गति में भी तीव्रता आएगी। इन लक्ष्यों की प्राप्ति में अभ्यासों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। अभिरचना अभ्यास इसी दृष्टि से निर्मित किए जाते हैं कि शिक्षार्थी लक्ष्य भाषा को उसके परिवेश में प्रयोग में ला सके। प्रयोग के अवसर भाषा के विभिन्न प्रकार्यों को ध्यान में रख कर विभिन्न प्रकार के अभिरचना अभ्यासों द्वारा सिद्ध किए जाते हैं। ऐसा करने से अध्येता के मन में भाषा के शुद्ध रूपों का दृढ़ीकरण होता है और त्रुटिपूर्ण रूपों की जगह शुद्ध रूप के प्रयोग की ओर वह आगे बढ़ता है। इस प्रकार शिक्षण प्रक्रिया के अंतर्गत आने वाली कठिनाइयों/ त्रुटियों को सांचा अभ्यास द्वारा दूर करने तथा भाषा अधिगम को अधिक से अधिक त्रुटिहीन बनाने का प्रयास किया जाता है। अभिरचना अभ्यास के कई प्रकार हैं जिन्हें अध्यापक कक्षा में पढ़ाते समय उपयोग में ले आता है। इस

अभ्यास के पीछे दो तथ्य काम करते हैं – एक तो लक्ष्य भाषा की संरचनात्मक व्यवस्था और दूसरे अधिगम (Learning) प्रक्रिया। इन अभ्यासों द्वारा दो कार्यों की सिद्धि होती है – एक तो प्रत्यक्ष अभ्यास और दूसरा अध्येता में संरचनात्मक व्यवस्था की समझ का विकास। ये अभ्यास शिक्षार्थी में अभिरचना को आदत के रूप में ढालते हैं। संरचनात्मक व्यवस्था की समझ उसे यह बताती है कि वह क्या सीख रहा है। भाषा-शिक्षण प्रक्रिया में साँचा अभ्यास या अभिरचना अभ्यास (pattern practice) के दो वर्ग बनाए गए हैं – (1) पुनरावृत्ति अभ्यास, (2) संदर्भ परक अभ्यास। पुनरावृत्ति अभ्यास यांत्रिक रीति से अभिरचना का ड्रिल कराता है। इसे करते समय छात्र यह नहीं जान पाते कि वे किसका अभ्यास कर रहे हैं लेकिन अध्यापक इन अभ्यासों के माध्यम से उनकी त्रुटियों का निदान करता चलता है। संदर्भ परक अभ्यास में इसे नियंत्रित किया जाता है जिसमें छात्र अभिरचना को समझ कर उनका अभ्यास करते हैं। इन दोनों वर्गों में अभिरचना अभ्यास से संबंधित सामग्री का थोड़ा-सा विवरण नीचे दिया जा रहा है जिससे आप भाषा-अधिगम में अभ्यास सामग्री के महत्व को समझ सकेंगे और यह भी देख सकेंगे कि त्रुटियों के निदान में या त्रुटियों को आने ही न देने में ये अभ्यास बहुत ही उपयोगी सिद्ध होते हैं :

1) पुनरावृत्ति अभ्यास

सामूहिक पुनरावृत्ति अभ्यास –

अध्यापक : मोहन को किताब चाहिए।
छात्र : (सामूहिक रूप से) मोहन को किताब चाहिए।

सरल प्रतिस्थापन अभ्यास –

अध्यापक : मोहन को किताब चाहिए।
छात्र : (सामूहिक रूप से) मोहन को किताब चाहिए।
अध्यापक : सोहन
छात्र (1) : सोहन को किताब चाहिए।
अध्यापक : शीला
छात्र (2) : शीला को किताब चाहिए।

रूप सिद्धि अभ्यास –

अध्यापक : मोहन को किताब चाहिए।
छात्र : (सामूहिक रूप से) मोहन को किताब चाहिए।
अध्यापक : मोहन लड़का है।
छात्र : (सामूहिक रूप से) मोहन लड़का है।
अध्यापक : लड़के को किताब चाहिए।
छात्र : (सामूहिक रूप से) लड़के को किताब चाहिए।
अध्यापक : बेटा
छात्र (1) : बेटे को किताब चाहिए।

बहुविध प्रतिस्थापन अभ्यास –

अभिरचना : क्या तुम .... रहे हो?
अध्यापक : पढ़ना (किताब की ओर संकेते देते हुए)
छात्र : क्या तुम किताब पढ़ रहे हो?

योजक अभ्यास –

अध्यापक : मुझको बाज़ार जाना है।
छात्र : मुझको बाज़ार जाना है।
अध्यापक : शाम को
छात्र : मुझे शाम को बाज़ार जाना है।

सामान्य रूपांतरण अभ्यास –

अध्यापक : मोहन किताब पढ़ता है

क्या मोहन ने किताब पढ़ी?

अध्यापक : मोहन चिट्ठी लिखता है।

छात्र : क्या मोहन ने चिट्ठी लिखी।

2) **संदर्भ परक अभ्यास**

(क) इसमें स्थितियाँ प्रमुख होती हैं –

अध्यापक : किताब कहाँ है?

छात्र : किताब मेज़ पर है।

अध्यापक : पेंसिल कहाँ है?

छात्र : पेंसिल डिब्बे में है।

(ख) छात्र दो वर्गों में बाँट दिए जाते हैं

अध्यापक : किताब?

छात्र (1) : किताब कहाँ है?

छात्र (2) : किताब मेज़ पर है।

(ग) प्रश्नोत्तर सरल वार्तालाप में बदल जाता है –

अध्यापक : (चित्र दिखाकर) क्या आदमी मिठाई बेच रहा है?

छात्र : हाँ, वह मिठाई बेच रहा है।

अध्यापक : क्या वह फल बेच रहा है?

छात्र : नहीं, वह फल नहीं बेच रहा है।

16.6 दृश्य-श्रव्य सामग्री

अन्य भाषा-शिक्षण के व्यापक आयाम ने अध्येता और शिक्षक के दायित्व को भी गंभीर बनाया है। अब विदेशी भाषा-अध्येता कुछ पूर्व निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के उद्देश्य से किसी विदेशी भाषा की ओर प्रवृत्त होते हैं। अतः उनका मार्ग तभी प्रशस्त हो सकता है जब वे शीघ्रता से विदेशी भाषा में दक्षता प्राप्त करें और उनका प्रयोग करते हुए अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकें। दक्षता की प्राप्ति में शीघ्रता दृश्य-श्रव्य उपकरणों की सहायता से निश्चय ही लाई जा सकती है। भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में कार्य कर रहे प्रमुख विद्वानों (लेडो, डाले, पिट कॉर्डर) को इस बात में कोई संदेह नहीं है कि दृश्य-श्रव्य तकनीक विदेशी भाषा-शिक्षण को अधिक सफल, रोचक और गतिशील बनाती है और इस बात में भी कि इन उपकरणों के प्रयोग से भाषा-शिक्षक का अस्तित्व भी खतरे में नही पड़ता। अतः यह सोचना-मानना भ्रामक है कि तकनीकी उपकरण भाषा-शिक्षक का स्थान ले सकते हैं और यह भी कि केवल इन उपकरणों के माध्यम से शिक्षक-अध्येता के शारीरिक-बौद्धिक प्रयत्न के बिना विदेशी भाषा-शिक्षण और अधिगम के लक्ष्य प्राप्त किए जा सकते हैं। यह अवश्य है कि ये उपकरण भाषा-शिक्षक के कार्य को प्रभावशाली और फलप्रद बना सकते हैं, विशेषतः उन नियमित ड्रिल्स और अभ्यासों के क्षेत्र में जो अपने में मशीली प्रकृति के होते हैं तथा भाषा के सामाजिक-सांस्कृतिक पक्षों को प्रामाणिक रूप में दर्शाने में जो मात्र कक्षा में दिए गए विवरणों से साफ नहीं हो पाते हैं। इन दोनों धरातलों पर दृश्य-श्रव्य उपकरण भाषा-पाठ्यक्रमों में सहायक की भूमिका निभा सकते हैं, निभाते हैं।

यह तो हम सभी जानते हैं कि अन्य भाषा-शिक्षण में अन्य शिक्षण-प्रक्रियाओं ने क्रमशः व्याकरण-अनुवाद विधि का स्थान ले लिया। अन्य भाषा-शिक्षण की ये सभी प्रक्रियाएँ

ास्तविक भाषा-व्यवहार पर केंद्रित हैं। यह भी सर्वविदित तथ्य है। अन्य भाषा-शिक्षण के ारंभिक स्तर पर उच्चरित भाषा के वास्तविक व्यवहार पर बल दिया जाता है। कई शिक्षण क्रियाएँ विद्युत मशीनी (electro-mechanical) उपकरणों (Aids) का भी उपयोग रती हैं। ये उपकरण ग्रामोफोन-टेपरिकार्डर से लेकर भाषा-प्रयोगशाला, दृश्य-श्रव्य तकनीक ौर शिक्षण-मशीन तक विस्तृत होते चलते हैं। अन्य भाषा अधिगम के दो उद्देश्य हैं : (1) ंप्रेषणपरक क्षमता अर्थात् मूलभूत भाषा कौशलों का अर्जन तथा (2) सूचना-पक्ष की प्राप्ति ार्थात् अन्य समाज की संस्कृति और जीवन का ज्ञान। इन दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति में दृश्य-व्य उपकरण और विशेष रूप से वीडियो अति उपयोगी और सफल सिद्ध हो सकते हैं। रंपरागत कक्षा में इन उद्देश्यों की प्राप्ति इतनी सफल नहीं होती। अन्य भाषा में और उसके पयुक्त (appropriate) व्यवहार में निबद्ध विचार, मूल्य, विश्वास, अंग-संचालन आदि ीडियो के माध्यम से प्रस्तुत करना आज अन्य भाषा-शिक्षण का प्रमुख अंग बन चुका है।

डियो कार्यक्रमों को टेपांकित करने और टी.वी. कार्यक्रमों को वीडियो अंकित करने की ुविधा ने अन्य भाषा-शिक्षण में बहुसंचार पाठ्यक्रम और बहुसंचार कक्षा (Multi-media ourses and multi-media classes) को भी प्रोत्साहित किया है। टी.वी. पाठ्यक्रम डियो कार्यक्रमों द्वारा 'बैक अप' होते हैं और ये दोनों पाठ्य-पुस्तकों या पाठ्य-सामग्री ारा, फिर सभी वीडियो द्वारा। इससे भाषा अध्येता गहन अभ्यासों से बार-बार जुड़ता है और सकी बोधात्मक क्षमता बहुस्तरीय रूप में विकसित होती है। टी.वी. और वीडियो भाषा ध्येता को नई भाषा के सामने उसके सभी सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों के साथ ला ाड़ा करते हैं और इन्हीं संदर्भों के इर्द-गिर्द उन्हें संप्रेषण करने का उद्दीपन (stimulus) दान करते हैं। रेडियो नई भाषा को अन्य उदाहरणों के साथ री-इनफोर्स करता है और ानों को प्रशिक्षित करता है। पाठ्य-पुस्तकें या शिक्षण सामग्री भाषा व्यवस्था के सिद्धांतों ी व्याख्या करती है, मूलभूत अभ्यास-सामग्री उपलब्ध कराती है। अन्य माध्यमों से दिशा-िर्देश देती है और लिपि के रूप में लिखित माध्यम प्रदान करती हैं। ऑडियो-कैसेट, श्रवण ौर अभ्यास को ड्रिल और संवादों के माध्यम से गहनता प्रदान करते हैं। इसमें संदेह नहीं क भाषा शिक्षक का व्यक्तित्व और भाषा-शिक्षण की उसकी तकनीक किसी भी मशीन-पकरण से अधिक महत्वपूर्ण और दीर्घ-प्रभावी होते हैं लेकिन तकनीकी उपकरण निश्चित । भाषा-शिक्षण के भाषाई-अनुभव को विस्तार से प्रस्तुत करने में सहायक हैं तथा वह नके माध्यम से भाषा-शैली और शिक्षण सामग्री में विविधता ला सकता है।

न्य भाषा-शिक्षण में भाषा के तात्विक धरातलों के अधिगम को पाँच चरणों में बाँटा जा कता है :

(i) पहचान (recognition)
(ii) नकल (imitation)
(iii) दुहाराना (repetition)
(iv) वैविध्य (Variation) और
(v) चयन (selection)

न चरणों की संप्राप्ति वीडियो के माध्यम से संभव है और ऑडियो कैसेट रिकार्डर के ाध्यम से भी। ऑडियो कैसेट रिकार्डर द्वारा भाषा-शिक्षक नई भाषा को प्रस्तुत कर सकता तथा गीतों, खेलों या अन्य गतिविधियों पर प्रकाश डाल सकता है। ये सभी गतिविधियाँ ह ध्वनि के माध्यम से पूर्ण करता है। वीडियो भी ठीक यही कार्य ध्वनि और चलचित्र के ाध्यम से करता है। व्याख्यान या परिचर्चा ऑडियो-वीडियो, दोनों माध्यमों में निर्मित किए ा सकते हैं।

ीडियो निम्नलिखित तीन स्तरों पर भाषा के संप्रेषणपरक धरातल के उभारने में सक्षम हैं:

) स्थिति और अर्थ (situation and meaning)

(ii) रूप और अर्थ (form and meaning) तथा
(iii) संस्कृति और अर्थ (culture and meaning)

रेडियो

- कान को प्रशिक्षित करना
- गहन श्रवण अभ्यास
- मातृभाषा भाषी प्रारूप
- टी.वी. वीडियो की तुलना में अधिक उपलब्धता
- अनुस्तरित कार्यक्रम श्रवण को सफल बनाते हैं।
- क्षणभंगुर (Ephmeral)
- प्रसारण अस्पष्ट हो सकता है
- भाषा अति मानकीकृत हो सकती है।

टी.वी.

- संदर्भ में भाषा
- ध्वनि के साथ चलचित्र
- बाहरी दुनिया कक्षा में
- अंतर्सांस्कृतिक
- एक बार दो बार देख सकते हैं
- अल्प भाषा सघनता (लौ लैंग्वेज डेंसिटी)
- गहन अध्ययन के लिए अनुपयुक्त
- जटिल भाषा का रूप
- बोलने की तेज़ गति या अस्पष्ट उच्चारण

वीडियो

- टी.वी. के सभी लाभ और कुछ हानियाँ जिन्हें निर्माण स्तर पर दूर किया जा सकता है।
- गहन अध्ययन
- छोटे क्रमिक अंश चुने जा सकते हैं
- दृश्यों को धीमी गति से या रोक कर दिखलाया जा सकता है
- अभिवृत्ति, मुख-मुद्रा, अंग-संचालन और परिवेश पर फोकस किया जा सकता है।
- डिटेल्स का क्लोज़ आप लेने की सुविधा
- अल्प भाषा सघनता (लो लैंग्वेज डेंसिटी)
- दृश्य पर बल
- एक कक्षा में प्रयोग के लिए बहुत लंबा दृश्य

भाषा-शिक्षण मे परिवर्तन की संभावना अनिवार्य है और विचारों, आधुनिक विकासों और नई माँगों के अनुरूप इसमें परिवर्तन की संभावना का मार्ग निर्मित होता रहा है। जब ये परिवर्तन पाठ्यक्रम, पाठ्य-सामग्री की संप्रेषणीयता, परीक्षण और अध्यापक के माध्यम से आते हैं तो इनकी उपादेयता असंदिग्ध होती है। ये नई तकनीकें भी इस प्रकार के परिवतर्न का रूप हैं। निश्चित ही ये तकनीकें भाषा-शिक्षक के लिए चुनौतियाँ हैं।

वीडियो के लिए सामग्री भाषा-शिक्षक द्वारा बनाई जाती है। निश्चय ही यह सामग्री विविधतापूर्ण होती है क्योंकि यह उन दरारों को भरती है जो मूल कक्षा में छूट गए थे।

भाषा-शिक्षक अपने कक्षा के अनुभव को वीडियो द्वारा संचालित कर अपने व अध्येता के उस लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है जो दैनंदिन या वास्तविक भाषा प्रयोग और उसके बोधन से संबद्ध है। इस क्षेत्र में इस प्रकार के पाठ्यक्रम लिखना निश्चित ही एक विशेषीकृत कार्य है। जो श्रम साध्य भी है और समय साध्य भी। फिल्मों उपयुक्त अंशों का संकलन, पटकथा-लेखन, वार्तालाप निर्माण, साक्षात्कार, परिचर्चा, व्याख्यान आदि कई ऐसे पक्ष हैं जो वीडियो पर लाए जा सकते हैं, लाए जा रहे हैं। लेकिन वीडियो भाषा-शिक्षक का स्थानापन्न कभी नहीं हो सकता और न ही यह भाषा-अधिगम का समतुल्य ही है। यह भाषा-शिक्षण का एक सशक्त साधन है। बहु-जनसंचार भाषा-शिक्षण उपकरणों जैसे रेडियो, टी.वी., टेपरिकार्डर, पाठ्यपुस्तक आदि की तुलना में वीडियो में अनंत संभावनाएँ हैं।

यह प्रयोग अध्येताओं में आत्मविश्वास, समझ और मनोरंजन पैदा कर भाषा-शिक्षण को तो अपूर्व गति प्रदान कर ही रहा है साथ ही भाषा-समाज, उसकी जीवन-पद्धति, उसके रीति-रिवाज तथा उसके लोक-विश्वासों को दृश्य रूप में अध्येता के सामने लाने में भी समर्थ है।

ीडियो या टेलीविज़न एक तरफ़ा संचार माध्यम है, जिनमें परस्पर संपर्क की गुंजाइश नहीं ः। भाषा संप्रेषण की वस्तु है और परस्परता इसमें सबसे आवश्यक गुण है। आजकल ौद्योगिकी के क्षेत्र में विकास के कारण हम टेलीकांफ्रेंसिंग का उपयोग करते हैं जो कक्षा ा सक्रिय वातावरण उपस्थित कर देता है। कंप्यूटर की विकसित तकनीकों के कारण अब ल्टीमीडिया कार्यक्रम बहुत सहज हो चले हैं। इनसे हम भाषा को वास्तविक संदर्भ में देख ाकते हैं और इसमें कक्षा से भी अधिक परस्परता (interactivity) आ सकती है। लीकांफ्रेंसिंग और कंप्यूटर के जोड़ से हम अपने कक्ष में ही वास्तविक कक्षा (virtual lassroom) का वातावरण निर्मित कर सकते हैं।

6.7 सारांश

ाई 15 में हमने भाषा शिक्षण के विविध रूपों और विधियों की चर्चा की। इकाई 16 में षा शिक्षण से संबंधित व्यावहारिक पक्षों की चर्चा की गई है।

ा भाषा शिक्षण के लिए लक्ष्य निर्धारित कर लेते हैं, जिससे विविध उद्देश्यों से भाषा खने वाले अपनी-अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप भाषा दक्षता अर्जित करें। लेकिन हम ्सर देखते हैं कि छात्र या अध्येता के सामने अर्जन में बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं। इन्हें चानने और दूर करने के उद्देश्य से दो विशिष्ट अध्ययन क्षेत्रों का आविर्भाव हुआ है।

ा का व्यतिरेकी विश्लेषण संरचनात्मक भाषाविज्ञान पर आधारित है। यह दो भाषाओं में र के स्थलों का आकलन करता है जिससे हम इन स्थलों पर होने वाली संभावित ्यों का पूर्वानुमान कर सकें। सामग्री निर्माण में हम इन त्रुटियों को दूर करने के उद्देश्य आवश्यक अभ्यास और उपचारात्मक सामग्री की योजना बनाते हैं।

ा दोष विश्लेषण (या त्रुटि विश्लेषण) चॉम्स्की के उपागम पर आधारित अध्ययन क्षेत्र हैं। के अनुसार त्रुटियाँ भाषा अर्जन की प्रक्रिया के सहज अंग हैं। यह अध्ययन मानता है कि ना की विभिन्नता हमेशा त्रुटि का कारण नहीं बनती। वास्तव में इन त्रुटियों से हम यह लगा सकते हैं कि भाषा के नियमों को आत्मसात करने की प्रक्रिया कैसे काम कर है।

जिन उद्देश्यों से भाषा सीखते हैं, उन्हीं उद्देश्यों के संदर्भ में भाषा का परिक्षण होना ए। भाषा का परीक्षण गणित, विज्ञान आदि की तरह ज्ञान पर आधारित नहीं हो सकता।

हमें विभिन्न भाषिक कौशलों में क्षमता का परीक्षण करना चाहिए। मूल्यांकन विभिन्न स्तरों पर भाषा शिक्षण के आयोजन के विभिन्न पहलुओं की जानकारी देता है।

भाषा शिक्षक के आयोजन में विधि या अध्यापक द्वारा प्रस्तुतीकरण का जितना महत्व है उतना ही महत्व सामग्री का है। भाषा शिक्षण की सामग्री अन्य विषयों की सामग्री से भिन्न होती है। मौखिक कौशलों के विकास के लिए हमें उचित साँचा अभ्यास (pattern drill) तैयार करनें चाहिए, जिनकी सहायता से छात्र ध्वनि, शब्दार्थ आदि तत्वों पर भी अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। यह सामग्री क्रमबद्ध होती है और नियंत्रित अभ्यास के लिए उपयोगी भी।

साँचा अभ्यास या अभिरचना अभ्यास भाषा को संदर्भ से अगूल करके प्रस्तुत करता है। आधुनिक युग में प्रौद्योगिकी के विकास के कारण हम टेलीविज़न, वीडियो आदि उपकरणों के माध्यम से भाषा का संदर्भ उपस्थित कर सकते हैं। अब तक यही कठिनाई थी कि इनके माध्यम से परस्परता युक्त (interactive) शिक्षण संभव नहीं था। अब कंप्यूटर के मल्टीमीडिया कार्यक्रम भाषा शिक्षण में क्रांति ला रहे हैं।

16.8 अभ्यास प्रश्न

1. **निबंधात्मक प्रश्न**

   (1) भाषा शिक्षण में दृश्य-श्रव्य सामग्री का महत्व स्पष्ट कीजिए।

2. **टिप्पणियाँ**

   (1) त्रुटि विश्लेषण : प्रक्रिया और प्रयोजन

   (2) भाषा परीक्षण

   (3) साँचा अभ्यास

इकाई 17 अनुवाद

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 अनुवाद से तात्पर्य
17.3 भाषाविज्ञान और अनुवाद
17.3.1 अनुवाद और ध्वनिविज्ञान
17.3.2 अनुवाद और शब्दविज्ञान
17.3.3 अनुवाद और रूपविज्ञान
17.3.4 अनुवाद और वाक्यविज्ञान
17.3.5 अनुवाद और अर्थविज्ञान
17.3.6 अनुवाद और शैलीविज्ञान
17.4 अनुवाद : प्रकृति, क्षेत्र, प्रकार तथा उपयोगिता
17.4.1 अनुवाद की प्रकृति
17.4.2 अनुवाद के क्षेत्र
17.4.3 अनुवाद के प्रकार
17.4.4 अनुवाद की उपयोगिता
17.5 अनुवाद की प्रक्रिया
17.6 हिंदी में अनुवाद से संबद्ध समस्याएँ तथा निदान
17.6.1 भाषिक स्तर की समस्याएँ
17.7 साहित्यिक अनुवाद
17.8 सारांश
17.9 अभ्यास प्रश्न

17.0 उद्देश्य

अनुवाद अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान का एक प्रमुख क्षेत्र है और आज के अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में एक महत्वपूर्ण और आर्थिक दृष्टि से उपयोगी कार्यकलाप है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- अनुवाद की परिभाषा दे सकेंगे;
- अनुवाद और भाषाविज्ञान का संबंध समझा सकेंगे;
- अनुवाद की प्रकृति और उपयोगिता की चर्चा कर सकेंगे;
- अनुवाद के प्रकार बता सकेंगे और साहित्यिक तथा विषय संबंधी अनुवाद की प्रक्रिया समझा सकेंगे;
- अनुवाद से संबंधित समस्याओं का आकलन कर सकेंगे और समाधान खोज सकेंगे; और
- अनुवाद कार्य में इस जानकारी के आधार पर प्रवृत्त हो सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग में हम सबको अनुवाद से कहीं-न-कहीं वास्ता पड़ता है। हम अगर किसी नए देश में जाएँ तो अनुवादक ढूँढ़ना पड़ता है या विदेशी भाषा में मुद्रित सामग्री को समझने के लिए अनुवाद की आवश्यकता महसूस होती है। आधुनिक युग वैश्वीकरण का युग है। विश्व के सभी लोग मिलकर ज्ञान-विज्ञान के विकास के लिए प्रयत्नशील हैं। लेकिन विश्व में लगभग 70 प्रमुख भाषाएँ हैं जिनमें साहित्य तथा ज्ञान-विज्ञान के विषय उपलब्ध हैं। हमें एक भाषा से दूसरे भाषा में इस सामग्री को ले जाने के लिए कुशल अनुवादक की ज़रूरत होती है। यूँ कह सकते हैं कि अनुवाद के अभाव में आज विश्व विखंडित हो जाएगा।

भाषाविज्ञान तथा हिंदी भाषा के विविध पक्षों का अध्ययन करते हुए जब हम अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान पर आते हैं तो अनुवाद का अध्ययन हमें इसका एक अत्यंत स्वाभाविक अंग लगता है कि अनुवाद की प्रक्रिया का माध्यम भाषा ही होती है। इस इकाई में हम अनुवाद के तात्पर्य और स्वरूप को समझते हुए भाषाविज्ञान से उसके संबंध पर भी दृष्टिपात करेंगे। हम देखेंगे कि भाषा के विभिन्न स्तरों–ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ, शैली आदि का वैज्ञानिक अध्ययन सही अनुवाद में किस प्रकार और कहाँ तक सहायक सिद्ध होता है।

इसके बाद हम अनुवाद की प्रकृति पर विचार करते हुए यह जानने की कोशिश करेंगे कि यह विज्ञान है या कौशल या कला। इसी क्रम में हम आगे उन क्षेत्रों का आकलन करेंगे जिनमें अनुवाद का प्रयोग होता या हो सकता है। फिर अनुवाद के विविध प्रकारों की चर्चा करते हुए हम अनुवाद की उपयोगिता को रेखांकित करने की कोशिश करेंगे।

अगले अनुभाग में हम देखेंगे कि मूल पाठ को पढ़ने और दूसरी भाषा या भाषा-भेद में उसकी अभिव्यक्ति के बीच अनुवाद कौन-सी विभिन्न प्रक्रियाओं से गुज़रता है।

अनुवाद के क्रम में अनुवादक को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है। इनमें से कुछ भाषिक स्तर की समस्याएँ होती हैं कुछ भाषा से इतर स्तर की। कुछ समस्याएँ किसी विशिष्ट साहित्यिक विधा से भी जुड़ी हुई होती हैं। इन सभी प्रकार की समस्याओं पर भी हम संक्षेप में विचार करेंगे।

अंत में, सामान्य अनुवाद तथा साहित्यिक अनुवाद का अंतर स्पष्ट करते हुए हम इस पाठ के उपसंहार पर आएँगे।

17.2 अनुवाद से तात्पर्य

'अनुवाद' वास्तव में है क्या? आप तुरंत कह उठेंगे– 'एक भाषा में कही हुईबात को दूसरी भाषा में कहना'। जी हाँ, वे शब्द अति सरलीकृत रूप में वही संकल्पना हमारे सामने रखते हैं जिसे आज अनुवाद के नाम से जाना जाता है। पर क्या आप जानते हैं कि मूलतः इस शब्द का अर्थ क्या था?

वह शब्द संस्कृत भाषा का है। 'अनु' का अर्थ है पीछे चलना और 'वाद' का अर्थ है बोलना। 'शब्दार्थ चिंतामणि' कोश में इसका अर्थ दिया गया है। 'प्राप्तस्य पुनःकथने' (पहले कहे गए को फिर से कहना) और 'ज्ञातार्थस्य प्रतिपादने' (ज्ञात अर्थ को प्रतिपादित करना)। अर्थात् पहले कही हुई किसी बात को समझकर अगर आप पुनःप्रस्तुत करते हैं, तो वह अनुवर्ती कथन या अनुवाद है। ध्यान दें, यह पुनःकथन मूल कथन की ही भाषा में भी हो सकता है। शर्त यही है कि मूल कथन और पुनःकथन के अर्थ में कोई अंतर न आए।

आज हम अनुवाद को अंग्रेज़ी 'ट्रांसलेशन' (Tranaslation) के पर्याय के रूप में प्रयुक्त करते हैं। 'ट्रांसलेशन' शब्द का भी प्राथमिक अर्थ है–स्थानांतरण, अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। विस्तृत अर्थ में पहले कही हुई बात का दूसरे शब्दों में पुनःकथन ही अनुवाद है, चाहे वह समभाषिक हो या अन्यभाषिक। किंतु आज अनुवाद को सामान्यतः द्विभाषिक व्यापार ही माना जाता है जैसा कि इसकी अनेक परिभाषाओं से स्पष्ट है। उदाहरण के लिए कुछ परिभाषाएँ देखिए (अंग्रेज़ी परिभाषाओं का यहाँ हिंदी भाषांतरण दिया जा रहा है) :

अनुवाद "एक भाषा की पाठ्यसामग्री को दूसरी भाषा की पाठ्यसामग्री को समतुल्य पाठ्यसामग्री द्वारा प्रतिस्थापित करना" ही अनुवाद है जे.सी. कैटफर्ड। अनुवाद "एक भाषा के शाब्दिक प्रतीकों की अन्य भाषा के शाब्दिक प्रतीकों द्वारा व्याख्या" है रोमन याकोबसन।

अनुवाद 'मूल भाषा के संदेश के सममूल्य संदेश को लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करने की क्रिया' है जिसमें संदेशों की यह सममूल्यता 'पहले अर्थ और फिर शैली की दृष्टि से' निकटतम और स्वाभाविक होती है इ.ए. नाइडा तथा आर. टेबर। 'पहले किसी भाषा में लिखी या कही गयी बात को पीछे किसी अन्य भाषा में कहना या लिखना' अनुवाद है डॉ. जी. गोपीनाथन। 'एक भाषा में व्यक्त विचारों को यथासंभव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है डॉ. भोलानाथ तिवारी। अनुवाद का प्रकार्य है 'एक भाषा में व्यंजित संदेश को दूसरी भाषा में पुनः कहना' डॉ. सुरेश कुमार।

इन परिभाषाओं के विश्लेषण तथा आकलन के लिए आप पाठ के अंत में दिए गए संदर्भ ग्रंथों का अध्ययन करें। यहाँ हम साररूप में अनुवाद की उन कुछ विशेषताओं का उल्लेख मात्र करेंगे जो इन परिभाषाओं से उभरकर सामने आती हैं :

1. अनुवाद एक भाषिक प्रक्रिया है।
2. सामान्यतः यह दो भाषाओं के बीच का ऐसा संबंध है जिसमें एक भाषा के शाब्दिक प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त बात को दूसरी भाषा के शाब्दिक प्रतीकों के माध्यम से पुनः प्रस्तुत किया जाता है।
3. पुनःप्रस्तुति की इस प्रक्रिया में भाषा में अंतरण आता है, अर्थ में नहीं।
4. एक भाषा का संदेश जब दूसरी भाषा में अभिव्यक्त किया जाता है तो दोनों में अर्थ (कथ्य) तथा अभिव्यक्ति (शैली) के स्तर पर भी समतुल्यता आवश्यक है, तभी मूल अर्थ का संप्रेषण संभव होगा।
5. अनुदित पाठ यथासंभव सहज तथा स्वाभाविक हो।
6. अनुवाद मौखिक भी हो सकता है और लिखित भी।

1. परिभाषाओं से स्पष्ट है कि मोटे तौर पर एक बार कही हुई बात को दूसरे शब्दों में फिर से कहना ही अनुवाद है। कथन या अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है, इसलिए अनुवाद की प्रक्रिया भी भाषा पर ही होती है।

   विस्तृत अर्थ में अनुवाद एकभाषिक भी हो सकता है और द्वैभाषिक भी। कई बार किसी भाषा में अभिव्यक्त विचार अधिक स्पष्ट या सरल रूप में सामने रखने के लिए उसी भाषा के अपेक्षाकृत सहज शब्दों में प्रस्तुत किए जाते हैं। उदाहरण के लिए : 'दिवस का अवसान समीप था'– 'दिन का अंत निकट था/दिन ढलने को था' या एक ही भाषा के प्राचीन रूप में अभिव्यक्त बात को आधुनिक रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। (जैसे पुरानी अंग्रेज़ी→आधुनिक अंग्रेज़ी), या एक ही भाषा के मानक रूप में अभिव्यक्त बात अमानक रूप में या अमानक रूप में अभिव्यक्त बात मानक रूप में प्रस्तुत की जाती है, या एक ही भाषा की एक बोली में अभिव्यक्त बात दूसरी बोली में, एक बोली में अभिव्यक्त बात मानक भाषा में, या मानक भाषा में अभिव्यक्त बात किसी बोली में रूपांतरित करके प्रस्तुत की जाती है। इन सभी स्थितियों को एकभाषिक अनुवाद के अंतर्गत रखा जा सकता है।

   किंतु अनुवाद का द्वैभाषिक रूप ही अधिक प्रचलित तथा चर्चित है, जैसा कि अनुवाद की अधिकतर परिभाषाओं तथा तत्संबंधी विवेचन से ज़ाहिर है। मगर इस प्रक्रिया का संबंध एक भाषा से हो या एकाधिक भाषाओं से, इतना निश्चित है कि इसका आधार भाषा ही है और यह भाषिक प्रक्रिया है।

   जहाँ अनुवाद की प्रक्रिया दो भाषाओं के बीच होती है, वहाँ जिस भाषा से अनुवाद किया जाता है, उसे स्रोत भाषा (स्रो.भा.) या मूल भाषा (मू.भा.) तथा जिस भाषा में अनुवाद किया जाता है, उसे लक्ष्य भाषा (ल.भा.) कहा जाता है।

2. भाषा का भवन शब्द रूपी ईंटों से गढ़ा जाता है और शब्द मूर्त जगत के तथ्यों और अमूर्त संकल्पनाओं को अभिव्यक्त करने वाले प्रतीक भर होते हैं। इस प्रकार भाषा शाब्दिक प्रतीकों की श्रृंखला भर है। वह श्रृंखला हर भाषा में अपनी विशिष्ट संरचना में बँधी होती है। अनुवाद में जब हम एक भाषा के शाब्दिक प्रतीकों को दूसरी भाषा के शाब्दिक प्रतीकों द्वारा पुनःप्रस्तुत या प्रतिस्थापित करते हैं, तो यह प्रतिस्थापन मात्र शाब्दिक स्तर ही नहीं भाषिक संरचना के स्तर पर भी होता है। इसे ही स्रोत भाषा की 'पाठ सामग्री में अंतर्निहित तथ्य' का लक्ष्य भाषा में 'संगठनात्मक रूपांतरण' अथवा 'सर्जनात्मक पुनर्गठन' कहा गया है।

3. पुनर्गठन या पुनःप्रस्तुति की इस प्रक्रिया में भाषा अवश्य बदल जाती है, किंतु अर्थ, आशय या संदेश में कोई अंतर नहीं आना चाहिए। यह हमेशा संभव नहीं होता क्योंकि हर भाषा का अपना सामाजिक-सांस्कृतिक ऐतिहासिक-राजनीतिक परिवेश होता है जो उसके शाब्दिक प्रतीकों और संरचनाओं को विशिष्ट व्यंजना देता है। मात्र भाषांतर से उस विशिष्ट व्यंजना का वहन कठिन होता है। इसीलिए कई विद्वानों ने अनुवाद को असंभव माना है।

   यह सही है कि कई प्रसंगों में अनुवाद अर्थ का हूबहू अंतरण नहीं कर पाता, किंतु अनुवाद का काम ही एक भाषा में अभिव्यक्त बात को दूसरी भाषा में प्रस्तुत करना है। अतः अनुवादक को, आशय की पूर्ण समानता संभव न होने पर भी यथासंभव समानता की कोशिश तो करनी ही चाहिए।

4. जैसा कि आप देख चुके हैं अनुवाद में अर्थ का मतलब केवल शब्दार्थ नहीं होता। अनुवादक स्रोत भाषा में कही गई पूरी बात को लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करने की कोशिश करता है। अर्थ की इस समतुल्यता के लिए शैली की समतुल्यता भी बहुत ज़रूरी है। उदाहरण के लिए डिकेंस के किसी उपन्यास के अनपढ़, अनगढ़ देहाती चरित्र की ऊबड़-खाबड़ भाषा का अनुवाद यदि परिनिष्ठित तत्सम शब्दावलीयुक्त हिंदी में कर दिया जाए तो उससे कुछ सीमा तक शब्दार्थ का द्योतक भले ही हो जाए, स्रोत भाषा के मुख्य कथ्य का बोध नहीं होगा, जिसमें पूरा परिवेश और चरित्र की विशेषताएँ भी सम्मिलित होती हैं। सरकारी कामकाज की नपी-तुली औपचारिक भाषा का अनुवाद ठीक वैसी ही शैली में हो तभी उसे संपूर्ण कथ्य का अनुवाद कहा जा सकेगा। इसके लिए अनुवादक को स्रोत तथा लक्ष्य भाषा की विविध शैलियों तथा उनसे प्रतिपादित प्रकार्यों की समझ तो होनी ही चाहिए, उसे इस बात की भी समझ होनी चाहिए कि किसी ख़ास शैली के प्रयोग के पीछे लेखक का आशय क्या था। अनुवाद में समतुल्य शैली के प्रयोग के द्वारा उसे सही अर्थ के संप्रेषण की कोशिश करनी चाहिए।

5. अनुवाद सहज और स्वाभाविक होना चाहिए, अर्थात् अनुवाद की भाषा में बनावटीपन या स्रोत भाषा की छाप नहीं होनी चाहिए। उसकी भाषा-शैली यथासंभव ऐसी हो कि वह अनुवाद न होकर मूलतः लक्ष्य भाषा की रचना ही प्रतीत होने लगे।

6. जिस प्रकार भाषा के मौखिक और लिखित दो पक्ष होते हैं, उसी प्रकार अनुवाद के भी। लिखित अनुवाद के विस्तृत क्षेत्र से आप सभी परिचित हैं। मौखिक अनुवाद के अंतर्गत विविध प्रकार का दुभाषिया कर्म आता है। आपसी बातचीत में या कक्षाओं में किसी अन्य भाषा के शब्द, वाक्य या उद्धरण को समझने-समझाने के लिए हम प्रायः मौखिक अनुवाद का सहारा लेते हैं।

17.3 भाषाविज्ञान तथा अनुवाद

भाषिक प्रक्रिया होने के नाते अनुवाद का भाषा ही नहीं भाषाविज्ञान से भी गहरा संबंध है। भाषा के ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य आदि अनेक स्तर होते हैं जो मिलकर उसे एक सुगठित इकाई के रूप में हमारे सामने लाते हैं। इन विविध स्तरों का अध्ययन आप भाषाविज्ञान के अंतर्गत करेंगे। यहाँ इतना आपके सामने स्पष्ट होना चाहिए कि अनुवाद की प्रक्रिया इन सभी स्तरों को समेटती है, और अनुवाद के क्रम में इन सभी स्तरों के प्रति सचेत रहना भी आवश्यक है। इसके अलावा इन विभिन्न स्तरों पर मूल भाषा तथा लक्ष्य भाषा की प्रकृति तथा संरचना में जो अंतर होता है, उसका भी अनुवादक को भली प्रकार ज्ञान होना ज़रूरी है। हर भाषा की अपनी विशिष्ट ध्वनियाँ और ध्वनि व्यवस्था होती है; हर भाषा का अपना शब्द भंडार होता है, हर भाषा की रूप-व्यवस्था अर्थात् पदों के लिंग, वचन, पुरुष, कारक-व्यवस्था, क्रिया के काल, पक्ष, विधि, अन्विति आदि की व्यवस्था भी भिन्न होती है। इसके अलावा कई समान प्रतीत होने वाली वाक्य संरचनाओं के अभिहित अर्थ भी दो भाषाओं में भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। इन विविध स्तरों पर दो भाषाओं की प्रकृति, संरचना, शैली आदि में जो अंतर होते हैं, वे समान प्रतीत होने वाले प्रसंगों में भी अलग-अलग अर्थ भर देते हैं। अनुवाद में भाषातरण के बावजूद अर्थ की रक्षा अपरिहार्य होती है। अतः अनुवादक को स्रोत तथा लक्ष्य भाषा की प्रकृति, संरचना, विविध भाषिक तथा व्याकरणिक स्तरों, विभिन्न बोलियों तथा इन तमाम पक्षों से संबद्ध अर्थ व्यंजनाओं का संपूर्ण ज्ञान होना चाहिए। इसे देखते हुए ही कैटफर्ड, नाइडा, न्यूमार्क आदि भाषावैज्ञानिकों ने अनुवाद के अध्ययन की भाषावैज्ञानिक दृष्टि का विकास किया। हम आगे भाषा के विभिन्न स्तरों की संक्षिप्त चर्चा करते हुए देखेंगे कि अनुवाद के संदर्भ में इन स्तरों पर किन मुख्य-मुख्य बातों का ध्यान रखना ज़रूरी है।

17.3.1 अनुवाद और ध्वनिविज्ञान

ध्वनि विज्ञान के अंतर्गत भाषा की विभिन्न ध्वनियाँ, ध्वनिगुच्छों, स्वनिमों, ध्वनि गुणों, अक्षर, मात्रा, बलाघात, सुरलहर आदि का अध्ययन किया जाता है। ध्वनि भाषा की मूलभूत इकाई होती है और हर भाषा की अपनी विशिष्ट ध्वनि व्यवस्था होती है। जैसे हिंदी की 'त' ध्वनि अंग्रेज़ी में नहीं है तो अंग्रेज़ी के v (व) और w (व) का सूक्ष्म अंतर हिंदी में नहीं है। इस तरह के अनेक उदाहरण आप सहायक ग्रंथों में देख सकते हैं। ध्वनि तथा उच्चारण से ही भाषा की वर्तनी व्यवस्था भी जुड़ी होती है। ध्वनियों के संयोजन से ही शब्द बनते हैं जो पदों के रूप में वाक्यों में प्रयुक्त होते हैं। वाक्य प्रोक्ति का आधार होते हैं और प्रोक्ति ही भाषा का मुख्य प्रकार्य-कथ्य का संप्रेषण-संपन्न करती है।

यहाँ आपके मन में एक प्रश्न उठ सकता है। ध्वनियाँ तो भाषाविशिष्ट होती हैं। जब किसी पाठ का एक भाषा से दूसरी भाषा में अंतरण कर दिया जाता है तो स्वाभाविक रूप से ही स्रो.भा. (स्रोत भाषा) और उसकी ध्वनियाँ पीछे छूट जाती हैं और अनूदित पाठ में ल.भा. (लक्ष्य भाषा) की ही ध्वनियों का प्रयोग होता है। ऐसी स्थिति में ध्वनि विज्ञान के ज्ञान का अनुवाद में क्या महत्व हो सकता है?

सामान्य अनुवाद के लिए यह बात ठीक हो सकती है, पर कुछ अनुवादों को लेकर ग़ौर से उनका अध्ययन कीजिए। कई स्थानों पर आपको ऐसे शब्द मिलेंगे जिनका अनुवाद संभव नहीं होता और उन्हें स्रो.भा. से ल.भा. में लिप्यंतरित करना पड़ता है। अर्थात् उन शब्दों को ल.भा. की वर्तनी में लिख देना पड़ता है। किसी व्यक्ति (तोलस्तेय, द गाल), महादेश (एशिया, अफ्रीका), देश (इटली, मालदीव), शहर (लंदन, बैंकाक), पर्वत (आल्प्स) नदी (ह्वांग हो), समुद्र (कैस्पियन), भाषा (जर्मन, बांग्ला) ग्रंथ/पुस्तक (इलियट, पैराडाइज़ लॉस्ट) व्यापारिक नाम (हेक्स्ट, रोलेक्स) संस्था, संस्थान आदि का नाम – अर्थात्

व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ इसी श्रेणी में आती हैं। ज़ाहिर है, आम तौर पर इनका अनुवाद नहीं किया जा सकता। कई बार स्रो.भा. से कुछ तकनीकी, पारिभाषिक या बहुप्रचलित शब्द ल.भा. में ग्रहण भी कर लिए जाते हैं, जैसे, विटामिन, रडार, ट्यूब आदि। प्रश्न है कि इन श्रेणियों के शब्दों को ल.भा. में कैसे लिखा जाए। सीधी-सी बात है कि स्रो.भा. की उन ध्वनियों को ल.भा. की लिपि में लिख लिया जाए। पर वह इतना सहज नहीं है।

व्यक्तिनाम Charles का अंग्रेज़ी उच्चारण 'चार्ल्स' है और फ्रेंच उच्चारण 'शार्ल'। ऐतिहासिक व्यक्तित्व Charlmagne के नाम का उच्चारण वर्तनी के अनुसार 'चार्लमैग्ने' न होकर 'शार्लमेन' होगा। Rousseau, Rembrand और Taine के उच्चारण क्रमशः 'रोउस्सेआउ', 'रेम्ब्राण्ड्ट' और 'टाइने' न होकर 'रूसो', 'रैम्बॉ' और 'तेन' होंगे। अनुवाद में नामों तथा अन्य आगत शब्दों के प्रतिलेखन में सही उच्चारण सुरक्षित रखने के लिए ज़रूरी है कि अनुवादक को स्रो.भा. की ध्वनि-व्यवस्था एवं उस भाषा में लिपि तथा ध्वनि के संबंध का समुचित ज्ञान रहे। अन्यथा अनुवाद में बड़ी हास्यास्पद भूलें होने की संभावना रहती है। इस ज्ञान को प्राप्त करने में ध्वनिविज्ञान बहुत सहायक होता है।

अंग्रेज़ी आदि भाषाओं में शब्द के अर्थ का निर्धारण बलाघात से भी होता है। नीचे एक उदाहरण देखिए :

(i)	pre'sent	–	उपहार (संज्ञा)
(ii)	prese'nt	–	उपहार देना, प्रस्तुत करना (क्रिया)

इस प्रकार शब्द के सही अर्थ को जानने के लिए उसमें बलाघात की स्थिति को जानना बहुत ज़रूरी है। बलाघात का अध्ययन भी ध्वनिविज्ञान के अंतर्गत आता है।

17.3.2 अनुवाद और शब्दविज्ञान

किसी भाषा की ध्वनियों के सार्थक समुच्चय शब्द कहलाते हैं। भाषा का लक्ष्य अर्थ का संप्रेषण और अर्थ का वहन शब्द ही करते हैं। अनुवाद को भी मूलतः एक भाषा के शाब्दिक प्रतीकों का दूसरी भाषा के शाब्दिक प्रतीकों द्वारा प्रतिस्थापन माना गया है।

शब्द विज्ञान क्या है? इस विज्ञान के अंतर्गत शब्दों को परिभाषित करके विभिन्न आधारों पर उनका वर्गीकरण किया जाता है। किसी शब्द का इतिहास या ऐतिहासिक स्रोत क्या है, उसका प्रयोग-संदर्भ क्या है, उसका प्रयोग अभिधा में हो रहा है या लक्षणा या व्यंजना में, उसकी व्याकरणिक कोटि क्या है, उसका प्रयोग किस विधा के अतर्गत हो रहा है – ये सब बातें उसके अर्थ को निर्धारित करती हैं। अनुवाद के लिए शब्द के सही और सटीक अर्थ की जानकारी ज़रूरी है और इस जानकारी के लिए शब्द वैज्ञानिक विश्लेषण और वर्गीकरण का ज्ञान अपरिहार्य है। कुछ एक उदाहरणों पर ग़ौर कीजिए :

करम : ऐतिहासिक दृष्टि से इस ध्वनिसमूह के दो स्रोत है जिससे इसके अर्थ भी भिन्न-भिन्न हैं।

	स्रोत	**अर्थ**
करम	तद्भव (संस्कृत 'कर्म')	भाग्य, काम
	अरबी	कृपा, मेहरबानी

अब वाक्य में इसका प्रयोग देखिए :

– आपका करम है।

इस वाक्य का अर्थ आप क्या निकालेंगे?

1. आपका भाग्य है।
2. आपकी कृपा है।

इससे यह स्पष्ट है कि अनुवाद में केवल शब्दार्थ समझ लेना काफ़ी नहीं। शब्द के अर्थ को पूरी तरह समझने के लिए हर तरह के संदर्भ की जानकारी बहुत आवश्यक है। कई बार अनेक शब्द एक-सा ही अर्थ देते हैं किंतु उनके संदर्भ भिन्न होते हैं। हिंदी क्षेत्र में विभिन्न सामाजिक स्थितियों में 'पति' के लिए भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग होता है– 'स्वामी', 'आदमी', 'मरद', 'भतार', 'खसम' आदि। ज़ाहिर है, अंग्रेज़ी में केवल husband के माध्यम से इन अलग-अलग शब्दों की ध्वनियाँ संप्रेषित नहीं हो सकतीं। इनमें से किसी भी शब्द का किसी खास संदर्भ में प्रयोग कौन-से अतिरिक्त अर्थ देता है। इसे जानने में शब्द विज्ञान के साथ ही अर्थ विज्ञान और समाजभाषाविज्ञान भी सहायक होता है।

पारिभाषिक शब्दों के अनुवाद में भी शब्द विज्ञान की जानकारी से सहायता मिलती है। विशिष्ट शास्त्रों, विज्ञानों, व्यवहार क्षेत्रों आदि की विशिष्ट संकल्पनाओं के लिए पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग होता है जो सामान्यतः आम बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त नहीं होते, जैसे 'संध्वनि' (भाषाविज्ञान), 'दशमलव' (गणित), 'अचिंत्यभेदाभेद' (दर्शन) आदि। कई बार ल.भा. में इनके प्रतिशब्द उपलब्ध होते हैं, पर जहाँ वे उपलब्ध नहीं होते वहाँ अनुवादक को स्वयं उपयुक्त प्रतिशब्द गढ़ने पड़ते हैं। शब्द-निर्माण की प्रक्रिया का अध्ययन भी शब्द विज्ञान का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

किसी भाषा के शब्द भंडार में बोलियों के शब्द भी शामिल रहते हैं। अनुवादक को उनकी जानकारी तो रहनी ही चाहिए, इस बात का विवेक भी होना चाहिए कि स्रो.भा. की ऐसी शब्दावली का ल.भा. में किस प्रकार प्रतिस्थापन किया जाए।

17.3.3 अनुवाद और रूपविज्ञान

रूपविज्ञान के अंतर्गत किसी भाषा की रूप-रचना का अध्ययन तथा विश्लेषण किया जाता है। रूप-रचना संबंधी नियमों का आकलन तथा निर्धारण भी इसी के अंतर्गत होता है। रूप-रचना के नियम चूँकि तमाम व्याकरणिक कोटियों पर लागू होते हैं, इसलिए इनका क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। संज्ञा तथा सर्वनाम के कारकीय रूपों की रचना; संज्ञा, सर्वनाम तथा (कुछ भाषाओं में) विश्लेषण और क्रिया के लिंग, वचन, पुरुष आदि का बोधन; कृदंतों की रचना; उपसर्ग, प्रत्यय आदि के योग से शब्दों की व्याकरणिक कोटि में परिवर्तन, समास-रचना आदि सभी क्रियाओं तथा प्रक्रियाओं का अध्ययन रूपविज्ञान के क्षेत्र में आता है। इस प्रकार आप देख सकते हैं कि कथ्य का संप्रेषण भाषा के रूप विन्यास पर निर्भर होता है। इसलिए अनुवादक को स्रो.भा. तथा ल.भा. दोनों की ही रूप-रचना से भलीभाँति परिचित होना चाहिए।

अंग्रेज़ी में hair (बाल) शब्द हमेशा एकवचन में आता है। हिंदी में इसका अनुवाद करते समय बहुवचन का प्रयोग करना चाहिए। निम्नलिखित गलत अनुवाद देखिए :

Her hair is beautiful – उसका बाल बहुत अच्छा है।

अंग्रेज़ी में /ed/ प्रत्यय से कृदंत रूप desired की सिद्धि होती है। लेकिन यह क्रिया और विशेषण के रूप में प्रयोग में भिन्न हो जाता है।

He desired to go	उसने जाना चाहा
The desired result	अपेक्षित परिणाम

इस तरह रूपों की रचना और अर्थ की अच्छी जानकारी अनुवाद के लिए आवश्यक है।

17.3.4 अनुवाद और वाक्यविज्ञान

वाक्य अर्थ संप्रेषण की इकाई है जिसकी रचना रूपबद्ध शब्दों के संयोजन से होती है। वाक्य विज्ञान के अं त सामान्य रूप से भी और भाषा विशेष के संदर्भ में भी वाक्य-रचना और इसके विभिन्न पक्षों का अध्ययन-विश्लेषण किया जाता है। वाक्यविज्ञान की जानकारी भाषा के सही स्वरूप को समझने के लिए बहुत ज़रूरी है क्योंकि भिन्न-भिन्न अर्थों के संप्रेषण के लिए भाषा में भिन्न-भिन्न प्रकार की वाक्य-रचनाओं का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण को लिए देखें :

(क) राम ने फूलदान तोड़ दिया।
(ख) राम से फूलदान टूट गया।

इन दोनों वाक्यों से मिलने वाली सामान्य सूचना समान है – 'फूलदान' (कर्म) 'टूट गया' (क्रिया) और इस क्रिया को 'राम' (कर्ता) ने किया है। किंतु दोनों वाक्यों की संरचना की भिन्नता से इनके अर्थों में अंतर आ गया है। वाक्य (क) में क्रिया कर्ता की स्वेच्छा से संचालित है – अर्थात् 'राम' ने अपी इच्छा से, जानते-बूझते फूलदान तोड़ा है। वाक्य (ख) में यह क्रिया स्वेच्छाचालित न होकर किसी चूक का परिणाम है। अनुवादक में इस अंतर को समझकर ल.भा. में सही ढंग से संप्रेषित करने की क्षमता होनी चाहिए।

इस संक्षिप्त विवेचन में आपको इस संबंध में पूरी जानकारी देना संभव नहीं है, अतः केवल कुछ मुख्य-मुख्य बातों पर ही आपका ध्यान दिलाया जा रहा है।

पदक्रम : हर भाषा के वाक्यों का अपना विशिष्ट आधारभूत पदक्रम होता है।

दोनों भाषाओं में यह भिन्न भी हो सकता है, जैसे :

हिंदी	राम किताब खरीद रहा है। (कर्ता - कर्म - क्रिया)
अंग्रेज़ी	Ram is buying a book. (कर्ता - क्रिया - कर्म)

आधारभूत पदक्रम के अतिरिक्त भी वाक्य-संरचनाओं में कई स्तरों पर पदक्रम अलग-अलग हो सकता है। उदाहरण के लिए क्रिया-विशेषण हिंदी में क्रिया के पहले आता है और अंग्रेज़ी में क्रिया के बाद। जैसे :

हिंदी : राम दस बजे के बाद आएगा।
क्रिया विशेषण

अंग्रेज़ी : Ram wil come after ten O'clock.
क्रिया क्रिया विशेषण

इस तरह के अन्य भी अनेक उदाहरण आपको विभिन्न भाषाओं में मिल जाएँगे।

वाक्य में निकटतम पदों की पहचान : कई बार किसी भाषा में वाक्य के पदों का परस्पर संबंध स्पष्ट नहीं होता। कुछ स्थितियों में ऐसे वाक्यों के एक से अधिक अर्थ निकलते हैं। उदाहरण को लिए अंग्रेज़ों के एक प्रसिद्ध चुटकुले का एक वाक्य है जिसमें ख़रीदार महिला सेल्सगर्ल से कहती है :

I want to try out that dress in the show window.

इस वाक्य से सीधे-सीधे दो अर्थ निकलते हैं :

(अ) मैं यह पोशाक 'शो विंडो' में पहनकर देखना चाहती हूँ।
(आ) मैं वह 'शो विंडो' वाली पोशाक पहनकर देखना चाहती हूँ।

ा द्वयर्थकता को ही चुटकुले का आधार बनाया गया है! पर आप ग़ौर कीजिए कि इस ार्थकता की वजह क्या है?

ार दिए गए वाक्य (अ) में in the show-window क्रिया विशेषण होने के नाते क्रिया निकट है और वाक्य (आ) में यह पद विशेषण होने क नाते संज्ञापद the dress के कट है।

। प्रकार आप देख सकते हैं कि किसी वाक्य के सही आशय को समझने के लिए उसके भेन्न घटकों का विश्लेषण आवश्यक है और यह देखना भी ज़रूरी है कि अर्थ की दृष्टि कौन-से घटक निकट हैं।

ान प्रतीत होने वाली व्याकरणिक संरचनाओं के वाक्य : ऐसा कभी-कभी हो सकता है एक भाषा में संदर्भ विशेष में ऐसी व्याकरणिक संरचना का प्रयोग होता हो जो दूसरी ा में नहीं मिलती। जैसे, ये हिंदी वाक्य देखिए :

मैं कहीं नहीं जाता – जाने का – जानेवाला !

ज़ी में इसकी प्रतिसंरचना नहीं मिलेगी। ऐसी स्थिति में इसके आशय को अंग्रेज़ी में सी और संरचना द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। इसमें विशेष कठिनाई नहीं होती। ठेनाई वहाँ होती है जहाँ दोनों भाषाओं में वाक्यों की व्याकरणिक संरचना एक समान त होती हो किंतु उन संरचनाओं से संबद्ध वाक्यार्थ भिन्न हों। इसका एक बहुत ही ।क उदाहरण आपको अंग्रेज़ी की passive वाक्य संरचना के माध्यम से मिल सकता है। ज़ी 'पैसिव' तथा हिंदी कर्मवाच्य संरचनाओं में समय का प्रमुख बिंदु है व्याकरणिक ाय के रूप में कर्म कारक का आना। किंतु फिर भी दोनों संनचनाएँ एक दूसरे के बदले ज रूप से प्रयुक्त नहीं हो सकतीं। अंग्रेज़ी में जहाँ अभिकर्तायुक्त 'पैसिव' संरचना क संदर्भों में सहज लगती हैं, हिंदी में वैसी कर्मवाच्य संरचनाएँ असहज और बनावटी ती हैं। कुछ उदाहरण देखें :

अंग्रेज़ी : (क) This novel was written by Rushdie.
(ख) The safe was broken by the thieves.

वाक्यों के दो-दो अनुवाद देखिए, जिनमें पहला कर्मवाच्य में है और दूसरा कर्तृवाच्य में। कीजिए कि हिंदी में कौन-सी संरचना सहज लगती है।

: (क) (i) यह उपन्यास रश्दी द्वारा लिखा गया था।
(ii) यह उपन्यास रश्दी ने लिखा था।
(ख) (i) यह तिज़ोरी चोरों द्वारा तोड़ी गई थी।
(ii) यह तिजोरी चोरों ने तोड़ी थी।

और उदाहरण देखिए जो इस अनुभाग के आरंभ में था :
: राम से फूलदान टूट गया।
ज़ी : The flower vase was broken by Ram.
हिंदी कर्मवाच्य संरचना में कर्ता के स्वेच्छापूर्वक, जानते-बूझते क्रिया संपन्न करने का नहीं है, जबकि अंग्रेज़ी 'पैसिव' संरचना में कहीं स्वेच्छा का निषेध नहीं है। इस आशय समाप्ति के लिए अनुवादक को किसी और प्रविधिका, या inadvertantly जाने/अनचाहे) जैसे किसी क्रियाविशेषण का प्रयोग करना पड़ेगा। वाक्य संरचनाओं के तरह के सूक्ष्म अंतर को समझने के लिए वाक्य-विन्यास का गहन ज्ञान आवश्यक है।

व्याकरणिक संबंध : किसी भी भाषा के वाक्य में पदों के व्याकरणिक संबंध तय रहते हैं। संभव है कि ल.भा. में अनूदित पदों के परस्पर संबंध वही नं रहें जो स्रो.भा. में थे। एक उदाहरण देखिए :

अंग्रेज़ी: He is a very good manager of materials.
विशेषण ↙ कर्म संज्ञापद

हिंदी : (i)? वह माल का | बहुत अच्छा | व्यवस्थापक है।
विशेषण
कर्म संज्ञापद

(ii) वह माल की व्यवस्था | बहुत अच्छी तरह करता है।
कर्म संज्ञापद क्रिया विशेषण

आप खुद देखिए, पहले वाक्य में पदों के अंग्रेज़ी वाले व्याकरणिक संबंधों को बरकरार रखा गया है, किंतु हिंदी की दृष्टि से वह वाक्य असहज है। हिंदी की दृष्टि से दूसरा वाक्य अधिक सहज है किंतु इसमें :

(i) विशेषण पद को क्रिया विशेषणपद में बदल दिया गया है।
(ii) अस्तित्ववाची 'है' की जगह सकर्मक क्रिया 'करता है' का प्रयोग हुआ है।
(iii) इस कारण कार्य प्रतिपादन का भाव क्रिया में आ गया है। परिणामस्वरूप कर्तृत्व बोधक शब्द 'व्यवस्थापक' के स्थान पर केवल 'व्यवस्था' शब्द का प्रयोग हो रहा है।

17.3.5 अनुवाद और अर्थविज्ञान

भाषा का कार्य अर्थ का संप्रेषण है और अर्थ विज्ञान में भाषा के अर्थ पक्ष का ही अध्ययन किया जाता है। आप जानते हैं कि शब्द का सीधा अर्थ या कोशार्थ अभिधा शब्द शक्ति के अतर्गत आता है, किंतु लक्षणा तथा व्यंजना के अंतर्गत शब्द कोशार्थ से अतिरिक्त अर्थ भी देते हैं। मान लीजिए हम किसी बच्चे के प्रश्न के उत्तर में मैदान में चरते हुए पशु का परिचय देते हैं– 'वह गाय है'– तो यहाँ हम 'गाय' का कोशीय अर्थ ले रहे हैं। किंतु जब हम किसी लड़की की सिधाई के संदर्भ में कहते हैं 'वह तो गाय है' तो निश्चय ही 'गाय' शब्द पशु विशेष का द्योतक न होकर सिधाई और दब्बूपन की प्रवृत्ति का परिचायक है और इस संदर्भ में यह संज्ञा न होकर विशेषण की कोटि में आ रहा है।

इसी प्राकर शब्दों के अर्थ संदर्भ, प्रयोग, काल, स्रोत, लिंग, सहप्रयोग, बलाघात, अनुतान आदि से भी निर्धारित होते हैं। इनमें से कुछ पर हम आगे विचार करेंगे। ध्यान रहे कि अर्थ विज्ञान केवल शब्द ही नहीं, पद, पदबंध, उपवाक्य, वाक्य, प्रोक्ति, मुहावरों, कहावतों आदि के स्तर पर भी अर्थ का अध्ययन-विश्लेषण करता है। इसके अंतर्गत अर्थ का केवल एककालिक ही अध्ययन नहीं होता बल्कि ऐतिहासिक अर्थ विज्ञान के माध्यम से विभिन्न युगों में शब्दों या अभिव्यक्तियों के अर्थ तथा उनमें आए बदलाव का भी अध्ययन किया जाता है।

संदर्भ : शब्द का अर्थ उसके संदर्भ से कैसे निर्धारित होता है, इसका एक उदाहरण आप इस अनुभाग के आरंभ में ही देख चुके हैं। व्यंग्यार्थ तो केवल संदर्भ से ही स्पष्ट होता है। इसके अतिरिक्त अनेकार्थी शब्दों के अर्थ भी केवल संदर्भ से स्पष्ट होते हैं। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी के fire शब्द के अर्थ देखिए :

Fire
- (संज्ञा) भाग
- (क्रिया-1) गोली चलाना
- (क्रिया-2) नौकरी से निकालना

ब्दों/प्रयोगों के अर्थ-निर्धारण में सांस्कृतिक संदर्भ बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। 'जाने' स्थान पर 'आने' की बात का ज़िक्र पहले ही हो चुका है। हिंदी में 'दूकान बंद करना' 'दिया बुझाना' अमंगलसूचक प्रयोग माने जाते हैं। इसलिए 'दूकान बढ़ाना' या 'दिया ढ़ाना' कहा जाता है।

ोत : किसी शब्द के अर्थ को समझने के लिए उसके स्रोत का ज्ञान बहुत ज़रूरी है। दाहरण के लिए अंगेज़ी शब्द Check को लें। इसका एक अर्थ है 'रोक-थाम' या यंत्रण'। किंतु अमेरिका में इसी शब्द का प्रयोग बैंक के 'चेक' के लिए भी किया जाता जबकि ब्रिटिश अंग्रेज़ी में इसके लिए प्रयुक्त शब्द की वर्तनी cheque है। यदि आपके मने check शब्द हो, तो आपको देखना होगा कि इसका स्रोत क्या है। यदि ब्रिटिश स्रोत आया शब्द है तो इसका अर्थ 'नियंत्रण' ही हो सकता है, बैंक का 'चेक' नहीं।

ह्प्रयोग : सहप्रयोग से भी शब्द का अर्थ निर्धारित होता है। हिंदी में 'भोजन' के साथ रना' क्रिया का प्रयोग होता है, 'खाना' का नहीं। किंतु 'करना' का अर्थ यहाँ कोई काम रना नहीं, 'खाना' ही है। अतः इसका अंग्रेज़ी अनुवाद भी doing a meal न होकर ving a meal ही होगा।

ावरे या मुहावरेदार प्रयोग : ये भी सहप्रयोग का ही एक रूप हैं जहाँ कथन के आशय मात्र शब्दार्थ के आधार पर नहीं समझा जा सकता। हिंदी के मुहावरे 'नौ-दो-ग्यारह होना' अंग्रेज़ी अनुवाद इसके अर्थ 'भाग जाना' के अनुसार होगा न कि शब्दार्थ के आधार पर। ी प्रकार कई समस्त पद भी अपने अंतर्गत आने वाले शब्दों के योग से भिन्न अर्थ देते हैं। ानन' का शब्दार्थ 'हाथी के मुखवाला' होता है, पर इसका प्रयोग मात्र 'गणेश जी' के ए होता है, और अनुवाद में इसका ध्यान रखना ज़रूरी है।

.3.6 अनुवाद और शैलीविज्ञान

ी का संबंध मूलतः भाषा से है, अतः भाषा का हर स्तर इसके निर्धारण में सहायक हो कता है। संदर्भ के अनुसार या विशेष संदर्भों में विशेष ध्वनियों, शब्दों, रूपों या वाक्य ग्रास का प्रयोग—यहाँ तक कि लिपि की विचित्रताएँ भी कथ्य की प्रस्तुति की शैली को दे सकती है।

ी भी रचना की शैली रचनाकार के व्यक्तित्व, विचारधारा और प्रकृति का परिचय तो ही है, कथ्य को स्पष्ट करने में भी सहायक होती है। उदाहरण को लिए फणीश्वरनाथ के उपन्यास 'मैला आँचल' को लीजिए। 'मैला आँचल' में आंचलिक भाषा के प्रयोग, चाल की तर्ज़, टूटे-बिखरे वाक्य, विशिष्ट अभिव्यक्तियाँ—सब मिलकर विशिष्ट प्रभाव न्न करते हैं जो लेखक के अभीष्ट कथ्य का हिस्सा हैं। यदि इन सबका अनुवाद सीधे-ट वर्णनात्मक गद्य में कर दिया जाए तो उपन्यास में वर्णित घटनाओं के सामान्य सूत्र ही मिल जाएँ किंतु उसका संपूर्ण, संश्लिष्ट प्रभाव नहीं आ पाएगा। प्रेमचंद की रचनाओं अनुवाद यदि लच्छेदार, अलंकृत गद्य में किया जाता है तो न केवल लेखक की शैली सादगी खंडित होगी बल्कि इस शैली से अभिहित कथ्य भी खंडित हो जाएगा।

विभेद केवल साहित्य में ही नहीं, अन्य प्रसंगों में भी होता है। सामान्य बोलचाल, ारी या दफ्तरी कामकाज़, व्यापार-व्यवसाय से संबद्ध प्रसंगों, ज्ञान-विज्ञान से जुड़े ों आदि में भाषा में प्रयुक्ति भेद के साथ ही शैली भेद भी हो जाता है।

की विशिष्टता, इसके उपकरणों (अग्रप्रस्तुति, विचलन, संसक्ति आदि), विशेष संदर्भों भिन शैलियों के महत्व तथा उनसे संप्रेषित अर्थों का अध्ययन विश्लेषण शैली विज्ञान

के अंतर्गत होता है। शैली का तमाम व्यापार भाषा से संबद्ध है और अनुवाद भी भाषिक प्रक्रिया ही है। अनुवाद का क्षेत्र बहुत विस्तृत है और जो कुछ भी अनूदित होता है उसकी अपनी शैली होती है। इसलिए अनुवादक को शैली विज्ञान के नियमों तथा प्रविधियों की समुचित जानकारी होनी चाहिए ताकि वह स्रो.भा. की सामग्री के अर्थ को सही-सही समझ सके और उपयुक्त युक्तियों के माध्यम से उस अर्थ को ल.भा. में यथासंभव पूर्ण रूप से संप्रेषित कर सके।

17.4 अनुवाद : प्रकृति, क्षेत्र, प्रकार तथा उपयोगिता

अनुवाद के तात्पर्य तथा भाषिक पक्ष के अध्ययन के बाद हम इसे और गहराई से समझने के लिए इसकी प्रकृति, इसके क्षेत्र, इसके विभिन्न प्रकारों और फिर इसकी उपयोगिता तथा महत्व का आकलन करेंगे।

17.4.1 अनुवाद की प्रकृति

एक भाषा (या समभाषिक अनुवाद की स्थिति में एक भाषा-भेद) के कथ्य को दूसरी भाषा (या भाषा-भेद) में प्रतिस्थापित करने को ही अनुवाद कहते हैं। प्रश्न यह है कि प्रतिस्थापन की इस प्रक्रिया की प्रकृति क्या है। क्या एक भाषा की भाषिक इकाइयों को व्यवस्थाबद्ध या नियमबद्ध यांत्रिक रीति से दूसरी भाषा की भाषिक इकाइयों में बदल भर दिया जाता है? क्या इस प्रक्रिया में अनुवादक के लिए दोनों भाषाओं की संरचनाओं, शब्द भंडार तथा आर्थी संदर्भों का समुचित ज्ञान ही पर्याप्त होता है? कथ्य चूँकि इसमें पहले से ही उपलब्ध रहता है, इसलिए क्या अनुवादक से सर्जनात्मकता की अपेक्षा नहीं की जाती? अनुवाद को यदि इस प्रकार मात्र वैज्ञानिक नियमों में बद्ध माना जाए तो स्पष्ट ही यह विज्ञान की श्रेणी में आएगा।

हमारे देखने में यह प्रायः आता है कि स्रोत तथा लक्ष्य भाषा के ज्ञान के बावजूद कई बार अनुवाद संतोषजनक नहीं होते। किसी स्थान पर सही शब्द या संरचनाओं के प्रयोग की क्षमता निरंतर अभ्यास से ही आती है। नियमबद्ध तथा अभ्याससिद्ध होने के कारण अनुवाद को शिल्प या कौशल भी माना जा सकता है जिसे सचेत भाव से सीखना होता है। कौशल अर्जित किया जाता है और अभ्यास के द्वारा उसमें परिमार्जन आता जाता है। अनुवाद के साथ भी यही होता है।

अब आप सर्जनात्मक साहित्य के कुछ अनुवाद देखें। अनुवाद केवल एक भाषा (या भाषा-भेद) की इकाइयों का दूसरी भाषा (या भाषा भेद) की इकाइयों से प्रतिस्थापन भर नहीं है। इसमें स्रोत भाषा द्वारा अभिव्यक्त सूचनाओं तथा भावों को लक्ष्य भाषा में संप्रेषित किया जाता है। वैज्ञानिक तथ्यों या सामान्य गद्यात्मक सूचनाओं को भाषिक इकाइयों के कुशल प्रतिस्थापन द्वारा आसानी से संप्रेषित किया जा सकता है किंतु भावप्रधान रचनाओं में अर्थ के अनेक स्तर और कथन की अनेक व्यंजनाएँ होती हैं जिन्हें सीधे-सादे भाषिक प्रतिस्थापन के माध्यम से व्यक्त नहीं किया जा सकता। अनुवादक को 'परकाय प्रवेश' करना पड़ता है। अनुवाद्य कृति के रचनाकार के मानस में गहरे पैठकर उसके भावों तथा उसकी अभिव्यक्ति की अर्थच्छायाओं को समझना पड़ता है और फिर उन भावों को यथासंभव समग्र रूप से ल.भा. में अभिव्यक्त करना पड़ता है। कलाकृति की इस समझ और उसके कलात्मक संप्रेषण-दोनों के ही लिए स्वयं उसमें सर्जनात्मक प्रज्ञा का होना आवश्यक है। भाव के समुचित संप्रेषण के लिए उसे मूल रचना की ही भाँति अभिव्यक्ति की विशिष्ट भंगिमाओं को अपनाना पड़ता है। यह सब मात्र वैज्ञानिक जानकारी या कौशल से संभव नहीं है, बल्कि कला के क्षेत्र में आता है। इसे समझाने के लिए प्रायः उमर ख़य्याम की रुबाइयों के फ़िट्ज़राल्ड द्वारा किए गए अंग्रेज़ी अनुवाद (और मैथिलीशरण गुप्त, हरिवंशराय बच्चन,

केशव प्रसाद पाठक तथा सुमित्रानंदन पंत द्वारा किए गए हिंदी अनुवादों) का उदाहरण दिया जाता है। आपको हिंदी के अनुवाद संबंधी संदर्भ ग्रंथों में ये उदाहरण मिल जाएँगे। इस प्रकार के अनुवादों में जिस संवेदनशीलता तथा कलात्मक अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती है, वह अनुवाद को कला के क्षेत्र में ले आती है, भले ही वह पूर्णतः सर्जनात्मक न कर अनुकरणात्मक कला हो।

अब आपके सामने यह समस्या आ सकती है कि अनुवाद को आप विज्ञान मानें या कौशल या कला। कुछ ग़ौर करें तो देखेंगे कि अनुवाद की प्रकृति संबंधी इन मतों में कोई मौलिक विरोध नहीं है। आगे जब आप अनुवाद के क्षेत्र और प्रकारों का अध्ययन करेंगे तो आपके सामने और स्पष्ट हो जाएगा कि अनुवाद्य सामग्री अनेक प्रकार की होती है और उसी के अनुसार अनुवाद भी भिन्न-भिन्न प्रकार का हो सकता है।

वैज्ञानिक, तकनीकी तथा सामान्य सूचनापरक साहित्य का अनुवाद अभिधापरक तथ्यात्मक भाषा में सीधे-सीधे भाषिक प्रतिस्थापन के तौर पर होता है। इसमें दोनों भाषाओं की संरचना और शब्दावली का सही-सही ज्ञान काफ़ी है क्योंकि इनमें शब्दों तथा संरचनाओं के अर्थ तथा प्रयोग संदर्भ निश्चित होते हैं। इस तरह के अनुवाद को प्रकृति के अनुसार मात्र विज्ञान माना जा सकता है।

भावप्रधान या सर्जनात्मक साहित्य का अनुवाद कौशल से भी आगे जाकर विशिष्ट संवेदनशीलता और कुछ हद तक सर्जनात्मक प्रतिभा की भी अपेक्षा करता है। इस बात का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। स्रोत भाषा की सामग्री की मूल संवेदना, उसकी व्यंजनाओं तथा उसके सांस्कृतिक संदर्भों का समुचित संप्रेषण अनुवाद को कला की कोटि में ला रखता है।

17.4.2 अनुवाद का क्षेत्र

साहित्यिक कृतियों, ज्ञान, विज्ञान, व्यवसाय, व्यवहार आदि से संबद्ध सामग्री को एक भाषा (या भाषा भेद) से दूसरी भाषा (या भाषा भेद) तक पहुँचाने का नाम अनुवाद है। जिस प्रकार साहित्य, ज्ञान, विज्ञान आदि का क्षेत्र असीम है, उसी प्रकार अनुवाद का क्षेत्र भी सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता। अधिकतर मानव समुदाय बहुभाषिक होते जा रहे हैं। नई जीवन पद्धति के साथ दैनिक जीवन व्यवहार में भी अनेक नए क्षेत्र खुले हैं और बहुभाषिक मानव समूहों में उन क्षेत्रों से संबद्ध सामग्री भी एक से अधिक भाषाओं में पहुँचाना आवश्यक हो जाता है। इन क्षेत्रों में आप विज्ञापन तथा फिल्म की डबिंग, titling जैसी विधाओं को भी ले सकते हैं। विभिन्न देशों के बीच सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा आर्थिक संबंधों के विकास तथा बढ़ते हुए पर्यटन उद्योग के कारण दुभाषियों की आवश्यकता भी बहुत बढ़ गई है जो मौखिक स्तर पर अनुवाद का ही कार्य करते हैं। इन तमाम स्थितियों को देखते हुए आप अनुवाद के क्षेत्र की विशालता का सहज ही अनुमान कर सकते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख क्षेत्र इस प्रकार हैं।

सर्जनात्मक साहित्य : एक भाषा की साहित्यिक कृतियों—महाकाव्य, कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक आदि का अन्य भाषाओं में बहुत बड़े पैमाने पर अनुवाद होता रहा है और किसी समय समस्त अनुवाद कार्य में साहित्यिक अनुवाद का भाग ही सबसे अधिक रहा है। इसके माध्यम से किसी देशी या विदेशी भाषा की प्राचीन या अर्वाचीन श्रेष्ठ तथा कालजयी कृतियों का परिचय ल.भा. के पाठकों को मिल जाता है।

धार्मिक-पौराणिक साहित्य : इस प्रकार का साहित्य किसी देश या समुदाय के जीवन तथा मानसिकता का अनिवार्य हिस्सा होता है। ऐसे साहित्य का अनुवाद उसी देश की प्राचीन भाषा से आधुनिक भाषा में भी हो सकता है, जैसे भारत में वेद, पुराण, उपनिषद, गीता

आदि का संस्कृत से और जैन तथा बौद्ध धार्मिक साहित्य का प्राकृत, अपभ्रंश तथा पालि से आधुनिक भारतीय भाषाओं में हुआ है। ऐसा साहित्य एक देश की भाषा से दूसरे देश की भाषा में भी अनूदित होता है, जैसा हम बाइबिल, कुरान, तथा गीता आदि के विभिन्न विदेशी भाषाओं में अनुवाद के प्रसंग में देखते हैं।

दार्शनिक साहित्य : विभिन्न देशों के दार्शनिकों के विचारों, चिंतन तथा सिद्धांतों के परिचय के लिए दार्शनिक साहित्य का अनुवाद बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। पश्चिम में प्लेटो से लेकर आज तक का दार्शनिक साहित्य सभी प्रमुख भाषाओं में अनूदित हो चुका है। भारतीय दर्शन के प्रमुख ग्रंथों का भी भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में अनुवाद उपलब्ध है।

सामज विज्ञान संबंधी साहित्य : इसके अंतर्गत समाज विज्ञान, राजनीति विज्ञान, इतिहास, भूगोल राजनीति, अर्थशास्त्र इत्यादि से संबद्ध साहित्य आ जाता है। इन्हें हम कुल मिलाकर वाड़्मय कहेंगे।

शोध सामग्री : विभिन्न क्षेत्रों में चल रहे शोध कार्य की जानकारी तथा उससे प्राप्त परिणामों की जानकारी का प्रसार अनुवाद के माध्यम से होता है।

पत्रकारिता : समाचार एजेंसियों द्वारा किसी अन्य भाषा में उपलब्ध कराई गई सामग्री को अपनी भाषा में प्रस्तुत करने के लिए पत्रकार अनुवाद का सहारा लेते हैं। दुर्भाग्यवश हिंदी भाषा के समाचार-पत्रों को तो लगभग पूरी तरह अनुवाद पर निर्भर रहना पड़ता है। समाचारों के अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाएँ अन्य भाषाओं के महत्वपूर्ण लेखों, 'फ़ीचर्स' तथा अन्य सामग्री का अनुवाद भी प्रस्तुत किया करती हैं।

कार्यालयी कामकाज तथा प्रशासन संबंधी सामग्री : बहुभाषी समाजों में राजकार्य तथा प्रशासन में एक से अधिक भाषाओं का उपयोग होता है। भारतीय संसद, विधान सभाओं तथा विधान परिषदों में भी प्रायः एक से अधिक भाषाएँ प्रयुक्त होती हैं। ऐसे में सदस्यों के भाषण, प्रस्ताव, विचार-विमर्श आदि अनुवाद के माध्यम से ही पूरे सदन तक पहुँचते हैं। प्रशासकीय क्षेत्रों में भी नियमावली, सूचनाएँ, पत्राचार, परिपत्र, ज्ञापन, अदालती कार्यवाही, फ़ैसले आदि प्रायः पहले एक भाषा में लिखे जाते हैं और अन्य भाषाओं में उनका अनुवाद भी उपलब्ध कराया जाता है।

व्यापार-व्यवसाय संबंधी समझौते तथा पत्राचार : ऐसे समझौते तथा संबंध जब दो भिन्न भाषाएँ बोलने वाले समूहों या प्रतिष्ठानों के बीच होते हैं तब उनकी लिखा-पढ़ी प्रायः द्वैभाषिक होती है और उसमें अनुवाद का ही सहारा लिया जाता है।

इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यम : आज इस क्षेत्र में अनुवाद का महत्व तेज़ी से बढ़ता जा रहा है। संचार क्षेत्र के विस्तार के साथ एक से दूसरी भाषा में फिल्मों तथा टेलीविज़न सीरियलों की 'डबिंग', या मूल साउंड ट्रैक के साथ दूसरी भाषा में 'सब टाइटिल' देने का प्रचलन बहुत बढ़ गया है। जहाँ एक फ़िल्म के दो या अधिक भाषाओं के संस्करण बनते हैं, वहाँ एक भाषा के संवाद दूसरी भाषा में अनूदित होते ही हैं। टेलीविज़न तथा रेडियो पत्रकारिता भी अनुवाद का बड़े पैमाने पर उपयोग करती है।

17.4.3 अनुवाद के प्रकार

अनुवाद के क्षेत्र पर हुई चर्चा के आधार पर आप अनुवाद के विभिन्न प्रकारों का भी कुछ अनुमान लगा सकते हैं। अनुवाद्य सामग्री की विषय-वस्तु तथा प्रकृति और अनुवाद के उद्देश्य तथा प्रणाली के आधार पर ही यह निश्चित होता है कि अनुवाद कि प्रकार का है।

(क) **मानस अनुवाद :** यह परंपरा से चला आता अनुवाद प्रकार है जिसमें कोई मानव स्रो.भा. की सामग्री को पढ़ या सुनकर उसके अर्थ का विश्लेषण करके, समुचित पर्यायों तथा प्रस्तुति की शैली का चयन करके ल.भा. में उसे प्रस्तुत करता है। यह कार्य एक व्यक्ति अकेले भी कर सकता है और कई व्यक्तियों का समूह भी इसे कर सकता है। इस प्रकार के अनुवादक मंडल का गठन प्रायः वैज्ञानिक तथा तकनीकी विषयों के अनुवाद के लिए होता है। ऐसे अनुवादक मंडल कुछ तो विषय के ज्ञाता होते हैं और कुछ भाषा में निष्णात व्यक्ति।

(ख) **मशीन अनुवाद :** यह अनुवाद का अपेक्षाकृत नया प्रकार है जिसमें अनुवाद का काम कंप्यूटर करता है जिसे इस कार्य के लिए विशेष रूप से प्रोग्राम किया जाता है। अवश्य ही इस प्रकार के अनुवाद की अपनी सीमाएँ होती हैं।

अनूदित पाठ के आकार की दृष्टि से अनुवाद का वर्गीकरण भी किया जाता है। इस वर्गीकरण के अनुसार अनुवाद दो प्रकार का हो सकता है।

भाषाकेंद्रित अनुवाद : अनुवाद दो भाषाओं के बीच का संपर्क सूत्र है। आप अनुभाग 17.1 में देख चुके हैं। कि भाषाविज्ञान तथा अनुवाद का संबंध कितना गहरा है और अनुवाद की क्रिया किस प्रकार भाषा के हर स्तर से सबंधित है। भाषा की संरचना, शैली और पाठ की प्रकृति के अनुसार अनुवाद कई प्रकार का हो सकता है।

आइए, हम अनुवाद के कुछ प्रमुख प्रकारों पर विचार करें।

(क) **शब्दानुवाद (Literal) :** जहाँ स्रो.भा. के हर शब्द या अभिव्यक्ति का ल.भा. में अनुवाद किया जाता है। इसे मूलनिष्ठ अनुवाद भी कहा जा सकता है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी साहित्य का इस प्रकार अनुवाद किया जा सकता है क्योंकि वह मुख्यतः अभिधापरक होता है और इसलिए स्रो.भा. की शब्दावली तथा अभिव्यक्तियों का ल.भा. की शब्दावली, अभिव्यक्तियों तथा संरचना द्वारा प्रतिस्थापन कर देना पर्याप्त होता है।

(ख) **भावानुवाद :** इस प्रकार के अनुवाद में मूल भाषा की अभिव्यक्ति के अनुसरण पर बल नहीं होता, बल्कि उसके निहित आशय को स्पष्ट करने की चेष्टा की जाती है। मूल सामग्री के ढाँचे से स्वतंत्र होने के कारण यह अनुवाद ल.भा. की दृष्टि से अधिक सहज तथा स्वाभाविक भी होता है, किंतु इसमें सावधानी न रखी जाए तो मूल कृति की विशिष्टता के लुप्त हो जाने का भय रहता है।

(ग) **रूपांतरण :** इस प्रकार का अनुवाद अधिकतर कथा-साहित्य या नाटक के क्षेत्र में देखने में आता है। इसमें अनुवादक मूल कृति के परिवेश, चरित्रों आदि को बदलकर दूसरे देश-काल में ढाल लेता है। उदाहरण के लिए आप शेक्सपीयर के नाटक The Merchant of Venice का भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा किया गया अनुवाद 'दुर्लभ बंधु' देख सकते हैं, जिसमें एंटोनियो, बसानियो, शायलॉक आदि को क्रमशः अनंत, वसंत और शैलाक्ष नाम दे दिए गए हैं और नाटक की पृष्ठभूमि इटली के वेनिस शहर के स्थान पर भारत का काशी नगर है।

(घ) **छायानुवाद :** यह भी रूपांतरण का ही एक प्रकार है। रचनाकार, किसी अन्य भाषा की कृति से प्रभावित होकर उसका अनुवाद नहीं करते। बल्कि उसी कृति के आधार पर उसी कथ्य को संप्रेषित करने के लिए स्वतंत्र कृति रच देते हैं। ऐसी कृतियों में प्रायः बिंब विधान, प्रस्तुतीकरण, कथा साहित्य के पात्र और उनके चरित्र भी मूल कृति के प्रतिबिंब से ही होते हैं। उदाहरण के लिए आप

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'चित्रलेखा' को ले सकते हैं जो अनोतोले फ्रांस के उपन्यास 'थाया' पर आधारित है।

(ड.) **सारानुवाद :** इस प्रकार के अनुवाद में अनुवादक अपने अनुवाद-कार्य के दौरान ही मूल का सार करके उसका ल.भा. में रूपांतरण करता जाता है। कई पत्रिकाओं में आपने प्रसिद्ध विदेशी उपन्यासों के इस प्रकार के सार-संक्षेप देखे भी होंगे।

(च) **टीकापरक अनुवाद :** इस प्रकार के अनुवाद में मूल सामग्री के अनुवाद के साथ ही उसकी व्याख्या भी की जाती है। आपने श्रीमद्भगवद् गीता के इस प्रकार के व्याख्यानुवाद देखे होंगे।

(छ) **संप्रेषण केंद्रित अनुवाद :** कई बार अनुवाद ऐसे पाठकों के लिए किया जाता है जिनकी शैक्षिक योग्यता या बौद्धिक स्तर मूल सामग्री को समझने जैसा नहीं होता। उस दशा में मूल सामग्री के स्तर से हटकर अधिक सरल भाषा-शैली में उसका अनुवाद कर दिया जाता है। हिंदी में बच्चों के पढ़ने के उद्देश्य से अंग्रेज़ी क्लासिक ग्रंथों के जो अनुवाद किए गए हैं, वे इसी श्रेणी में आते हैं।

इस तरह भिन्न संदर्भों और भिन्न प्रकार्यों के आधार पर अनुवाद के अनेक प्रकार हो सकते हैं। जैसे : **आशु अनुवाद** (जो दुभाषिया कर्म के लिए आवश्यक है), **अनुकूलन** (मुख्यतः शब्दों के संदर्भ में, जहाँ स्रो.भा. के शब्द को लेकर ल.भा. की ध्वनियों में ढाल लिया जाता है, जैसे हॉस्पिटल अस्पताल आदि), **परोक्ष अनुवाद** (मूल भाषा से किसी अन्य भाषा में किए गए गए अनुवाद का अनुवाद), **पुनरनुवाद** (ल.भा. में किए गए अनुवाद का फिर से स्रो.भा. में अनुवाद) आदि।

17.4.4 अनुवाद की उपयोगिता

अनुवाद के विस्तृत क्षेत्र तथा विविध प्रकारों के अध्ययन के बाद इसकी उपयोगिता आप सहज ही समझ सकते हैं। अधिक विस्तार में जाकर बातों को दुहराने के स्थान पर हम कुछ उन संदर्भों की गिनती कर सकते हैं जिनमें अनुवाद – मौखिक तथा लिखित – विशेष उपयोगी सिद्ध होता है :

- आज के बहुभाषी समाज में आस-पड़ोस, बाज़ार, कार्यस्थल सभी जगहों पर अन्य भाषा-भाषियों से संवाद-संपर्क के लिए।
- द्वैभाषिक संस्थानों में पठन-पाठन के लिए।
- विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञानों में अन्य भाषाओं में किए गए शोध-कार्य तथा अन्य सामग्री का लाभ उठाकर ल.भा. का क्षेत्र विस्तृत करने के लिए
- द्वैभाषिक/बहुभाषिक कोश निर्माण में
- अन्य भाषाओं के साहित्य का परिचय प्राप्त करने और विभिन्न भाषाओं तथा उनके साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए
- अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधी में
- प्रशासन तथा दफ़्तरी काम-काज में
- व्यवसाय-वाणिज्य के क्षेत्रों में
- पत्रकारिता में
- मनोरंजन के क्षेत्र में

इस प्रकार के अन्य भी अनेक संदर्भ हैं जिनमें अनुवाद की ज़रूरत पड़ती है। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि जीवन तथा व्यवहार के हर क्षेत्र में अनुवाद की उपयोगिता तथा महत्व असंदिग्ध है।

वहारिक उपयोग के लिए इन संदर्भों के अतिरिक्त अनुवाद ल.भा. के विकास में भी यंत सहायक होता है और अनुवादों के माध्यम से ल.भा. अधिकाधिक समृद्ध होती है :

सामान्य क्रम में भाषा में मूलतः अनुपलब्ध सामग्री अनुवाद के माध्यम से उपलब्ध हो जाती है। इससे भाषा की क्षमता और समृद्धि बढ़ती है।

स्रो.भा के कई शब्दों, मुहावरों तथा अभिव्यक्तियों के लिए ल.भा. में पहले से कोई प्रतिशब्द या अभिव्यक्ति नहीं होती। ऐसे में या तो पहले से उपस्थित शब्दों/अभिव्यक्तियों का अर्थ-विस्तार कर दिया जाता है या नए शब्द, अभिव्यक्तियाँ आदि गढ़ ली जाती हैं। दोनों ही स्थितियों में ल.भा. की क्षमता और क्षेत्र का विस्तार होता है।

.5 अनुवाद की प्रक्रिया

ाद में आप देखते हैं। कि स्रोत भाषा की शब्दावली, संरचनाओं तथा अभिव्यक्तियों को भाषा की शब्दावली, संरचनाओं तथा अभिव्यक्तियों द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया जाता ोर इस प्रकार स्रो.भा. के संदेश का ल.भा. में संप्रेषण किया जाता है। इस प्रतिस्थापन प्रक्रिया में बाह्य अभिव्यक्त के स्तर पर फेर-बदल होता है किंतु अर्थ के स्तर पर किसी ाकार का अंतर अनुवाद को दूषित कर देगा। आर्थी स्तर पर सममूल्यता ही अनुवाद का है, इसलिए अनुवाद की प्रक्रिया मुख्य रूप से अर्थ के ग्रहण तथा संप्रेषण की प्रक्रिया

ादक द्वारा स्रो.भा. के पाठ को पढ़कर उसका अनुवाद प्रस्तुत करने के बीच इस या के जो विभिन्न चरण होते हैं, उन्हें लेकर भाषा वैज्ञानिकों ने काफी विचार-विमर्श है जिसके विषय में आपको संदर्भ ग्रंथों से जानकारी मिल सकती है। सार रूप में हम प्रक्रिया को तीन चरणों में विभक्त कर सकते हैं :

पाठ-विश्लेषण : अनुवादक स्रो.भा. के पाठ को ध्यान से पढ़कर उसका सामान्य अर्थ ग्रहण करने की चेष्टा करता है। जहाँ पाठ के संपूर्ण आशय के ग्रहण के लिए मात्र वाच्यार्थ पर्याप्त नहीं होता, वहाँ अनुवादक गहराई में जाकर पाठ का विश्लेषण करता है। आप जानते हैं कि कुछ खास ध्वनियों, वर्तनी, शब्दों, शब्दरूपों, मुहावरों, विशिष्ट अभिव्यक्तियों या वाक्य संरचनाओं के माध्यम से रचनाकार पाठ में विशिष्ट अर्थ भरता है जो मात्र बाह्य संरचना के स्तर पर नहीं समझे जा सकते। इस प्रकार के विशिष्ट अर्थ का द्योतन लाक्षणिक तथा व्यंजक प्रयोगों के द्वारा भी हो सकता है और वाक्य की संरचना के माध्यम से भी। अनुवाद और भाषाविज्ञान के संबंध को लेकर हुई चर्चा (अनुभाग 17.1), विशेषकर वाक्य विज्ञान संबंधी चर्चा में आपको ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे।

कई स्थानों पर वाक्य के बाह्य स्तर से उसका आशय स्पष्ट नहीं होता। ऐसा द्वयर्थक शब्दों के प्रयोग के कारण भी हो सकता है या कथन की अस्पष्टता के कारण भी। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्य लें :

(क) **यह हुसैन का चित्र है।**

द्वयर्थक शब्दों का प्रयोग न होने के बावजूद इस वाक्य के तीन भिन्न अर्थ हो सकते हैं :

(i) इस चित्र में हुसैन की आकृति अंकित है।

(ii) यह चित्र (माधुरी का) हुसैन ने अंकित किया है।

(iii) यह चित्र हुसैन की संपत्ति है।

भाषा तथा संदर्भ (पाठ की विधा, सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि आदि) के विश्लेषण के द्वारा अनुवादक पाठ की गहनता में पैठकर, इस प्रकार के प्रयोगों का अर्थ समझकर लेखक द्वारा अभीष्ट संदेश का ग्रहण करता है। इस क्रिया को

decoding (विकोडीकरण) कहा जाता है। संदेश को इस प्रकार समझकर ही उसका संप्रेषण संभव है। जहाँ स्रो.भा. का पाठ पूर्णतः अभिधापरक होता है और ल.भा. में उसके निश्चित पर्याय उपलब्ध होते हैं, वहाँ अनुवाद-प्रक्रिया का यह चरण आवश्यक नहीं होता। ऐसा शब्दानुवाद में संभव है।

(ii) **अंतरण या संक्रमण :** विश्लेषण के द्वारा अनुवाद्य पाठ के संपूर्ण अर्थग्रहण के बाद अनुवादक उस सामग्री का ल.भा. में प्रतिस्थापन करने की चेष्टा करता है। इस चेष्टा के अंतर्गत वह ल.भा. में स्रो.भा. के शब्दों, मुहावरों, वाक्यों आदि के समुचित पर्याय ढूँढ़ता है। वह ल.भा. में शैली तथा शिल्प के स्तर पर भी ऐसी अभिव्यक्तियों की तलाश करता है जो स्रो.भा. की शैली के निकट हों और उससे अभिहित आशय का वहन कर सकें। इसके लिए अनुवादक को भाषा ही नहीं, उसकी तमाम बारीकियों और गहराइयों की भी जानकारी होनी चाहिए। साथ ही उसे पाठ की विषयवस्तु तथा पृष्ठभूमि का भी ज्ञान हाना चाहिए। इस चरण में अनुवाद कर्म केवल मशीनी भाषांतरण से आगे जाकर सर्जनात्मक प्रतिभा की अपेक्षा करता है जिसके बल पर अनुवादक मूल कृति के अर्थ की गहराइयों में पैठकर ल.भा. में उसके समतुल्य सामग्री या संरचना का अभाव हो, वहाँ अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के बल पर ही वह उपयुक्त विकल्प का चुनाव करता है या नई सामग्री गढ़ता है। विशेषकर सर्जनात्मक साहित्य के अनुवाद में इस चरण का बड़ा महत्व है।

(iii) **पुनर्गठन :** यदि पाठ-विश्लेषण का चरण decoding था तो इस चरण को re-encoding (पुनः कोडीकरण) कहा जा सकता है। संक्रमण वाले चरण में अनुवादक भाषा प्रतिस्थापन के जिन विकल्पों को चुनता है, इस चरण में उन्हीं को वह व्यवस्थित रूप से भाषाबद्ध करता है। यहाँ उसे ध्यान रखना होता है कि स्रो.भा. के पाठ की अर्थछवियों तथा उद्दिष्ट प्रभाव की रक्षा करते हुए भी वह विषयानुरूप ऐसी शब्दावली, पदक्रम, भाषा संरचना, विशिष्ट अभिव्यक्तियों तथा शैली का प्रयोग करे जो ल.भा. में सहज तथा स्वाभाविक प्रतीत हों - किसी अन्य भाषा की छाया से मुक्त इस स्वाभाविकता की रक्षा के लिए कई बार उसे स्रो.भा. वाली संरचना या अभिव्यक्ति के स्वरूप में भी फेर-बदल करना पड़ता है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी वाक्य (क) के हिंदी अनुवाद में कर्मवाच्य (पैसिव) संरचना (क-i) के स्थान पर कर्तृवाच्य संरचना (क-ii) अधिक सहज प्रतीत होती है और इसमें विशेषण उपवाक्य की स्थिति भी हिंदी की प्रकृति के अनुरूप होने के कारण अधिक सहज तथा स्वाभाविक है :

अंग्रेज़ी : (क) The thief who had stolen Mrs. Sharma's jewelry, was caught and beaten up by the neighbours.

हिंदी : (क-i) वह चोर, जिसने श्रीमती शर्मा के गहने चुराए थे, पड़ोसियों द्वारा पकड़ा और पीटा गया।

(क-ii) जिस चोर ने श्रीमती शर्मा के गहने चुराए थे, उसे पड़ोसियों ने पकड़कर पीट डाला।

इस प्रकार इस चरण में अनुवाद पुनःसृजन की सीमा में प्रवेश कर जाता है।

17.6 हिंदी में अनुवाद से संबद्ध समस्याएँ तथा निदान

अनुवाद की इतनी चर्चा के बाद अनुवाद से जुड़ी हुई समस्याओं का स्वरूप आपके सामने बहुत कुछ स्पष्ट हो चला होगा। आख़िर अनुवाद को असंभव क्यों माना जाता है? वह इसलिए कि स्रो.भा. तथा ल.भा. में ध्वनि, शब्द, रूप रचना, वाक्य संरचना, अर्थ की

रचना, विशिष्ट अभिव्यक्तियों आदि विभिन्न भाषिक स्तरों पर प्रायः अनेक अंतर होते हैं िनके कारण ल.भा. में भाषिक स्तर, अर्थात् अभिव्यक्ति के स्तर पर समतुल्यता का निर्वाह हुत कठिन हो उठता है। इसके अतिरिक्त पाठ की विषय-वस्तु की दृष्टि से देखें तो दोनों षाओं से जुड़े समाजों में सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टि से इतना अंतर हो सकता है कि । सांस्कृतिक व्यंजनाएँ स्रो.भा. की कुछ अभिव्यक्तियों में सहज रूप से मिलती हैं, वे .भा. में मात्र शब्दानुवाद के माध्यम से आ ही नहीं सकतीं। कई बार मूल पाठ में ल्लिखित सांस्कृतिक-सामाजिक आचारों या स्थितियों के समतुल्य आचार या स्थिति .भा. के समाज में होते ही नहीं, इसलिए उनसे संबद्ध अभिव्यक्ति का चुनाव भी समस्या ा कर सकता है। इस प्रकार अनुवाद से संबद्ध समस्याएँ : (1) भाषिक (रचना) तथा (2) माजिक-सांस्कृतिक (अर्थ) दोनों ही स्तरों पर खड़ी हो सकती हैं।

'.6.1 भाषिक स्तर की समस्याएँ

षिक स्तर पर अनुवाद की समस्याओं पर विचार करने से पहले एक बार फिर अनुवाद ा भाषाविज्ञान से संबद्ध सामग्री को पलटकर देखिए। भाषाविज्ञान की विभिन्न शाखाएँ षा के भिन्न-भिन्न स्तरों से जुड़ी हैं और उनकी चर्चा में अनुवाद के दौरान इन स्तरों पर ने वाली कुछ समस्याओं के संकेत भी आपको मिलेंगे।

नी : अनुवाद और ध्वनि विज्ञान के संबंध की चर्चा के दौरान आप देख चुके हैं कि कुछ थतियों में स्रो.भा. के शब्दों को ल.भा. में ज्यों का त्यों लेना आवश्यक है। ऐसी मुख्य थतियाँ हैं :

ः) व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ (जिनमें व्यक्ति, स्थान, भौगोलिक स्थल-देश नदी, पर्वत आदि, भाषा, ग्रंथ, संस्थान, भवन, व्यापारिक नाम आदि आ जाते है);

ı) तकनीकी, वैज्ञानिक या दार्शनिक क्षेत्रों में प्रयुक्त कुछ पारिभाषिक शब्द;

) स्रो.भा. की विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से संबद्ध शब्दावली जिसके लिए ल.भा. में प्रतिशब्द उपलब्ध न हों।

ो शब्दों का अनुवाद न करके लिप्यंतरण ही करना पड़ता है। ऐसे में वर्तनी संबंधी कुछ नस्याएँ उठ खड़ी होती हैं।

ब्दावली : हमारे सामान्य जीवन तथा परिवेश से संबद्ध शब्दावली हर भाषा में मिलती है। ुष्य, लड़का, लड़की, घर, पेड़, पौधे, पानी, नदी, पहाड़, शहर, दूध, किताब, कपड़ा आदि पर्याय लगभग हर भाषा में मिल जाएँगे। स्पष्ट ही, ऐसे प्रसंगों में शब्दावली किसी प्रकार समस्या खड़ी नहीं करती। शब्दावली संबंधी समस्याएँ मुख्यतः निम्नलिखित क्षेत्रों में नरती हैं :

) **ज्ञान-विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा नवीन अनुसंधान संबंधी साहित्य :** यदि ल.भा. के क्षेत्र में ज्ञान-विज्ञान की किसी विशेष शाखा का विकास न हुआ हो, या उससे संबद्ध लेखन की परंपरा न रही हो तो उससे जुड़ी शब्दावली का मिलना कठिन है। किसी क्षेत्र में नवीन अध्ययन-अनुसंधान हो रहा हो या नई अवधारणाएँ उभर रही हों, तो उनसे संबद्ध शब्दावली भी पहले से उपलब्ध नहीं होती। ऐसी स्थिति में अनुवादक के सामने दो विकल्प होते हैं :

  (क) **नए शब्द का निर्माण :** इस क्षेत्र में हिंदी में काफ़ी काम हुआ है और हो रहा है। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के अंतर्गत तकनीकी तथा वैज्ञानिक शब्दावली आयोग के तत्वावधान में शब्दावली निर्माण का काम चल रहा है। अनुवादक उनके द्वारा प्रस्तुत शब्दावली कोशों का प्रयोग कर सकते हैं।

(ख) **स्रो.भा. के शब्द का लिप्यंतरण :** आजकल भाषा की शुद्धता पर अतिरिक्त बल न देते हुए ज़रूरत के अनुसार स्रो.भा. के शब्दों को भी अपना लिया जाता है, जैसे 'जीन' (Gene), 'निएंडरथाल' मानव (Neanderthal man) आदि।

(ii) **स्रो.भा. के क्षेत्र से आगंत दैनिक जीवन की ऐसी वस्तुओं के नाम जो ल.भा. के क्षेत्र में पहले उपलब्ध नहीं थीं :** भोज्य पदार्थ, परिधान, अस्त्र-शस्त्र, वाहन तथा दैनिक व्यवहार की ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं जिनके नाम या तो :

(क) लगभग मूल उच्चारण सहित ल.भा. में ले लिए जाते हैं, जैसे : हलवा, इडली, गाउन, टी शर्ट, पेस्ट्री, मोटर, बस, सिनेमा, क्रिकेट, फ़ुटबॉल आदि; या

(ख) उनकी ध्वनियों को ल.भा. की प्रकृति के अनुसार ढाल लिया जाता है, जैसे टमाटर, अस्पताल आदि।

(iii) **स्रो.भा. के क्षेत्र विशेष से जुड़ी स्थितियों के सूचक शब्द :** स्रो.भा. के क्षेत्र में आचार-व्यवहार, सामाजिक रीति-नीति, दैनिक कृत्य आदि से जुड़ी ऐसी अनेक बातें होती हैं जो ल.भा. के क्षेत्र में नहीं मिलेंगी। उदाहरण के लिए हिंदी क्षेत्र में मध्यम पुरुष के सम्मान सूचक संबोधन 'आप' के लिए अंग्रेज़ी में कोई शब्द नही है, न 'गौना', 'कोहबर' आदि जैसी रस्मों के लिए कोई शब्द है। ऐसी स्थिति में अनुवादक के सामने यही विकल्प रहता है कि स्रो.भा. के शब्द को लिप्यंतरित करके ल.भा. में अपना ले और विशेष टिप्पणी द्वारा उस शब्द के अर्थ तथा संदर्भ को समझा दे ताकि पाठक को संपूर्ण अनुवाद के अर्थग्रहण में आसानी हो।

(iv) **अनेकार्थक शब्द या प्रसंगानुसार विशिष्ट अर्थ देने वाले शब्द :** द्वयर्थक या अनेकार्थक शब्दों के अनुवाद में अनुवादक को बड़ी सावधानी से पृष्ठभूमि तथा संदर्भों का अध्ययन करके अर्थ निकालना चाहिए। प्रख्यात साहित्यकार धर्मवीर भारती के देहांत पर अंग्रेज़ी अख़बार 'टाइम्स ऑफ इंडिया' (दिनांक 5.9.97) में जो स्मरण लेख निकला था, उसमें उनके शोध-प्रबंध का नाम Siddha Sahitya (सिद्ध साहित्य) दिया गया था। लेखक ने और भी कौशल दिखलाते हुए कोष्ठक में इस शीर्षक का अनुवाद भी दे दिया – 'accamplished literature'। ठीक है, सिद्ध' एक विशेषण भी है जिसका अंग्रेज़ी प्रतिशब्द 'accomplished' हो सकता है। किंतु हिंदी साहित्य और धर्मवीर भारती के लेखन की ज़रा-सी भी जानकारी रखने वाला व्यक्ति इतना समझ जाएगा कि उक्त शोध प्रबंध में 'सिद्ध' 'नाथ' की ही भाँति एक संप्रदाय का सूचक है।

(v) **सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ और उनसे जुड़ी शब्दावली :** यह समस्या शायद भारतीय साहित्य के अंग्रेज़ी आदि पश्चिमी भाषाओं में अनुवाद के क्रम में अधिक प्रबल हो क्योंकि यहाँ कि रीति-नीति, आचार (जन्म-मरण, विवाह, पूजा आदि संस्कार), पहनावे, धार्मिक विश्वास, अंधविश्वास, नाते-रिश्ते, शिष्टाचार आदि से जुड़ी अनेक बातें ऐसी हैं जो पश्चिम के लिए बिलकुल ही अपरिचित, बल्कि अकल्पनीय हैं। हमारे जन-जीवन, शिक्षा, व्यवहार आदि क्षेत्रों पर प्रकाशनों तथा अन्य संचार माध्यमों के द्वारा इंगलैंड तथा अमेरिका के जीवन तथा संस्कृति का इतना प्रभाव पड़ रहा है कि बहुत सारी स्थितियाँ तथा संकल्पनाएँ हमारे लिए परिचित हो चली हैं और उनके लिए हिंदी में या तो शब्द बढ़ लिए गए हैं (जैसे homeymoom → मधुचंद्र, Good morning → सुप्रभात) या अंग्रेज़ी के ही शब्द अपना लिए गए हैं। किंतु यहाँ भी शब्द मात्र पूरा अर्थ देने में समर्थ नहीं होंगे।

अनुवादक को टिप्पणियों के माध्यम से सामाजिक-सांस्कृतिक संकल्पनाओं को स्पष्ट करना ही होगा।

वाक्य रचना : अनुवाद और वाक्य विज्ञान की चर्चा के दौरान इस प्रकार की कुछ समस्याएँ हमारे सामने आई थीं। अनुवाद में वाक्य रचना के स्तर पर समस्याओं के मुख्य कारण हैं :

(क) दो भाषाओं की वाक्य संरचनागत असमानताएँ

(ख) दो भाषाओं की संरचनाओं का भ्रामक साम्य

रास्ता खोलता है।अंग्रेज़ी से हिंदी में अनुवाद के दौरान प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कथन संबंधी समस्याएँ भी खड़ी हो सकती हैं। अंग्रेज़ी में अप्रत्यक्ष कथन में, कथित वाक्य में वक्ता का उल्लेख अन्य पुरुष में आना आवश्यक है और मुख्य वाक्य तथा कथित वाक्य में एक ही काल (भूतकाल) का प्रयोग होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए :

अंग्रेज़ी : प्रत्यक्ष कथन	:	He said. "I will go."
अप्रत्यक्ष कथन	:	He said that he would go.

हिंदी में यह आवश्यक नहीं है। ये उदाहरण देखें :

हिंदी : प्रत्यक्ष कथन	:	उसने कहा, "मैं जाऊँगा।"
अप्रत्यक्ष कथन	:	उसने कहा कि मैं जाऊँगा।
		उसने कहा कि वह जाएगा।
		(स्वयं या और कोई)

हिंदी अप्रत्यक्ष कथन के दूसरे वाक्य में अंग्रेज़ी संरचना का प्रभाव है। अंग्रेज़ी में काल के कारण भ्रम होता है, हिंदी में पुरुष के कारण।

शैली और मुहावरेदार प्रयोग

(अ) **शैली :** शैली भाषा का, विशेषकर साहित्यिक भाषा का विशिष्ट स्वरूप है। कोई भी बात कई प्रकार से कही जा सकती है और ये कई प्रकार ही उस बात को अभिव्यक्त करने की विभिन्न शैलियाँ हैं। अभिव्यक्ति के क्षेत्र (औपचारिक, अनौपचारिक), विषय (सामाजिक विज्ञान या प्राकृतिक विज्ञान), विधा (कहानी, उपन्यास, गीतिकाव्य, महाकाव्य, नाटक, निबंध) आदि के अनुसार भी कथन की शैली में अंतर आ जाता है। विज्ञान संबंधी विषयों में महत्व इस बात का होता है कि क्या कहा जा रहा है (किंतु इस सीधे-सादे कथन की भी एक अभिधापरक शैली होती है)। साहित्य में केवल कथ्य का ही नहीं, बल्कि इस बात का भी महत्व होता है कि वह कैसे कहा जा रहा है। लेखक/वक्ता अपने उद्देश्य या कथन के प्रसंग के अनुसार भाषा में ध्वनि, शब्दावली, वाक्य संरचना आदि के अनेक विकल्पों -में से किसी एक को चुनता है जो उसके कथ्य को सबसे अच्छी तरह स्पष्ट कर सके। अनुवाद में शैली से संबद्ध कुछ मुख्य समस्याएँ इस प्रकार हैं :

(क) **ल.भा. में स्रो.भा. के समतुल्य शैली का उपलब्ध न होना :** इसके पीछे भाषागत कारण भी हो सकते हैं और संस्कृतिगत भी। उदाहरण के लिए हिंदी में आदरसूचक सर्वनाम तथा क्रियाओं का प्रयोग होता है, किंतु अंग्रेज़ी में 'तुम' तथा 'आप' सर्वनामों और 'बैठो' तथा 'बैठिए' क्रियाओं के अंतर को स्पष्ट करन वाले भाषिक प्रयोग नहीं हैं। इन दोनों ही विकल्पों के लिए अंग्रेज़ी में एक ही विकल्प क्रमशः you तथा sit का प्रयोग हो सकता है।

(ख) **शैलीगत बहुभाषिकता :** कई बार स्रो.भा. की किसी एक कृति में भाषा या बोली के विभिन्न रूपों का सार्थक प्रयोग होता है। यदि ल.भा. में

संबद्ध विकल्प उस प्रकार और उन्हीं अर्थों में उपलब्ध न हों, तो शैली के स्तर पर समस्या खड़ी हो जाती है। कुछ उदाहरण लीजिए।

विशाखदत्त के संस्कृत नाटक 'मुद्राराक्षस' के अनुवाद में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने एक स्थान पर चाणक्य के मुख से कहलाया है – 'यह नंद का राज नहीं है, चंद्रगुप्त का राज्य है।' स्वयं भारतेंदु ने टिप्पणी में यह स्पष्ट किया है कि नंद के प्रसंग में "तुच्छता प्रकट करने के लिए राज्य का अपभ्रंश राज लिखा गया है।" इस प्रकार के हिंदी वाक्य के अंग्रेज़ी अनुवाद में समस्या उत्पन्न हो सकती है। इसी प्रकार किसी प्रसंग में 'ब्राह्मण', 'बाँमन' या 'बिरहमन' के प्रयोग की जो विभिन्न व्यंजनाएँ हो सकती हैं, वे किसी भिन्न संस्कृति से संबद्ध भाषा में मिलना कठिन है।

(आ) **लोकोक्तियाँ तथा मुहावरे** : अनुवाद की शैली संबंधी समस्याओं में लोकोक्तियों तथा मुहावरों से संबद्ध समस्याएँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। लोकोक्तियाँ तथा मुहावरे वस्तुतः विशिष्ट प्रकार की अभिव्यक्तियाँ हैं जिनका आशय शब्दों के अभिधार्थ मात्र से नहीं समझा जा सकता। लोकोक्तियाँ ऐसी उक्तियाँ हैं जो शब्दार्थ से आगे जाकर कुछ ख़ास स्थितियों की व्यंजना करती हैं। ये अपने क्षेत्र की संस्कृति और परंपरा से जुड़ी होती हैं। यह सही है कि इनसे अभिहित सत्य सार्वभौम होता है, किंतु कई लोकोक्तियाँ अभिव्यक्ति के स्तर पर ऐसे बिंब बनाती हैं जो केवल उनके क्षेत्र के जीवन व्यवहार से जुड़े होते हैं। उदाहरण के लिए :

- गंगा गए गंगादास, जमना गए जमनादास।
- रानी रूठेंगी, अपना सुहाग लेंगी।
- कुम्हार का कुम्हारी पर बस नहीं चलता तो गधे के कान उमेठता है।

ऐसी लोकोक्तियाँ भारतीय संदर्भ में ही समझी जा सकती हैं।

यदि स्रो.भा. तथा ल.भा. की पृष्ठभूमि और संस्कृति भिन्न हो, तो अभिव्यक्ति का शब्दानुवाद समझना लक्ष्य भाषा-भाषी के लिए मुश्किल हो सकता है। जैसे Achiles'heel का अनुवाद 'एकिलीज़ एड़ी' या dead as a dodo का अनुवाद 'डोडो की तरह मुर्दा' कर दिया जाए तो सामान्य हिंदी भाषी के आगे इनका आशय स्पष्ट नहीं होगा। ऐसी स्थिति में इनका आशय सामान्य भाषा में लिख देना ही उपयुक्त होगा। Achiles'heel का अनुवाद 'कमज़ोरी' (Money is John's Achiles'heel' → पैसा जॉनकी कमज़ोरी है) किया जा सकता है। Dead as a dodo का अनुवाद प्रसंगानुसार 'विलुप्त' किया जा सकता है।

इस बात का ध्यान रखें कि मुहावरे तथा लोकोक्तियों अभिव्यक्ति को स्पष्ट तथा सबल बनाने का ही साधन हैं। अनुवाद में समतुल्यता की रक्षा करने के लिए यथासंभव :

(अ) ल.भा. में ऐसी अभिव्यक्तियों की तलाश करनी चाहिए जो शब्दार्थ तथा आशध – दोनों में स्रो.भा. के समान है।

(आ) पिछला विकल्प संभव न हो तो ल.भा. में ऐसी अभिव्यक्तियों की तलाश करें जिनका शब्दार्थ भले ही भिन्न हो, लक्ष्यार्थ या आशय स्रो.भा. की अभिव्यक्ति के ही समान हो।

(इ) यह भी संभव न हो तो स्रो.भा. की अभिव्यक्ति का शब्दानुवाद करके देखें। यदि वह ल.भा. में सहज तथा बोधगम्य होता है तो भाषा को एक नई अभिव्यक्ति मिल जाएगी।

ई) अगर ऊपर का कोई भी विकल्प अपेक्षित प्रभाव देने में समर्थ न हो या ल.भा. में उपयुक्त न लगे तो उस मुहावरे या लोकोक्ति के आशय को सहज भाषा में प्रस्तुत कर देना ही सबसे सही कदम होगा।

17.7 साहित्यिक अनुवाद

अब तक की चर्चा से आपके सामने अनुवाद के क्रम में बल्कि साहित्यिक अनुवाद के क्रम में आने वाली समस्याओं का स्वरूप भी स्पष्ट हो गया होगा। वैसे तो भाषा के विभिन्न स्तरों और शैली के स्तर पर उठने वाली समस्याएँ साहित्यिक अनुवाद की भी प्रमुख समस्याएँ हैं, किंतु साहित्य की विभिन्न विधाओं के अनुवाद की भी अपनी अलग समस्याएँ होती हैं। आइए हम इनकी समस्याओं पर अलग-अलग विचार करें।

क) काव्य का अनुवाद

काव्य के अंतर्गत महाकाव्य, खंडकाव्य, गीतिकाव्य, तुकांत तथा अतुकांत लयबद्ध पद्य– सभी प्रकार की रचनाएँ आ जाती हैं। अनुवादक के लिए काव्यानुवाद एक बहुत ही बड़ी चुनौती है क्योंकि कविता मात्र शब्दार्थ तक सीमित नहीं होती। वह शब्दार्थ का अतिक्रमण करके बहुत कुछ संकेत के द्वारा भी कहती है। उसकी शब्दावली ही नहीं, वाक्य गठन, लय, छंद, बिंब, प्रतीक, अलंकार योजना, शैली आदि मिलकर बहुत कुछ ऐसा कह जाते हैं जो मात्र शब्दार्थ नहीं कह पाता। इसीलिए सर फिलिप सिडनी, तथा दाँते जैसे कवियों तथा सिद्धांतकारों ने काव्य का अनुवाद असंभव माना है। कविता के अनुवाद में वे सभी समस्याएँ आती हैं, जिनका पिछले अनुभागों में विवेचन हो चुका है। कविता का समग्र प्रभाव तथा सूक्ष्म अर्थ शब्दों की ध्वनि, कथन की लय, बलाघात तथा बिंब योजना के माध्यम से अभिव्यक्त होता है। कविता में किसी विशेष प्रभाव को उत्पन्न करने वाली ध्वनियों से युक्त शब्दों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए सुमित्रानंदन पंत की कविता में 'उन्मन उन्मन गुंजन' वाक्यांश अपनी ध्वनि, लय, विराम योजना, बलाघात और अलंकारों के माध्यम से एक उदास संगीतमय माहौल की सृष्टि करता है। अनुवाद के क्रम में किसी ल.आ. में हिंदी के इन शब्दों के प्रतिशब्द तो मिल सकते हैं किंतु यह ज़रूरी नहीं है कि वे शब्द भी अपनी ध्वनि तथा लय के माध्यम से वही कुछ व्यंजित करने में समर्थ हों जो स्रो.भा. की कविता कर रही है।

कविता के दृश्य तथा श्रव्य बिंब शब्दों के नाद गुण से बड़ी सीमा तक नियंत्रित होते हैं। उदाहरण के लिए पंत की ही एक और पंक्ति लीजिए –'मेखलाकार पर्वत अपार'। इसमें 'आ' ध्वनि के आवर्तन के माध्यम से विस्तार का जो आभास हो रहा है वह किसी अन्य भाषा में इसके प्रतिशब्द के माध्यम से संभव नहीं भी हो सकता है।

कविता में कई बार श्लिष्ट या अनेकार्थी शब्दों के माध्यम से चमत्कार की सृष्टि तो की ही जाती है, अर्थ में भी गहराई तथा समास का गुण आ जाता है। अंग्रेज़ी के कवि जॉन मिल्टन के सॉनेट On his blindness में कवि ने talent शब्द का दो अर्थों में प्रयोग किया है – प्रतिभा तथा एक प्रकार का सिक्का। इस श्लेष के माध्यम से कविता का अर्थ और भी गहन तथा स्पष्ट हो उठा है। किंतु हिंदी में talent का जो भी अनुवाद हो, वह इस प्रकार का श्लिष्ट अर्थ नहीं दे सकेगा और अनुवाद में दोनों अर्थों को स्पष्ट करने की कोशिश की जाए तो कविता की समस्तता खंडित हो जाएगी और साथ ही मूल रचना का प्रभाव भी।

कविता में कई बार एक ही शब्द के अनेक पर्यायों में से किसी एक का चयन किसी विशेष अर्थ के संप्रेषण के लिए किया जाता है। हिंदी में 'नीरज' और 'पंकज' – दानों ही शब्दों का वाच्यार्थ 'कमल' है किंतु व्यंग्यार्थ भिन्न है और कुछ ख़ास संदर्भों में इस भिन्नता का बड़ा सार्थक उपयोग हो सकता है। अनुभाग 17.3 (iv) में एक नाटक में

'राज' और 'राज्य' के भिन्न व्यंग्यार्थों का उल्लेख किया जा चुका है। किसी अन्य भाषा में मूलभाषा वाले शब्द के किसी एक पर्याय द्वारा इस प्रकार की व्यंजना कर सकना कठिन है।

- पिछले अनुभाग में इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि शब्दालंकारों के अनुवाद में किस प्रकार की असुविधाएँ सामने आती हैं। अर्थलंकारों के अनुवाद में भी, दोनों भाषाओं में एक-से अलंकार उपलब्ध होने के बावजूद, असुविधाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इसका कारण दोनों भाषाओं के सांस्कृतिक आसंगों का अंतर हो सकता है। अंग्रज़ी की उपमा (simile) wise like an owl का अनुवाद हिंदी में 'उल्लू के समान बुद्धिमान' करना बुद्धिमानी नहीं होगा क्योंकि हिंदी-भाषी क्षेत्रों में इस पक्षी को मूर्खता का प्रतीक माना जाता है। इसी प्रकार हिंदी के रूपक 'मुखचंद्र' का अंग्रेज़ी अनुवाद बिना किसी टिप्पणी के moon-face कर देना उचित नहीं हेगा क्योंकि अंग्रेज़ी भाषा से जुड़ी संस्कृति में चाँद जैसा मुख सामान्यतः सौंदर्य का नहीं, बल्कि भोंदूपन का प्रतीक होता है। ऐसी स्थितियों में अनुवादक को अपने विवेक से काम लेकर या तो एक टिप्पणी द्वारा बात को स्पष्ट कर देना चाहिए या कथन को ल.भा. के संस्कारों के उपयुक्त ढाल लेना चाहिए। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी की कुछ उपमाओं का हिंदी में रूपांतर देखें :

अंग्रेज़ी	**हिंदी**
Herculean effort	भगीरथ प्रयास
Olympian heights	हिमालय-सी ऊंचाई
Handsome like Apollo	काम्देव-सा सुंदर

हिंदी भाषी के लिए हरक्यूलीज़ की अपेक्षा भगीरथ के प्रयासों को समझना अधिक सरल है। किंतु यह भी सही है कि इस प्रकार का अनुवाद पूरी तरह शुद्ध नहीं होगा।

- पिछले अनुच्छेद से ही जोड़कर एक और बात देखें। किसी भी देश के काव्य (तथा अन्य विधाओं में भी) अनेक सांस्कृतिक आसंग तथा अंतर्कथाएँ होती हैं। स्रो.भा. का पाठक सहज भाव से उन अंतर्कथाओं तथा प्रस्तुत संदर्भ में उनकी संगति को समझता चलता है। हिंदी का पाठक क्रौंच वध, कंचन मृग, पृथ्वीराज के शब्द-वेध आदि के आसंगों और अंतर्कथाओं को आसानी से समझ सकता है। ग्रीक पुराणों और योरपीय इतिहास से संबद्ध प्रसंग उसके लिए प्रायः अनजाने होते हैं जबकि अंग्रेज़ी साहित्य में वे ही प्रसंग आते हैं। ऐसे में अंग्रेज़ी से हिंदी में अनुवाद करने वाले के लिए यही उचित होगा कि स्रो.भा. के ऐसे प्रसंगों को ज्यों का त्यों अनूदित करके टिप्पणियों के माध्यम से उनकी पृष्ठभूमि तथा आसंगों को समझाता चले।

- दो भाषाओं के क्षेत्रों की संस्कृति में कितना अंतर हो सकता है और वह अनुवाद की राह में कैसी अनुल्लंघनीय बाधाएँ खड़ी कर सकता है, इसका उल्लेख कई बार हो चुका है। यहाँ 'दिनकर' की कविता 'बालिका से वधू' का एक उदाहरण लें :

  'मंगलमय हो पंथ सुहागिन यह मेरा वरदान।
  हर सिंगार की टहनी से फूलें तेरे अरमान।'

  हो सकता है अनुवादक टिप्पणियों के माध्यम से शब्दों के प्रसंग और वाच्यार्थ स्पष्ट कर दे, किंतु भारतीय मानस में मंगल, सुहाग, वरदान और आशीर्वाद की जो अवधारणा है और केसरिया तथा शुभ्र पुष्प राशि से लदे भरे-पूरे हरसिंगार का जो चित्र है, वह मात्र टिप्पणियों के माध्यम से समझाना मुश्किल है। इसके अतिरिक्त इससे पाठक के अनायास रस ग्रहण में भी बाधा तो पड़ती ही है।

- वर्ड्सवर्थ के अनुसार कविता 'प्रबल मनोवेगों का सहज उच्छलन' है। इस प्रकार सहजता और निरायासता कवि का एक बड़ा गुण है। इसके विपरीत अनुवादक को सोच-समझकर, विश्लेषण कर करके उपयुक्त शब्दावली, वाक्य रचना छंद आदि का

चयन करना पड़ता है। इसलिए कई बार अनुवाद में सायासता का आभास होने लगता है और कविता मूल रचना के समान प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकती। इसके अतिरिक्त इतनी सावधानी रखते हुए वह मूल रचना का केवल भाषांतरण नहीं करता। उसके पीछे व्याख्या और विश्लेषण की एक पूरी प्रक्रिया रहती है। इस प्रक्रिया के पीछे अनुवादक के अपने व्यक्तित्व, सोच, परिवेश तथा मानसिक बनावट का भी हाथ रहता है। यही कारण है कि एक ही रचना का अनुवाद भिन्न-भिन्न व्यक्ति अलग-अलग तरह से करते हैं।

काव्य के अनुवाद में पहले कविता को समझने क लिए और फिर ल.भा. के पाठकों तक उसे पहुँचाने के लिए, कवि मानस की संवेदनशीलता की आवश्यकता होती है। वास्तव में यह भाषांतरण नहीं, बल्कि पुनःसृजन की क्रिया है। किंतु अनुवादक को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह अनुवाद को ल.भा. में संप्रेषणीय बनाने क लिए मूल से काट न बैठे।

- अब तक काव्यानुवाद संबंधी जिन समस्याओं पर बात हुई है, वे वास्तव में साहित्य की अन्य विधाओं पर भी लागू होती हैं। जो समस्या बिलकुल काव्य से ही जुड़ी हे, वह है छंद तथ लय की समस्या। कवि अपने कथन को अधिक प्रभावी बनाने के लिए प्रसंगानुसार उपयुक्त छंदों को चुनता है। जहाँ पारंपरिक छंदों का प्रयोग नहीं होता, वहाँ भी भाषा की एक विशिष्ट लय के द्वारा अर्थ का संप्रेषण किया जाता है। किंतु विभिन्न भाषाओं के छंदों में तथा शब्द श्रृंखलाओं की लय में अंतर हो सकता है। ऐसे में अनुवादक के सामने ऐसे छंदों तथा लय के चुनाव का प्रश्न खड़ा हो सकता है जो मूल रचना के प्रभाव को अधिक से अधिक संप्रेषित कर सकें। कुछ अनुवादक मूल पद्य रचना को ल.भा. में गद्य में रूपांतरित करके प्रस्तुत करते हैं। किंतु इससे ल.भा. के पाठक के आगे कविता का मात्र शब्दार्थ ही आ पाता है। कविता का पूरा अर्थ उसके शब्दों में ही निहित नहीं होता। प्रस्तुति की भंगिमा में अन्य सब बातों के अतिरिक्त छंद तथा लय का भी महत्व है। संदर्भ ग्रंथों में आपको इस संदर्भ में अनेक उदाहरण तथा उनके विश्लेषण मिलेंगे। यहाँ आप इतना समझ लें कि अनुवादक को अपने विवेक तथा संवेदनशीलता के आधार पर ल.भा. में उपयुक्त छंद तथा लय का चुनाव करना चाहिए। इसके लिए किसी निश्चित नियम का निर्धारण नहीं किया जा सकता।

(ख) नाटक का अनुवाद

यहाँ हम उन बातों का जिक्र करेंगे जिनका संबंध केवल नाटक विधा से है। नाटक एक दृश्य विधा है। इसका संपूर्ण प्रभाव मात्र भाषा पर ही निर्भर नहीं होता बल्कि अभिनय, मंच, रंग-योजना आदि का भी इसमें बड़ा हाथ होता है। अनुवादक का कर्म हालाँकि केवल भाषा से जुड़ा होता है, फिर भी उसे इस क्षेत्र में बहुत ही सावधानी से काम लेना होता है। इसके कई कारण हैं, जिनकी चर्चा आगे कर रहे हैं :

- नाटक में संवादों का बड़ा महत्व है। कथा-साहित्य में पात्रों के संवादों के अतिरिक्त स्वयं लेखक भी अपनी तरफ से बहुत कुछ कहकर वातावरण की रचना कर सकता है, चरित्रों पर प्रकाश डाल सकता है या उलझी हुई स्थितियों को स्पष्ट कर सकता है। नाटककार को यह सारा काम पात्रों के कथोपकथन के माध्यम से ही करना होता है। इसलिए नाटक में हर संवाद की, संवाद के हर वाक्य तथा शब्द की अपनी विशिष्ट अर्थवत्ता होती है।

- नाटक में संवादों के अनुवाद में ध्यान रखना चाहिए कि पात्र किस तरह की भाषा तथा शब्दों का प्रयोग कर रहा है; संवाद में कहाँ विराम आ रहा है; जिन शब्दों या वाक्यांशों का प्रयोग हो रहा है, उनकी अनुतान (intonation) कैसी है, उन पर कहाँ बल देकर बोला जा सकता है; कहाँ वाक्य अधूरे, टूटे या बिखरे हैं। आदि।

- नाटक में पायः अनेक पात्र होते हैं जिनके चरित्र, व्यक्तितव, वर्ग, सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक पृष्ठभूमि, आयु, लिंग, भौगोलिक अवस्थिति, मनोविज्ञान आदि में बहुत अंतर होता है। नाटक में ये तमाम अंतर हर पात्र के भाषा प्रयोगों की भिन्नता के माध्यम से व्यक्त होते हैं। अनुवादक के लिए यह ज़रूरी होता है कि भाषा प्रयोगों की यह भिन्नता बनाए रखे, ताकि इस भिन्नता से उत्पन्न प्रभाव भी अनुवाद में आ सकें।

- कुछ अनुवादकों ने नाटकों के अनुवाद के स्थान पर उनका रूपांतरण करके भी इस समस्या का कुछ हद तक समाधान किया है। रूपांतरण पूर्णतः अनुवाद न होते हुए भी अनुवाद का एक गौण प्राकर माना जा सकता है जिसमें मूल नाटक (या उपन्यास या कहानी आदि) को ल.भा. के परिवेश में ढाल लिया जाता है। अर्थात् कथा, चरित्र, नाट् योजना आदि मूल नाटक के अनुरूप होते हुए भी स्थान, पात्रों के नाम आदि ल.भा. के अनुसार नियोजित कर लिए जाते हैं। उदाहरण स्वरूप शेक्सपीयर के नाटक The Merchant of Venice के भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा किए गए रूपांतरण 'दुर्लभ बंधु' का उल्लेख पहले किया जा चुका है (देखें, अनुभाग)। ऐसे नाटकों में संवाद प्रायः मूल का ज्यों का त्यों अनुवाद होते हैं, पर कभी-कभी बदले हुए परिवेश तथा संस्कृति के अनुकूल रखने के लिए उनमें अनुवादक अपनी तरफ़ से कुछ परिवर्तन भी कर देता है।

- काव्यात्मक नाटकों का अनुवाद करने की चुनौती और भी कठिन है क्योंकि अनुवादक को नाटक के मूल भाव ही नहीं, काव्यात्मकता की भी रक्षा करनी पड़ती है। यह कार्य कितना कठिन है, यह इसी से स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी में शेक्सपीयर के अनेक अनुवादें में से अच्छे कहे जाने वाले अनुवाद अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं।। कुछ अनुवादक सरल मार्ग अपनाकर पद्यात्मक अंशों का अनुवाद गद्य में कर देते हैं। किंतु इससे मूल नाटक का प्रभाव निश्चित रूप से खंडित हो जाता है और वह अनुवाद नाटक की केवल कथा प्रस्तुत कर सकता हैं, नाटक नहीं।

- नाटक में संवादों के अतिरिक्त मंच संकेत, रंग संकेत तथा अन्य अनेक युक्तियाँ होती हैं जो परस्पर मिलकर ही नाटककार के कथ्य को स्पष्ट करती हैं। नाटक के अनुवादक को दोनों भाषाओं ही नहीं, उन युक्तियों तथा रंगमंच की परंपराओं का भी सम्यक् ज्ञान होना चाहिए ताकि वह मूल नाटक को पूरी अर्थवत्ता में ग्रहण तथा संप्रेषित कर सके।

(ग) कथा साहित्य का अनुवाद

- कथा साहित्य के अंतर्गत उपन्यास, कहानी आदि विधाएँ आती हैं। इनके अनुवाद में भाषा, शैली, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, विविध भाषा प्रयोग आदि से जुड़ी जो समस्याएँ हैं, उनका उल्लेख हो चुका है। ये समस्याएँ एक ओर **भाषा तथा इसकी संरचना के विविध स्तरों** से जुड़ी हैं और इनका मूल कारण है दो भाषाओं की ध्वनियों, शब्दावली और व्याकरणिक संरचना में अंतर। इन समस्याओं का दूसरा स्तर भाषिक प्रयोग से जुड़ा है जिसके अंतर्गत विशिष्ट शैली तथा भाषा और बोलियों के विशिष्ट प्रयोग आते हैं। इन पर भी पहले चर्चा हो चुकी है और आगे भी कुछ विचार-विमर्श किया जाएगा। समस्याओं का तीसरा स्तर भाषिकेतर है जिसके अंतर्गत स्रो.भा. तथा ल.भा. के भिन्न-भिन्न भौगोलिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्तर से जुड़ी समस्याएँ आती हैं। इन पर भी कुछ सीमा तक पहले चर्चा कर चुके हैं।

- साहित्य में कथा साहित्य की विधाएँ सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। इनका अनुवाद बड़े कौशल की अपेक्षा करता है। कहानी या उपन्यास की ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि के अनुसार उसकी भाषा तथा शैली का चुनाव होता है। ऐतिहासिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा आंचलिक उपन्यासों की शैली तथा भाषा भिन्न-भिन्न होती है। एक ही लेखक यशपाल के ऐतिहासिक उपन्यास 'दिव्या' की भाषा तत्सम प्रधान है और 'झूठा सच' की भाषा सहज बोलचाल की भाषा है, जिसमें कथा के क्षेत्र के मुहावरों तथा बोलियों का खुलकर प्रयोग हुआ है। प्रेमचंद के उपन्यासों

तथा कहानियों की भाषा-शैली सरल मानी जाती है किंतु उनमें विभिन्न सामाजिक पृष्ठभूमि के पात्र भिन्न प्रकार की भाषा बोलते हैं। अनुवादक को यदि उपन्यास का पूरा रस अनुवाद में उतारना है तो उसे इस भिन्नता का निदर्शन अनुवाद में भी किसी न किसी प्रकार करना होगा।

- हर लेखक की अपनी अलग भाषा-शैली होती है। परिणामस्वरूप कथा की पृष्ठभूमि समान होने पर भी उनके द्वारा उसकी प्रस्तुति में अंतर आ जाता है। उदाहरण के लिए प्रेमचंद तथा प्रसाद द्वारा लिखित ऐतिहासिक कहानियों को देखें। कहानी की पृष्ठभूमि या पात्र कैसे भी हों, प्रसाद की भाषा तत्सम शब्दावली प्रधान और काव्यमय होती है, जबकि प्रेमचंद की भाषा अपेक्षाकृत सहज-सामान्य और शैली वर्णनात्मक और किस्सागोई वाली होती है। लेखकों का पूरा कथ्य प्रस्तुति की भंगिमा के माध्यम से ही स्पष्ट होता है। इसलिए अनुवाद में भिन्न-भिन्न लेखकों की शैली की विशिष्टताएँ उभरकर आनी चाहिए।

- कथा साहित्य में प्रायः अपने क्षेत्र के जीवन, संस्कारों-व्यवहारों, विचारें-आस्थाओं, रीति-रिवाजों, विश्वासों, शिष्टाचार आदि का चित्रण होता है। उन्हें भलीभाँति समझकर सही रूप में प्रस्तुत कर सकने क लिए अनुवादक को दोनों भाषाओं से जुड़ी सभ्यता-संस्कृति, रीति-रूढ़ियों, विश्वासों आदि का ज्ञान होना चाहिए। उन्हें समझकर ल.भा. में उनके बोधक शब्दों के पर्याय प्रस्तुत करना भी एक जटिल समस्या है। उदाहरण को लिए मलयायम उपन्यास 'चेम्मीन' में केरल के मछुआरों के जीवन, सामाजिक संबंधों तथा व्यवसाय से जुड़ी शब्दावली के लिए हिंदी में प्रतिशब्द मुश्किल से ही मिलेंगे। इसी प्रकार 'मैला आँचल' में प्रयुक्त रीति-रिवाज़ तथा लोक जीवन से संबद्ध शब्दावली के लिए अंग्रेज़ी में विकल्प नहीं मिल सकता। 'बीजक', 'सामा-चकेवा' जैसे शब्दों का या तो व्याख्यापरक अनुवाद करना होगा, या इन्हीं शब्दों के ल.भा. की लिपि में लिखकर टिप्पणी में इनका अर्थ स्पष्ट करना होगा। इस समस्या का यही हल है। किंतु, जेसा कि पहले भी कहा जा चुका है, इससे अनुवाद में सहजता नहीं रह जाती और उसके पाठक के निरायास रस-ग्रहण में भी बाधा पहुँचती है।

17.8 सारांश

इस इकाई में आपने अनुवाद से संबद्ध कुछ सामान्य तथ्यों पर विचार किया। आपने देखा कि अनुवाद एक भाषा या भाषा भेद द्वारा अभिहित कथ्य को दूसरी भाषा या भाषा भेद में अंतरित करने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में भाषा तो बदल जाती है, किंतु अर्थ के स्तर पर दोनों भाषाओं के कथ्य में समतुल्यता ज़रूरी है।

अनुवाद एक भाषिक प्रक्रिया है और इसक लिए अनुवादक को स्रो.भा. तथा ल.भा. के हर स्तर की बारीकियों से परिचित होना चाहिए। इसके लिए उसे भाषाविज्ञान की अच्छी जानकारी होनी चाहिए।

अनुवाद एक विज्ञान भी माना जा सकता है, कौशल भी और कला भी। वस्तुतः अनुवाद की प्रकृति में ये तीनों ही प्रवृत्तियाँ समाहित हैं और अनुवाद की विषय वस्तु के अनुसार इनमें से कोई एक प्रवृत्ति अधिक महत्वपूर्ण हो उठती है। हमारे कार्य और व्यवहार क्षेत्र के निरंतर विस्तार के साथ अनुवाद का क्षेत्र भी बढ़ता जा रहा है। आज अनुवाद हमारे जीवन तथा व्यवहार के हर क्षेत्र से जुड़ा जुआ है और विभिन्न संदर्भों के अनुसार यह अनेक प्राकर का हो सकता है। क्षेत्र के इस अपार विस्तार से ही अनुवाद की उपयोगिता भी जुड़ी हुई है। आज हमें कदम-कदम पर अनुवाद की ज़रूरत पड़ती है। साथ ही यह लक्ष्य भाषा की समृद्धि में भी योग देता है।

अनुवाद की एक निश्चित प्रक्रिया होती है, जिसके तीन चरण होते हैं – पठन तथा पाठ-विश्लेषण, संक्रमण, पुनर्गठन तथा ल.भा. में अभिव्यक्ति। अनुवाद्य विषय के अनुसार इनमें से किसी एक चरण पर कम या अधिक बल हो सकता है।

अनुवाद के क्रम में अनुवादक के समाने अनेक समस्याएँ आ सकती हैं। ये भाषिक स्तर की भी हो सकती हैं और भाषिकेतर स्तर की भी। भाषिक स्तर पर भाषा के विविध पक्षों – वर्तनी, शब्दावली वाक्य रचना तथा शैली से जुड़ी हुई समस्याएँ आती हैं और भाषिकेतर स्तर पर दोनों भाषाओं के क्षेत्रों के समाज तथा संस्कृति की विभिन्नता के कारण उभरने वाली समस्याएँ। साहित्य की विभिन्न विधाओं के अनुवाद में भी अलग-अलग तरह की समस्याएं उभरती हैं। साहित्यिक अनुवाद सामान्य अनुवाद से कुछ भिन्न होता है क्योंकि इसमें शब्दों के कोशार्थ का अनुवाद पर्याप्त नहीं होता। अनुवादक को उनके निहितार्थ या आशय तक पहुंचकर उसे अनुवाद में संप्रेषित करना होता है।

17.9 अभ्यास प्रश्न

1. **निबंधात्मक प्रश्न**
   (1) भाषाविज्ञान की जानकारी क्या अनुवाद कर्म में सहायक होती है? यदि हाँ तो कैसे?
   (2) अनुवादके प्रमुख प्राकरों की चर्चा करते हुए शब्दानुवाद, भावानुवाद तथा छायानुवाद के अंतर को स्पष्ट कीजिए।
   (3) काव्यानुवाद की प्रमुख समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए उनके संभव समाधानों का भी संकेत दें।

2. **टिप्पणियाँ**
   (1) शब्दों के लिप्यंतरण के क्रम में ध्वनि विज्ञान की जानकारी अनुवादक के लिए किस प्रकार उपयोगी सिद्ध होती है?
   (2) अनुवादक के लिए अर्थ विज्ञान की जानकारी क्यों आवश्यक है? उदाहरण सहित समझाएँ।
   (3) ऐसी कौन-सी स्थितियाँ हैं जहाँ अनुवादक को ल.भा. में स्रो.भा. के शब्दों के प्रतिशब्द नहीं मिलते? ऐसी स्थिति में उसके सामने कौन-कौन से विकल्प होते हैं?
   (4) अनुवाद क्या सचमुच 'असंभव' होता है? शैली को दृष्टि में रखते हुए इस प्रश्न का उत्तर दीजिए।
   (5) कथा साहित्य के अनुवाद में भाषिक संरचना तथा भाषिक प्रयोग के स्तर पर उठने वाली समस्याओं पर उदाहरण सहित प्रकाश डालें।
   (6) सामान्य अनुवाद तथा साहित्यिक अनुवाद का अंतर स्पष्ट करें।

3. **वस्तुनिष्ठ प्रश्न**
   (क) सही विकल्प पर निशान लगाएँ :
   1. अनुवाद एक भाषिक प्रक्रिया है। (सही/गलत)
   2. अनुवाद की प्रक्रिया दो भिन्न भाषाओं के बीच ही सभव है। (सही/गलत)
   3. भाषाविज्ञान एक अलग विज्ञान है और अनुवाद से उसका कोई संबंध नहीं। (सही/गलत)

4. अनूदित पाठ में चूँकि केवल ल.भा. की ध्वनियों का उपयोग होता है, अतः स्रो.भा. की ध्वनियों के बारे में सचेत होने की अनुवादक को कोई ज़रूरत नहीं। (सही/गलत)
5. जहाँ स्रो.भा. के शब्दों का लिप्यंतरण होता है, वहाँ स्रो.भा. की वर्तनी को ही ल.भा. की वर्तनी का आधार बनाना चाहिए। (सही/गलत)
6. अनुवाद केवल शब्दार्थ पर आधारित नहीं हो सकता। (सही/गलत)
7. भाषा में कथ्य का संप्रेषण रूप रचना के ही माध्यम से होता है।
8. अंग्रेज़ी 'पैसिव' संरचना अर्थ की दृष्टि से हिंदी की कर्मवाच्य संरचना के समतुल्य होती है। (सही/गलत)
9. शब्दों के अर्थ संदर्भ से ही स्पष्ट होते हैं। (सही/गलत)
10. वाक्य की संरचना के अंतर के साथ उसके आशय में भी अंतर आ जाता है। (सही/गलत)
11. अनुवाद विशुद्ध विज्ञान है, कला नहीं। (सही/गलत)
12. भाषिक व्यवहार का संपूर्ण क्षेत्र ही अनुवाद का क्षेत्र हो सकता है। (सही/गलत)
13. भावानुवाद को ही छायानुवाद कहते हैं। (सही/गलत)
14. स्रो.भा. के पाठ के पठन से लेकर ल.भा. में उसकी अभिव्यक्ति तक अनुवाद को कुछ विशेष प्रक्रियाओं से गुज़रना पड़ता है। (सही/गलत)
15. अनुवाद में आशय की रक्षा के लिए स्रो.भा. की वाक्य-संरचना को ल.भा. में ज्यों का त्यों उतारना ज़रूरी है। (सही/गलत)

(घ) **नीचे दिए गए उदाहरणों में से अंग्रेज़ी मुहावरों तथा लोकोक्तियों के लिए उपयुक्त हिंदी अभिव्यक्ति का चुनाव करें : [उदाहरण – (i) –(ठ)]**

अंग्रेज़ी

(i) Golden Oppertunity, (ii) Pig Headed, (iii) A blow by blow account, (v) Round the clock, (v) Chip of the old block, (vi) On the horns of a dilemma, (vii) From the frying pan into the fire, (viii) To leave no stone unturned, (ix) To rain cats and dogs, (x) To kick off (something), (xi) To kill two birds with one stone, (xii) Handsome is that handsome does, (xiii) It's no use crying over spilt milk, (xiv) The grass is greener on the other side of the fence, (xv)An empty mind is the devils workshop

हिंदी

(क) मूसलाधार वर्षा होना, (ख) जैसा बाप वैसा बेटा, (ग) खाली दिमाग शैतान का घर (घ) काम प्यारा होता है, चाम नहीं, (ङ.) पल-पल का ब्यौरा, (च) अड़ियल (टट्टू), (छ) चौबीसों घंटे, (ज) दूर के ढोल सुहावने, (झ) ताड़ से गिरा खजूर में अटका, (ञ) भइ गति साँप छछूंदर केरी, (ट) शुरुआत करना, (ठ) स्वर्ण अवसर, (ड) एक तीर से दो शिकार, (ढ) कोई कसर उठा न रखना, (ण) अब पछताए होत का जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत

इकाई 18 भाषा तुलना

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 व्यतिरेकी विश्लेषण
    18.2.1 व्यवहारवादी सिद्धांत में व्यतिरेकी विश्लेषण
    18.2.2 व्यतिरेक की विश्लेषण : प्रक्रिया और परिणाम
18.3 भाषा त्रुटि विश्लेषण
18.4 भाषा तुलना का भाषावैज्ञानिक पक्ष
18.5 भाषा तुलना और अनुपयोग के क्षेत्र
    18.5.1 अनुवाद और भाषा तुलना
    18.5.2 भाषा-शिक्षण
    18.5.3 कोशविज्ञान
18.6 सारांश
18.7 अभ्यास प्रश्न

18.0 उद्देश्य

भाषाविज्ञान हमें भाषाओं की तुलना का आधार देता है। भाषाओं की तुलना में हमें भाषाओं की प्रकृति का ज्ञान मिलता है। भाषाओं की तुलना से प्राप्त ज्ञान का हम अनुवाद, भाषा शिक्षण आदि अनुप्रयोग के क्षेत्रों में उपयोग कर सकते हैं।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- व्यतिरेकी विश्लेषण के स्वरूप, प्रकार्य और महत्व की चर्चा कर सकेंगे,
- भाषा में त्रुटियों के विश्लेषण का महत्व समझा सकेंगे,
- भाषा तुलना का भाषा वैज्ञानिक आधार बता सकेंगे, और
- अनुवाद, भाषा शिक्षण आदि क्षेत्रों में भाषा तुलना में अनुप्रयोग का महत्व स्पष्ट कर सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

भाषाविज्ञान हमें भाषाओं के विश्लेषण और वर्णन का आधार देता है। इसी वर्णन का आधार लेकर हम दो भाषाओं में लिपि, वर्तनी, उच्चारण, शब्द रचना, वाक्य विन्यास आदि स्तरों पर दो भाषाओं की तुलना कर सकते हैं। इसी अध्ययन को भाषा तुलना की संज्ञा दी जाती है।

हमें सबसे पहले तुलनात्मक भाषाविज्ञान और भाषा तुलना में अंतर करना होगा। तुलनात्मक भाषाविज्ञान एक ही परिवार की भाषाओं की संबद्धता का अध्ययन करता है। इसका आविर्भाव इस उद्देश्य से हुआ कि हम देखें कि किन कारणों से एक ही परिवार की, समान स्रोत की भाषाओं में अंतर आया जिससे ये भाषाएँ दूर होती चली गईं। दो भाषाओं में प्राप्त समान तत्वों के आधार पर उन्हें हम एक भाषा परिवार के अंतर्गत रख सकते हैं। किसी भाषा परिवार की भाषाओं में अंतर के आधार पर हम उसके वर्गों और उपवर्गों की कल्पना कर सकते हैं, उस परिवार के इतिहास का वर्णन कर सकते हैं और इस विकास क्रम के आधार पर उस परिवार के पूर्व रूप की कल्पना कर सकते हैं।

18.2 व्यतिरेकी विश्लेषण

व्यतिरेकी विश्लेषण की हम दो भाषाओं की तुलना करते हैं। सहज रूप से यह सवाल उठता है कि तुलनात्मक भाषाविज्ञान (comparative linguistics) और व्यतिरेकी विश्लेषण में क्या अंतर है। वास्तव में इन दोनों प्रक्रियाओं में अंतर करने के उद्देश्य से हीं ये दो अलग नाम बने हैं। वैसे दोनों में भाषाओं की तुलना होती है या दूसरे शब्दों में तुलना की दृष्टि रहती है। लेकिन इनके उद्देश्यों और प्रविधि में विशिष्ट अंतर है।

तुलनात्मक भाषाविज्ञान इस विषय क्षेत्र के विकास का प्रारंभिक चरण है। आप इकाई 3 में पढ़ चुके हैं कि किस तरह संस्कृत, लैटिन, ग्रीक आदि भाषाओं की तुलना से भाषाविज्ञान का उदय हुआ। भाषाविज्ञान की उस शाखा में प्रायः एक ही परिवार की (सगोत्रीय) भाषाओं की तुलना की जाती है। तुलना के आधार पर उनके परस्पर संबंधों का पता लगाया जाता है। उनमें परिलक्षित अंतरों की खोज करते हुए हम उनके इतिहास क्रम को जान पाते हैं। उनके ऐतिहासिक विकास की दृष्टि में परिवार की भाषाओं का वर्गीकरण किया जाता है। तुलना में केवल समान तत्वों की विभिन्नता पर प्रकाश डाला जाता है, जिससे हम मूलभूत एकता को पहचान सकें। अब तक भाषाओं की प्रकृति तथा उनके पारिवारिक वर्गीकरण पर बहुत काम हो चुका है। इस दृष्टि से यह भी कह सकते हैं कि आज तुलनात्मक भाषाविज्ञान की उपयोगिता खत्म हो चुकी है।

आज के भाषावैज्ञानिक संसार के विभिन्न भाषाओं में रचना की दृष्टि से समान तत्वों को ढूँढ़ने पर अधिक जुटे हैं। उन विद्वानों की यह प्राक्कल्पना है कि मानव भाषा में, विविध भाषा परिवारों के होते हुए कई सार्वभौम तत्व हैं, तत्वों की खोज कर लेने पर हम मनुष्यों की समस्त भाषाओं के केंद्र में निहित सार्वभौम व्याकरण (universal grammar) का पता लगा सकते हैं। इसकी थोड़ी चर्चा हम इकाई 5 में कर चुके हैं। इस प्रकरण में इस इकाई में अधिक चर्चा नहीं करेंगे।

18.2.1 व्यवहारवादी सिद्धांत में व्यतिरेकी विश्लेषण

व्यतिरेकी विश्लेषण विश्व की किन्हीं दो भाषाओं के बीच में किया जा सकता है। इसका आधार यही है कि दो भाषाओं में कुछ समान तत्व होंगे और कुछ असमान (विषय) तत्व। एक परिवार की भाषाओं में समानता अधिक होगी, दूर की भाषाओं में विषमता अधिक होगी। किन्हीं प्रयोजनों से (जिनका आगे विवेचन) विश्लेषण का उद्देश्य है। व्यतिरेक (contrast) शब्द वास्तव में रचना में विपरीतता का बोध कराता है। उदाहरण के लिए 'चल' और 'जल' शब्द व्यतिरेक में हैं और अर्थ भेद करते हैं। /च/ और /ज/ ध्वनियों की व्यतिरेकी व्यवस्था ही दोनों में अर्थ भेद का आधार है। इस तरह अर्थ भेद पैदा करने वाले इन विपरीत तत्वों का पता लगाना ही व्यतिरेकी विश्लेषण का मुख्य लक्ष्य है। भाषाओं की तुलना की प्रक्रिया से ही हम व्यतिरेकी को पहचानते हैं।

व्यवहारवाद संरचनात्मक भाषाविज्ञान व्यतिरेक को भाषिक अधिकाधिक का आधार माना जाता है। दो ध्वनियों या दो शब्दों में व्यतिरेक अर्थभेद हैं। इस तरह दो भाषाओं के बीच हम व्यतिरेक के माध्यम से भिन्न-भिन्न संचनात्मक तत्वों को पहचानते हैं जो भिन्नता में और अर्थ ग्रहण में बाधा पहुँचाते हैं। इसी को भाषा शिक्षण में व्याघात (interferance) कहा जाता है। आमतौर पर मातृभाषा का दूसरी भाषा पर व्याघात होता है यानि के मातृभाषा की भाषिक इकाइयाँ दूसरी भाषा के अर्जन में व्यवधान पैदा करती हैं। उदाहरण के तौर पर हिंदी भाषी अंग्रेज़ी का 'था' ध्वनियों के उच्चारण से अर्जित नहीं है इसलिए वह Thin तथा Then शब्दों का हिंदी में क्रमशः Thin और Then बोलता है जबकि 'का' और 'न' ध्वनियाँ अंग्रेज़ी में है नहीं।

संरचनात्मक भाषा शिक्षण यह मानकर चलता है कि भाषा आदतों का समुच्चय है जब कोई नई बात सीख ली जाए तो उसे घनात्मक अंतरण (Positive transfer) कहा जाता है। जब वह सीखी न जाए या उसकी जगह कोई और वस्तु सीखी जाए तो इसे ऋणात्मक अंतरण (Negative transfer) कहा जाता है। संरचनात्मक भाषा शिक्षण सही आदत डालने पर बल देता है और इसके लिए पाठ्य बिंदुओं को निश्चय करने के लिए व्यतिरेक की विश्लेषण की सहायता लेता है।

18.2.2 व्यतिरेक की विश्लेषण : प्रक्रिया और परिणाम

व्यतिरेक की विश्लेषण में आमतौर पर भाषा के एक निश्चित क्षेत्र को चुना जाता है जैसे ध्वनियों का विश्लेषण या संध्या पदों का विश्लेषण या क्रिया के काल और पक्ष का विश्लेषण आदि। इस संदर्भ में दोनों भाषाओं की संरचनाओं का समुचित अध्ययन किया जाता है। व्यतिरेक की अध्ययन की नई दिशाएँ दिखाई पड़ती हैं।

1. किसी भाषा में कोई भाषिक तत्व है दूसरी ये नहीं जैसे हिंदी में महापुराण दुनिया में तमिल में नहीं है।

2. कहीं दोनों भाषाओं में वह भाषिक तत्व हैं लेकिन दोनों भाषाओं में इसका मूल्य अलग है। दोनों हिंदी में 'क', 'ख' दोनों अर्थ भेदक हैं जैसे 'काना', 'खाना' अंग्रेज़ी में यह ध्वनियाँ एक स्वनिम के अंग हैं अर्थभेदक नहीं है। अंग्रेज़ी में 'ख' का उच्चारण केवल उच्चारण नहीं होता 'क' का उच्चारण शब्द के और स्थानों में है।

3. भाषिक तत्व दोनों भाषाओं में भिन्न रचनाओं के द्वारा अभिव्यक्त होते हैं जैसे हिंदी में फेंक देना, गिर जाना, लिख लाना आदि। रंजक क्रिया का उपयोग है आमतौर पर कहा जाता है कि अंग्रेज़ी में रंजक क्रियाएँ नहीं है। लेकिन अंग्रेज़ी में रंजक क्रिया के स्थान पर एक मिलती जुलती व्यवस्था है। अंग्रेज़ी में क्रियाओं के साथ क्रिया विश्लेषण शब्द जोड़ कर इन्हीं संदर्भो के through-away, fall down - take down, आदि संयुक्त क्रिया आते हैं।

जब इस तरह की भिन्न रचनाएँ सामने आती हैं तो भिन्न प्रकार से प्रतिक्रिया करता है। इस तरह व्यतिरेक विश्लेषण इस बात का यत्न करता है कि भाषाओं की रचनाओं में भिन्नता के प्रतिभाओं का पूर्वानुमान करें और अध्येताओं की संभावित कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए शिक्षण का आयोजन करें।

18.3 भाषा त्रुटि विश्लेषण

भाषा त्रुटि विश्लेषण उसी प्रकार व्यतिरेकी विश्लेषण का विरोध करता है जिस तरह चॉम्स्की का मनोवादी भाषाविज्ञान ब्लूमफ़ील्ड के संरचनात्मक भाषाविज्ञान का विरोध करता है। चॉम्स्की भाषा शिक्षण के संदर्भ में भाषा की आदत डालने पर प्रक्रिया से सहमत नहीं है उनके लिए भाषा आदि नहीं है। चॉम्स्की भाषा को नियम मानते हैं। हम लोग भाषा को सुनते हैं। मन है उसकी रचना के तत्वों को संसाधित करता है और भाषा का नियमों के रूप में आत्मसात करता है। हम इस तरह मन में नियम निर्धारण करना ही भाषा अर्जन है. जब हम भाषा अर्जित करते हैं तो इन्हीं नियमों के निर्धारण में गलती कर जाते हैं, जिसके कारण भाषा में दोष रह जाते हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि इन दोषों को गौर से देखें तो यह पता लगा सकते हैं कि हम किस तरह नियमबद्ध रूप में अर्जित करते हैं अर्थात् यह दोष अर्जन की क्रिया को समझने में हमारी सहायता करते हैं।

भाषा दोष विश्लेषण में गलतियों के पूर्वानुमान के सिद्धांत को नकारा गया क्योंकि हम अकसर ये देखते हैं कि भाषाओं में भिन्नता होने के बावजूद गलतियाँ नहीं होतीं। उदाहरण

के तौर पर हिंदी में एक सर्वनाम है 'उसका' इसके अंग्रेज़ी में दो रूप हैं His और Her हिंदी के मुकाबले अंग्रेज़ी में व्यापक समानीकरण हैं लेकिन इसके बावजूद कोई अध्येता अंग्रेज़ी में गलती नहीं करता। एक दूसरा उदाहरण लीजिए – हिंदी में 'न' की रचना है। हिंदी में केवल पूर्ण पारा की क्रियाओं में कर्ता 'ने' लगता है जैसे – मैंने खाना खाया, राम ने किताब पढ़ी, व्यतिरेक की विश्लेषण के अनुसार हमें उम्मीद करनी चाहिए कि तमिल भाषी इन वाक्यों में 'ने' छोड़ देगा, क्योंकि उसकी भाषा में 'ने' की रचना नहीं है।

अगर तमिल भाषी न खाना खाया लिखें तो हम इसे मातृभाषा का व्याघात कहेंगे लेकिन हम देखते हैं कि हिंदी सीखने वाले तमिल भाषी कुछ समय बाद 'मैंने खाया', 'उसने बैठा' आदि वाक्य बोलना शुरू करता है। ऐसा क्यों? इसमें तो कोई व्याघात नहीं है। वास्तव में चॉम्स्की के अनुसार यह नियम का अतिप्रयोग है। इससे एक बात तो सिद्ध होती है कि नियम निर्धारण की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है इन्हीं संदर्भों में हम कहते हैं कि भाषा दोष कई तरह के हैं जिनका संबंध अध्येता के मन से है। इनका प्रभाव व्यतिरेक की विश्लेषण की अपेक्षा कहीं अधिक है।

दोष विश्लेषण को हमें मात्र वर्तनी आदि सामान्य दोषों के संदर्भ में नहीं देखना चाहिए। दोष विश्लेषण का हमारे मस्तिष्क में है, जहाँ विचार जन्म लेते हैं और अभिव्यक्ति का रूप धारण करते हैं। इसलिए बाकी की अंतरनिहित संरचना के भीतर जाकर हमें दोषों का आधार ढूँढ़ना चाहिए।

हम जब वाक्य बोलते हैं तो उसमें अपने विचारों को रचना के माध्यम से स्पष्ट करने की कोशिश करते हैं। लेकिन कभी-कभी हमारे विचार इतने गहन होते हैं कि भाषा साथ नहीं देती। बड़े-बड़े लेखकों में भी हम इस प्रकार के कथन देख सकते हैं जहाँ हम जानते हैं कि लेखक क्या कहना चाह रहा है। लेकिन अनुभव करते हैं कि लेखक का वाक्य वह संदेश नहीं दे पाता। इन स्थलों का अध्ययन हम भाषा दोष विश्लेषण में ही कर सकते हैं क्योंकि यह मन की गहराई में भाषा को ढूँढ़ने का यत्न करता है।

18.4 भाषा तुलना का भाषावैज्ञानिक पक्ष

यह सवाल उठ सकता है कि क्या मानवों की सभी भाषाएँ तुलनीय हैं? एक सवाल यह भी है कि भाषाओं की तुलना क्यों की जाती है और उससे क्या लाभ हैं? इन्हीं दोनों प्रश्नों के संदर्भ में हम भाषा तुलना की उपयोगिता की चर्चा करेंगे। इन दोनों पक्षों को हम निम्नलिखित आरेख में प्रस्तुत कर रहे हैं :

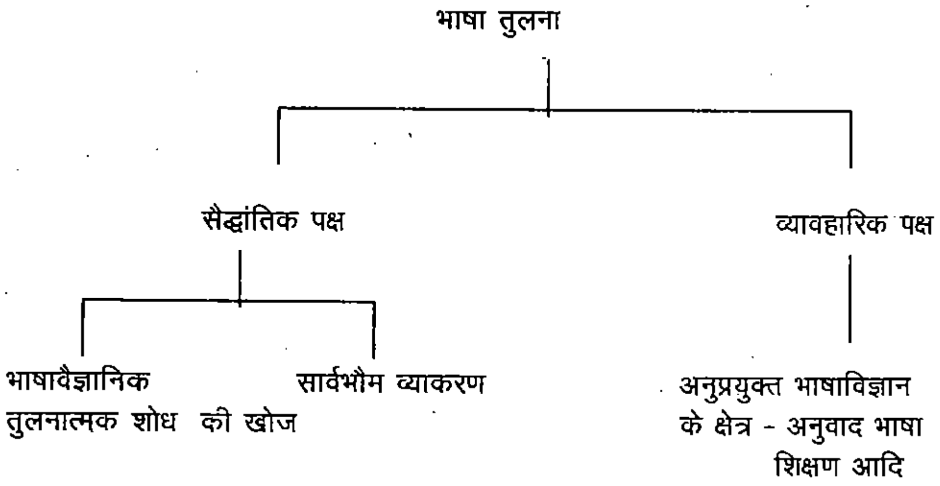

आपने पहले खंड में अध्ययन किया था कि संस्कृत और लैटिन की क्रिया, शब्द आदि की तुलना से ही आधुनिक भाषाविज्ञान का आविर्भाव हुआ। आधुनिक युग में भी चाहे ब्लूमफ़ील्ड का व्यवहारवादी संरचनात्मक भाषाविज्ञान हो, चाहे चामस्की का मनोवादी रूपांतरणपरक व्याकरण, हम विभिन्न भाषाओं की संरचना के समान तत्वों के आधार पर ही भाषाविज्ञान का ढाँचा खड़ा करते हैं। पूर्ववर्ती व्याकरण किसी एक भाषा के स्वरूप का विश्लेषण करते थे, भाषाविज्ञान मानवों की सभी भाषाओं की सामान्य विशेषताओं के आधार पर उनके वर्णन-विश्लेषण का एक सामान्य ढाँचा उपस्थित करता है। भाषाओं की तुलना के आधार पर नए तथ्य सामने आते हैं, जिन्हें सिद्धांत में शामिल कर लिया जाता है। इस तरह भाषाओं के तुलनात्मक शोध कार्य सिद्धांत निर्माण में योगदान करते हैं। दो भाषाओं की तुलना करना अपने में महत्वपूर्ण अनुसंधान का क्षेत्र है।

भाषा मनुष्य मात्र की विशेषता है। और चामस्की के संप्रदाय के विद्वान मानते हैं कि भाषा मानव की जन्मजात वृत्ति है और मानव मस्तिष्क का आंतरिक गुण है। इसका तात्पर्य यह होना चाहिए कि बाह्य संरचनागत अंतरों को छोड़कर मानवों की भाषाओं में गहरा साम्य होना चाहिए। इसी संदर्भ में आधुनिक भाषावैज्ञानिक सार्वभौम व्याकरण (universal grammar) की संकल्पना प्रस्तुत करते हैं, जिसके अनुसार विचार और संप्रेषण का मूलभूत तंत्र एक है, केवल बाह्य भाषिक संरचना के तत्व कहीं-कहीं भिन्न होते हैं। सार्वभौम व्याकरण के संदर्भ में कई कार्य हुए हैं और उनमें भाषाओं की सामान्य विशेषताओं का भी आकलन किया गया है। जैसे :

(i) सारी भाषाएँ मूलतः उच्चरित हैं। सभी में स्वर और व्यंजन ध्वनियाँ हैं।

(ii) ध्वनियों से यादृच्छिक शब्द निर्मित होते हैं। शब्दों से वाक्य की संरचना होती है।

(iii) वाक्य में उद्देश्य और विधेय होते हैं। सकर्मक वाक्य में कई क्रम मिलते हैं। जैसे, कर्ता कर्म क्रिया (हिंदी), कर्ता क्रिया कर्म (अंग्रेज़ी), क्रिया कर्म कर्ता (अरबी) आदि।

(iv) निश्चयार्थ, प्रश्नार्थ, विस्मयार्थ आदि वाक्य रूप सभी में मिलते हैं। इन रूपों के अंतःसंबंध को उस भाषा के संदर्भ में रूपांतरण के नियमों से समझाया जा सकता है।

भाषा तुलना के आधार पर ही विद्वान इस तरह के सामान्य तत्वों का पता लगा सकते हैं। इस संदर्भ में कार्य करते हुए भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा के विविध पक्षों पर कई महत्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित किए हैं, जैसे भाषाओं में पक्ष, भाषाओं में काल की अवधारणा, भाषा में कर्ता की संकल्पना आदि। फ़िलमोर नामक अंग्रेज़ी विद्वान ने भाषाओं में कारक की सार्वभौमिकता पर एक महत्वपूर्ण कार्य संपन्न किया है। परंपरागत व्याकरणों के आधार पर यह माना जाता है कि संस्कृत में आठ कारक हैं, लैटिन में 5 कारक हैं, अंग्रेज़ी में 3 ही कारक हैं। फिलमोर कहता है कि भाषाओं में कारक कितने हैं यह महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण यह है कि कारकीय संबंध क्या है और वाक्य संरचना में उसका क्या काम है। फ़िलमोर के अनुसार निम्नलिखित दोनों वाक्यों में दरवाज़ा (door) कर्म ही है, चाहे दूसरे वाक्य में वह व्याकरणिक कर्ता के स्थान पर आया हो।

राम ने दरवाज़ा खोला।	Ram opened the door.
दरवाज़ा खुला।	The door opened.

जब हम कहते हैं कि '[illegible]ना बन गया', हम वास्तविक कर्ता का उल्लेख नहीं कर रहे हैं, लेकिन वास्तविक कर्ता के अभाव की कल्पना भी नहीं कर रहे हैं। सार्वभौम व्याकरण यही प्रयास करता है कि संप्रेषण की स्थितियों को भाषा की रचना से जोड़ा जाए जिससे विचार

और व्यारकण की अभिन्नता को मानव मात्र की भाषा में देखा जा सके। भाषा तुलना व्यापक संदर्भ में सार्वभौम व्याकरण की तलाश में एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

18.5 भाषा तुलना और अनुप्रयोग के क्षेत्र

यहाँ हम भाषा तुलना के व्यावहारिक लाभ तथा उपयोग की चर्चा करेंगे। अनुवाद, भाषा शिक्षण आदि क्षेत्र भाषाविज्ञान के क्षेत्र में प्रतिपादित सिद्धांतों का उपयोग करते रहे हैं और अपने कार्य क्षेत्र में उन सिद्धांतों के अनुप्रयोग (application) का लाभ उठाते रहे हैं। इसी कारण कुछ विद्वान अनुवाद, भाषाशिक्षण आदि विषय क्षेत्रों को अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान ही क्षेत्र मानते हैं। हम उस विवाद में न जाकर यह देखना चाहेंगे कि भाषा तुलना से इन क्षेत्रों को क्या लाभ मिलता है।

18.5.1 अनुवाद और भाषा तुलना

अनुवाद में दो भाषाओं का स्थान है - स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा। यह कहा जाता है कि एक भाषा के तत्वों को दूसरी भाषा के समतुल्य तत्वों से स्थानांतरित करना ही अनुवाद है। इस तरह दोनों भाषाओं के समतुल्य तत्वों की पहचान भाषा तुलना से हो सकती है - चाहे यह ज्ञान कुशल अनुवादक की प्रज्ञा से निहित हो, चाहे भाषावैज्ञानिक शोध के आधार पर प्रतिपादित किया गया हो।

भाषा वैज्ञानिक ध्वनि, लिपि, शब्द, वाक्य आदि विभिन्न स्तरों पर भाषा की तुलना कर समतुल्य तत्वों की जानकारी देते हैं। अगर प्रयोक्ता या अनुवादक समतुल्य रूप न पहचान सके, तो भ्रामक अनुवाद होता है। इसलिए अनुवादक के लिए दोनों भाषाओं पर समान अधिकार चाहिए, साथ ही दोनों भाषाओं के तुलनात्मक विवरण का ज्ञान भी चाहिए।

लिपि स्तर पर हम भारतीय अंग्रेज़ी [u] को भारतीय [उ, ऊ] के समान मान लेते हैं। Put 'पुट' जैसे कुछ शब्दों को छोड़कर [u] का समानवर्ण [अ] है, जिसे हम कई अंग्रेज़ी शब्दों में देखते भी हैं। जैसे, हंटर, शंटिंग, कैंपस, बस। फिर भी हम अपरिचित तथा व्यक्तिवाचक संज्ञा शब्दों में [उ] का प्रयोग करने लगते हैं, जैसे बज़ (buzz), गुन्थर (Gunther)।

उच्चारण के स्तर पर हिंदी और द्रविड़ भाषाओं में समानता होते हुए भी अंग्रेज़ी की मध्यस्थता के कारण हिंदी अनुवादक दक्षिण के शब्दों के उच्चारित रूप को नहीं पहचानते। Muthu (मुत्तु), संस्कृत मौक्तिक से निकला तद्भव रूप है, जैसे हिंदी का 'मोती'। लेकिन अंग्रेज़ी के माध्यम से देखने पर अनुवादक इसे 'मुथु' लिखते हैं। इसी तरह थिम्मय्या, सुमथि, थिरुवारुर आदि लिप्यंतरित रूप (उच्चारण न पहचानने के कारण) गलत हैं।

शब्द और *अर्थ* के स्तर पर विस्तृत अध्ययन और व्यापक शोध अनुवादक के लिए परम आवश्यक है। भाषाओं में शब्द और अर्थ का सामंजस्य एक जैसा नहीं होता। दो उदाहरण लीजिए :

(i)	हिंदी अभ्यास	अंग्रेज़ी	practice
	अंग्रेज़ी practice	हिंदी	अभ्यास रिवाज़
	अंग्रेज़ी exercise	हिंदी	अभ्यास व्यायाम
(ii)	अंग्रेज़ी authority	हिंदी	प्राधिकार (अमूर्त भाव) प्राधिकरण (संस्था) प्राधिकारी (व्यक्ति)
		हिंदी	विशेषज्ञ विद्वान

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि अनुवादक को यह जानना चाहिए कि शब्द का किस संदर्भ में प्रयोग हुआ है और दूसरी भाषा में कौन-सा समतुल्य प्रयोग है। इसके अभाव में ही निम्न प्रकार के भ्रामक और हास्यास्पद अनुवाद हो जाते हैं।

मूल	**सही अनुवाद**	**भ्रामक अनुवाद**
One lakh sleepers washed away in the river	एक लाख रेल के स्लीपर नदी में बह गये।	एक लाख सोने वाले नदी में बह गये।
Sub-marine piped laid	जलमग्न पाइप बिछाये गये।	पनडुब्बी पाइप बिछाये गये।

पदबंध स्तर पर प्रायः भारत के अन्य प्रांतों के निवासी 'घर को जाना', 'स्कूल को जाना' आदि का प्रयोग करते हैं। तुलना करने पर ज्ञात होता है कि हिंदी में 'जाना' क्रिया के प्रयोग में गंतव्य स्थान के साथ 'को' का प्रयोग नहीं होता।

क्रियाओं के प्रयोग में भाषाओं में काफ़ी अंतर होता है। ऐसे स्थलों में क्रिया रचना की तुलना हमें समतुल्य प्रयोग की जानकारी देती है। तुलना के ऐसे कुछ उदाहरण देखिए :

(i) गुलाब लाल होता है। — Rose is red.
यह गुलाब ताज़ा है। — This rose is fresh

'है' तात्कालिक क्रिया है, वस्तुस्थिति सूचित करती है, 'होता है' नित्य सत्य सूचित करती है, सार्वभौम क्रिया है।

(ii) He went to Agra. — वह आगरा गया।
He worked throughout the day. — वह पूरा दिन काम करता था।

अंग्रेज़ी की एक क्रिया हिंदी में दो संदर्भों में आती है।

(iii) She saw a book. — उसने एक किताब देखी।
She sold the book. — उसने घर बेच दिया।

हिंदी की रंजक क्रिया और अंग्रेज़ी की artick की व्यवस्था में तालमेल है। यहाँ शाब्दिक स्तर पर a/the या बेच देना ही समतुल्यता नहीं बता सकते।

(iv) वह स्कूल में पढ़ता है।
वह इस समय किताब पढ़ रहा है।

तमिल भाषा में दोनों स्थितियों में क्रिया 'पटिक्किरान' का प्रयोग होता है।

ऐसे संदर्भों में भाषा तुलना हमें समतुल्य प्रयोग की सूचना देती है, जिससे अनुवादक उपयुक्त प्रयोग चुन सके।

वाक्य विन्यास के स्तर पर भी भाषाओं में अंतर के कई स्थल हैं। यहाँ हम केवल दो-तीन प्रमुख उदाहरण लेंगे।

(i) अंग्रेज़ी 'have' के वाक्यों के समतुल्य रूप :

I have a pen	मेरे पास एक कलम है।
I have a servent	मेरे पास एक नौकर है।
I have two sons	मेरे दो बेटे हैं। (तमिल में 'मुझे दो बेटे हैं')
Animals have tails	जानवरों के पूँछ होती है।
These houses have two rooms	इन घरों में दो कमरे हैं।
I have fever	मुझे बुखार है।
I have patience	मुझमें धैर्य है।

ेभिन्न स्थितियों में अलग-अलग वाक्य संरचनाओं के प्रयोग के कारण उपयुक्त समतुल्य ाक्य चुनना आवश्यक है। अन्यथा 'मेरे पास दो बेटे हैं' जैसा भ्रामक और निरर्थक अनुवाद ोगा।

ii) हिंदी और अंग्रेज़ी में वाच्य की व्यवस्था है, लेकिन अंग्रेज़ी में भाववाच्य नहीं है। समतुल्य वाक्य देखिए :

मुझसे बोलना नहीं जाएगा।	I just can't speak.
मुझसे यहाँ बैठा नहीं जा रहा है।	I just can't sit here.
हमसे सोया नहीं गया।	We just couldn't sleep.

हाँ हमें संरचना की समतुल्य रचना नहीं, संदर्भगत समतुल्य प्रयोग पर बल देना होगा।

iii) वह काम कर चुका है	He has finished the work.
उसने काम पूरा नहीं किया है	He has not finished the work.

ंदी में 'चुक' के साथ 'नहीं' का प्रयोग नहीं होता। इस कारण निषेध की स्थिति में हमें न्न प्रकार की वाक्य रचना अपनानी पड़ती है। इसी तरह

I have told him	मैंने उसको बता दिया है
	मैं उसको बता चुकी हूँ

हाँ एक अंग्रेज़ी वाक्य के लिए दो विकल्प उपलब्ध हैं। अनुवादक के लिए आवश्यक है कि ह उपलब्ध विकल्पों और प्रयोग की सीमाओं को ध्यान में रखकर समतुल्य रूप चुने।

8.5.2 भाषा-शिक्षण

ाषा शिक्षण में पाठ्य बिंदुओं के चयन (selection), अनुस्तरण (gradation) तथा कक्षा प्रस्तुतीकरण (presentation) में ाविज्ञान के सिद्धांतों और मान्यताओं का उपयोग ता ही है। अन्य भाषा या विदेशी भाषा के रूप में भाषा शिक्षण के शिक्षण में भाषा की लना का अत्यंत महत्व है। मान लीजिए कि छात्र 'भारत' को 'बारत' और घर को 'गार' लता है तो सजग अध्यापक समझ जाता है कि छात्र महाप्राण ध्वनियों से परिचित नहीं है, भवतः उसकी भाषा में महाप्राण ध्वनियाँ नहीं हैं। इस तरह छात्रों की कठिनाइयों को हचानने और निवारण करने में भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन अध्यापकों की बहुत हायता करता है। इसी तरह वाक्य के स्तर पर छात्र 'मैं खाना खाया हूँ'। 'मैं खाना खायी ' बोलें तो अध्यापक समझ सकता है कि छात्रों को 'ने' की संरचना से परिचित कराने ी आवश्यकता है।

यन के अंतर्गत हम यह निर्णय करते हैं कि छात्रों को क्या और कितना पढ़ाया जाए। रंभ से हिंदी सीखने वाले अन्य/विदेशी भाषी छात्र भाषा के सभी अंगों से परिचित नहीं ते। अपनी भाषा के प्रभाव के कारण उन्हें ध्वनि, लिपि, वर्तनी, शब्द, वाक्य सभी अंगों में ठिनाई होती है और वे गलतियाँ भी करते हैं। हमें यह चुनना होगा कि उन्हें कौन-कौन से ाषा तत्व सिखाए जाएँ। अनुस्तरण में हम उन पाठ्य बिंदुओं को प्रस्तुत करने के क्रम की र्चा करते हैं। इन दोनों सोपानों में हमारे लिए यह जानना आवश्यक होगा कि छात्रों की ातृभाषा क्या है, उसकी लक्ष्य भाषा से भिन्नता के स्थल क्या हैं, जहाँ कठिनाई हो सकती किन पाठ्य बिंदुओं पर बल दिया जाना है आदि। चयन और अनुस्तरण में भाषा तुलना ाठ्यचर्या निर्धारण और पाठ्य सामग्री निर्माण में योगदान करती है।

ीखने वालों की मातृभाषा की पहचान भाषा शिक्षण की पूरी योजना को दिशा देती है। गर हम चीनी या स्पैनिश भाषा-भाषी को हिंदी सिखाने की योजना तैयार करें तो हमें ापि, उच्चारण सिखाने में भी काफ़ी समय लगाना पड़ेगा और धीरे-धीरे एक-एक करके

वाक्य संरचनाओं को प्रस्तुत करना होगा। अगर हम गुजराती भाषी को हिंदी सिखाना चाहें, तो लिपि, उच्चारण, वर्तनी में न्यूनतम समय लगेगा और 'माँ ने उस लड़के को स्टेशन भेज दिया है' जैसी रचना भी शुरू में ही आराम से सिखा सकते हैं। (क्योंकि गुजराती की वाक्य रचना 'माँ ए ओ छोकरा नू स्टेशन मोकलावी दीधो' हिंदी से बहुत मिलती है)। इस कारण सगोत्रीय भाषाओं (cognate language) का शिक्षण विदेशी भाषा शिक्षण से भिन्न होगा और इसका आधार भाषा की तुलना ही है।

भाषा शिक्षण का दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है कक्षा में अध्यापक द्वारा सामग्री का प्रस्तुतीकरण। इस सोपान में अध्यापक के सामने छात्रों की वास्तविक कठिनाइयाँ प्रकट होती है। अध्यापक छात्रों की त्रुटियों को पहचानता है, उनके कारण का अनुमान करता है और आवश्यक उपचार ढूँढ़ता है। त्रुटियों को पहचान कर उनका उपचार करना उपचारात्मक शिक्षण (remedial teaching) कहलाता है। इसमें अध्यापक भाषा तुलना में सहायता लेता है।

नये पाठ्यबिंदुओं को प्रस्तुत करते समय भी अध्यापक छात्रों की मातृभाषा के ज्ञान का उपयोग कर सकता है। इसके लिए उसके पास तुलनात्मक दृष्टि होनी चाहिए। उदाहरण के तौर पर हिंदी की क्रिया 'किया करो' का अंग्रेज़ी में समतुल्य प्रयोग क्रिया विशेषण regularly, constantly से सिद्ध होगा :

नियमित रूप से व्यायाम किया करो। Exercise regularly.

ज़ब छात्रों को इस समतुल्य प्रयोग से अवगत करा दिया जाए, तो उन्हें निम्नलिखित वाक्यों के संदर्भ को समझने में आसानी होगी :

रोज़ एक पन्ना लिखा करो।
मुझे तंग मत किया करो।

18.5.3 कोशविज्ञान

भाषा में विविध प्रकार के शब्दकोशों के निर्माण के सिद्धांत और व्यावहारिक ज्ञान को कोशविज्ञान कहते हैं। किसी भी कोश के निर्माण में भाषा के सम्यक् ज्ञान की आवश्यकता होती है, क्योंकि कोशकार कोश की प्रविष्टियों के चयन और निर्धारण भाषा के सभी अंगों के ज्ञान का आधार लेता है और प्रविष्टियों में जो सूचनाएँ देता है उसके संदर्भ में भी उसे भाषाई ज्ञान की आवश्यकता है जैसे उच्चारण (ध्वनिविज्ञान), वर्तनी का रूप (वर्णविज्ञान), लिंग, वचन आदि व्याकरणिक सूचनाएँ (वाक्यविज्ञान) शब्दों के अर्थ, प्रयोग, पर्याय, विलोम आदि (अर्थविज्ञान)। इस कारण कोशविज्ञान को कई विद्वान अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की ही एक शाखा मानते हैं।

द्विभाषी कोश के निर्माण में इन सभी अंगों के संदर्भ में पांडित्यपूर्ण तुलनात्मक दृष्टि आवश्यक है। यहाँ हम वाक्य विन्यास और शब्दार्थ संबंधी कुछ पहलुओं को लेकर भाषा तुलन। की आवश्यकता की चर्चा करेंगे।

हिंदी में निपात नाम का एक शब्द वर्ग है जिसके दो प्रमुख सदस्य हैं 'ही' और 'तो'। शब्द स्तर पर इनका अनुवाद नहीं हो सकता, क्योंकि अंग्रेज़ी में इनके समतुल्य शब्द नहीं हैं। हिंदी के इन शब्दों को हम अंग्रेज़ी में वाक्य के स्तर पर ही, समान संदर्भ से समझ सकते हैं। जैसे :

तुम तो पागल हो	You are just crazy
हम तो चार बजे निकल गए	Well, we had left at four
छोटी दुकान है, घी तो नहीं मिलेगा	We sure cant get 'ghee' here
अच्छा, पानी तो मिलेगा	We can at least get some water

ोशकार को चाहिए कि वह दोनों भाषाओं की तुलना करे, इस तरह के तमाम प्रयोगों को कट्ठा करे और प्रयोग के स्तर समतुल्यता के प्रकार निश्चित करे। इसमें वह व्याकरण थों से सहायता ले सकता है, लेकिन प्रस्तुतीकरण में द्विभाषी दृष्टि आवश्यक है।

र्थ देने में भाषा के प्रयोग संदर्भ की पकड़ ज़रूरी है। अगर कोशकार father का अर्थ ाप' दे दे, तो विदेशी भाषी पूछ सकता है :

यह कार तुम्हारे बाप की है?

ास्तव में वह जानना चाहता है कि यह गाड़ी तुम्हारे पिता जी की है? उसका उद्देश्य गाली ना नहीं है। लेकिन गलत शब्द के प्रयोग से कैसा अनर्थ हो सकता है, इसके लिए एक सरा उदाहरण लीजिए। शब्द है pig शाब्दिक अर्थ सुअर। कोशकार ने मुहावरेदार प्रयोग के दर्भ में दूसरा अर्थ भी दिया है – झिड़कने का शब्द। अगर हम किसी व्यक्ति को अंग्रेज़ी में ig कहेंगे, तो उसका अर्थ इतना ही होगा – तुम नासमझ हो। याने हिंदी में इसका समान हावरेदार प्रयोग होगा – तुम उल्लू हो। लेकिन हिंदी में 'सुअर' कहें तो वह ज्यादा गंभीर र्थ देता है – तुम घृणित हो, निकृष्ट या नीच हो। इस कारण कोशकार को शब्दार्थ देने में ब्दों के सांस्कृतिक संदर्भों को जानना होगा।

ब्दों के सामाजिक संदर्भों को भी कोशकार को प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करना होगा। हिंदी 'तुम' और 'आप' दो सर्वनाम हैं। आमतौर पर व्याकरण में इन्हें क्रमशः एकवचन और हुवचन कहते हैं। सच्चाई यह है कि ये दोनों एकवचन हैं। इनमें अंतर घनिष्ठता और ौपचारिकता का है। दोनों के बहुवचन रूप हैं – तुम लोग, तुम दोनों, तुम सब, आप लोग, ाप दोनों, आप सब। भाषाओं की तुलना से फिर दूसरी भाषा के समान संदर्भों और प्रयोगों ो समतुल्यता के आधार पर प्रस्तुत करना होगा।

र्थ के प्रतिपादन में नामांकन उपयोगी होता है, जिससे पाठक यह समझ सके कि अमुक ब्द किन शैलियों में प्रयुक्त होगा। हिंदी में कमल शब्द के कई पर्याय हैं – जलज, नीरज, कज, पद्म, राजीव, आमतौर पर कोश इन सभी शब्दों के लिए अंग्रेज़ी अर्थ lotus देंगे। किन प्रकार्य की दृष्टि से ये सभी समान नहीं हैं। केवल 'कमल' बोलचाल का शब्द है, ष सभी साहित्यिक शैली के शब्द हैं। अतः शेष शब्दों के सामने 'साहित्यिक शब्द' लिखना ावश्यक होगा, अन्यथा छात्र अपनी इच्छा से कह सकते हैं – उस तालाब में बहुत से जीव खिले हैं। इस तरह के अन्य नामांकन के उदाहरण हैं :

घामड़	(बोली)	–	बुद्धू
प्रपत्र	(पारिभाषिक)	–	सबके लिए सूचना का पत्र
मूतना	(अशिष्ट)	–	पेशाब करना
पनसाल	(आर्ष/अप्रचलित)	–	जहाँ मवेशी पानी पीते हैं

ोशकार को अर्थविज्ञान के तुलनात्मक अध्ययनों से ऐसे शब्दों की विशेषताओं की ानकारी मिल सकती है।

8.6 सारांश

लनात्मक भाषाविज्ञान लगभग ढाई सौ वर्ष पुराना अध्ययन क्षेत्र है, जो आधुनिक ाषाविज्ञान का पूर्व रूप है। तुलनात्मक भाषाविज्ञान की सहायता से ही लोगों ने विश्व की भी भाषाओं का अध्ययन किया, उन्हें परिवारों में बाँटा। भाषाओं की तुलना करते समय ाद्वानों ने यह भी अनुभव किया कि एक परिवार की दो भाषाओं में अंतर ऐतिहासिक

कारणों से, भाषा परिवर्तन के द्वारा आया है। इससे विद्वानों में ऐतिहासिक भाषाविज्ञान में रुचि बढ़ी।

भाषा तुलना आधुनिक अध्ययन क्षेत्र है। हम विश्व की किन्हीं दो भाषाओं की तुलना कर सकते हैं। इससे भी भाषा के अध्ययन का एक नया क्षेत्र खुला। हम विश्व की भाषाओं की रचनाओं का अध्ययन करते हुए भाषा के उन तत्वो और अभिव्यक्तियों तक पहुँचते हैं, जो सार्वभौमिक रूप से सभी भाषाओं में पाए जाते हैं। इस तरह के अध्ययन से हम सार्वभौम व्याकरण की संकलम्ना को साकार करने में सफल हो सकते हैं।

भाषा तुलना के व्यावहारिक उपयोग क्या हैं? संरचनात्मक भाषाविज्ञान के सिद्धांतों के अनुसार संरचना की दृष्टि से भिन्न तत्व कठिनाई पैदा कर सकते हैं। उन्होंने भाषा तुलना के आधार पर इन विषम स्थलों को ढूँढा और उनके निवारण के उपायों को पाठ्यक्रम में समाविष्ट किया। इसे वे व्यतिरेकी विशेषण कहते हैं। उनके अनुसार व्यतिरेकी विश्लेषण पाठ्यक्रम निर्धारण और कक्षा में प्रस्तुतीकरण आदि के संदर्भ में अत्यंत उपयोगी है।

व्यतिरेकी विश्लेषण विपरीत रचनाओं की स्थिति में दोष का पूर्वानुमान करता है, जिससे ऐसे प्रसंगों में गलती (ऋणात्मक अंतरण या गलत आदत पड़ना) होने ही न दी जाए। चॉम्स्की का मनोवादी सिद्धांत इन दोनों बातों का खंडन करता है। भाषा आदत नहीं है और ऋणात्मक अंतरण जैसी कोई बात नहीं है। हम सब भाषा सीखते समय नियम निर्धारण करते हैं और उस प्रक्रिया में दोषों का होना सहज ही नहीं, दुर्निवार्य हैं। हममें से कोई बिना गलती किए कोई भाषा नहीं सीख सकता। चॉम्स्की यह भी कहते हैं कि दोषों के पूर्वानुमान की संकल्पना भी व्यावहारिक नहीं है। हम भिन्न रचनाएँ होने पर कई जगह गलतियाँ नहीं करते। उनके अनुसार विचारों को अभिव्यक्ति तक लाते समय अक्सर नियम साथ नहीं देते। ऐसे ही दोषों से हम यह जान सकते हैं कि मन में भाषा के अर्जन की प्रक्रिया कैसे काम कर रही है।

इकाई के अंत में भाषा तुलना के व्यावहारिक पक्ष पर प्रकाश डाला गया है। अनुवाद, भाषा शिक्षण, कोशविज्ञान आदि अनुप्रयोग के क्षेत्रों में दो भाषाओं की तुलना अपने कार्य को समुचित रूप से संपन्न करने में हमारी सहायता का सकती है।

18.7 अभ्यास प्रश्न

1. **निबंधात्मक प्रश्न**
   (1) व्यतिरेकी विश्लेषण और भाषा दोष विश्लेषण की तुलना कीजिए।
   (2) भाषा के अनुप्रयोग के क्षेत्रों में भाषाओं की तुलना कहाँ तक हमारे कार्य में सहायत होती है?

2. **टिप्पणियाँ**
   (1) भाषा दोष (त्रुटि विश्लेषण)
   (2) भाषा शिक्षण में भाषा तुलना की उपादेयता
   (3) भाषाविज्ञान में भाषा तुलना की उपादेयता

काई 19 शैलीविज्ञान

ाई की रूपरेखा

0 उद्देश्य
1 प्रस्तावना
2 शैली क्या है?
19.2.1 पाश्चात्य काव्यशास्त्र में शैली
19.2.2 भारतीय साहित्यशास्त्र में शैली
19.2.3 आधुनिक शैली संबंधी अवधारणाएँ
3 शैलीविज्ञान क्या है?
19.3.1 बहिरंग आलोचना और अंतरंग आलोचना
10.3.2 शैलीविज्ञान का नामकरण
4 शैलीविज्ञान का विकास
5 शैलीविज्ञान और भाषाविज्ञान
6 शैलीविज्ञान और साहित्यिक आलोचना
7 कविता का शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण
8 सारांश
9 अभ्यास प्रश्न

.0 उद्देश्य

ुत इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- बता सकेंगे कि शैली से क्या अभिप्राय है;
- शैलीविज्ञान के स्वरूप, क्षेत्र ओर विकास पर प्रकाश डाल सकेंगे;
- शैलीविज्ञान और भाषाविज्ञान में अंतर बता सकेंगे;
- शैलीविज्ञान और साहित्यिक आलोचना में अंतर कर सकेंगे; और
- किसी साहित्यिक कृति का शैलीविज्ञानिक विवेचन करने का प्रयास कर सकेंगे।

.1 प्रस्तावना

ा जानते हैं कि अब साहित्य का अध्ययन या तो काव्यशास्त्रीय दृष्टि से होता रहा है या ावैज्ञानिक दृष्टि से। वास्तव में ये दोनों एकांगी दृष्टिकोण हैं। इनमें से किसी एक दृष्टि अध्ययन करने पर साहित्य का सही और सार्थक विश्लेषण नहीं हो पाता, क्योंकि हेत्य एक भाषिक कला है। इसमें कलात्मकता, सर्जनात्मकता तथा साहित्यिकता की खता तो रहती ही है किंतु भाषा की भूमिका भी गौण नहीं होती। साहित्य का जन्म भाषा गर्भ से ही होता है। भाषा ही इसकी शक्ति है। भाषा के बिना साहित्यकार अपनी हेत्य रचना नहीं कर पाता। भाषा की शक्ति से ही वह अपने भावों, विचारों और अनुभवों ा अनुभूतियों की पूर्ण अभिव्यक्ति करने में समर्थ होता है। भाषा की इस शक्ति को शैली ते हैं। इस प्रकार शैली भाषा का सर्जनात्मक प्रयोग है जिसमें कलात्मक सौंदर्य और ेक संरचना का संयोजन होता है। अतः शैली का अध्ययन साहित्य के अध्ययन से ाक व्यापक होता है, क्योंकि शैली का अध्ययन भाषा और साहित्य के विभिन्न मानकों पृष्ठभूमि में होता है। इस अध्ययन को साहित्य का भाषापरक अध्ययन कहते हैं जिसे ोविज्ञान कहा गया है। इसमें साहित्य के भीतर भाषा के परीक्षण के लाभ के साथ-साथ भी पता चलता है कि साहित्य और भाषा एक दूसरे का पोषण और परिमार्जन किस ार करते हैं। इसी कारण यहाँ शैली और शैलीविज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए

उसके सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्ष का विवेचन किया जा रहा है। वस्तुतः शैलीविज्ञान साहित्य को समझने-समझाने का अध्ययन है। इसके एक ओर शैली के साक्ष्य पर साहित्यिक कृति की संरचना और बुनावट का विवेचन होता है तो दूसरी ओर कृति में निहित सर्जनात्मकता और साहित्यिकता का उद्घाटन होता है।

19.2 शैली क्या है?

मनुष्य सृजनशील प्राणी है। वह विभिन्न संदर्भों, स्थितियों और उद्देश्यों से विभिन्न प्रकार से भाषा का प्रयोग करता है। भाषा के ये प्रकार विविधता लिए हुए होते हैं। यह विविधता और विषमता काल-विशेष, स्थान-विशेष, समाज-विशेष, व्यक्ति-विशेष, विधा-विशेष और प्रयुक्ति-विशेष आदि के कारण पाई जाती है। काल-विशेष मे भाषा के विकास-क्रम के विभिन्न चरणों में भाषा के कई रूप मिलते हैं जैसे – पुरानी हिंदी और आधुनिक हिंदी अथवा छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि के हिंदी-रूप। स्थान-विशेष में विभिन्न क्षेत्रों के भाषा-प्रकार अर्थात् अवधी, ब्रज, भोजपुरी, खड़ीबोली आदि बोलियाँ देखी जा सकती हैं। समाज-विशेष में समाज के विभिन्न वर्गों और स्तरों – शिक्षित और अशिक्षित, उच्च वर्ग और निम्न वर्ग आदि की शैलियाँ दिखाई देती हैं। व्यक्ति-विशेष में गांधी, नेहरु, निराला, पंत, रामचंद्र शुक्ल आदि की विशिष्ट शैलियाँ मिलती हैं। विधा-विशेष में उपन्यास, नाटक, कहानी आदि में भाषा के अलग-अलग रूप मिल जाते हैं। प्रयुक्ति-विशेष में विशिष्ट कार्यक्षेत्रों और विषयक्षेत्रों के भाषा-भेद अर्थात् कार्यालयीन, वाणिज्यिक, तकनीकी, साहित्यिक आदि शैलियाँ मिलती हैं। इस प्रकार मनुष्य की भाषा में जो विविधताएँ पाई जाती हैं उन्हें भाषा की शैलियाँ कहा जाता है। यद्यपि ये भाषा-भेद, एक-दूसरे से भिन्न हैं किंतु अलग-अलग उद्देश्यों, संदर्भों और स्थितियों में अभिव्यक्ति की अलग-अलग रीति होने के कारण ये शैली कहलाते हैं।

19.2.1 पाश्चात्य काव्यशास्त्र में शैली

पश्चिम में 'स्टाइल' शब्द मुख्यतः लेखन की विशेषता के रूप में आया है। इस शब्द की व्युत्पत्ति लेटिन भाषा के 'स्टीलस' (Stilus) से हुई जिसका अर्थ था 'लौह लेखनी'। प्राचीन रोमनकाल में इस लौह लेखनी से मोमचढ़ी पट्टियों पर या कागज़ों पर लिखा जाता था, किंतु बाद में यह शब्द अभिव्यक्ति का प्रतीक बन गया। इसका प्रयोग 'लिखने की विशिष्ट शैली' अथवा 'स्व की अभिव्यक्ति की रीति' के रूप में होने लगा। धीरे-धीरे इसकी संकल्पना का विस्तार हुआ और इसका प्रयोग साहित्येतर क्षेत्रों में अर्थात् बोलने-चालने, खेलने-कूदने, लड़ने-भिड़ने, नाचने-गाने, पढ़ने-पढ़ाने, खाने-पीने, वेश-भूषा आदि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में होने लगा है। इसकी व्यापकता का प्रमाण अंग्रेज़ी के केवल आक्सफ़ोर्ड कोश में ही मिल जाता है। इसमें इसके उप मुख्य अर्थ दिए गए हैं जिनें 28 संज्ञा के रूप में और 6 क्रिया के रूप में तथा 70 अर्थ गौण दिए गए हैं। 'शैली' शब्द का प्रयोग अंग्रेज़ी के 'स्टाइल' शब्द के आधार पर हो रहा है और यह प्रायः अभिव्यक्ति की पद्धति या रीति का बोध कराती है।

यह ध्यान देने की बात है कि पाश्चात्य काव्यशास्त्र में शैली का तार्किक विवेचन बहुत कम हुआ है किंतु उसकी विशेषताओं और उसके गुण-दोषों के बारे में काफ़ी चर्चा हुई है। सर्वप्रथम प्लेटो ने काव्यभाषा का विवेचन करते हुए शैली की व्याख्या न कर उसके तीन भेद बताए – सहज, विचित्र और मिश्रित शैली। अरस्तु ने शैली की महत्ता पर चर्चा करते हुए स्पष्टता और औचित्य शैली के दो गुण माने हैं। होरेस ने शैली में विवेक, शब्द-योजना, स्पष्टता आदि गुणों को माना है। अट्ठारहवीं शताब्दी से पूर्व शैली का प्रयोग कवि के लिए शिक्षागत होता था लेकिन उसके बाद शैली का विश्लेषण काव्य के संदर्भ में होने लगा। वास्तव में काव्य में संवेदनशीलता के साथ भाषा-प्रयोग का समन्वय रहता है। कवि की

भाषा में बहुत से ऐसे नए शब्द अथवा शब्दों के नए अर्थ प्रयुक्त होते हैं जिनमें अभिव्यंजना-शक्ति होती है। वाल्टर रेले ने शब्द और अर्थ की अभिन्नता पर बल देते हुए 'अर्थ के लिए शब्द ढूँढ़ना और शब्द के लिए अर्थ ढूँढ़ना' की बात कही है। इस प्रकार पाश्चात्य काव्यशास्त्र में भाव और भाषा के पारस्परिक संबंधों पर बल दिया गया है। पहले भाव तथा विचार पैदा होते हैं और उनके अनुकूल भाषा बनती है और तदनंतर भाषा की काया में शैली की प्राण-प्रतिष्ठा होती है। इसीलिए पश्चिमी आचार्यों ने भव्य शैली के लिए सरलता, स्पष्टता, प्रभावोत्पादकता, लयात्मकता आदि को किसी-न-किसी प्रकार से भाषा में अनुभूत माना है। शैली एक ऐसी विलक्षण और विशिष्ट पद्धति है जिसमें जातिगत तथा व्यक्तिगत विशिष्टताओं का, प्राचीनता एवं नवीनता का, स्थायित्व और परिवर्तन का एक विचित्र समन्वय और संयोजन होता है।

19.2.2 भारतीय साहित्यशास्त्र में शैली

भारतीय वाङ्‌मय के लिए 'शैली' शब्द नया शब्द नहीं है हालांकि इस पर प्रत्यक्ष रूप से चर्चा नहीं हुई। इस शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'शील' धातु से मानी गई है – शीलमेव स्वार्थोष्यङ्, डीपिः य लोपः। शील के अनेक अर्थ दिए गए हैं – स्वभाव, लक्षण, झुकाव, आदत, चरित्र आदि। इसलिए 'शील' शब्द का संबंध व्यक्ति की विभिन्न विशेषताओं से जुड़ा हुआ है। बाद में इसका प्रयोग वास्तुकला, चित्रकला, स्थापत्यकला, संगीतकला आदि विभिन्न कलाओं में होता रहा है। साहित्य में अभिव्यक्ति की रीति के अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण भारतीय साहित्यशास्त्र में इसके लिए वृत्ति, प्रवृत्ति, रीति और काव्यमार्ग शब्दों का प्रयोग मिल जाता है।

भारतीय साहित्यशास्त्र में रीति सिद्धांत शैली के काफ़ी निकट जा पड़ता है किंतु इसमें वक्रोक्ति, ध्वनि, अलंकार, रस और औचित्य सिद्धांतों का भी कम योगदान नहीं रहा। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में इसका प्रतिपादन करते हुए जिन वृत्तियों और प्रवृत्तियों का विवेचन किया है उनमें संसार के विभिन्न देशों की वेशभूषा, भाषा, आचार व व्यहवार, वार्तालाप आदि का विश्लेषण मिलता है। यहाँ से रीति-संबंधी संकेत मिल जाते हैं क्योंकि वृत्ति मानसिक तत्व है, इसका व्यक्त रूप प्रवृत्ति है और इन प्रवृत्तियों का सामूहिक तथ सामान्यीकृत रूप रीति है। भरत ने रीति को वक्ता के स्वभाव, उसकी संस्कृति या उसकी प्रादेशिक विशेषताओं को समीप लाने का प्रयास किया है और उसी के आधार पर दाक्षिणात्य, आवंती, औड्रमागधी और पांचाली चार प्रवृत्तियों का उल्लेख किया। बाद में दंडी ने इन प्रवृत्तियों को वैदर्भ काव्यमार्ग, गौडीय काव्यमार्ग आदि कहा। उन्होंने काव्यमार्गों का यह वर्गीकरण भरत द्वारा प्रतिपादित रसाश्रित गुणों के आधार पर किया और गुण रूपी काव्यप्राण को शैली का नियामक माना तथा अलंकारों को उसका शोभाकारी धर्म। वामन ने काव्यमार्ग को भाषायी आधार पर स्पष्ट करते हुए रीति की अवधारणा रखी और रीति को पदों की विशिष्ट रचना कहा – विशिष्टः पद रचना रीतिः। इस पदरचना की विशिष्टता गुण है – विशेषो गुणात्मा। ये गुण काव्यार्थ के शोभाकारक धर्म हैं। इस प्रकार भरत की प्रवृत्ति और दंडी के काव्यमार्ग को वामन ने रीति की संज्ञा दी है।

भामह ने भारत द्वारा प्रतिपादित प्रवृत्तियों की प्रादेशिकता और वर्गीकरण की ओर ध्यान न देकर उन्हें काव्य के अंतर्गत रखा। काव्य का विवेचन करते हुए शब्द और अर्थ के पारस्परिक संबंधों पर बल दिया – 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्'। भामह ने भाषा और काव्य में अंतर करते हुए सामान्य शब्दार्थ को वार्ता माना। काव्य में शब्द और अर्थ दोनों की वक्रता का अंतर्भाव माना – वक्राभिधेय शब्दोक्तिरिष्टा वाचामलंकृतिः। इस काव्य का मूल अलंकार वक्रोक्ति है जो 'अतिशय उक्ति' या शब्दार्थ की रमणीयता का ही रूप है। वक्रोक्ति के बिना काव्य काव्य नहीं, वरन् सामान्य कथन या वार्ता होता है। तत्पश्चात् कुंतक ने वक्रोक्ति

को अलंकार न मानते हुए कहा कि वक्र कवि व्यापारशालिनी रचना शब्द-अर्थ सहित काव्य के रूप में आनंद प्रदान करने वाली हाती है :

शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापार शालिनी
बंधे व्यवस्थितौ काव्यं तदिवाह्लादकारिणी।

इस प्रकार वक्रोक्ति वह उक्ति अथवा कथन शैली है जो व्यावहारिक दृष्टि से साधारण भाषा प्रयोग से भिन्न तथा विशिष्ट होती है। यह वामन की रीति से अलग नहीं है वरन् इसके अंतर्गत 'विशिष्टता' के सभी गुण आ जाते हैं। इसलिए कुंतक ने वक्रोक्ति के क्षेत्र को व्यापक बनाते हुए उसमें भाषा-संरचना के सभी स्तरों तथा उपस्तरों को अर्थात् वर्णविन्यास वक्रता से प्रबंधवक्रता तक के सभी भेदों-प्रभेदों को सम्मिलित किया है। इसी प्रकार रसवादी आचार्यों ने रस को काव्यात्मा मानते हुए कहा था कि रस काव्य की शक्ति नहीं अपितु उस शक्ति का फल है। आनंदवर्धन ने ध्वनि को काव्यात्मा मानते हुए उसे भाषा का गुण ही माना जिसे शब्द के आधार पर समझा जा सकता है। इस प्रकार काव्य में रीति, वक्रोक्ति, अलंकार, गुण, रस, ध्वनि आदि का उचित नियोजन होने से काव्यत्व स्थिर रह सकता है जो आधुनिक शैली-विवेचन का भी मूल दृष्टिकोण है।

हिंदी में शैली पर शास्त्रीय विवेचन कम हुआ है किंतु उस पर विभिन्न विद्वानों ने यत्र-तत्र अपने विचार रखे हैं। श्यामसुंदर दास ने कवि या लेखक की शब्द-योजना, वाक्यांशों का प्रयोग, वाक्यों की बनावट और उसकी ध्वनि आदि को शैली कहा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने शैली पर प्रत्यक्ष रूप से कोई बात नहीं कि किंतु उन्होंने काव्यभाषा पर चर्चा करते हुए उसके बाह्य रूपों का वर्णन न कर उसके अंतः तत्वों का विश्लेषण किया है। उन्होंने काव्यभाषा के चार तत्व स्वीकार किए हैं। – (1) लक्षणा शक्ति, (2) विशेष रूप-व्यापार सूचक शब्द, (3) वर्णविन्यास और (4) साभिप्राय विशेषण। गुलाबराय शैली को अभिव्यक्ति या गुण कहते हैं जिसे कवि या लेखक अपने मन में प्रभाव को समान रूप से दूसरों तक पहुँचाने के लिए अपनाता है। करुणापति त्रिपाठी ने आकर्षक, रमणीय और प्रभावोत्पादक ढंग से की गई अभिव्यक्ति को शैली कहा है। इस प्रकार हिंदी साहित्य के विद्वानों ने शैली संबंधी गंभीर और सैद्धांतिक चर्चा न करके उसके गुणों आदि को मात्र गिनाया है।

19.2.3 आधुनिक शैली संबंधी अवधारणाएँ

इधर भाषाविज्ञान में साहित्य के इतर अंगो की अपेक्षा भाषाविषयक चिंतन को अधिक महत्व दिया गया है। इससे पहले साहित्य का अध्ययन व्यक्तिगत और आत्मनिष्ठ आधार पर होता था, अतः वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता महसूस की गई। अब शैलीविषयक विवेचन में भाषा के सभी पहलुओं पर विचार किया गया जो वक्ता या लेखक की प्रकृति तथा उसके द्वारा प्रयुक्त आलंकारिक रूपों और वाक्यात्मक अभिरचनाओं की सूचना देते हैं। इस संदर्भ में शैली की विभिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं जो भारतीय साहित्यशास्त्र और पाश्चात्य काव्यशास्त्र पर आधारित हैं। अंतर है केवल विश्लेषण के स्तर में। चूँकि प्रत्येक युग की अपनी संभावनाएँ और विशेषताएँ होती हैं और उसमें भावबोध तथा दृष्टिकोण को समेट कर एक समग्र दृष्टिकोण देने का प्रयास होता है। फिर भी, शैली की कोई निश्चित परिभाषा अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाई। इस समय शैली संबंधी अवधारणाएँ मुख्य रूप से छह मिलती है :

1. **शैली विचारों के आवरण के रूप में :** केंद्रीय विचार या अभिव्यक्ति के साथ एक अतिरिक्त तत्व जुड़ा हुआ है जिसका प्रयोग विचार को प्रभावी ढंग से प्रकट करने के लिए किया जाता है। यही शैली है। किंतु शैली लिखने की कोई पद्धति मात्र हीं है वरन् वह तो कथ्य और अभिव्यक्ति, रूप और वस्तु का कलात्मक संबंध है। विचार के भीतर ही उसका सार्थक भाषिक प्रतीक निहित रहता है। भाषिक प्रतीक के बिना विचार निर्जीव है और शब्द के बिना अर्थ मृतप्राय है। जब कवि या लोक अपने भाव, विचार या अनुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान करता है तो उसे शैली से

पृथक करने का न तो कोई कारण होगा और न ही कोई साधन। सामान्य विचार के लिए सामान्य अभिव्यक्ति होगी और सूक्ष्म विचार विशिष्ट शैली से अभिव्यक्त होंगे। उदाहरण के लिए, 'पाँच बज गए' वाक्य में अभिधा के साथ-साथ व्यंजना भी है और इसी कारण यह कथ्य विशिष्ट हो सकता है। यदि विचार के साथ शैली को जोड़ते हैं तो विचार ही विशिष्ट होगा न कि शैली विचार का अभिलक्षण या आवरण होगी। शैली तो कवि या साहित्यकार के मानव में रूपायित होती है और उसके भाव एवं विचार उसी में व्यक्त होते हैं। अतः शैली को विचार का आरोपित तत्व मानने का कोई आधार नहीं रह जाता।

2. **शैली अलंकरण के रूप में :** कुछ विद्वानों ने शैली को शोभाकारी धर्म के रूप में माना है। इस दृष्टि से शैली भाषा-व्यंजक और अभिधायक तत्वों के संयोजन से बनती है। भाषा के उन अभिलक्षणों से शैली का जन्म होता है जिनसे लोकोत्तर चमत्कार की सृष्टि होती है अर्थात् काव्यगत अलंकरण विशिष्ट भाषा द्वारा संभव है। वास्तव में विभिन्न पद्धतियों या लहजों में पढ़ने से कविता एक रहती है और उसका यह ढंग उसका बाह्य सौंदर्य है। यह शैली का सीमित अर्थ है। शैली का सौंदर्य उसकी आंतरिक संरचना में निहित है। सौंदर्यानुभूति में अलंकार अचल रूप से स्थित नहीं रहते। वे मात्र अपना ही वैचित्र्य प्रदर्शित करते रहते हैं। सौंदर्यानुभूति उत्पन्न करने का यदि प्रयास किया भी गया तो उसमें आंतरिक सौंदर्य नहीं मिलेगा वरन् वह अलंकरण मात्र ही होगा जैसा कि रीतिकालीन काव्य में मिलता है।

3. **शैली व्यक्ति–वैशिष्ट्य के रूप में :** कवि का व्यक्तितव ही उसकी शैली का उत्पादक होता है। इसी के आधार पर ब्यूफो ने 'शैली ही व्यक्ति है' की धारणा प्रस्तुत की और इसीलिए विद्वानों ने व्यक्ति–केंद्रिकता पर शैली का विवेचन किया है। वास्तव में लेखक एवं वक्ता की भाषा विशेष प्रयोजन, घटना, परिस्थिति, स्वभाव एवं प्रकृति, बौद्धिक स्तर, सामाजिक स्तर आदि पर काफी निर्भर रहती है, क्योंकि उसकी अनुभूति और अनुभव उसके वास्तविक जीवन से जुड़े होते हैं और यहीं से उसके व्यक्तित्व की झाँकी मिल जाती है। पंत की भाषा में कोमलकांत पदावली और निराला की भाषा में ओजपूर्ण शब्दावली के जो दर्शन होते हैं, उनसे उनका व्यक्तित्व प्रतिबिंबित होता है। अपने व्यावहारिक जीन, अनुभव, स्वभाव तथा ज्ञान के अनुसार कोई लेखक शुद्ध संस्कृत शब्दों के प्रयोग को अपनी भाषा में अधिक स्थान देता है तो कोई तद्भव शब्दों को। इस प्रकार साहित्य में कवि या लेखक की विभिन्न विशिष्टताएँ अर्थात् उसके पुरुषत्व या नारीत्व, उसकी आयु, उसकी शिक्षा, उसके ज्ञान और अनुभव, सामाजिक या मानसिक स्तर, परंपरा एवं संस्कृति का बोध प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में होता है। शैली संबंधी यह धारणा एकांगी है क्योंकि अभिव्यक्ति की वैयक्तिक विधियाँ विशेष वर्ग का निर्माण करती हैं जिससे शैली के सामान्य स्वरूप अथवा व्यापक परिभाषा का निर्धारण नहीं किया जा सकता। वास्तव में यह एक प्रकार का चयन या विचलन है जो कवि या लेखक के मानसिक रुझान से होता है। कवि अपने विचारों और भावों एवं अनुभूति के संप्रेषण के लिए ईमानदारी तथा यथार्थवादी दृष्टि से भाषा का इस प्रकार संयोजन और चयन करता है जिससे उसमें साभिप्राय तथा ग्राह्य शब्दों का समावेश होता है और उसमें गत्यात्मकता एवं सक्रियता पैदा होती है। यदि वह मनमाने ढंग से भाषा का प्रयोग करता है तो वह शैली 'शैली' न रहकर एक 'ढ़र्रा' या तकियाकलाम बन जाएगी।

4. **शैली प्रतिमान से विचलन के रूप में :** कवि की सर्जनात्मक शक्ति भाषा की सर्जनात्मक शक्ति है और इसीलिए वह मानक का अतिक्रमण करती हुई चलती

है। दूसरे शब्दों में, कवि को 'पोयटिक लाइसेंस' मिला होता है जिससे वह भाषा के सामान्य नियमों का सहेतुक अतिक्रमण कर जाता है। यह न तो उसकी भूल होती है और न ही भाषा निष्पादन की सीमा। यह विचलन या अतिक्रमण व्याकरण की दृष्टि से चाहे सही न हो लेकिन ग्राह्यता अथवा स्वीकार्यता की दृष्टि से अवश्य सही होता है। इसका संबंध व्याकरण से नहीं होता बल्कि भाषा-भाषी समुदाय की भाषा-चेतना से होता है जो इसे समझता है और सहज रूप से स्वीकार करता है। 'कलियाँ खिलखिला रही हैं' और 'चाँद मुस्करा रहा है' वाक्यों में 'कली और चाँद' का मानवीकरण प्रयोग और 'रमेश बहुत चहक रहा है' वाक्य में 'रमेश' का पक्षीकरण-प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से चाहे सही न हो लेकिन संदर्भ में ग्राह्य है और प्रतिमान से विचलन है। इसी में अतिरिक्त अर्थ की प्राप्ति होगी। कलियों के खिलखिलाने से अभिप्राय उपवन का सौंदर्य है और चाँद के मुस्कराने में 'रात्रि का सौंदर्य' सामने आ जाता है। 'रमेश के चहकने' से उसकी वाचालता व्यंजित होती है। इस प्रकार की सर्जनात्मकता उन सभी प्रयुक्तियों के लक्षणा रूप में प्रकट होती है जो अपने में लचीली वृत्ति को धारण किए हुए है और इसका श्रेष्ठ रूप काव्य भाषा में मिलता है। वास्तव में भाषायी विचलन संप्रेषण की सामान्य प्रक्रिया का विच्छेदन है। यह विषय के प्रकार, प्रस्तुतीकरण के उद्देश्य, पाठक के गुणों तथा लेखक के व्यक्तित्व से अभिप्रेरित होती है। यही कारण है कि कुछ विद्वानों ने भाषा के प्रतिमान से विचलन को शैली कहा है क्योंकि सामान्य भाषा और काव्यभाषा में अंतर का मूल कारण विचलन है। अतः शैली का अध्ययन मानक के रूप में न कर मानक से विचलन के रूप में करना समीचीन होगा, क्योंकि भाषिक रूप और संदर्भ के बीच जो संबध होगा, वह विचलन द्वारा ही जाना जा सकेगा। इस विचलन को देश-काल-विशेष, भाषा, बोली, कृति, उद्देश्य, सामाजिक स्थिति आदि के प्रसंग में देखने से रचना के सौंदर्य का सही दिग्दर्शन हो सकेगा। प्रसाद के 'मधुमय अभिशाप' में अभिशाप के प्रिय लगने वाले परिणाम का आभास मिलता है। इसी प्रकार 'अनींदपथ' (केदारनाथ सिंह), 'चौड़ी हवाएँ' (शमशेर), 'तृषित गोद' (निराला) आदि रूपों में आने वाले विशेषण-विपर्यय और मानवीकरण विचलन के अंतर्गत आ जाते हैं। वास्तव में विचलन व्यक्तिपरक या परिस्थितिपरक होता है। कविता या रचना लिखते समय, टेलीफोन पर बात करते समय, घर में माता-पिता, बहन-भाई या पत्नी-बच्चे आदि से बात करते समय, कार्यालय में अधिकारी या अधीनस्थ से, बाहर मित्रों या अन्य परिचित एवं अपरिचित लोगों से बात करते समय भाषा में जो परिवर्तन होते रहते हैं वे भाषायी मानकों से विचलन हैं। ये संरचनागत चयन हैं जो किसी विशेष परिस्थिति या व्यक्ति के साथ संयोजित होते रहते हैं।

5. **शैली चयन के रूप में :** इसमें भाषा को साहित्यकार के उपादान के रूप में माना गया है। साहित्यकार अपनी सृजन-प्रक्रिया में एक विशेष भाषा का चयन इस प्रकार करता है जिस प्रकार मूर्तिकार एक पाषाण से व्यर्थ की चिप्पियाँ हटाकर मूर्ति का निर्माण करता है। जब कवि सृजन-प्रक्रिया से गुजर रहा होता है तो उसके सामने शब्द और सरंचना-संबंधी कई विकल्प होते हैं। वह उनमें से श्रेष्ठ का चयन कर लेता है। सामान्य आमतौर पर सामान्य अर्थ रखने वाले अनेक शब्दों से सर्वोपयुक्त शब्द का चुन लेना ही अच्छी शैली है। सर्वोपयुक्त शब्द वही है जो संकेतार्थ से अधिक अर्थ अर्थात् भावार्थ देने की क्षमता रखता हो। यह चयन सहेतुक होता है। वामन ने भी विशिष्ट पदरचना की जो धारणा रखी थी, वह चयन का ही एक प्रकार थी। वास्तव में जब कभी हम शैली की बात करते हैं तो शब्द और वाक्य-विन्यास-संबंधी चयन की धारणा हमारे मन में आ जाती है। चयन का यह भाव शैली का हेतु है किंतु यह चयन गौण है क्योंकि यह साधनों का चयन है। अतः पूर्वनिर्धारित विषय-वस्तु को अथवा उससे संबद्ध विभिन्न भाषादि अर्थों को

सही अभिव्यक्ति देने वाले भाषिक साधनों का चयन ही शैली है। उदाहण के लिए, 'रमेश भेड़िया है' और 'रमा गाय है' – ये दोनों वाक्य अर्थ की दृष्टि से शैलीगत संरचनाएँ हैं। व्यवहारपरक ज्ञान के आधार पर'रमेश' और'रमा' में क्रमशः 'भेड़िया' और 'गाय' के गुणों को समेटा गया है। ये दोनों संरचनाएँ सर्जनात्मक और संदर्भपरक अर्थ के साथ जुड़ी हुई हैं जिनमें रमेश क्रूरता का प्रतीक और रमा शालीनता की। रमेश की क्रूरता और राम की सुशीलता की गहन भावना जितनी इन शब्दों से जागृत होगी उतनी 'क्रूर' या 'सुशील' शब्दों से व्यक्त नहीं हो पाएगी। अतः इस प्रकार का चयन हमें भाषायी संरचना और कोशगत अर्थ से आगे ले जाता है। इसी प्रकार किसी मूर्ख के लिए 'महाविद्वान' या 'बृहस्पति' शब्दों का प्रयोग किया जाता है जो 'मूर्ख' के नितांत विपरीतार्थक शब्द है। इस तरह साहित्यकार संदर्भ के अनुसार शब्दों का चयन करता है और व्याकरणिक तथा साहित्यिक दृष्टि से इस प्रकार की व्यवस्था करता है जिससे भाषा का विशिष्ट रूप सामने उभर आता है। भारतीय काव्यशास्त्र में प्रतिभा के साथ-साथ व्युत्पत्ति और अभ्यास काव्यहेतुओं की संकल्पना रखी गई है। किंतु ये काव्यहेतु अनिवार्य नहीं हैं। कभी-कभी अनायास ही और बिना परिश्रम के शब्दों का सटीक चयन हो जाता है। 'बगीचा भौंरों से गूँज रहा है' वाक्य में 'बगीचा' अधिकरण को कर्त्ता के रूप में चुना गया है, क्योंकि वक्ता 'बगीचे' पर बल देना चाहता है और बगीचे के संपूर्ण वातावरण को गुंजायमान बनाना चाहता है जबकि'बगीचे में भौंरे गूंज रहे हैं' व्याकरणिक दृष्टि से सही अर्थ होते हुए भी उसमें अतिरिक्त अर्थ नहीं मिलता। इस प्रकार चयन अनेक स्तरों पर होता है अर्थात् ध्वन्यात्मक, शब्दपरक, वाक्यपरक और यहाँ तक कि पूरी संरचना में चयन होता है। एक ही बात को एक ही परिस्थिति में विभिन्न रूपों में जो कहा जा सकता है वे उस भाषा की संरचना और अभिरचना के अनुरूप होते हैं। यही शैली है।

शैली वाक्योपरि भाषायी विशेषताओं के समुच्चय के रूप में : वाक्य को अब तक भाषा की आधारभूत तथा अधिकतम इकाई माना जाता रहा है और इसी के आधार पर भाषा का अध्ययन होता रहा है किंतु शैली का एक ऐसा अभिलक्षण है जो वाक्य की सीमा को पार कर जाता है। यह वाक्योपरि संरचा है जिसमें दो या उससे अधिक वाक्यों का परस्पर संयोजन होता है। अंतःवाक्य स्तर पर जोड़ने से समूचे पाठ की अन्विति होती है। यह अंतःवाक्य व्याकरण ही शैली है।

तः वाक्य परिभाषा के आधार पर आज प्रोक्ति (डिस्कोर्स) की संकल्पना सामने आई है। नेक व्यवहार की भाषा में वार्तालाप के दौरान वाक्यों का जो अनुक्रम अथवा उनका जो योजन होता है वही प्रोक्ति है। वास्तव में प्रोक्ति वाक्योपरि स्तर की एक ऐसी इकाई है सके कथ्य में आंतरिक संसक्ति तथा वाक्यों में संदर्भपरक और तर्कपूर्ण अनुक्रम रहता है। तमें 'संवाद' को ही वाक्व्यवहार का केंद्र बिंदु गाना गया है और वाक्य को भाषा की धेकतम इकाई के रूप में नकारा गया है। इसमें व्यवस्थित और तर्कपूर्ण संसक्ति होती है पाठ को लयपरक बनाती है। यह संसक्ति भाषा और अर्थ के परस्पर संयोजन पर धारित होती है। वास्तव में वाक्यों के परस्पर संबंधों और उनके कार्यव्यापारों की सूचना क्ति से मिलती है जो शैली के अध्ययन में सहायक हाती है। अर्थात् किसी पाठ (दूसरे में प्रोक्ति) की शैली की व्याख्या करते हुए न केवल उसके वाक्य-संबंधों का विश्लेषण ना होगा वरन् पाठ के अन्य पहलुओं यानी उसके वाक्यों, उपवाक्यों, कोशीय रूपों, न्यात्मक अभिलक्षणों वक्ता-श्रोता के संबंधों की भी व्याख्या की जाएगी। यह अध्ययन ःवाक्यों के संबंधों पर ही आधारित है। अन्य इकाइयों के अंतःसंबंध में ही चयन का द्धांत आता है और उसकी व्याख्या भी इसी संदर्भ में संभव है।

शैली की इन छहों धारणाओं पर विचार करने पर आपने देखा होगा कि इनमें कोई तात्विक अंतर नहीं है अंतर है तो इनके दृष्टिकोण में। हाँ, सृजन और संप्रेषण की प्रक्रिया के संदर्भ में देखा जाए तो शैली का निर्धारक तत्व चयन ही दिखाई देता है क्योंकि यह चयन तथा उसकी व्यवस्था केवल कोशीय तथा व्याकरणिक न रहकर भाषा के विभिन्न स्तरों में होती है। अतः चयन-सिद्धांत की परिभाषा व्यापक करनी होगी जिसके अंतर्गत साहित्यिक धारा का दबाव, विधा का दबाव तथा विषय-वस्तु का दबाव निहित रहेगा। साहित्यिक धारा की दृष्टि से भाषा के विभिन्न प्रयोग मिलते हैं, जैसे छायावादी काव्य में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का आधिक्य है तो प्रगतिवादी काव्य में देशज शब्दों का। विधा की दृष्टि से विभिन्न विधाओं में विभिन्न भाषा-प्रयोग आते हैं। कविता और गद्य-विधाओं में भाषा का चयन पृथक्-पृथक् मिलता है। प्रसाद के काव्यों और नाटकों में जहाँ संस्कृतनिष्ठ शब्दों का चयन है, उपन्यास में वहाँ चलती भाषा का प्रयोग अधिक है। विषय-वस्तु की दृष्टि से वैज्ञानिक साहित्य, वाणिज्यिक साहित्य, कार्यालयीन साहित्य और सौंदर्यमूलक साहित्य में भाषा का अलग-अलग चयन होता है। कभी-कभी व्यक्ति को अपनी प्रकृति या आदत भाषा में दिखाई दे जाती है, जैसे पीछे हमने शैली व्यक्ति-वैशिष्ट्य के रूप में कहा है। इसीलिए कभी-कभी लिंग की दृष्टि से पुरुष की शैली में कठोरता, गंभीरता, पौरुष आदि के दर्शन अधिक होते हैं जबकि नारी की शैली में कोमलता, माधुर्य, नारी-सुलभ सौंदर्य की झांकी अधिक दिखाई पड़ती है। आयु की दृष्टि से यौवनकाल की रचनाओं में जितनी अधिक चंचलता, स्वच्छंदता एवं रोमांस अधिक दिखाई देगा, वृद्धावस्था की रचनाओं में उतनी अधिक गंभीरता, प्रौढ़ता, नैतिकता और परंपरा के दर्शन होंगे। लेकिन कभी-कभी ये बातें विपरीत रूप में भी मिल जाती हैं। साहित्यकार के भाषिक चयन, भाषिक व्यवस्था, व्यक्तिपरक तथा परिस्थितिमूलक अतिक्रमण में शैली का संयोजन होता है। कवि अपनी अनुभूति को उसी रूप में अभिव्यक्त करने के लिए भाषा के निर्धारित रूपों का सप्रसंग, साभिप्राय एवं समु्चित चयन करता है। भाषा को नए रूप में ढालता है, सँवारता है, नए शब्दों का निर्माण करता है, नई संरचना प्रदान करता है, नए परिवर्तन लाता है तथा उसे व्यापक आयाम में समेटता है। यही उसका अभिव्यंजना-व्यवहार है जो शैली कहलाता है। वस्तुतः शैली भाषा का वह विशिष्ट रूप है जिसमें अभिव्यंजना की ऐसी शक्ति निहित रहती है जो कवि के सर्जनात्मक प्रयोग को रसानुकूल और प्रभावोत्पादक बनाती है तथा हमें कवि की अनुभूति, भाव और विचारों का बोध कराती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शैली वह है जिसमें कवि या वक्ता अपनी अनुभूति और अनुभव का सामान्यीकरण कर उन्हें दूसरों तक संप्रेषित करना चाहता है। इसके लिए वह एक ऐसी विशिष्ट भाषा का प्रयोग करता है जिसमें एक सुष्ठु तथा साभिप्राय चयन होता है और ध्वनि, व्याकरणिक गठन तथा अन्य वाक्य-रचना आदि की दृष्टि से भाषा के सर्वस्वीकृत मानक का अतिक्रमण करता है जिससे पाठक का रसास्वादन होता है।

19.3 शैलीविज्ञान क्या है?

यह तो आप जानते हैं कि भारत में साहित्य का सृजन प्राचीनकाल से चला आ रहा है। इसके साथ यह भी उल्लेखनीय है कि साहित्य के विवेचन और विलेषण की परंपरा भी प्रारंभ से चली आ रही है। साहित्य को समझने के लिए और उसकी व्याख्या के लिए भारतीय काव्यशास्त्र और पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में कई संप्रदायों और सिद्धांतों का प्रादर्भाव हुआ। आधुनिक काल में आलोचना के कई प्रतिमानों और पद्धतियों का विकास हुआ। इनमें रसवादी, मार्क्सवादी, मनोविश्लेषणवादी, समाजशास्त्रीय, मिथकीय, ऐतिहासिक आदि आलोचना की कई प्रणालियाँ उभर कर आईं। वास्तव में इन आलोचना प्रणालियों में साहित्यिक कृतियों के बाह्य संबंधों की खोज की जाती है। इनमें पाठक या कवि की दृष्टि से अथवा समाज या संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में काव्य का मूल्यांकन होता है। ये साहित्येतर उपादान हैं जो साहित्येतर मूल्यों का प्रतिपादन करते हैं क्योंकि सामाजिक प्रक्रिया के

बदलने से पाठक की संवेदनाओं, मान्यताओं और विचारों में परिवर्तन आ जाता है जिससे मूल्यों पर भी प्रभाव पड़ता है। इसी कारण आलोचना के निश्चित सिद्धांत अभी तक स्थापित नहीं हो पाए।

साहित्य का मुख्य प्रकार्य उसकी साहित्यिकता या काव्यात्मकता है। साहित्य सौंदर्य और भाषा के बीच निहित रहता है। इसमें सौंदर्य आधेय है और भाषा आधार। इसका गुण काव्यात्मकता और सर्जनात्मकता है और उस गुण का प्रतिफलन शैली है। इस दृष्टि से साहित्य अनुभूतिजन्य संरचना है जिसके सर्जनात्मक और कलात्मक प्रयोगों का अध्ययन शैलीविज्ञान करता है। साहित्य की संरचना, संघटना और प्रकार्य का अध्ययन करने से सौंद्रर्यबोध होता है। इसलिए इसकी सैद्धांतिक मान्यताएँ भाषापरक हैं। भाषापरक होने के कारण यह साहित्यक कृति को स्वायत्त 'शाब्दिक कला' मानता है और उसका विषय होता है 'साहित्य या काव्य क्या कहता है' न कि 'कवि क्या कहता है' और न ही 'साहित्य की रचना करते समय कवि का प्रयोजन क्या था' या 'उस कृति से पाठक के मन पर क्या प्रभाव पड़ता है अथवा पड़ेगा'। शैलीविज्ञान काव्य का विश्लेषण न तो कवि या पाठक की दृष्टि से करता है और न ही समाजशास्त्रीय या दार्शनिक या मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में। वह तो काव्यात्मकता और सर्जनात्मकता का केंद्र बिंदु कृति को ही मानता है। इस प्रकार शैलीविज्ञान आलोचना की वह भाषापरक प्रणाली है जो दर्शन के साथ-साथ विज्ञान भी है और इसमें सैद्धांतिक प्रतिमानों के साथ विश्लेषण की विधि-प्रविधि भी उपलब्ध है। साहित्य के विवेचन में वह जिन भाषावैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग करता है, उन्हें वह अपने विशेष लक्ष्यों के संदर्भ में मांजता और संवारता है ताकि सर्जनात्मकता के बिंदु तक पहुँचा जा सके।

19.3.1 बहिरंग आलोचना और अंतरंग आलोचना

आलोचना के दो पक्ष माने गए हैं (1) बहिरंग आलोचना और (2) अंतरंग आलोचना। बहिरंग आलोचना से तात्पर्य कवि या पाठक, सामाजिक या सांस्कृतिक मूल्यों का विवेचन करना है। यह आलोचना शैलीविज्ञान के क्षेत्र के बाहर है। ऐसा नहीं है कि शैलीविज्ञान मार्क्सवादी, समाजशास्त्रीय, रसवादी आदि आलोचना के महत्व को नकारता है लेकिन उसका यह कहना है कि इससे कृति की आलोचना सही ढंग से नहीं हो पाती क्योंकि इसकी पद्धति न तो वैज्ञानिक है और न ही इसका आधार ठोस है। अतः शैलीविज्ञान की मान्यता है कि साहित्यिक कृति को समझने के बाद ही बहिरंग आलोचना का कार्य प्रारंभ होता है।

अंतरंग आलोचना में साहित्यिक कृति को स्वायत्त इकाई मानकर उसकी आंतरिक संरचना का अध्ययन किया जाता है। इसमें ध्वनि-संयोजन, रूप-प्रक्रिया, शब्द-संस्कार, वाक्य-रचना, प्रोक्ति-संरचना को ध्यान में रखकर काव्यात्मकता की खोज की जाती है। इसके साथ भाषेतर प्रतीक, भाव-भंगिमाएँ और मौन भाषा भी अध्ययन के क्षेत्र में आते हैं। यह आलोचना शैलीविज्ञान के कार्यक्षेत्र के अंतर्गत आती है।

शैलीविज्ञान अपनी अंतरंग आलोचना में सर्जनात्मक धरातल पर कथ्य और अभिव्यक्ति की समन्वित इकाई को भाषिक प्रतीक मानता है। यदि रूपिम, शब्द, पद, वाक्य भाषिक प्रतीक हैं तो यह भी माना जा सकता है कि समूची कृति भी भाषिक प्रतीक है। इसी मान्यता को स्वीकार करते हुए शैलीविज्ञान अभिव्यक्ति पक्ष के आधार पर कथ्य तक पहुँचने का प्रयास करता है। एक रूसी विद्वान श्क्लोवस्की ने काव्य के प्रतिपादन में इसकी तीन स्थितियों पर विचार करते हुए कहा है कि कथ्य और अभिव्यक्ति एक समन्वित इकाई के न तो दो स्तर हैं और न ही दो खंड अपितु वे एक ही वस्तु के दो पक्ष हैं। तीन स्थितियाँ इस प्रकार हैं :

- पहली स्थिति में अभिव्यक्ति कथ्य से अलग होती है और कथ्य की अपेक्षा अभिव्यक्ति पर अधिक बल दिया जाता है;

2. यहाँ पर कथ्य अभिव्यक्ति से अलग होकर सामने आता है, और
3. काव्यकृति में कथ्य और अभिव्यक्ति अभिन्न रूप में प्रतिफलित होते हैं।

पहली स्थिति 'कला कला के लिए' सिद्धांत का प्रतिपादन करती है जिसे शैलीविज्ञान स्वीकर नहीं करता क्योंकि यह अधूरी और असंगत काव्यदृष्टि है।

दूसरी स्थिति बहिरंग या साहित्येतर आलोचना के क्षेत्र में आती है, जिसमें काव्यकृति में निहित संदेश या प्रतिपाद्य वस्तु की व्याख्या दर्शन, समाज, संस्कृति आदि साहित्येतर संदर्भों में की जाती है।

तीसरी स्थिति काव्यकृति को संतुलित और संगत दृष्टि से देखने का आग्रह करती है जो अंतरंग आलोचना के भीतर जाती है। इस प्रकार शैलीविज्ञान न तो केवल अभिव्यक्ति पक्ष पर बल देता है और न ही कथ्य पर बल्कि इन दोनों के अंतःसंबंधों पर बल देता है।

इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि वास्तव में काव्यकृति का संसार बाह्य यथार्थ संसार से अलग होता है लेकिन सर्जना एवं कल्पना के आधार पर अभिव्यक्ति और कथ्य दोनों में अन्विति होती है। इसमें यथार्थ को हू-बहू प्रतिबिंबित नहीं किया जाता वरन् उसका सर्जन किया जाता है। कवि की सर्जनात्मक शक्ति के कारण वह एक कला प्रतीक के रूप में रूपांतरित होती है। इसमें समाज, संस्कृति, मनोविज्ञान, दर्शन आदि को साहित्य के संदर्भ में जानना ही श्रेयस्कर है। "काव्यकृति के भीतर का संसार उस जीवित संदर्भ को उपस्थित करता है जिसके भीतर रहकर उसके पात्र क्रिया-कलाप करते हैं, अपनी परिस्थितियों से टकरा कर अपने व्यक्तित्व का उद्घाटन या विकास करते हैं, और उस समय की धारा को व्याख्यायित करते हुए जीवन को एक ऐसे स्थान-काल के साथ बाँधते हैं जो स्थान और समय से एक ओर बंधा होने के कारण ठोस भी होता है और उससे मुक्त होकर समय और स्थान की सीमा का अतिक्रमण भी करता है। यही कारण है कि विभिन्न कालों और विभिन्न स्थानों पर जिस काव्यवस्तु का सर्जन होता है उसे काल और स्थान की सीमाओं को तोड़कर पढ़ा और समझा जा सकता है। यह काव्यकृति के भीतर का ही संदर्भ है तो आज भी अंतर्निहित संसार को रूपायित करता है। काव्यकृति के भीतर के इसी संदर्भ का विश्लेषण एवं अध्ययन शैलीविज्ञान करता है। आलोचना के क्षेत्र में अब तक प्रभाववादी, मार्क्सवादी, मनोविश्लेषणवादी, नैतिकतावादी जो भी आलोचनाएँ होती रही हैं अथवा हो रही हैं, वे या तो सिद्धांत की ही व्याख्या करती रही हैं या व्यावहारिक विधियों के आधार पर होती रही हैं।

19.4.2 शैलीविज्ञान का नामकरण

शैलीविज्ञान के नामकरण पर काफ़ी चर्चा रही है। इसके लिए शैलीशास्त्र और रीतिविज्ञान भी नाम सुझाए गए हैं। 'फिजिक्स' और 'लिंग्विस्टक्स' के लिए जिस प्रकार क्रमशः 'भौतिकी' और 'भाषिकी' शब्द मिलते हैं, उसी प्रकार स्टाइलिस्टिक के लिए भी 'शैलिकी' नाम रखने का भी प्रस्ताव है। यह नाम शैलीविज्ञान का पर्याय ही है लेकिन 'शैलीविज्ञान' नाम 'भाषाविज्ञान' की भाँति अधिक प्रचलित है। शैलीशास्त्र और शैलीविज्ञान के लिए अधिक विवाद नहीं है। विज्ञान की अपेक्षा शास्त्र अधिक व्यापक है और शैली का संबंध सौंदर्यशास्त्र से भी है, इसलिए 'इक्स' शास्त्र का वाचक है। किंतु शास्त्र में सिद्धांत की अपेक्षा अधिक की जाती है जबकि विज्ञान में सिद्धांत के साथ-साथ विधि-प्रविधि पर भी बल दिया जाता है। इसके अतिरिक्त शैलीविज्ञान का विकास भी भाषाविज्ञान से हुआ है। अतः शैलीशास्त्र की अपेक्षा 'शैलीविज्ञान' नामक शब्द अधिक उपयुक्त जान पड़ता है।

'शैलीविज्ञान' और 'रीतिविज्ञान' के नामकरण पर काफी चर्चा रही है। पं. विद्यानिवास मिश्र ने तो अपनी पुस्तक का नाम ही 'रीतिविज्ञान' रखा है। उन्होंने 'स्टाइल' शब्द के लिए शैली शब्द न मानकर 'रीति' शब्द को ही उपयुक्त माना है। उनके मतानुसार शैली का प्रयोग प्राचीन भारतीय वाङ्मय में साहित्येतर विधाओं के संदर्भ में हुआ है या किसी व्यक्ति की साहित्यिक अभिव्यक्ति की विशेषताओं को जतलाने के लिए आधुनिक समीक्षा साहित्य में हुआ है, इस दृष्टि से उपयुक्त भाषागत सर्जनात्मक वैशिष्ट्य को बोधित करने के लिए शैली का प्रयोग उतना संगत नहीं जान पड़ता। रीति का समर्थन करते हुए वह आगे कहते हैं कि रीति शब्द का प्रयोग शुद्ध रूप से सामान्य भाषा के विशेष गुणों के आधार के विभिन्न प्रकारों का वर्गीकरण करने के लिए या साहित्य के बाहर सामाजिक व्यवहार की किसी व्यापक सामान्य विशेषता का बोध कराने के लिए हुआ है। इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि शब्द अपने संदर्भ में नई परिभाषा और नई व्याख्या लेकर आता है। सामान्य भाषा में एक शब्द जो अर्थग्रहण करता है तो यह ज़रूरी है कि वह प्रत्येक विषय और संदर्भ में वही अर्थग्रहण करे। उदाहरण के लिए; 'पद' शब्द का प्रयोग सामान्य भाषा, काव्य, व्याकरण, भाषाविज्ञान, समाजशास्त्र, कार्यालयी आदि संदर्भों में नई-नई संकल्पना लेकर होता है जो एक दूसरे से काफी भिन्न है। इसी प्रकार शैली की संकल्पना समय-समय पर बदलती रही है और आज शैलीविज्ञान में शैली की सकल्पना मे जो परिवर्तन आया है वह तो रीति को ही अपने भीतर समेटे हुए है। आज के शैलीविज्ञान में भारतीय साहित्यशास्त्र के प्रायः सभी संप्रदाय, विशेषकर वक्रोक्ति, ध्वनि और रीति संप्रदाय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र के मूल तत्व समाविष्ट हो गए हैं। इसके अतिरिक्त यह भी बताना असमीचीन न होगा कि शैली की संकल्पना में तो विकास होता रहा है किंतु रीति तो रूढ़ ही रह गई। भारतीय काव्यशास्त्र में रीति संप्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन के बाद रीति पर नाममात्र विचार हुआ और जो हुआ वह भी काव्य के गौण तत्व के रूप में रीति की अपेक्षा वक्रोक्ति लिंग्वास्टाइलिस्टिक्स के अधिक निकट जा पड़ती है क्योंकि इसमें कथ्य और अभिव्यक्ति, जो 'स्टाइलिस्टिक्स' के मुख्य अंग हैं, लगभग समा जाते हैं। अतः 'रीतिविज्ञान' की अपेक्षा 'वक्रोक्तिविज्ञान' अधिक उपयुक्त दिखाई देता है। 'वक्रोक्ति' में भी वही अवधारणा नहीं आ पाती जो आज की शैली की संकल्पना में निहित है।

शैली (स्टाइल) की संकल्पना पर तो भारत और पश्चिम में बराबर चिंतन होता रहा है। पाश्चात्य विद्वानों ने स्टाइल के जो दो मूल तत्व 'मस्तिष्क' और 'आत्मा' बताए हैं वे भारतीय रीति और ध्वनि के पर्याय है। अतः वामन प्रतिपादित 'पद रचना रीति' के अलावा ध्वनि को कहाँ छोड़ा जाए जो स्टाइललिस्टिक्स का कथ्य पक्ष है। यह बात अवश्य है कि शैली और रीति प्रायः समानार्थक माने जाते रहे हैं किंतु इनमें कुछ-न-कुछ अंतर अवश्य है। शैली का अर्थ 'स्वभाव' माना गया है और आचार्य कुंतक ने इसे 'रीति का नियामक' आधार माना है। इस प्रकार विशिष्ट अर्थ में रीति और शैली में बहुत अंतर नहीं है लेकिन रीति में पूर्व निश्चितता, पूर्व निर्धारण एवं पूर्व नियोजना होती है जो कि शैली में बहुत कम देखी जती है। वास्तव में जब शैली पूर्व निर्धारण का रूप ग्रहण कर लेती है तो वह रीति कहलाती है। इन दोनों के लक्ष्य में भी भेद है। रीति का लक्ष्य साधारणतया संबंधित कार्य को पूर्ण वैध तथा शुद्ध रूप प्रदान करना होता है जबकि शैली का लक्ष्य उस कार्य में नवीनता, चमत्कार और विशिष्टता लाना होता है। रीति के लिए अध्ययन, अभ्यास तथा प्रयत्न वाँछनीय है, शैली में सहजता और स्वाभाविकता की भी आवश्यकता है। मिश्र जी ने शैली पर यह भी आपत्ति उठाई है कि शैली के विषय में एक बहुत ही व्यापक धारणा रूढ़ हो चुकी है कि शैली आत्मनिष्ठ होती है। यह सही है कि 'स्टाइलिस्टिक्स' में कवि की दृष्टि को मान्यता नहीं दी जाती लेकिन रीति में भी तो पाठक या सामाजिक दृष्टि को प्रमुखता दी जाती है जो 'स्टाइलिस्टिक्स' के क्षेत्र से बाहर है। आज स्टाइल या शैली के जितने वस्तुनिष्ठ एवं आत्मनिष्ठ रूप हैं या जितनी अर्थच्छायाएँ हैं, उन्हें शैलीविज्ञान अपने भीतर समेट कर चल रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आज शैली की संकल्पना रीति की

अपेक्षा अधिक विस्तृत हो गई है। अतः रीतिविज्ञान की अपेक्षा शैलीविज्ञान नाम से अधिक औचित्य दिखाई देता है।

19.4 शैलीविज्ञान का विकास

शैलीविज्ञान का प्रतिष्ठापन वस्तुतः बीसवीं शताब्दी के आरंभ में जेनेवा स्कूल के सुप्रसिद्ध भाषाविज्ञानी चार्ल्स बेली द्वारा हुआ। बेली को इसकी संकल्पना अपने गुरु फर्दी ना सस्यूर के 'भाषा' और 'वाक्' दो शब्दों से प्राप्त हुई। 'भाषा सार्वजनिक एवं परंपरागत व्यापार है तथा समुदाय के लोगों में सामाजिक संपर्क स्थापित करने की एक पद्धति है जो एक दूसरे की बात समझने-समझाने के लिए सहायक हो सकती है'। वास्तव में यह एक सामाजिक वस्तु है जो अपनी प्रकृति में समरूपी होने के साथ-साथ जीवंत एवं परिवर्तनशील भी होती है। 'वाक् एक व्यक्तिगत उच्चार है तथा इच्छा एवं बुद्धि की एक ऐसी क्रिया है जिसमें व्यक्तिगत उद्देश्यों की पूर्ति होती है। यह एक प्रकार का भाषिक व्यवहार है जो विविध रूपों में उद्घाटित एवं प्रतिफलित होता है।' इस प्रकार 'भाषा' एक संहिता है और 'वाक्' एक रीति है जिसमें संहिता का प्रयोग किसी वास्तविक परिस्थिति में किया जाता है अथवा यह एक ऐसा ढंग है जिसमें व्यक्ति विशेष अपनी भाषा का प्रयोग सामान्य रूप में करता है। केवल वाक् में ही भाषा कार्यान्वित होती है जबकि वाक् भाषा की सामाजिक और सार्वजनिक व्यवस्था के बिना संभव नहीं है। सस्यूर ने वाक् को मूलाधार नहीं माना और न ही इसे प्रमुखता दी है। इसका वास्तविक अध्ययन उनके शिष्य चार्ल्स बेली द्वारा किया गया है तथा वाक् को आधार मानकर बेली ने बताया कि वैयक्तिक भाषा में भावात्मकता निहित रहती है जो विशिष्ट परिस्थितियों में सहजभाव से मनुष्य के उच्चारणोपयोगी अवयवों से निस्तृत होती है। वस्तुतः यह भावात्मकता भाषा में ऐसे मूल्य प्रस्तुत करती है जो शैली के मूल होते हैं। इन मूल्यों का अध्ययन शैलीविज्ञान करता है। इस प्रकार 'व्यवस्थित भाषा की अभिव्यक्तियों का अध्ययन उनमें निहित प्रभावकारी तत्वों के आधार पर करना अर्थात् भाषा के माध्यम से होने वाली संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति का तथा संवेदनशीलता पर आधारित भाषा व्यापार का अध्ययन करना शैलीविज्ञान का कार्य है।'

सस्यूर भाषा की साहित्यिक रससिद्धि में अधिक रुचि नहीं रखते थे। उनका प्रमुख उद्देश्य भाषा के प्राकृतिक क्षेत्र अर्थात् बोली जाने वाली भाषा के भाषावैज्ञानिक अध्ययन से संबंधित है। लिखित भाषा या साहित्यिक भाषा एक विशिष्टीकरण है जो जीवित तथ्य से काफी परे है। बेली ने भी सस्यूर के इस मत का समर्थन किया है। उनके मतानुसार भाषा जीवन का प्रकार्य है जो मानवीय भावों एवं अनुभूतियों से संपृक्त है तथा यही वास्तविक एवं जीवंत भाषा है। इसके अन्य रूप अमूर्त हैं और वे भाषा के विशिष्ट प्रयोग हैं। उनका संबंध किसी विशेष कारण से बाधित है अतः उनका अध्ययन करना आवश्यक नहीं है।

बेली ने शैलीविज्ञान को भाषा के अभिव्यंजनात्मक पक्ष तथा उसकी प्रक्रिया का अध्ययन माना है। उनकी यह धारणा भाषा की तर्कपरक एवं प्रभावोत्पादक विशेषताओं पर पूर्णतया आधारित है। भाषा का तर्कपरक पक्ष, विचारों की अभिव्यक्ति, तथ्यों का संप्रेषण आदि सभी अमूर्त हैं। भाषा के मानक का अतिक्रमण 'प्रभावी' क्षेत्र में आ जाता है। इस प्रभावी शब्द का विस्तार करते हुए बेली ने प्रभावोत्पादक और अभिव्यंजनात्मक विशेषताओं को भी इसमें लिया है। भाषा के समूचे अभिव्यंजनापरक संसाधनों का वर्णन भाषाविज्ञान के अंतर्गत होता है। बेली ने साहित्यिक भाषा को इसलिए नहीं लिया क्योंकि वे इसे एक ऐच्छिक एवं सायास वस्तु मानते । उनके मतानुसार साहित्यकार सदैव स्वेच्छा से और सचेत होकर अपने भाषात्मक प्रयोग का चयन करता है और उनका उद्देश्य भाषा के द्वारा सौंदर्यमूलक प्रभाव की सृष्टि करना है जिसके कारण भाषा कृत्रिम हो जाती है और सर्वजन सुलभ नहीं हो पाती। जिस प्रकार कलाकार रंगों के द्वारा और संगीतकार ध्वनियों के द्वारा सौंदर्य की सृष्टि

करता है उसी प्रकार साहित्यकार शब्दों के माध्यम से सौंदर्य लाने का प्रयास करता है, किंतु बेली के साहित्यिक भाषा को शैलीविज्ञान में सम्मिलित न करने के मत में कोई तर्क नहीं बैठता। वास्तव में भाषा एक सोद्देश्य व्यापार है और इसका प्रयोग किसी न किसी प्रयोजन के कारण होता है। अतः इसमें भावात्मकता, चाहे वह ऐच्छिक या सायास ही क्यों न हो, समान रूप से विद्यमान रहती है। शाब्दिक व्यवहार होने के कारण भाषा बिना किसी प्रेरणा के प्रस्फुटित नहीं होती और इस प्रेरणा में भी उद्देश्य निहित रहता है। अतः अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए वक्ता उसी के अनुसार भाषा का प्रयोग करता है। इस दृष्टि से कवि और सामान्य वक्ता में कोई अंतर नहीं रह जाता। सभी क्षेत्रों के लोग चाहे वे वकील हों या पत्रकार, किसी कंपनी के एजेंट हों या कोई वक्ता आदि इस ढंग से बात करेंगे जिससे अन्य लोग उनकी ओर आकर्षित होंगे और उनके उद्देश्यों की पूर्ति भी होगी। तब प्रश्न उठता है कि कवि इससे अलग कैसे रह सकता है? साहित्यिक भाषा बोलचाल की भाषा से बिल्कुल अलग नहीं है वरन् वह तो उसका एक निखरा हुआ रूप है। यह बात भी नहीं है कि बोलचाल की भाषा में सौंदर्यपरक प्रभाव नहीं होता। भाषा के प्रयोग में ही तो सौंदर्य है तथा हृदय में जैसी अनुभूति हो उसे उसी रूप में व्यक्त करना ही कला है और कला सौदर्यमय होती है। जिस वस्तु में अभिप्राय निहित रहता है, उसकी अभिव्यक्ति की पर्याप्तता में साहित्यिक प्रभाव दिखाई देता है और यद्यपि यह पूर्णतया सोद्देश्य होती है, किंतु फिर भी इसका सौंदर्य आकस्मिक होता है। विश्व साहित्य का एक छोटा-सा अंश, जो सामान्यतः उत्कृष्टतम नहीं होता, पाठक में केवल शाब्दिक सौंदर्य की भावना लाने के लिए नहीं लिखा जाता। इस प्रकार सौंदर्यपरक प्रभाव की निष्पत्ति ही कवि का एक मात्र उद्देश्य नहीं होता वरन् उसमें बौद्धिकता, चित्रात्मकता आदि कई तत्व होते हैं जो उसकी भाषा में सौंदर्य का सृजन करते हैं। अतः सामान्य भाषा में यदि प्रभावकारी विशेषताएँ लाई जा सकती हैं तो ऐसी विशेषताएँ साहित्यिक कृति में आ जाना कोई अनुचित बात नहीं है। इस प्रकार बेली द्वारा लगाई गई यह सीमा अनावश्यक-सी लगती है।

बेली के कुछ शिष्यों ने भी उनके इस मत को स्वीकार नहीं किया। एक शिष्य मारसेल क्रेसॉट ने बेली के मत का खंडन करते हुए कहा कि हमारे लिए साहित्य साधारणतया एक संप्रेषण है और अपनी कृति में लेखक सौंदर्य की जो सृष्टि करता है उससे उसका अभिप्राय पाठक के ध्यान को पूरी तरह से आकर्षित करना है। यह बात सामान्य संप्रेषण से तो अधिक योजनाबद्ध एवं व्यवस्थित होती है किंतु यह अलग किस्म की नहीं होती। अतः शैलीविज्ञान के क्षेत्र में साहित्य भी उसी प्रकार उत्कृष्ट रूप में उभर सकता है। इस प्रकार क्रेसॉट ने साहित्यिक भाषा के भाषावैज्ञानिक अध्ययन को पूरी मान्यता दी है और साहित्यकार की भाषा का विश्लेषण भी किया है। किंतु उनका यह अध्ययन कलाकृति के विशेषण के रूप मे नहीं हुआ अपितु यह अध्ययन साहित्यिक विश्लेषण के अधिक निकट जा पड़ा है।

19.5 शैलीविज्ञान और भाषाविज्ञान

अब आप प्रश्न करेंगे कि शैलीविज्ञान और भाषाविज्ञान में परस्पर संबंध क्या है? वस्तुतः भाषाविज्ञान भाषा तथा उसके प्रत्येक प्रकार्य एवं प्रयोग का अध्ययन और विश्लेषण करता है तो शैलीविज्ञान उसकी अनुप्रायोगिक विधा है। हम जानते हैं कि भाषाविज्ञान उसकी भाषा संहिता के संसाधनों का पता लगाता है जो वास्तविक संदेश का सृजन करने हेतु प्रयुक्त होती है। यह वाक्यों के भीतर परस्पर संबंधों की व्यवस्था के रूप में भाषा से जुड़ा हुआ है। ये संबंध विभिन्न ढंग से अभिव्यक्त होते हैं या उनका सृजन किया जाता है। व्याकरणिक दृष्टि से चाहे वे सही हों लेकिन वक्ता उस ढंग से बोलना चाहेगा जिससे श्रोता उसके मंतव्य को समझ सके। भाषा के शाब्दिक व्यवहार होने के कारण वक्ता सदैव उसे किसी न किसी अभिप्राय से बोलेगा और वह एक ऐसी भाषा बोलेगा जो प्रभावशीलता

और भावात्मकता से ओत-प्रोत हो। वास्तव में भाषा सर्जनात्मक होती है और शैलीविज्ञान भाषा की सर्जनात्मक शक्ति पर बल देता है।

भाषाविज्ञान मुख्य रूप से उस भाषा तक सीमित है जो नियमों की सुगठित एवं समाजपरक व्यवस्था है और समुदाय के लोगों में सामाजिक संपर्क स्थापित करने की पद्धति है जो एक दूसरे की बात समझने के लिए सहायक हो सकती है। शैलीविज्ञान वाक्यों के संदर्भपरक यथार्थ वाक् के अतिरिक्त संसाधनों की ओर ले जाता है। सस्यूर की इस संकल्पना के आधार पर अमरीकी विद्वान नोअम चॉम्स्की ने भाषायी क्षमता और भाषायी व्यवहार की धारणा रखी जिसमें क्षमता भाषा विषयक ज्ञान से संबद्ध है और व्यवहार भाषा के वास्तविक प्रयोग से। उनके मतानुसार मानव एक ऐसा सृजनशील प्राणी है जो स्थिति एवं संदर्भ के अनुसार नई उक्तियों का सृजन करता है जो पहले न कभी बोली गई हों और न ही सुनी गई हों लेकिन वे सदैव समझी गई हों। इसका कारण यह है कि वे संहिता (कोड) की अभिव्यक्ति के रूप में नई और संदेश के रूप में जानी-पहचानी है। वास्तव में ये संदेश सामाजिक परंपराओं की व्यवस्था के अनुरूप व्यक्त होते हैं और शैलीविज्ञान भाषा के सामाजिक एवं सर्जनात्मक प्रकार्य का अध्ययन होने के कारण यह पता लगता है कि संप्रेषण मे कौन-सी भाषिक इकाइयाँ आएँगी और जिस रीति से संदेश सुव्यवस्थित होते हैं उसमें विभिन्न परंपराओं के प्रभाव किस प्रकार स्वयं को स्पष्ट करते हैं।

शैलीविज्ञान भाषा के बोधात्मक, अभिधात्मक और सौंदर्यपरक संसाधनों के प्रयोजनमूलक पक्षों का अध्ययन है। हैलिडे ने सामाजिक दृष्टि से इन्हें क्रमशः उद्‌भावनापरक, अंतःव्यक्तिक और साहित्यिक कहा है। भाषा के ये प्रकार्य एक दूसरे से अलग नहीं हैं वरन् परस्पर संबद्ध है। भाषा का बोधात्मक पक्ष संदर्भ की अभिव्यक्ति करता है। इसमें वक्ता अपनी चेतना, अपनी प्रतिक्रिया, संज्ञान और अपने अंतर में हुए अनुभवों को सामने लाता है और यहाँ तक कि बोलने और समझने के भाषायी व्यापारों को प्रकट करता है। दूसरा प्रकार्य संदर्भ की अभिव्यक्ति से भिन्न है इसमें वक्ता की वृत्ति और व्यक्तित्व का पता चलता है और उसमें तथा श्रोता के बीच जो संबंध हैं, वह ज्ञात हो जाता है। तीसरा प्रकार्य व्यक्ति की भाषापरक सर्जनात्मकता से संबंधित है। यह भाषा के आंतरिक पक्ष से जुड़ा हुआ है। यह प्रकार्य स्थिति एवं संदर्भ के अनुसार कार्य करता है। यह वाक्य के बीच के संबंधों की स्थापना तक सीमित नहीं है जिसमें इसका अर्थ संदेश के रूप में अपने आप में और संदर्भ के अनुरूप मिलेगा। वास्तव में यहाँ वाक्यों की सीमा का अतिक्रमण भी हो जाता है। भाषा का यह प्रकार्य वक्ता का सौंदर्यपरक या सर्जनात्मक प्रयोग है और शैलीविज्ञान भाषा के अभिव्यंजनापरक, प्रभावपरक और सौंदर्यपरक पक्षों का अन्वेषण करने हेतु भाषाविज्ञान की सहायता करता है।

भाषाविज्ञान का संबंध वक्ता की आम प्रेरणा से नहीं है कि वह अपनी भाषा के द्वारा और क्या प्राप्त करना चाहता है। यह स्थितिपरक संदर्भ से न तो संबंधित है और न ही वक्ता और श्रोता के बीच और उनके सामाजिक स्तर से या उनकी भूमिका से उसका संबंध है। लेकिन मानव तो सामाजिक प्राणी है, इसलिए उसकी भाषा में सामाजिक संरचना, सामाजिक व्यवहार और मानव संस्कृति का भी योगदान रहता है जिसके लिए शैलीविज्ञान उपयोगी सिद्ध होता है। सामाजिक स्थितियों में अपनी बात को संप्रेषित करने के लिए वक्ता की भाषा में परिवर्तन होता रहता है। टेलीफोन पर बात करते हुए कार्यालय में अपने अधिकारी या अधीनस्थ कर्मचारी के साथ बात करते हुए, कॉलेज में प्रिंसिपल या अन्य सहयोगी अध्यापकों तथा छात्रों के साथ बात करते हुए, भाषा बदलती रहती है। यहाँ पर शैलीविज्ञान वक्ता और श्रोता के स्तर को, उनके संबंधो को, भाषायी कोड या संहिता को और संदेश के विषय को ध्यान में रखता है जो उसके वाक् व्यवहार के केंद्र बिंदु हैं।

इसी प्रकार भाषा के सौंदर्यपरक पक्ष अर्थात् साहित्य का अध्ययन करते हुए केवल भाषावैज्ञानिक दृष्टि अपनाई गई तो शैलीवैज्ञानिक केवल भाषा के व्याकरणिक रूपों और तत्वों का विश्लेषण कर पाएगा, किंतु साहित्य के मूल्य और गुणों की जानकारी नहीं दे पाएगा। इस बात से कोई इनकार नही करेगा कि प्रत्येक अभिव्यक्ति का अपना वाह्य और आंतरिक पहलू होता है। अतः अभिव्यक्ति के तथ्यों से अवगत होने के लिए भाषावैज्ञानिक को भावों की जानकारी होना आवश्यक है। अभिव्यक्ति में भाव, विचार, संवेदनाएँ, सामाजिक स्तर आदि तत्व भी समाए होते हैं। अतः भाषा के भाषापरक पक्ष का अध्ययन करने के लिए शैलीविज्ञान ही समर्थ है। यदि भाषाविज्ञान की सहायता ली जाती है तो कृति के साथ अन्याय होगा। वस्तुतः शैलीविज्ञान में भाषा आधार के रूप में कार्य करती है तो उसका आधेय सौदर्य या सर्जनात्कता है जबकि भाषाविज्ञान में भाषा अध्ययन का आधार होती ही है, साथ में आधेय भी होता है।

भाषाविज्ञान भाषा की महत्तम इकाई वाक्य को मानता है जबकि शैलीविज्ञान वाक्य से ऊपर भी जाता है। भाषाविज्ञान भाषा के वाक्य के विश्लेषण तक ही सीमित है जबकि शैलीविज्ञान पूरी कृति को भी अपनी परिधि में समेट लेता है। इसीलिए आज प्रोक्ति विश्लेषण अर्थात् वाक्योपरि संरचना द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि शैलीविज्ञान भाष की सहज महत्तम इकाई वाक्य नहीं मानता बल्कि रचना, पैराग्राफ और चिंतन इकाई आदि की संरचात्मक व्याख्या करने में अधिक सक्षम है क्योंकि वह अंतर्वाक्य संयोजन की न तो उपेक्षा करता है और न ही चिंतन इकाई की। किसी साहित्यिक पाठ का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन करते हुए न केवल उसके वाक्य संबंधों का विश्लेषण करना होगा वरन् पाठ के अन्य पहलुओं यानी उसके वाक्यों, उपवाक्यों, कोशीय रूपों, व्याख्यात्मक अभिलक्षणों, तथा वक्ता और श्रोता के संबंधों की भी व्याख्या की जाएगी।

काव्य और भाषा के संबंधों को तीन संदर्भों में देखा जा सकता है :

(1) काव्य भाषा है अर्थात् पूर्णतया भाषा के क्षेत्र में आता है और इसलिए यह उसका एक अंग है। अतः काव्य की आलोचना भाषा के क्षेत्र में की जा सकती है।

(2) काव्य भाषा नहीं अपितु कला है। अतः वह भाषाविज्ञान के क्षेत्र के बाहर है।

(3) काव्य भाषा और कला के बीच आता है अर्थात् इसके कुछ पहलू भाषाविज्ञान के अंतर्गत आते हैं और कुछ कला के भीतर। इस प्रकार वह एक साथ दोनों विभिन्न क्षेत्रों का एक अंग है।

इन तीनों संबंधों पर चर्चा करते हुए एक विद्वान स्पोर्टा काव्य को पहले संबंध में ही रखते हैं। उनके मतानुसार दोनों संबंधों में आलोचना करने के लिए भाषाविज्ञानियों को अपने दायित्व एवं कार्यक्षेत्र से बाहर जाना होगा। वस्तुतः इसका कारण यह है कि भाषावैज्ञानिक विश्लेषण से जो तथ्य निकलते हैं वे साहित्यिक अनुभूति के परिणामस्वरूप प्राप्त सहजोपलब्ध अर्थ से भिन्न दिखाई देते हैं। इस कारण भाषाविज्ञान को काव्य की भाषा का रूप मान लिया गया होगा। यहाँ यह ध्यान में रखना है कि भाषा के सभी रूप काव्य नहीं हैं। वास्तव में स्पोर्टा के इस मत से यह झलकता है कि स्पोर्टा विश्लेषण की सीमा को ही काव्य की सीमा मान बैठे हैं। हमें यह भी देखना है कि काव्य भाषा का एक विशिष्ट रूप होते हुए भी अपनी स्वायत्त सत्ता रखता है। यदि हम भाषावैज्ञानिक विश्लेषण तक ही सीमित रहते हैं, तो हम काव्य की विभिन्न विशेषताओं का पता नहीं लगा सकेंगे और हमारा अध्ययन काव्यभाषा का अध्ययन नहीं होगा बल्कि वह शुद्ध भाषापरक अध्ययन रह जाएगा। अतः साहित्यिक अध्ययन में भाषावैज्ञानिक विश्लेषण के साथ-साथ साहित्यशास्त्रीय पहलुओं को भी लिया जाए तो साहित्य के सौंदर्यपरक तत्वों की खोज भी की जा सकेगी।

रोमन याकोब्सन जैसे विद्वान ने भी भाषाविज्ञान के क्षेत्र की सीमाओं का विस्तार करते हुए कहा कि भाषाविज्ञान प्रत्येक प्रकार की भाषा संरचना का सार्वजनिक विज्ञान है और काव्यशास्त्र को भाषाविज्ञान का अभिन्न अंग माना जा सकता है। याकोब्सन की यह दृष्टि अतिवादी है। भाषाविज्ञान किसी साहित्यिक कृति के ध्वनि-विधान, लय, छंद, वाक्य-रचना आदि को समझने में यदि सहायक हो भी जाता है लेकिन साहित्य के पारगामी क्रिया होने के कारण इसमें जो व्यंजना सौंदर्यानुभूति निहित रहती है, वह भाषाविज्ञान के द्वारा व्यक्त नहीं हो सकती और यहाँ काव्यशास्त्र उसकी सहायता के लिए आ पहुँचता है।

भाषाविज्ञान भाषा का वर्णनात्मक ज्ञान कराता है जबकि शैलीविज्ञान भाषा के सर्जनात्मक प्रयोग की ओर जागरूकता पैदा करता है। इस सर्जनात्मक प्रयोग से संदर्भानुसार अर्थ परिवर्तन हो जाता है और व्याकरणिक नियमों का अतिक्रमण होता है। शैलीविज्ञान ध्वनि, रूप, वाक्य एवं शब्द के स्तरों पर विशिष्टीकरण, विचलन और सर्जनात्मकता के संबंध में भाषाविज्ञान की सहायता करता है। इसमें शाब्दिक अर्थ की व्याख्या न करके अर्थगत विचलन की ओर ध्यान देना पड़ता है। 'चाँद मुस्करा रहा है', 'कलियाँ खिलखिला रही हैं', आदि वाक्यों को हम अर्थहीन या अनर्गल वाक्य इसलिए नहीं कह सकते क्योंकि 'मुस्कराना' या 'खिलखिलाना' क्रियाएँ न केवल चयनपरक प्रतिबंधों का अतिक्रमण करती हैं वरन् वक्ता और श्रोता को इन क्रियाओं के अर्थ के एक अंश को रद्द करके नए अर्थ की ओर संश्लेषित होना पड़ता है। इसमें चाँद और कली का जो मानवीकरण हुआ है और उसमें जो अर्थ निहित है उससे उसके प्रयोग के अभिप्राय या 'इंटेशन' का पता चलता है।

भाषा के साहित्यिक प्रयोग से कलात्मक अभिव्यक्ति भाषा प्रक्रिया के क्षेत्र में से बाहर नहीं रहेगी। यहाँ भाषाविज्ञान का कार्य केवल उस व्याकरण का निर्माण करना नहीं है जो भाषा में सुगठित एवं सुव्यवस्थित वाक्यों का सृजन करता है और उनकी व्याख्या करता है वरन् यह भी है कि भाषा के अंतःसंबंधों की भी खोज करना है जिनमें कोशीय अर्थों के साथ-साथ उनके बाहर भी जाना पड़ता है। अर्थात् सामाजिक, लाक्षणिक और व्यंजनापरक अर्थ भी ढूँढ़ने पड़ते हैं। उदाहरण के लिए; 'राम का बाप पत्थर है' वाक्य को शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता क्योंकि 'बाप' तो (+प्राणीवाचक) और (+मानव) है और पत्थर तो (+अप्राणीवाचक) और (+ठोस) है। यहाँ इस वाक्यीय अर्थ से वह बाहर होकर संदर्भपरक अभिलक्षणों के आधार पर देखना होगा, अतः इस वाक्य में नया अर्थ निकालते हुए 'निष्ठुरता' या 'कठोरता' के अभिलक्षणों से जोड़ना होगा, क्योकि ये शब्दों के कवेल सहजात अभिलक्षण नहीं हैं वरन् तथ्यात्मक सूचना के लक्षण भी हैं। यहाँ शैलीविज्ञान इसकी सहायता के लिए आ जाए तो भाषायी क्षमता को साथ-साथ भाषायी व्यवहार के कार्य में भी सहायता करेगा।

इस प्रकार भाषाविज्ञान से कलात्मक शैली की समस्याओं को नहीं सुलझाया जा सकता जो भाषा के विभिन्न प्रयोजनमूलक रूपों का एक अंतरंग अंग है। भाषावैज्ञानिक विश्लेषण विभिन्न संरचनात्मक तत्वों और प्रक्रियाओं का निर्धारण करता है। शैलीविज्ञान वाक् के सामान्य शैलीगत अभिलक्षणों की स्थापना करने में सहायता करता है। शैलीविज्ञानिक विश्लेषण का कार्यक्षेत्र वाक् के ठोस व्यवहार की संरचना है और उसके विशिष्ट तत्वों के चयन एवं उनके प्रयोगीकरण की विशिष्ट रीति है। शैलीविज्ञान भाषायी साधनों के प्रयोजनमूलक इकाइयों का सही और वृहद ज्ञान दिलाने में सहायता करता है। अतः साहित्यिक कृति के शैलीवैज्ञानिक अध्ययन में केवल भाषा का अध्ययन नहीं आता वरन् उस कृति का अध्ययन भाषावैज्ञानिक विधि-प्रविधि को अपनाकर किया जाता है जो उसे वस्तुनिष्ठ बनाता है।

9.6 शैलीविज्ञान और साहित्यिक आलोचना

ाहित्यिक कृति के सौंदर्य पक्ष का विवेचन एवं विश्लेषण मूल्यों के संदर्भ में (चाहे वे ामाजिक हों या मनोवैज्ञानिक या नैतिक) करना साहित्यिक आलोचना का विषय है। इस ालोचना से साहित्य की व्याख्या नैतिक या सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टि से की जाती है और ाहित्य के भाषिक रूप की ओर ध्यान देना उचित नहीं समझा जाता और वह अध्ययन वल व्यापक साहित्यिक अनुभवों पर आधारित होता है। लेकिन शैलीविज्ञान साहित्यिक ति के सौंदर्यपक्ष को व्यक्त करने के लिए कृति की संरचना या संघटना का विश्लेषण रता है और इसीलिए इसे साहित्यिक विश्लेषण भी कहा जा सकता है। शैलीविज्ञान में हित्यिक प्रयोजन के लिए भाषा संसाधनों के प्रयोग को गहराई से समझा जाता है। ीविज्ञान भाषा का अध्ययन करता है और इसलिए यह भाषाविज्ञान से अनिवार्यतः ंधित है और यदि हम यह परिकल्पना करें कि इसमें कलात्मक भाषिक रचना की शैली अध्ययन भी सम्मिलित है तो इसका संबंध काव्यशास्त्र या साहित्य सिद्धांत के साथ श्य ही है। साहित्यिक आलोचना का कार्य मूल्य-निर्णय और सौंदर्यानुभूति के बारे में ाना है जबकि शैलीविज्ञान उस भाषा का विश्लेषण करता है जिसमें साहित्य के मूल्य र साहित्य से हुई रसानुभूति समाहित होती है। इस प्रकार साहित्यिक आलोचना मूल्य-क्ष है और शैलीविज्ञान मूल्य-निरपेक्ष। साहित्यिक आलोचना में कलात्मक मूल्यों को ामिकता दी जाती है और भाषा को सौंदर्यपरक मूल्यांकन के लिए साक्ष्य के रूप में लाया ा है जबकि शैलीविज्ञान में भाषा का आधार मानकर सौंदर्य को पकड़ा जाता है और ात्मक मूल्यों को आनुषंगिक माना जाता है। शैलीविज्ञान की प्रकृति वर्णनात्मक है। ी भी शैली का अध्ययन और विश्लेषण करता हुआ उसकी विशिष्टताओं का निर्णय ता है किंतु उसका मूल्यांकन नहीं करता। यही वैज्ञानिक विधि है। अतः इसकी दृष्टि से हेत्य की भाषा के समुचित विश्लेषण और स्पष्टीकरण से ही मूल्यांकन तथा समीक्षा के तविक तत्वों की सही जानकारी हो सकती है। यदि साहित्यिक आलोचना में केवल मपरक एवं यादृच्छिक धारणाओं से साहित्यिक कृतियों की समालोचना न की जाए तो र विचार में शैलीविज्ञान को साहित्यिक आलोचना कहने में किसी को आपत्ति नहीं । वास्तव में रामचंद्र शुक्ल की आलोचना पद्धति शैलीविज्ञान के अधिक निकट जा ी है यदि वे लोकमंगल की भावना से साहित्यिक कृतियों की आलोचना न करते।

उठता है कि शैलीविज्ञान में किन पक्षों को लिया जाए जिससे वह साहित्य की सही पड़ताल और परीक्षण कार्य में समर्थ हो सके। वस्तुतः साहित्य का सही परीक्षण भाषा वेश्लेषण के बिना नहीं हो सकता। साहित्यिक संरचना के लिए भाषा का होना अनिवार्य ्सलिए साहित्यिक अन्वेषक को प्रत्येक भाषिक रूप के सौंदर्यपरक पहलुओं पर दृष्टि ी होगी। अतः यह आलोचना तभी प्रभावकारी सिद्ध होगी यदि उसमें कृति का ोकरण, अलंकार, छंद, बिंब, काव्यकला आदि तत्वों की जानकारी के साथ-साथ त्यिक विश्लेषण के परिभाषित तथा समुचित उपकरणों का सही प्रयोग किया जाए अ।. कार्य में भाषाविज्ञान ही सहायता कर सकता है। जहाँ भाषाविज्ञान किसी कृति के त्यिक मूल्यों को सुलझाने में असमर्थ हो जाता है वहाँ साहित्यशास्त्र उसकी सहायता जा पहुँचता है और जहाँ साहित्यशास्त्र भाषिक वैशिष्ट्य को नहीं पकड़ पाता वर विज्ञान उसके साथ चल कर उसे उस वैशिष्ट्य की पूरी-पूरी जानकारी देता है। अतः भाषा वैज्ञानिक अध्ययन समाप्त होगा वहीं पर साहित्यिक आलोचना प्रारंभ होती है।

वेज्ञान का संबंध भाषा की संघटना या संरचना का पता लगाना है और साहित्यशास्त्र संबंध कृति के सौंदर्यपक्ष का उद्घाटन करना है। इसलिए भाषाविज्ञान का दृष्टिकोण रक एवं यथार्थवादी है और वह साहित्यिक आलोचक को सैद्धांतिक अंतर्दृष्टि के साथ-ठोस एवं व्यावहारिक पद्धति भी प्रदान करता है। साहित्यिक आलोचना भाषिक संरचना

का मूल्यांकन इस प्रकार करती है जिससे यह पता चले कि यह कला की वस्तु किस प्रकार बनी है और यह शाब्दिक कला अन्य कलाओं से विशिष्ट रूप से अलग क्यों है और इसे प्रमुख साहित्यिक अध्ययन मे प्रमुख स्थान क्यों मिला है? किंतु कठिनाई यह है कि साहित्य के आंतरिक मूल्य का अध्ययन यह आत्मपरक रूप में करती है जिससे साहित्य का वस्तुवादी विश्लेषण नहीं हो पाता। इसीलिए, भाषाविज्ञान और साहित्यशास्त्र के समन्वित अध्ययन पर बल देते हुए रोमन याकोब्सन जैसे विद्वान ने एक स्थान पर कहा है कि हम सबको महसूस करना चाहिए कि भाषा की काव्य प्रक्रिया के प्रति उपेक्षा भाव रखने वाले भाषाविज्ञानी और भाषावैज्ञानिक समस्याओं से उदासीन एवं भाषावैज्ञानिक प्रणालियों से अपरिचित साहित्यशास्त्री दोनों ही अपने समय से बहुत पीछे हैं। यूरोपीय विद्वान स्टेंकविक्ज ने भी इन दोनों दृष्टियों के परस्पर सहयोग का जोरदार समर्थन करते हुए कहा कि यदि भाषाविज्ञानी ओर काव्य समीक्षक के सहयोग को फलप्रद बनाना है तो यह आवश्यक है कि भाषाविज्ञानी को काव्यरूपों तथा उसकी परंपरा से संबंधित सभी समस्याओं से भली भाँति परिचित होना चाहिए तथा साहित्यिक आलोचक को भी आधुनिक भाषाविज्ञान द्वारा अपनायी जा रही नवीनतम पद्धति और इस क्षेत्र की उपलब्धियों का सही ज्ञान होना चाहिए। अतः इन दोनों दृष्टियों को आधार के रूप में लेकर शैलीविज्ञान साहित्य की उस संरचना, कोड या प्रकार्य का विश्लेषण करता है जिसके भीतर साहित्य के मूल्य समाहित होते हैं।

19.7 कविता का शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण

जयशंकर प्रसाद द्वारा चरित 'बीती विभावरी जाग री' कविता का शैलीवैज्ञानिक अध्ययन इस प्रकार है :

कविता

बीती विभावरी, जाग री।
अंबर पनघट में डुबो रही
ताराघट उषा नागरी,
बीती विभावरी जाग री।
खगकुल कुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो, यह लतिका भी भर लाई,
मधु-मुकुल-नवल-रस गागरी।
अधरो में राग अमंद पिए,
अलकों में मलयज बंद किए,
तू अब तक सोई आली,
आँखों से भरे विहाग री।

विश्लेषण

इस कविता की संरचना को समझने क लिए पहली पंक्ति में दो वाक्यों का संयोजन है। इसमें दो कथन मिलते हैं। पहले कथन में तारों भरी रात्रि अर्थात् विभावरी के बीत जाने का संकेत है और दूसरा कथन संबोधनपरक है जिसमें 'अरी, तू जाग जा' का अर्थ मिलता है।

इस कविता में प्रकृति विषयक एक अर्थक्षेत्र के अंतर्गत 'विभावरी' के साथ-साथ अंबर, तारा, उषा, खग, किसलय, लता, मुकुल, मलयज जैसे संज्ञापदों का चयन किया गया है। इनसे उनके अर्थगत अभिलक्षण इस प्रकार मिलते हैं, जिनसे उनके अंश – अंशी को परस्पर संबंध का परिचय होता है। जैसे :

1. अंबर – विभावरी – तारा
2. अंबर – उषा और लातिका – मुकुल

रा शब्द-चयन मानव-जगत से संबद्ध है जिससे एक अलग प्रकार के अर्थक्षेत्र का निर्माण ा है। जैसे–नागरी, अधर, अलक, आँख, आली। इसी प्रकार पनघट, घट, गागरी ापदों का तीसरा अर्थक्षेत्र है। एक अन्य शब्द 'विहाग' संगीत क्षेत्र से संबद्ध है। यह ोग साभिप्राय है।

वेता की पहली पंक्ति में वाक्य स्तर पर विचलन है। इसस पहले वाक्यांश में कर्त्ता औ या का संयोजन है किंतु कर्म–नियोजन में अतिक्रमण हुआ है अर्थात् क्रिया पहले आती और कर्त्ता बाद में–बीती विभावरी। दूसरे वाक्यांश में कर्त्ता (तू) का अध्याहार है। बाद की तियों में 'अंबर-पनघट', 'ताराघट' और 'उषा नागरी' शब्द-युग्मों में अर्थ स्तर पर लन है। यह विचलन साभिप्राय हुआ है और इससे 'रूपक अलंकार' की सृष्टि हुई है। वाक्य के क्रिया–व्यापार में मानवीय व्यापार का संकेत मिलता है।

र पद्यांश में 'खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा' में 'कुल' की आवृति से समांतरता की ट हुई है। 'खग कुल' और 'कुल-कुल' के 'कुल' में अर्थ स्तर पर विरोधमूलक तरता मिलती है जिससे यमक अलंकार' का जन्म हुआ है। इसके बाद 'किसलय' ने इस प्रयोग में औचित्य दिखाया है। 'किसलय' के चयन से 'कोपल' का अर्थ ता है। इसके अतिरिक्त, 'किसलय का अंचल' प्रयोग में साभिप्रायता दिखाई देती है कि 'अंचल' का संबंध नारी से है जो अर्थस्तरीय विचलन की दृष्टि से लतिका के द्वारा ीय व्यापार को द्योतित करती है। 'मधु-मुकुल-नवल-रस-गागरी' वाक्यांश के प्रयोग में में मानवीय व्यापारपरक शक्ति का परिचय नहीं मिलता क्योंकि 'मुकुल' की 'गागरी' हो सकती किंतु इससे एक सुंदर बिंब अवश्य बन पड़ा है।

र पद्यांश में 'आँखों में भरे विहाग री' वाक्य में 'विहाग' राग का संकेत किया गया है से यह अर्थ निकलता है कि अर्धरात्रि को प्रिय की प्रतीक्षा विफल होने पर कारुणिक में यह राग गाया जाता है। इसका सह-प्रयोग 'अधर' या 'स्वर' से बैठता है, आँख से यह विचलन साभिप्राय हुआ है क्योंकि इससे विहाग की करुणा आँखों में मूर्तिमान हो ी है।

ा में 'अंबर-पनघट' से लेकर 'नवल-रस-गागरी' तक का कथन 'प्रकृति के जागने' का ा देता है, किंतु 'अधरो में राग' से लेकर अंतिम पंक्ति की 'विभावरी' तक का कथन का के सोने' की सूचना देता है। अतः यहाँ 'जगाने' और 'सोने' में तथा 'प्रकृति' 'नारी' में कथ्य के धरातल पर विरोध दिखाई देता है। इस विरोधमूलकता के कारण ा की पहली पंक्ति सार्थक हो जाती है – 'तारों से जगमगाती रात्रि बीत गई है, अरी तू जाग जाग।'

कविता में 'अंबर पनघट', 'ताराघट' और 'उषा नागरी' अभिव्यक्तियाँ अपने कोशीय की सीमा को तोड़कर व्यापक अर्थ की ओर अग्रसर हुई हैं। 'अंबर' से विस्तार, 'तारा' गमगाहट और विलासिता' तथा उषा से 'दीप्त चेतना' के प्रतीयमान अर्थ मिलते हैं। सामान्य पक्षी का अर्थ न देकर आकाश में जाने वाले का अर्थ द्योतित करता है। लय का अंचल' से 'नवयुवक वर्ग' का और लतिका से 'नवयुवती' का अर्थ मिलता वि स्वयं अभिप्रेरक बनकर जनसमाज को जागृत करने के लिए संबोधन करता है। इस कवि ने प्रकृति के बिंब विधान से रात्रि और उषा का जो संयोजन किया है उससे ने सामंतशाही की विलासिता ओर श्रृंगारिकता की चकाचौंध में लिप्त जनसमाज को करने के लिए आह्वान किया है। इस कविता में युवाओं में नवचेतना अर्थात् तिक चेतना जागृत करने का प्रयास किया है। रात्रि के कई पर्याय हैं किंतु यहाँ री का सार्थक प्रयोग हुआ है क्योंकि विलासिता की विभावरी के बीतने की बेला ने

जन-समाज की दृष्टि में विहाग-ही-विहाग की करुण छाया है। अतः इस कविता से यथास्थिति से मुक्त होने का संदेश प्राप्त होता है।

इसमें एक अन्य अर्थ भी निकलता है। इसमें प्रकृति में मानवीकरण का आरोपण किया गया है। प्रकृति का प्रतीक रूप में चित्रण हुआ है। उषा नागरी से अभिप्राय उषा रूपी रसिक नारी से है। इससे यह व्यंजना निकलती है कि रात्रि बीत गई है, अब प्रिय नहीं आएगी और तुम्हारे विहाग राग को अर्थात् तुम्हारी वेदना को हम समझ सकते हैं।

19.8 सारांश

शैलीविज्ञान वह आलोचना प्रणाली है जिससे साहित्यिक कृति की समझदारी को विकसित और व्यवस्थित किया जाता है। यह एक वस्तुनिष्ठ और भाषापरक आलोचना है जो साहित्य के मर्म तक पहुँचाने में सहायक है। शैलीविज्ञान साहित्य को भाषिक कला की श्रेणी में रखता है जिसके एक ओर कला है और दूसरी ओर भाषा। भाषा के बिना साहित्य की रचना नहीं हो पाती। वास्तव में भाषा के गर्भ से ही साहित्य का सृजन होता है। भाषा का सर्जनात्मक प्रयोग शैली है जिसके अंतर्गत कलात्मक सौंदर्य और भाषिक संरचना अंतर्निहित रहते हैं। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में शैली का सैद्धांतिक विवेचन तो कम हुआ है किंतु उसकी विशेषताओं और गुण-दोषों पर चर्चा अवश्य हुई है। शैली को एक विलक्षण और विशिष्ट पद्धति माना गया है जिसमें जातिगत और व्यक्तिगत विशिष्टताओं का, प्राचीनता और नवीनता का, स्थायित्व और परिवर्तन का विचित्र संयोजन है और इससे सरलता, स्पष्टता, प्रभावोत्पादकता, लयात्मकता आदि का प्रादुर्भाव होता है। भारतीय कलाशास्त्र में 'शैली' शब्दों का प्रयोग विभिन्न कलाओं के संदर्भ में मिलता है किंतु काव्यशास्त्र में शैली शब्द रीति सिद्धांत के अधिक निकट जा पड़ता है। इसके अतिरिक्त शैली के विकास में अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति, रस और औचित्य सिद्धांतों का भी कम योगदान नहीं रहा। आधुनिक संदर्भ में शैली को विचारों के आवरण के रूप में, अलंकरण के रूप में, व्यक्ति-वैशिष्ट्य के रूप में, प्रतिमान से विचलन के रूप में, चयन के रूप में तथा वाक्योपरि भाषायी विशेषताओं के समुच्चय के रूप में परिभाषित किया गया है। इस प्रकार शैली में अभिव्यंजना की एक ऐसी शक्ति अंतर्निहित होती है जो कवि के सर्जनात्मक प्रयोग को सौंदर्यमूलक और प्रभावोत्पादक बनाती है।

साहित्य के इसी शैलीपरक प्रयोग का अध्ययन शैलीविज्ञान करता है। शैलीविज्ञान का प्रतिपाद्य है साहित्यिक कृति और उसके विश्लेषण का केंद्रबिंदु है कृति की काव्यात्मकता और सर्जनात्मकता। वह आलोचना की वह भाषापरक प्रणाली है जो दर्शन के साथ विज्ञान भी है और इसमें विश्लेषण की विधि-प्रविधि मिलती है। आलोचना के दो आयाम हैं – (1) बहिरंग आलोचना और (2) अंतरंग आलोचना। बहिरंग आलोचना में पाठक, दर्शन, सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों आदि की दृष्टि से साहित्यिक कृति का अध्ययन किया जाता है। अंतरंग आलोचना में साहित्यिक कृति को स्वायत्त इकाई मानकर आंतरिक संरचना का अध्ययन होता है और उससे कृति की साहित्यिकता और सर्जनात्मकता की खोज की जाती है। वास्तव में अंतरंग आलोचना ही शैलीविज्ञान है।

शैलीविज्ञान का प्रादुर्भाव बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में स्वीट्ज़रलैंड के जेनेवा स्कूल के सुविख्यात चार्ल्स बेली द्वारा हुआ। बेली ने भाषा के अभिव्यंजक पक्ष और उसकी प्रक्रिया के अध्ययन को शैलीविज्ञान कहा है। यद्यपि बेली ने साहित्यिक कृति को शैलीविज्ञान के अंतर्गत नहीं रखा किंतु उनके सिद्धांत जहाँ भाषा-प्रयोक्ता के सौंदर्यपरक और प्रभावोत्पादक तत्वों पर लागू होते हैं वहाँ साहित्यकार की भाषा पर भी लागू होते हैं। हिंदी में शैलीविज्ञान को कुछ विद्वान शैलिकी कहते हैं और कुछ विद्वान रीतिविज्ञान कहते हैं। किंतु शैलीविज्ञान नाम को अपेक्षाकृत अधिक स्वीकार किया गया है।

शैलीविज्ञान भाषाविज्ञान की अनुप्रायोगिक विधा है। साहित्यिक कृति के मर्म तक पहुँचने के लिए भाषावैज्ञानिक नियमों और सिद्धांतों का अनुप्रयोग किया जाता है किंतु भाषा के सौंदर्यपरक तत्वों के विवेचन में भाषाविज्ञान असफल हो जाता है। अतः शैलीविज्ञान भाषा को आधार के रूप में तो लेता है किंतु साहित्यिक कृति के सौंदर्यपरक और सर्जनात्मक प्रयोगों तक पहुँचने के लिए कलापरक उपकरणों की उसे सहायता लेनी पड़ती है। यहाँ साहित्यशास्त्र और साहित्यिक आलोचना साहित्यिक कृति के कलात्मक रूपों तथा साहित्यिक मूल्यों का सही मूल्यांकन करने में समर्थ हैं।

9.9 अभ्यास प्रश्न

निबंधात्मक प्रश्न

(1) शैलीविज्ञान और भाषाविज्ञान में अंतर स्पष्ट करते हुए यह भी बताइए कि शैलीविज्ञान भाषाविज्ञान है अथवा एक स्वतंत्र विधा।

(2) शैलीविज्ञान और साहित्यिक आलोचना के पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट करते हुए बताइए कि शैलीविज्ञान में साहित्यिक आलोचना की क्या भूमिका है?

(3) काव्य और भाषा के संबंधों के आधार पर क्या आप सहमत हैं कि भाषाविज्ञान और साहित्यिक आलोचना का समन्वित रूप शैलीविज्ञान है। इस संबंध में अपना मत/तर्क सहित दीजिए।

टिप्पणियाँ

1. भारतीय वाङ्मय में शैली की व्युत्पत्ति
2. पाश्चात्य काव्यशास्त्र में शैली की संकल्पना
3. शैली – प्रतिमान के विचलन के रूप में
4. शैली के व्यक्ति वैशिष्ट का स्वरूप
5. बहिरंग आलोचना और अंतरंग आलोचना

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निम्नलिखित कथनों में से जो कथन सही हो उस पर (√) का निशान लगाइए और जो गलत है उस पर (×) का निशान लगाइए।

1. साहित्य एक भाषिक कला है। (सही/गलत)
2. भाषा के बिना साहित्य की रचना हो सकती है। (सही/गलत)
3. साहित्य के भाषापरक अध्ययन को शैलीविज्ञान कहते हैं। (सही/गलत)
4. शैली भाषा का सर्जनात्मक प्रयोग है जिसमें कलात्मक सौंदर्य और भाषिक संरचना का समन्वय होता है। (सही/गलत)
5. भारतीय काव्यशास्त्र में शैली शब्द रीति सिद्धांत के निकट नहीं माना गया है। (सही/गलत)
6. वक्रोक्ति वह उक्ति अथवा कथन-शैली है जो साधारण भाषा प्रयोग से भिन्न तथा विशिष्ट होती है। (सही/गलत)
7. शैली व्यक्ति-वैशिष्ट्य नहीं है। (सही/गलत)
8. शैली वाक्योपरि भाषायी विशेषताओं का समुच्चय है। (सही/गलत)

उत्तर

1. सही, 2. गलत, 3. सही, 4. सही, 5. गलत, 6. सही, 7. गलत, 8.

इकाई 20 कोश विज्ञान

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 कोश के विविध नाम
20.3 कोश विज्ञान और शब्दार्थ विज्ञान
20.4 कोशों के प्रकार
20.5 कोश निर्माण की प्रक्रिया
20.5.1 नियोजन
20.5.2 प्रविष्टियों का चयन
20.6 कोशीय प्रविष्टि की संरचना
20.6.1 नामांकन
20.6.2 प्रतिसंदर्भ
20.7 सारांश
20.8 अभ्यास प्रश्न

20.0 उद्देश्य

आधुनिक युग में बहुभाषिता की स्थिति के कारण हम सब लोगों को कोश देखना पड़ता है। इस कारण कोश विज्ञान की प्रक्रिया की जानकारी हमें विविध कोशों के उपयोग में सहायता दे सकते हैं। इसके बाद अगर व्यक्ति कोश विज्ञान में रुचि रखता है तो इस इकाई से उसे कोश निर्माण का परिचय मिलेगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- कोशों के प्रकार बता सकेंगे;
- अनुप्रयोग भाषाविज्ञान के रूप में कोश विज्ञान का स्वरूप समझा सकेंगे;
- कोश कैसे बनाए जाते हैं इस प्रक्रिया का स्वरूप समझा सकेंगे; और
- कोश की प्रविष्टि को सोदाहरण समझा सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना

कोशकार भाषा का इतिहासकार होता है। उसका कर्त्तव्य होता है कि वह किसी भी शब्द के स्वरूप और अर्थ का यथातथ्य निरूपण, विश्लेषण और विवेचन करे। उसका संबंध 'क्या है? कैसा होता है 'क्या होना चाहिए?' से नहीं। जैसे एक भूगोल का विद्वान सिर्फ इतना ही बयान कर सकता है कि गंगा हिमालय से निकलाकर बंगाल की खाड़ी में गिरती है अथवा विन्ध्यांचल भारत के बीच में स्थित है। भूगोलवेत्ता के लिए यह कहना अनुचित होगा कि गंगा को ऐसे नहीं वैसे बहना चाहिए। कोशकार का काम बहुत कुछ ऐसा ही होता है लेकिन इसमें एक अंतर होता है। कोशकार अपनी ओर से चाहे कितना ही वस्तुनिष्ठ क्यों न हो, कोश का प्रयोजन और सामग्री का प्रस्तुतीकरण ऐसा होता है कि उसके द्वारा 'क्या होना चाहिए' के लिए इंगित मिलता ही है। आगे चलकर समय के साथ कोश किसी भी रूप या अर्थ को स्थिरता और मानकता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। यहाँ यह उल्लेख करना उचित होगा कि बहुत सारे कोशों का निर्माण भाषा के मानकीकरण के लिए ही किया जाता है। सत्रहवीं-अठाहरवीं शताब्दी से आरंभ कर आज तक यूरोप की बहुत सी भाषाओं के अकादमिक कोशों के पीछे यही उद्देश्य रहा है। 'फ्रांसीसी, इतालवी, स्पेनी और रूसी अकादमियों के कोशों तथा जानसन के प्रसिद्ध अंग्रेजी कोश ने अपनी-अपनी भाषाओं के मानकीरण में जो महत्वपूर्ण योगदान दिया है वह सर्वविदित है।

इसमें संदेह नहीं कि कोश भाषा के मानकीरकण में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं लेकिन इससे यह निष्कर्ष निकालना अत्यंत भ्रांतिपूर्ण होगा कि कोशकार मानकीकरण जानबूझ कर करता है। होता यह है कि लोग कोश की अनेक बार सत्य उचित आदि के लिए देखते हैं और धीरे-धीरे ये ही रूप/अर्थ मान्यता प्राप्त कर लेते हैं।

ानव ज्ञान की प्रगति के साथ-साथ अन्य विषयों की तरह कोशों की उपयोगिता में वृद्धि ुई है। कोश अब मात्र संदर्भ ग्रंथ ही नहीं रह गए हैं। उनके प्रयोग के नए आयाम सामने ाए हैं। 'भाषा शिक्षण' भाषा नियोजन तकनीकी शब्दावली का गठन और सामग्री निर्माण ादि विभिन्न क्षेत्रों में कोशों का उपयोग दिन-ब-दिन बढ़ रहा है।

ातायात और संचार के साधनों में वृद्धि के साथ-साथ दुनिया दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। वेभिन्न भाषा-भाषियों के बीच नाना प्रकार के आदान-प्रदान चाहे वे विचार के स्तर के हों ा वस्तु या तकनीक के – बढ़ रहे हैं। इसके लिए एक से अधिक भाषाओं के ज्ञान की ावश्यकता होती है। अनुवाद करने पड़ते हैं। इन सबके लिए द्विभाषी या बहुभाषी कोशों की ाहुत आवश्यकता पड़ती है।

ाजकल अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की अन्य शाखाओं के साथ कोश विज्ञान का पठन-पाठन ी होने लगा है। इसके लिए भी कोश कला या कोश रचना और कोश विज्ञान का ज्ञान ावश्यक है।

·0.2 शब्दकोश के विविध नाम

ोश या शब्द कोश को भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से ही बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया ाता रहा है। निरुक्त का स्थान बेदागों में अन्यतम है। कोश को अर्थ निर्धारण के लिए ाप्त प्रयोग की तरह प्रामाणिक एवं आधारभूत तत्व माना जाता रहा है। व्याकरण के साथ ी कोश की रचना पाण्डित्यपूर्ण समझी जाती रही है।

ोश के लिए भारतीय भाषाओं में अनेक नाम मिलते हैं। प्रत्येक नाम का अपना अर्थ और हत्व है। इसके द्वारा कोश की सामग्री के संकलन और उसके प्रस्तुतीकरण की ओर इंगित ालते हैं।

ोश के लिए सबसे प्राचीन नाम 'निंघण्टु' है। यास्क का निरुक्त निघण्टु पर ही आधारित ी परवर्ती काल में इस शब्द का प्रयोग पर्यायवाची अनेकार्थ, नानार्थ आदि कोशो के लिए िया गया। कन्नड़, मलयालम और तेलुगु में अब भी कोश को निघण्टु की ही संज्ञा दी ाती है। मलयालम में अंग्रेज़ी के Lexicon शब्द के लिए 'महानिघण्टु' शब्द का प्रयोग िया गया है। तमिल के प्राचीन कोश ग्रंथों को निघण्टु की संज्ञा दी गई है।

ोश का दूसरा महत्वपूर्ण नाम 'अभिधान' है। अभिधान का अर्थ 'नाम' होता है। अभिधान ाम वाले ग्रंथों में हेमचन्द्राचार्य का 'अभिधान चिंतामणि' सर्वश्रेष्ठ है। हलायुध कृत भिधान रत्नमाला' भी उल्लेखनीय है। बंगला और असमिया में कोश के लिए अभिधान ब्द का प्रयोग किया जाता है।

ोश के लिए अन्य प्रयुक्त शब्द हैं – शब्द कल्पद्रुम, शब्दार्थ कोस्तुभ, शब्द पारिजातम, शब्द तामणि शब्द सागर, शब्द महार्णव, शब्द रत्नाकर, शब्द मुक्तावली, शब्द मंजरी आदि। नमें से प्रत्येक नाम कोश के किसी न किसी पहलू के संदर्भ में अर्थवान हैं और कोश के ा विशेष पर प्रकाश डालते हैं।

जिस तरह कल्पद्रुम, चिंतामणि या कौस्तुभ मणि के संबंध में यह धारणा है कि वे वाचक को निमिप मात्र में उसकी इच्छानुसार सब कुछ देने में समर्थ होते हैं उसी प्रकार कोश के विषय में भी यह धारणा और विश्वास है कि उसमें पाठक द्वारा अपेक्षित सभी सूचनाएँ अवश्यमेव तत्काल ही मिल जाती हैं। इसीलिए कोश के लिए ये नाम दिए गए हैं।

किसी भी भाषा में शब्दों की संख्या अनगिनत होती है। इसके अलावा भाषा में नए शब्दों और नए प्रयोगों के निर्माण की भी क्षमता होती है। भाषा से नित्य नए शब्दों और प्रयोगों का निर्माण हुआ करता है। इसीलिए शब्द का भंडार समुद्र की तरह व्यापक और अनंत होता है। शब्द महार्णव, शब्द सागर, शब्द रत्नाकर आदि नाम कोशों में शब्दों की संख्या के द्योतक होते हैं। शब्द तारावली का भी यही अर्थ है।

शब्द कौमुदी, शब्द चंद्रिका और शब्द दीपिका जैसे नामों के द्वारा कोश की वर्णनात्मक क्षमता की ओर संकेत मिलता है। जिस प्रकार चंद्रिका या दीपक अंधकार को दूर कर प्रकाश करते हैं, उसी प्रकार कोश शब्दों के गूढ़ और छिपे हुए अर्थों या अन्य विशेषताओं पर प्रकाश डालकर उन्हें उपायोग के लिए प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त कोश उस व्यक्ति को जो शब्द के किसी भी पक्ष को नहीं जानता है उस संबंध में आवश्यक सूचना देकर उससे उस शब्द संबंधी अंधकार को मिटा देता है।

शब्द मुक्तावली, शब्द मंजरी या रत्नावली आदि के द्वारा कोश में शब्दों के संग्रह की विधि औरा नियोजन की पद्धति की ओर संकेत मिलता है। कोश में शब्द ऐसे सजाए जाते हैं जैसे माला या मंजरी में फूल और या मणि मुक्ता।

इस प्रकार कोश के नाम भी हैं जिनका उद्देश्य भी कोश की प्रकृति या प्रकार य उपयोगिता का बोध करना होता है।

20.3 कोश विज्ञान और शब्दार्थ विज्ञान

कोश विज्ञान (Lexicography)

भाषा का शब्दकोश एक संदर्भ ग्रंथ है, जिससे भाषा का प्रयोक्ता शब्दों के संदर्भ में उनका अर्थ तथा प्रयोग, शब्द का उच्चारण, उसकी व्युत्पत्ति और विकास (याने शब्द किस स्रोत से आया और कालक्रम में उसमें क्या परिवर्तन हुए आदि), शब्द से व्युत्पन्न अन्य रूप, शब्द से बने मुहावरे आदि, शब्द की व्याकरणिक विशेषताएँ (जैसे संज्ञा, क्रिया आदि शब्द वर्ग, उन वर्गों के संदर्भ में लिंग, वचन आदि रूप परिवर्तन), अर्थ की दृष्टि से शब्द के पर्याय, विलोम–ये सारी जानकारियाँ प्राप्त करता है। इस प्रकार शब्दों के संदर्भ में इन सभी सूचनाओं को क्रमबद्ध रूप में, व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने की कला को ही कोश विज्ञान कहा जाता है। कोश विज्ञान विविध कोशों के संदर्भ में अच्छे कोश के निर्माण का ज्ञान देता है।

शब्दार्थ विज्ञान (Lexicology)

शब्दार्थ विज्ञान में शब्द के रूप और अर्थ का अध्ययन किया जाता है। किसी भी भाषा की संपूर्ण शब्द राशि या शब्दों के समूह को उस भाषा का 'शब्दभंडार' कहा जाता है। भाषा में शब्दों की संख्या अगणित होती है। शब्द नाना प्रकार के होते हैं और उनके प्रयोग, व्यवहार आदि में बड़ी विविधता होती है, इसलिए प्रायः यह समझा जा सकता है कि भाषा के शब्द भंडार में शब्दों की कोई नियमित व्यवस्था नहीं होती। वे विशृंखल और अव्यवस्थित होते हैं तथा एक दूसरे से संबंधित नहीं होते। लेकिन वास्तव में ऐसी बात नहीं है। थोड़ा सा भी ध्यान देने से पता चल जाएगा कि भाषा के शब्द विशृंखल नहीं होते। वे आपस में एक

व्यवस्थापक रूप में संबंधित होते हैं। प्रत्येक शब्द की अपनी सत्ता होती है, अपना अस्तित्व होता है और इस दृष्टि से वह शब्द एक स्वतंत्र इकाई होता है। यह इकाई अन्य इकाइयों से अलग नहीं होती बल्कि उनके साथ संयुक्त होती है। वह भाषिक व्यवस्था का एक अंग होती है। उसका प्रयोग या व्यवहार अन्य इकाइयों से संदर्भित होता है। शब्दों का यह पारस्परिक संबंध दो प्रकार का होता है।

शब्दार्थ विज्ञान में शब्दों के इन दोनों प्रकार के संबंधों का अध्ययन किया जाता है।

(क) रूपावली संबंध :
इसके अंतर्गत शब्दों की एक इकाई अन्य इकाइयों के साथ परस्पर परिवर्तनीयता या प्रतिस्थापन के रूप में संबद्ध होती है। दूसरे शब्दो में, प्रत्येक शाब्दिक इकाई एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त हो सकती है चाहे अर्थों में भले ही कोई अंतर क्यों न आ जाए।

शाब्दिक इकाइयों के रूपावली-संबंध को परस्पर व्यतिरेक, समानता या विरोध के आधार पर माना जाता है। उनका अध्ययन भी इसी आधार पर किया जाता है। इससे शब्दों का अभिधात्मक अर्थ ज्ञात होता है। इसके अंतर्गत पर्याय, विपरीतार्थक शब्द आदि आते हैं।

(ख) रेखीय या विन्यासात्मक संबंध
यह संबंध दीर्घतर संरचना में शब्दों के प्रयोग या व्यवहार और उनके परस्पर संबंध पर आधारित होता है। इसके अंतर्गत शब्दों के व्याकरणिक अर्थ का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए, 'राम आम खाता है' में राम' का 'आम' और 'खाता है' के साथ संबंध रेखीय और विन्यासात्मक संबंध है। उसके द्वारा यह ज्ञात होता है कि 'राम' इस वाक्य का कर्ता है 'आम' कर्म और 'खाता है' क्रिया।

शब्दभंडार भाषिक व्यवस्था का वैसा ही एक अंग है जैसा ध्वनिशास्त्र या स्वनिमविज्ञान या रूपिम विज्ञान या वाक्य विन्यास। इसलिए इसका अध्ययन इन अंगों से अलग हटकर निरपेक्ष रूप से नहीं किया जा सकता। इनमें आपस में बड़ा गहरा संबंध है।

शब्दार्थ विज्ञान और ध्वनि विज्ञान
शब्दों का एक रूप होता है। वे स्वनिमों से बनते हैं। स्वनिमों के निर्धारण में अर्थ का अप्रत्यक्ष योगदान होता है। उदाहरण के लिए, 'कम' और 'काम' के अर्थ को अंतर स्वरों की भिन्नता और आश्रित है। शब्दों की प्रकृति और प्रत्ययों तथा उनके विभिन्न रूप परिवतर्नों का अध्ययन शब्दार्थ विज्ञान और ध्वनि विज्ञान दोनों में समान रूप से किया जाता है।

शब्दार्थ विज्ञान में शब्दों के गठन और अर्थ का सैद्धांतिक रूप से अध्ययन किया जाता है। यह मूलतः सिद्धांत-प्रधान होता है। कोश विज्ञान में भी इसके सिद्धांतों का अपना महत्व है, अपनी अहमियत है लेकिन कोश विज्ञान में व्यवहार पक्ष का अधिक महत्व होता है। उसका यही पक्ष मूल और आधारभूत होता है। कोश विज्ञान में शब्दार्थ विज्ञान या भाषा विज्ञान के किसी भी सिद्धांत की तब तक कोई सार्थकता या उपादेयता नहीं होती जब तन उसका कोई व्यावहारिक प्रयोग न हो। व्यावहारिक उपयोगिता कोश विज्ञान का प्राण होती है।

कोश विज्ञान और भाषाविज्ञान
कोश विज्ञान एक अनुप्रयुक्त विज्ञान है। एक और मानव जीवन की बहुत-सी आवश्यकताओं की पूर्ति में कोश का उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए, शब्दों का उच्चारण, अर्थ, प्रयोग आदि कोश के द्वारा मालूम किए जाते हैं। दूसरी ओर कोश विज्ञान की बहुत सी समस्याओं का समाधान भाषाविज्ञान और अन्य मानव विज्ञानों में उपलब्ध सामग्री की सहायता से किया जाता है। इसलिए कोश विज्ञान का अन्य मानव विज्ञानों (विशेषकर

भाषाविज्ञान) से बहुत गहरा संबंध है। भाषाविज्ञान का इसके साथ संबंध इतना आंतरिक और सघन है कि इसकी अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान की संज्ञा दी जाती है।

कोश विज्ञान के क्षेत्र में भाषाविज्ञान के योगदान का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है। कोश विज्ञान को भाषाविज्ञान की विभिन्न शाखाओं की सहायता लेनी पड़ती है। जैसे स्वनिम और वर्तनी के निर्धारण के लिए स्वनिम विज्ञान की, व्याकरणिक कोटि के निर्धारण के लिए व्याकरण की और प्रयोग के लिए वाक्य विन्यास की।

कोश की प्रविष्टि के मूल शब्द (शीर्ष शब्द या प्रविष्टि शब्द) के निर्धारण के लिए कोशकार को भाषा के व्याकरण के ज्ञान की आवश्यकता होती है।

ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के द्वारा शब्दों के रूप और अर्थ की उत्पत्ति, विकास और परिवर्तन के क्रम को जानने में सहायता मिलती है। इससे बहुअर्थक शब्दों के मुख्यार्थ या केंद्रीय या आधारमूत अर्थ को जानने में सुविधा होती है और उसके आधार पर कोशकार प्रविष्टि में अर्थों का क्रम निर्धारित करता है।

बोलियों के कोशों के लिए बोली विज्ञान की आवश्यकता होती है। इसके लिए सर्वेक्षण पद्धति और क्षेत्र पद्धति का ज्ञान आवश्यक होता है।

द्विभाषी कोशो के लिए दोनों भाषाओं का व्यतिरेकी विश्लेषण आवश्यक होता है। इसके द्वारा दोनों भाषाओं में उपलब्ध समान अर्थ, व्याकरणिक कोटि और प्रयोग वाले शब्दों को स्थिर करके एक साथ रखने में सहायता मिलती है।

कोश विज्ञान और समाज भाषाविज्ञान

कोश विज्ञान का समाज भाषाविज्ञान से सीधा संबंध है। कोशों में सभ्य, अश्लील जैसे नामांकन दिए जाते हैं। इन नामांकनें को स्थिर करने में समाज भाषाविज्ञान और सर्वेक्षण पद्धति का प्रयोग करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कुछ शैलीगत नामांकन भी कोशों में मिलते हैं। इनके निर्धारण के लिए शैली विज्ञानपरक अध्ययन का आश्रय लेना पड़ता है।

कोश की सारी प्रक्रिया में कोशकार को विभिन्न स्तरों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। इस प्रक्रिया में कोशकार बहुत सारे ऐसे निर्णय लेता है जिससे कोश प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से भाषा में मानकीकरण पर प्रभाव डालता है। अनेक क्षेत्रों में इस प्रभाव को स्पष्ट देखा जा सकता है। कोश को लोग संदर्भ ग्रंथ की तरह देखते हैं। उसके लिए वह आप्त वाक्य जैसे होता है। इसलिए कोश के रूप कालांतर में भाषा के मानक रूप बन जाते हैं।

संसार की बहुत सारी भाषाओं में अनेक कोशों का निर्माण भाषा के मानकीकरण के लिए किया गया है और उनको मानक कोश की संज्ञा भी दी गई है। इनका मुख्य उद्देश्य भाषा का स्थिरीकरण और मानकीकरण होता है। इसके लिए इन कोशों में उन भाषाओं के स्तरीय सृजनात्मक साहित्य और वैज्ञानिक ग्रंथों से सामग्री का संकलन किया जाता है। उनमें से उद्धरण लिए जाते हैं। उन उद्धरणों में प्रयुक्त शब्दों की कोश में प्रविष्टि दी जाती है। इस सामग्री के आधार पर कोश का निर्माण किया जाता है। उनमें सस्ते साहित्य आदि के लिए स्थान नहीं होता और इसके साथ ही बोलियों की सामग्री तथा सामाजिक विकल्पनों को भी इसमें प्रविष्ट नहीं किया जाता। रूसी भाषा का अकादमी कोश, फ्रांसीसी, इतालवी आदि के अकादमी कोश इसी उद्देश्य से बनाए गए थे।

कोश का एक मुख्य कार्य कोडिफिकेशन है। इस कार्य के अनुसार कोश भाषा के रूपों को स्थिर करते हैं। उन रूपों का लोक में प्रयोग होता है और धीरे-धीरे ये प्रयोग मनक बन जाते हैं। ऐसा करते समय कोशकार भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्द के विविध रूपों में से सबसे अधिक आवृत्ति वाले और अधिकांश लोगों के द्वारा मान्य रूपों को अपने कोश में प्रविष्ट करके उन शब्दों को वरीयता प्रदान करता है इस प्रकार उस शब्द के साथ ही साथ भाषा के मानकीकरण में योगदान करता है। उदाहरण के लिए हिंदी, में 'दीवार' और 'दीवाल' दो शब्द प्रचलित है। 'दीवार' शब्द अधिक प्रयुक्त है। हिंदी के कोशों (मानक, बृहत् आदि) से यह शब्द मुख्य प्रविष्टि के रूप में दिया गया है और इस प्रकार यह धीरे-धीरे सर्वमान्य होता जा रहा है।

मानकीकरण के क्षेत्र में कोश का सबसे बड़ा योगदान होता है, मुख्य रूप से तकनीकी शब्दावली के क्षेत्र में। यहाँ कोश विभिन्न प्रतिस्पर्धी शब्दों में से एक को वरीयता देकर उसको सर्वमान्य बनाने और उसे सर्वजन प्रयुक्त बनाने में मदद करते हैं।। इसके अतिरिक्त भाषा की संरचनात्मक शक्ति के आधार पर नए रूपों का गठन करके भाषा की सृजनात्मकता को उभारते और विस्तृत करते हैं। जैसे फिल्म से फिल्मीकरण, फिल्माना है।

20.4 कोशों के प्रकार

कोश के लिए प्रयुक्त विभिन्न नामों पर पहले ही विचार किया गया है। कोश मुख्य रूप से संदर्भ ग्रंथ होते हैं। कोश में किसी भी भाषा के शब्दों के उच्चारण, व्याकरणिक कोटि, व्युत्पत्ति, अर्थ, प्रयोग, पर्यायँ आदि से संबंधित विवरण दिया जाता है। कुछ कोशों में ये सभी सूचनाएँ दी जाती हैं, कुछ में कुछ कम। सुविधा के लिए कोश की प्रविष्टियाँ (शब्द और उससे संबंधित सूचना) को एक निश्चित क्रम से व्यवस्थित किया जाता है। आजकल संसार की सभी भाषाओं में वर्णानुक्रम के अनुसार ही कोशों में प्रविष्टियों को रखा जाता है। अर्थगत आधार पर भी प्रविष्टियों की व्यवस्था अन्य कोशों में मिलती है। वर्णानुक्रमिक व्यवस्था से एक बहुत बड़ा लाभ होता है कि शब्दों को बिना परिश्रम के खोज़ा जा सकता है। शायद इसीलिए बहुत से ऐसे ग्रंथ, जिन्हें सामान्यतः कोश नहीं कहा जा सकता, तो भी शब्दों को वर्णानुक्रम से व्यवस्थित करने पर और उन्हें भी कोश की संज्ञा दी जाती है। उदाहरण के लिए चरित्र कोश, जीवनी कोश आदि।

कालक्रम, आकार, भाषा, प्रविष्टियों की प्रकृति, संख्या और विवरण के आधार पर कोश कई प्रकार के हो सकते हैं। कोशों का वर्गीकरण बहुत महत्वपूर्ण होता है; क्योंकि कोश-निर्माण की सारी प्रक्रिया कोश के प्रकार पर आधारित होती है।

कोशों के वर्गीकरण के मुख्य सिद्धांत निम्न होते हैं :
(1) प्रविष्टि की प्रकृति (2) कोश का भाषा का काल (3) कोश से वर्णित भाषा की संख्या (4) कोश का उद्देश्य (5) कोश की प्रविष्टि की सतनता (6) कोश में प्रविष्टियों की व्यवस्था।

भाषायी कोशों की एक विशेष कोटि को विश्व कोश (eneyclopaedia) कह सकते हैं। इसमें प्रविष्टि में दी जाने वाली सूचना और उसकी प्रकृति में दोनों प्रकार के कोशों के लक्षणों का समावेश होता है। वस्तुतः अगर ध्यान से देखा जाए तो प्रायः प्रत्येक कोश में, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो विश्व कोशीय सूचना मिलती ही है। यह विश्वकोशीय सूचना संस्कृतिपरक शब्दों की परिभाषा के लिए आवश्यक हो जाती है। उन शब्दो के वर्णन के लिए भाषावैज्ञानिक या भाषायी परिभाषा अपर्याप्त होती है और उनका स्पष्ट वर्णन करने के लिए कोशकार ऐतिहासिक, सामाजिक, लोकतात्विक आदि सूचनाओं को देता है।

उदाहरण के लिए, 'द्वार पूजा' की परिभाषा या अर्थ 'द्वार की पूजा' से स्पष्ट नहीं होता। उसके लिए 'विवाह के समय कन्या के घर के दरवाजे के सामने पिता के द्वारा वर या स्वागत और पैर पूजने आदि की रस्म' जैसी परिभाषा का दिया जाना आवश्यक है। किसी भी भाषा में ऐसे शब्दों की संख्या कम नहीं होती इसलि कोशों का एक सीमा तक विश्वकोशीय हो जाना सामान्य बात है।

कालक्रम की दृष्टि से कोश समकालिक (वर्णनात्मक) और कालक्रमिक (ऐतिहासिक) दो प्रकार के होते हैं। सांकालिक कोश में भाषा के किसी समय विशेष के शब्दों का वर्णन होता है जबकि कालक्रमिक कोश में शब्दों की एक काल से दूसरे काल तक की विकासावस्था का निरूपण किया जाता है। यद्यपि यह वर्गीकरण कोश के मुख्य पक्ष के आधार पर किया गया है फिर भी समकालिक कोशों में बहुधा ऐतिहासिक सूचना का समावेश होता है। प्रायः सभी कोशों में व्युत्पत्ति का निर्देश मिलता है और व्युत्पत्ति संबंधित सूचना ऐतिहासिक होती है।

समकालिक या वर्णनात्मक कोशों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :
(1) साधारण या सामान्य कोश और (2) विशिष्ट कोश।

साधारण या सामान्य कोश में भाषा के सामान्य रूप का सामान्य पाठक के लिए साधारण प्रयोग के लिए वर्णन किया जाता है। इस कोश में भाषा के सभी प्रकार के शब्द लिए जाते हैं और उन शब्दों के साधारण और सामान्य प्रचलित अर्थ दिए जाते हैं।

शब्दों के रूप, अर्थ, उनके प्रयोग की सीमा या क्षेत्र, उनके पारस्परिक विन्यासात्मक संबंध आदि के आधार पर विशिष्ट कोश कई प्रकार के होते हैं। जैसे बोली कोश, पर्याय कोश।

इनमें सबसे पहले उन कोशों पर विचार करेंगे जिनमें शब्दों का क्षेत्रीय और पेशेवर विवरण मिलता है।

बोलीकोश

इन कोशों में किसी भी भाषा की बोलियों में प्राप्त होने वाले शब्दों का समावेश होता है। ये दो प्रकार के होते हैं (1) वे कोश जो बोली विशेष के होते हैं। इनमें एक बोली में प्राप्त शब्दों का वर्णन किया जाता है, (2) वे कोश जिनमें भाषा की तमाम बोलियों के शब्दों का वर्णन किया जाता है। इसमें एक शब्द के सभी बोलीगत विचरणों को दिया जाता है और उसके साथ-साथ उस बोली का नाम दिया जाता है जिसमें यह पाया जाता है। बोली कोश का निर्माण बोली विज्ञान (Dialectology) की सहायता से किया जाता है। भारत को अनेक भाषाओं में इस प्रकार के कोश मिलते हैं।

पेशा कोश

इन कोशों में किसी में किसी विशेष पेशे में लगे लोगों के शब्दों का विवरण दिया जाता है। ये शब्द दो प्रकार के होते हैं। (1) वे शब्द जो मात्र उसी पेशे में प्रयुक्त होते हैं। और (2) वे शब्द जिनका एक उस विशेष ऐसे में पाया जाता है। उदाहरण के लिए, कृषि कोशों में कृषि संबंधी का शब्दावली वर्णन होता है।

तकनीकी शब्दावली या कोश

पेशा-कोश से मिलते-जुलते तकनीकी शब्दों के कोश होते हैं। इनमें विशेष विषयों के लिए प्रयुक्त शब्दों को दिया जाता है। भौतिकी, जैविकी, विधि, प्रशासन आदि विषयों के लिए अलग-अलग कोश होते हैं। इनमें उन शब्दों को दिया जाता है जो विषय विशेष के लिए

ायुक्त होते हैं या वे सामान् शब्द दिए जाते हैं जो अर्थविशेष में इन विषयों में प्रयुकत होते ं। ज्ञान-विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ प्रत्येक भाषा में ऐसे कोशों की आवश्यकता बढ़ती ग रही है।

़टभाषा कोश

। कोश पेशा-कोशों से मिलते-जुलते हैं। प्रत्येक भाषा में कुछ शब्दों या शब्दों के कुछ अर्थों ा प्रयोग गुप्त अर्थ से किया जाता है जिसको केवल कुछ लोग ही समझ सकते हैं। ापराध जगत में ऐसे शब्दों का प्रयोग पाया जाता है। इनको एक वर्ग या पेशे के लोग ही ानते हैं और यह पूरी कोशिश की जाती है कि इनकी गोपनीयता को यथासाध्य बनाए खा जाए क्योंकि ज्यों ही यह गोपनीयता समाप्त हो जाएगी। इन पेशों में लगे लोगों का र्दाफाश होने का खतरा आ जाएए। पिछली शताब्दी में कर्नल स्लीमैन ने ठगों और ाण्डारियों के शब्दों का अच्छा कोश तैयार किया था। भारत के तीर्थस्थलों में पंडों की बोली ी कुछ इस प्रकार की होती है।

ाषिक तत्वों को विशेष ध्यान में रखकर बनाए जाने वाले कोशों में निम्न मुख्य है :

र्तनी कोश

न कोशों में शब्दों की मानक, और सर्वमान्य वर्तनी दी जाती है जिससे भाषा का नकीकरर्ण/हो सके। कुछ भाषाओं में शब्दों की वर्तनी अनिश्चित रहती है। एक ही शब्द ई प्रकार से लिखा जाता है और कुछ शब्दों या ध्वनियों को लिखने के लिए एक नियम ागू किया जाता है तो दूसरे के लिए दूसरा। ऐसी भाषाओं के लिए वर्तनी कोश वर्तनी को ामान्य मानक रूप प्रदान करने में सहायता करते हैं। वैसे तो सामान्य कोश भी वर्तनी के नकीकरण में सहायक होते हैं लेकिन ये कोश विशेषकर वर्तनी के लिए ही बनाए जाते

च्चारण कोश

। कोशों में शब्दों का मानक उच्चारण दिया जाता है। जिन भाषाओं में लेखिमों और निमों में सामंजस्य नहीं होता और उनका अंतर बहुत ही उल्लेखनीय होता है। उनमे इन ाशों की बड़ी आवश्यकता होती है। अन्य भाषा बोलने वालों के लिए भी इन कोशों का ा उपयोग होता है। डेनियल जोन्स का अंग्रेज़ी उच्चारण कोश बहुत प्रचलित है।

मनाम कोश

कोशों में समनाम शब्द (वे शब्द जिनकी वर्तनी और उच्चारण समान होते हैं लेकिन नके अर्थ भिन्न-भिन्न होते हैं, एक दूसरे से संबंधित नहीं होते) दिए जाते हैं। इनके साथ का अर्थ दिया जाता है। कभी-कभी प्रयोग भी दिया जाता है।

परीतात्मक या अंतवर्णानुक्रम कोश

कोशों में शब्दों की क्रम व्यवस्था शब्दों के प्रथम वर्ण से न करके शब्दों के अंतिम वर्णों आधार पर की जाती है। उदाहरण के लिए, क से अंत होने वाले सारे शब्द एक स्थान दिए जाते हैं ख वाले एक स्थान पर। इन कोशों की उपयोगिता कविता के लिए अधिक ी है जब तुक मिलाने के लिए कवि को शब्द खोजन पड़ते हैं। संसकृत मे ऐसे कोश नते हैं। आधुनिक दृष्टि से ये कोश पाठ्य-पुस्तक तैयार करने वालों के लिए अधिक योगी होते हैं क्योंकि एक व्याकरणिक कोटि के ढेर सारे शब्द एक साथ मिल जाते हैं। प्रत्यय के शब्द भी एक जगह मिलते हैं इससे भाषा का व्याकरण जानने में सहायता नती है।

करणिक कोश

प्रकार के कोश की रचना रूशी भाषा के लिए की गई है। इसमें भाषा के पूरे व्याकरण कोटियों के आधार पर कुछ वर्गों में विभजित किया गया है और प्रत्येक वर्ग के साथ

एक अंक दिया गया है। कोश के मूल भाग में प्रत्येक शब्द के साथ अंक देकर उसकी व्याकरणिक विशेषता को दिखाया गया है। लिंग, वचन, कारक या अन्य कोटियों के लिए भिन-भिन्न अंक होते हैं इसलिए एक शब्द के साथ एक से अधिक अंक दिए जाते हैं। जिन भाषाओं का व्याकरण बहुत जटिल होता है उनक लिए इस प्रकार के कोश अधिक उपयोगी होते हैं।

आवृत्ति कोश

इन कोशों से मिलते-जुलते लेकिन प्रकृति में भिन्न एक प्रकार के कोश होते हैं जिन्हें आवृत्ति कोश कहते हैं। इन कोशों में शब्दों की आवृत्ति की संख्या दी जाती है। इनके बनाने क लिए पहले एक सामग्री तय की जाती है जिसमें विभिन्न प्रकार के ग्रंथ, पत्रिकाएँ, समाचार पत्र आदि आ सकते हैं। इस पूरी सामग्री में कोई शब्द कितनी बार आया है इसकी गणना इन कोशों में की जाती है। इनक शब्दों का क्रम निर्धारण आवृत्ति की संख्या के अनुसार किया जाता है। अधिक आवृत्ति के शब्दों को पहले दिया जाता है उससे कम को क्रमशः बाद में। एक ही आवृत्ति के शब्दों को वर्णानुक्रम से व्यवस्थित किया जाता है। ये कोश अध्येता या विद्यार्थी कोश तैयार करने के लि बड़े सहायक होते हैं। इनकी सहायता से स्तरीय कोश (graded dictionaries) बनाए जाते हैं।

शब्दों के अर्थ के आधार पर कोश निम्न प्रकार के होते हैं :

पर्याय या पर्यायवाची कोश

इन कोशों में शब्दों के पर्यायों या समानार्थी शब्दों को दिया जाता है। किसी शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्दों में एक शब्द प्रायः सामान्य होता है और सबसे अधिक प्रयुक्त होता है। कोशों में इस शब्द को मुख्य प्रविष्टि के रूप में देते हैं और अन्य पर्यायों को इसके साथ देते हैं। जब ये दूसरे पर्याय वर्णानुक्रम से अपने स्थान पर आते हैं तो प्रति संदर्भ के द्वारा मुख्य प्रविष्टि से जोड़ा जाता है।

चूँकि भाषा में पूर्ण पर्याय नहीं मिलते और उनके अर्थ और प्रयोग से थोड़ा अंतर (चाहे वह कितना भी सूक्ष्म क्यों न हो) होता ही है इसलिए कुछ कोशों के सभी पर्यायों की परिभाषा दी जाती है और इसके साथ ही साथ उदाहरण भी दिए जाते हैं। वेब्स्टर का पयार्य कोश (Webster's Dictionary of synonyms) एक अच्छा पर्याय कोश है।

भारत वर्ष में कोश निर्माण का प्रारंभ ही पर्याय कोशों से हुआ है। निघण्टु, अमरकोश आदि पर्याय कोश है। आधुनिक भारतीय भाषाओं के प्राचीन और पहले बने कोश पर्याय कोश ही थे।

विलोम कोश

इन कोशों में विपरीतार्थक शब्दों को दिया जाता है। एक शब्द के विपरीतार्थक शब्द उसके साथ दिए जाते हैं। इनमें प्रयोग अवसर नहीं दिए जाते।

कृति कोश

विशिष्ट कोशों में कृति कोश बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। इनमें किसी लेखक की एक कृति या संपूर्ण कृतियों में प्रयुक्त सभी शब्दों का मसावेश और वर्णन होता है। इसके निर्माण की भी वही विधि है जो ऐतिहासिक कोश के निर्माण की है। प्रत्येक शब्द को उसके अर्थ विशेष के साथ दिया जाता है और साथ ही साथ कृति से उस शब्द का संदर्भ उद्धृत किया जाता है। इस उद्धरण के साथ कृति में उसका स्थान पृष्ठ, पंक्ति आदि दिए जाते हैं। कृति कोश ऐतिहासिक कोश के निर्माण में सहायक होते हैं। उदाहरण; मानस कोश, प्रसाद शब्द कोश, कबीर शब्दकोश आदि।

शिक्षार्थी या अध्येता कोश

यह एक विशेष प्रकार के कोश हैं जिनका महत्व और उपयोग अब बढ़ता जा रहा है। ऐसे कोश भाषा के सीखने में सहायक होते हैं चाहे वह उसी भाषा के बोलने वाले हो या अन्य भाषा-भाषी। मातृभाष भाषी ऐसे कोश से भाषा की संरचना और प्रयोगें को अच्छी तरह सीख सकते हैं। जबकि अन्य भाषा भाषी इनके अतिरिक्त शब्दों और उनक विभिन्न अर्थों को भी, सीखते हैं।

ये कोश दो प्रकार के हो सकते हैं। (1) सामान्य शिक्षार्थी कोश और (2) विशिष्ट शिक्षाथीर् कोश। सामान्य कोश में सभी प्रकार के शब्दों को दिया जाता है विशिष्ट कोश में किसी एक प्रकार के, जैसे क्रिया पदों का कोश।

अध्येता कोशों की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं :

1) इनकी शब्द संख्या सीमित होती है।

2) इनमें क्षेत्रीय, शैलीगत आदि विचरण वाले शब्दों को शामिल नहीं किया जाता और न ही पुरातन और प्रचार-लुप्त शब्दों को।

3) इनमें शब्दों के प्रयोग पर विशेष बल दिया जाता है। प्रत्येक शब्द के प्रत्येक अर्थ के साथ उसका प्रयोग दिया जाता है जिससे अध्येता को वास्तविक संदर्भ ज्ञात हो जाए और वह उसे ठीक तरह से प्रयोग करना सीख सके।

4) इन कोशों में बहुअर्थक शब्दों के सभी उपलब्ध अर्थों को नहीं दिया जाता। इसमें कवेल वे ही अर्थ दिए जाते हैं जिनकी भाषा सीखने के लिए आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, हिंदी 'प्रसाद' के दस अर्थ कोशों में मिलते हैं। अध्येता कोश में इनमें केवल दो को शामिल किया जा सकता है क्योंकि अन्य अर्थ विरल हैं और उनका प्रयोग मात्र साहित्य में ही सीमित रहता है।

अध्येता कोश में बहुअर्थक शब्दों के अर्थों को प्रयोग की दृष्टि से व्यवस्थित किया जाता है, व्युत्पत्यात्मक या ऐतिहासिक दृष्टि से नहीं। जो अर्थ सरल हैं, और सबसे अधिक प्रयुक्त होता है, उसको सबसे पहले दिया जाता है अन्य अर्थों को उसके बाद।

भाषी कोश

इनमें किसी भाषा के शब्दों का वर्णन (अर्थ आदि) उसी भाषा में दिया जाता है। जैसे हिंदी शब्द सागर या मानक हिंदी कोश में हिंदी के शब्दों का अर्थ हिंदी में ही दिया गया है।

द्विभाषी कोश

इन कोशों में एक भाषा के शब्दों का अर्थ अन्य भाषा में किया जाता है। जिस भाषा के शब्द का अर्थ दिया जाता है उसे स्रोतभाषा कहते हैं और जिसमे अर्थ दिया जाता है उसे लक्ष्यभाषा। इनका पूरा वर्णन अन्यत्र किया गया है।

बहुभाषी कोश

जब किसी कोश में दो से अधिक भाषाओं का वर्णन किया जाता है तो उसे बहुभाषी कोश कहते हैं। इस प्रकार के कोश तुलनात्मक होते हैं। वे बहुधा वैज्ञानिक या तकनीकी शब्दावली के कोश होते हैं। भारत जैसे बहुभाषा-भाषी देशें में जहाँ स्थानीय, क्षेत्रीय और राष्ट्र स्तरीय भाषाएँ अलग-अलग हैं, बहुभाषी कोशों की बड़ी आवश्यकता पड़ती है और ऐसे कोश बनाए भी जाते हैं। उदाहरण के लिए, गारो हिंदी अंग्रेज़ी कोश या कुवी उड़िया हिंदी अंग्रेज़ी कोश। उड़िया में गोविन्द प्रहराज का कोश पूर्णचंद्र अभिधान बहुभाषी कोश है।

भारत मे सामान्य बोलचाल या संचार के लिए ऐसे कोशों की रचना की गई है जिनम सामान्य जीवन मे प्रयुक्त होने वाले शब्दों को कई भाषाओं में दिया गया है। विश्वनाथ नरवणे का 'भारतीय व्यवहार कोश' इस प्रकार का है और हाल में ही केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने 'भाषा कोश' तैयार किया है।

20.5 कोश निर्माण की प्रक्रिया

कोश का कार्य वर्षों तक चलता रहता है। उसमें बहुत सी सामग्री का संकलन और समावेश करना पड़ता है। इसीलिए यह आवश्यक है कि कोश के कार्य की योजनाबद्ध ढंग से कुछ भागों या चरणों में विभक्त किया जाए। मुख्य रूप से कोश कार्य निम्नलिखित चरणों में बँटा रहता है।

1) नियोजन, सामग्री संकलन और प्रविष्टियों का चयन।

2) कोश की प्रविष्टि की संरचना।

3) प्रविष्टियों की क्रम व्यवस्था, मुद्रण प्रति तैयार करना।

प्रथम चरण में कोश की रूपरेखा ठीक की जाती है। उसके अनुसार सामग्री संकलन किया जाता है और फिर उस सामग्री से प्रविष्टियों का चयन किया जाता है।

द्वितीय चरण में प्रविष्टि की संरचना की जाती है। इसमें शीर्षशब्द का निर्धारण, उच्चारण अर्थ या परिभाषा, प्रयोग, व्युत्पत्ति आदि से संबंधित कार्य आते हैं। कोश का मुख्य कार्य यही है और कोशकार का अधिकंश समय इसी में लगता है।

तृतीय चरण में कोश की प्रविष्टियों को एक क्रम से व्यवस्थित किया जाता है। कोश में प्रयुक्त संकेतों, चिह्नों आदि को ठीक से देखा जाता है।

लेकिन ऊपर लिखे गए चरण एक दूसरे से एकदम असंपृक्त नहीं होते। ऐसा नहीं होता कि जब एक चरण का कार्य पूरा हो जाता है तभी दूसरा प्रारंभ किया जाता है। हर चरण में दूसरे चरण का कार्य भी होता रहता है। प्रविष्टियों को क्रम व्यवस्था करते समय भी जब नये शब्द मिलते हैं तो उनका चयन किया जाता है।

20.5.1 नियोजन

कोश निर्माण के नियोजन के लिए हमेशा ध्यान में रखने वाले कुछ मूलभूत तत्व होते हैं। उनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

पहली बात जो ध्यान में रखनी चाहिए वह है कोश के प्रकार की। कोशों के प्रकार के अनुसार कोश निर्माण की प्रविधि में भी अंतर होता है।

दूसरा महत्वपूर्ण निर्णय भाषा के स्वरूप से संबंधित है। कोशकार को पहले यह निश्चित करना चाहिए कि वह भाषा के किस स्वरूप को करना चाहता है। कोश के लिए सामग्री संकलन भाषा की प्रकृति और स्वरूप के अनुसार बदलते रहते हैं। उदाहरण स्वरूप, हिंदी का कोश बनाने के पहले यह निश्चय करना आवश्यक होगा कि इसके अंतर्गत ब्रज, अवधी आदि बोलियों के शब्दों को लिया जाए या नहीं।

एक अन्य बात जो ध्यान में रखने को है वह है भाषा के काल की। क्या कोश में केवल समकालीन शब्दों का संकलन किया जाएगा या उसमें प्राचीन या मध्यकालीन साहित्य से भी शब्द लिए जाएँगे।

षा के सामाजिक और शैलीगत विकल्पन पर भी कोशकार की दृष्टि होनी आवश्यक है। ने यह निर्णय करना पड़ता है कि क्या वह कोश में सभी पेशों की प्रोक्तियों अपभाषा, लील और ग्राम्य प्रयोगों का समावेश करना चाहेगा?

श कार्य के आरंभ होने के पहले ही इन विषयों पर निर्णय ले लेना चाहिए और इन पर ल करना चाहिए।

त अच्छा तो यह होगा कि कोश की संपूर्ण योजना, प्रक्रिया और अवधि के संबंध में एक पुस्तिका तैयार कर ली जाए। जिनमें निम्न तथ्यों और सूचनाओं का विवरण और निर्देश ा जाए।

ग्री संकलन (स्रोतों का विवरण), कार्ड का बनाना और उनको भरना (साथ में नमूने के र्ड दे देना चाहिए), शब्द सूची का चयन, कोश-प्रविष्टि की संरचना, शब्दों के अर्थ और न (उनका क्रम), नामांकन, पदबंध, उदाहरण (उद्धरण) लिपि, उच्चारण, व्याकरणिक टेयाँ आदि। इन सबके लिए उदाहरण देना आवश्यक होता है। इस पुस्तिका में नमूने के पर कुछ प्रविष्टियाँ भी दे देनी चाहिए। बाद में इसमें संशोधन (संक्षिप्तीकरण या विस्तार) सकता है लेकिन इनके द्वारा प्रविष्टि संरचना के विषय में मार्गदर्शन मिलता रहता है। ये ष्टियाँ यथा संभव प्रत्येक व्याकरणिक कोटि की प्रतिनिधि प्रविष्टियाँ होनी चाहिए। यह ध्यान में रखना चाहिए कि वे शब्दों की प्रत्येक प्रकार की विशेषता का प्रतिनिधित्व करने ी हों।

ग्री संकलन

ा की सामग्री का संकलन कोश के प्रकार पर आधारित होता है। संकलन पद्धति खित और अलिखित भाषाओं के लिए भिन्न प्रकार की होती है। जिन भाषाओं में लिखित हित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है उनके कोश के लिए अधिकांश सामग्री पुस्तकों से लित की जाती है। अलिखित भाषाओं के लिए सामग्री वाचिक भाषा से सर्वेक्षण पद्धति क्षेत्र पद्धति के द्वारा संकलित की जाती है।

कोशो के लिए कार्ड पर सामग्री संकलन में अनेक वर्ष लगते हैं। कार्ड पर एकत्रित की सूचना अनेक दृष्टिकोणों से बहुत ही महत्वपूर्ण और उपयोगी होती है। कोश के मुद्रण प्रति तैयार होते ही उसकी उपयोगिता समाप्त नहीं हो जाती। इन कार्डों की सहायता से न्न प्रकार के कोशों का निर्माण किया जा सकता है। जैसे पर्याय कोश, पदबंध कोश, वरा कोश, विपरीतार्थक कोश। इनका प्रयोग अन्य प्रकार के भाषावैज्ञानिक अध्ययन के भी किया जा सकता है। इनसे बहुत ही सांस्कृतिक सूचनाएँ भी उपलब्ध हो सकती हैं। ा के संदर्भ को कोशीय संदर्भ कहते हैं। कोशीय संदर्भ शब्द विशेष की प्रकृति और र के अनुसार विभिन्न प्रकार का होता है।

प्रकार प्रत्येक शब्द को उसके अपने पूर्ण संदर्भ के साथ उद्धृत किया जाता है।

रण दो प्रकार के होते हैं :

साधारण

विशिष्ट

ारणा उद्धरण

क अंतर्गत साधारण प्रकार के शब्दों का चयन किया जाता है। इसमें बहुत से ऐसे शब्द आ जाते हैं जिनका विशेष अर्थ होता है। लेकिन पहले उनको सामान्य कृतियों से ान्य अर्थ में ही उद्धृत किया जाता है।

विशिष्ट उद्धरण

इसके द्वारा शब्दों के विभिन्न तकनीकों विषयों के लिए प्रयुक्त विशेष अर्थों का चयन किया जाता है। लय, ताल, धुन, राग आदि संगीत की पुस्तकों से ले सकते हैं।

20.5.2 प्रविष्टियों का चयन

किसी भी भाषा में शब्दों की संख्या असीमित होती है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक भाषा में नए शब्दों के निर्माण और शब्दों के नए प्रयोगों की अपार क्षमता होती है। भाषा सतत प्रवाहमान और उत्तरोत्तर विकासमान होती है। प्रायः रोज़ ही किसी नए शब्द का निर्माण या प्रयोग होता रहता है। इसलिए कोई शब्दकोश चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो यह दावा नहीं कर सकता कि उसमें भाषा के समस्त शब्दों का संकलन किया गया है या यह भी नहीं कहा जा सकता कि प्रत्येक शब्द के समस्त उपलब्ध या संभावित अर्थों, अर्थच्छटाओं और सह प्रयोगों को कोश में समाहित कर लिया गया है। कोशकार सब कुछ अपने कोश में नहीं दे सकता कोश कोश के लिए उसको प्रविष्टियों का चयन करना होता है।

समग्र कोश (Comprehensive dictionary) में यथासंभव सारे शब्दों को शामिल करने का यत्न किया जाता है। अन्य कोशों में प्रविष्टियों की सीमा बाँधी जाती है।

प्रविष्टियों का चयन कई तत्वों के द्वारा नियमित होता है। उनमें से प्रमुख हैं : कोश का आकार, उसका प्रकार, उसका उद्देश्य, भाषा के स्थानीय, सामाजिक और शैलीपरक अंतर इत्यादि।

अभिनव प्रयोग

भाषा कभी स्थिर नहीं रहती। वह परिवर्तनशील है। भाषा का शब्दभंडार भी स्थिर नहीं होता। भाषा में नए भाव, नयी वस्तुएँ आती ही रहती हैं। इनकी अभिव्यक्ति के लिए भाषा में नित्य नए शब्दों का निर्माण या गठन होता है। इनका प्रयोग पहले विरल, फिर नित्यप्रति किया जाने लगता है और ये भाषा के अंग बन जाते हैं। कोशकार की समस्या है कि इन शब्दों का चयन करे या नहीं?

वास्तव में जब तक ये शब्द भाषा के अंग नहीं बन जाते इनका चयन नहीं किया जा सकता। इनके लिए कुछ दिनों तक प्रतीक्षा करनी चाहिए। कुछ दिनों में ये शब्द स्थिर हो जाएँगे या लुप्त हो जाएँगे। घेराव, दलबदल आदि शब्द हिंदी में किन्हीं सामाजिक-राजनीतिक कारणों से आए थे। लेकिन धीरे-धीरे वे भाषा के अंग बन गए। अगर ऐसे शब्दों का प्रयोग कोश में करना ही है तो उनके इस वैशिष्ट्य को किसी-न-किसी प्रकार से निर्दिष्ट करना चाहिए। यह विरल, प्रचलित, अति विरल आदि नामांकनें के द्वारा किया जा सकता है।

पुरातन और जीर्ण शब्द

जिस प्रकार भाषा में नए शब्दों और प्रयोगों का निर्माण होता है उसी प्रकार पुराने शब्दों और प्रयोगों का लोप भी होता है। लेकिन ये संख्या में अपेक्षाकृत बहुत कम होते हैं। बहुत से भाव और वस्तुएँ समय के साथ प्रयोग विरल हो जाते हैं और इनका समाज में लोप हो जाता है। साथ ही साथ इन भावो और वस्तुओं को अभिव्यंक्त करने वाले शब्दों का भी लोप हो जाता है। इन शब्दों को पुरातन शब्द कहते हैं जैसे – पुरोडास। इन शब्दों की तरह की कुछ ऐसे भी शब्द होते हैं जिन्हें प्रचार लुप्त कहते हैं।। ये शब्द साहित्य की निधि होते हैं। इन शब्दों के संबंध में प्रश्न उठता है कि समकालीन और समकालिक कोशों में इनको स्थान दिया जाए या नहीं। सिद्धांततः इनको केवल ऐतिहासिक कोशों में स्थान मिलना चाहिए। समकालिक कोश में इनके लिए कोई स्थान नहीं होता। लेकिन उपयोगिता की

ष्टि से इनमे से कुछ शब्दों को कोश में स्थान मिलना चाहिए। इस उपयोगिता के कई ारण हैं :

i) बहुत से पुरातन और प्रचारमूलक शब्दों का प्रयोग बोलचाल की भाषा में, विशेषकर कहावतों और मुहावरों में मिलता है। सामान्य लोग इनका प्रयोग करते हैं। वे साहित्य में नहीं मिलते।

) इन शब्दों का प्रयोग प्राचीन साहित्य में होता है। यह साहित्य पाठ्य-पुस्तकों में निर्धारित रहता है। इसलिए इस साहित्य में पठन-पाठन के लिए कोशों में इन शब्दों का स्थान और वर्णन आवश्यक है।

ज्ञानिक और तकनीकी शब्द

ान विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ भाषा में नए-नए भावों और नयी वस्तुओं का प्रवेश ाता है। जब किसी भाषा में किसी भी नए भाव या वस्तु की अभिव्यक्ति के लिए शब्द नहीं ते तो उनको भाषा में निम्न प्रकार से अभिव्यक्त किया जाता है :

) इन शब्दों को किसी भाषा से उधार ले लिया जाता है। इनमें ध्वन्यात्मक और रूपगत परिवर्तन या पारिमार्जन करके इनको भाषा में प्रयुक्त किया जाता है। उदाहरण : गिलास, इंजीनियर, गैलरी, तकनीकी, अकादमी।

) भाषा के संरचनात्मक आधार पर इन शब्दों के समतुल्य शब्दों का सृजन (विशेषकर अनुवाद) किया जाता है। सभी भाषाओं की तकनीकी शब्दावली में इस प्रकार के शब्दों की संख्या सर्वाधिक होती है। उदाहरण : आहार-विज्ञान, जननिक (genetics), जलभीति, जलमापक, भू-भौतिकी।

भाषा के वर्तमान उपलब्ध शब्दों में आए अभिलक्षणों के आधार पर नए अर्थों का आरोपण करते हैं। अर्थात् शब्दों के वर्तमान अर्थों में ही वृद्धि की जाती है। जैसे : ताप-गर्मी। इसको भौतिकी के heat अर्थ में प्रयुक्त किया जाने लगा है। विद्युत (बिजली) का प्रयोग electricity के लिए।

कभी-कभी कुछ संकर शब्दों का सृजन और प्रयोग किया जाता है। ये शब्द बहुधा समास पद होते हैं। इनमें एक पद विदेशी भाषा से आगत होता है तो दूसरी भाषा का अपना शब्द होता है। उदाहरण : हेडपंडित, फ़िल्मीकरण।

क्त शब्द

येक भाषा में बहुत से शब्द ऐसे होते हैं जिन्हें शून्य या रिक्त शब्द कहते हैं। इनका स्वतंत्र ा से प्रयोग नहीं होता। अर्थात् ये अपने आप में अर्थवान नहीं होते। इनका प्रयोग किन्हीं य शब्दो के लिए किया जाता है। इनमें कुछ प्रतिध्वनिमूलक शब्द होते हैं। उदाहरण के ए : (आसपास) आमने (आमने-सामने), अजायब अज़ब) का बहुवचन (अज़ायब घर, ायब खाना), अड़ोस (अड़ोस-पड़ोस)। तिब्बती चीनी और आस्ट्रो एशियाई भाषाओं में का प्राचुर्य है। उदाहरण – गोरो, बोरो।

शब्द भी भाषा की शब्दसंपत्ति हैं। इसलिए कोश में इनको किसी न किसी प्रकार प्रवेश ा ही चाहिए। इसके लिए सुगम उपाय यह है कि इनको उन शब्दों के साथ दिया जाए नके साथ में युग्म बनाते हैं जैसे – आस पास में आस को पास के साथ।

करणिक शब्द

पहले ही कहा जा चुका है कि भाषा में कुछ शब्द व्याकरणिक होते हैं। उनका कार्य ों के अंतर्संबंध का द्योतन करना होता है। ये बद्ध पद होते हैं। इनका प्रयोग भी स्वतंत्र से नहीं होता। जैसे तो, ही आदि निपात, परसर्ग आदि।

1) ये भाषा की संप्रेषणात्मकता के अभिन्न अंग हैं। इनके द्वारा ही संप्रेषणीयता संभव है।

2) भाषा में इनका प्रयोग बहुत अधिक होता है। पूर्णार्थ शब्दों की तुलना में इनका प्रयोग कई गुना अधिक होता है। इसलिए इनके प्रयोगों के अनुसा रही इनकी विभिन्न अर्थच्छटाएँ होती हैं, जिनका ज्ञान भाषा को समझने क लिए परम आवश्यक होता है।

3) प्रत्येक भाषा में बहुत से शब्द ऐसे होते हैं जो व्याकरणिक भी होते हैं और पूर्णार्थ या शाब्दिक भी। जैसे :

रहना : मैं इस घर में रहता हूँ।
वह यह काम करता रहता है। करता जा रहा है।

डालना: वह बर्तन में दूध डालता है।
उसने अपना पूरा काम जल्दी ही कर डाला।

किसी भी कोश में इस प्रकार के शब्दों की प्रविष्टि आवश्यक और तर्क संगत है। इनका कोई शाब्दिक अर्थ नहीं होता, इसलिए कोश में इनका प्रायोगिक और व्याकरणिक अर्थ दिया जाता है। इन अर्थों के स्पष्टीकरण के लिए इनके विविध प्रयोगों और सहप्रयोगों के उदाहरण दिए जाते हैं।

उपसर्ग और प्रत्यय

कोश में इनको दो प्रकार से दिया जा सकता है। कुछ कोशों में इन्हें स्वतंत्र प्रविष्टियों के रूप में दिया जाता है और कुछ कोशों में एक प्रविष्टि के अंतर्गत अंतर्वेशन किया जाता है। यह कोशकार की सुविधा पर निर्भर करता है।

अर्थगत अभिलक्षण

1) वे समास जिनका अर्थ उसके पदों के अर्थों का योग होता है। इसमें किसी भी पद के अर्थ का लोप नहीं होता। उदाहरण के लिए :

पाकिटमार, गिरहकट

2) वे समास जिनका अर्थ उसके विभिन्न पृथक पदों के अर्थों का योग या यौगिक अर्थ का समकक्ष नहीं होता। इसमें एक पद या दोनों पदों के अर्थों में आमूल परिवर्तन हो जाता है। बहुधा दोनों पद समग्र रूप से किसी तीसरे पद को इंगित करते हैं। उदाहरण के लिए :

हि.सं : अरण्यरोदन, दिवाकर, दंतकथा, भूदान, धूमकेतु, पुच्छतारा

संस्कृत के बहुब्रीहि समास इसके अंतर्गत आते हैं।

कोशकार के लिए प्रथम कोटि के समास समस्या उत्पन्न नहीं करते। वह इनको उपप्रविष्टियों के रूप में कोश में देता है। इनका अर्थ पूर्वानुमेय होता है। लेकिन वे समास जिनका अर्थ पूर्णानुमेय नहीं होता, स्वतंत्र प्रविष्टि के रूप में दिए जाते हैं।

बहु-शब्दीय (कोशीय) इकाई

ये समासों से मिलती-जुलती इकाइयाँ होती हैं। इनमें दो या दो से अधिक शब्द इस प्रकार जुड़े होते हैं कि वे एक इकाई की तरह प्रयुक्त होते हैं। इनका प्रयोग सामान्य शब्दों और समासों की तरह होता है। कभी-कभी इनका अर्थ एक विशिष्ट प्रकार का भी होता है। उदाहरण के लिए :

चार सौ बीस, नौ दो ग्यारह, नरम गरम, बच्चों का खेल।

ाकसी भी भाषा में शब्दों का सही प्रयोग दो प्रकार का होता है। (1) मुक्त या स्वतंत्र (2) आबद्ध या स्थिर। पर असल मुक्त प्रयोग भाषा की मुख्य धारक या वाहक होते हैं। मुक्त प्रयोग में शब्दों को भिन्न प्रकार से संयुक्त करके विभिन्न प्रकार के अर्थों की अभिव्यक्ति कराई जाती है। उदाहरण के लिए,

ठंडा पानी, ठंडा मौसम, गरम दूध, गरम जलवायु, गरम हवा, तेज़ दिमाग।

इन प्रयोगों का सृजन वक्ता की इच्छा पर निर्भर करता है। किसी भी स्थिति में अपने विचारों के संप्रेषण के लिए वक्ता इनका प्रयोग करता है। ये क्षणजीवी होते हैं और इनका प्रयोग स्थिर नहीं होता। भाषा की संप्रेषणीयता का बहुत बड़ा अंश इन सहप्रयोगों के द्वारा ही होता है। इनका अर्थ पूर्वानुमेय होता है। इसलिए इन्हें कोशों में स्थान नहीं दिया जाता। जैसे :

हिंदी के दो शब्दों तेज़ और छुरी को मिलाकर पदबंध तेज़ छुरी का निर्माण होता है। इनमें तेज़ के स्थान पर नयी, पुरानी, अच्छी, कीमती छुरी आदि पदबंधों का सृजन किया जा सकता है। इनसे छुरी शब्द के अभिधेय अर्थ में कोई अंतर नहीं पड़ता। इसी प्रकार छुरी के स्थान पर तलवार, कैंची, शब्दों का रख सकते हैं और तेज़ तलवार, तेज़ कुल्हाड़ी ओर तेज़ कैंची आदि पदबंधों की रचना कर सकते हैं। इन तमाम पदबंधों में 'तेज़' शब्द के अर्थ में कोई अंतर नहीं आता। यही नहीं, यहाँ पर 'तेज़' के स्थान पर उसके समानार्थी शब्द पैनी का प्रयोग कर सकते हैं। और छुरी के स्थान पर चाकू का। पिर भी पदबंधों के अभिधेय अर्थ में कोई अंतर नहीं आता। लेकिन यही बात मीठी छुरी पदबंध पर लागू नहीं होती।

इसमें मीठी छुरी के स्थान पर किसी भी समानार्थी शब्द को नहीं रखा जा सकता। अगर रखा जाएगा तो अभिप्रेत अर्थ में अंतर आ जाएगा। इसीलिए मीठी छुरी एक बद्ध पदबंध है। मुक्त पदबंधों और बद्ध पदबंधों में इनके अतर्गत संबंधों का अंतर भी परिलक्षित होता है। मुक्त पदबंधों में पदों का अर्थ मुख्यतः योगात्मक होता है अर्थात् संपूर्ण होता है। इनमें प्रत्येक पद की अर्थगत स्वतंत्रता होती है। बद्ध पदबंधों में यह बात नहीं होती। इनका अर्थ संपृक्त होता है। इसके पदो में अर्थगत स्वतंत्रता नहीं होती।

वाक्यों या वाक्यांशों में ये पदबंध उसी प्रकार प्रयुक्त होते हैं जैसे कोई अन्य कोशीय या शाब्दिक इकाई। इसलिए इनको कोश में स्थान देना चाहिए।

कहावतें

कहावतों के बहुत से अभिलक्षण बद्ध पदबंधों की तरह होते हैं। ये परंपरागत सूत्रबद्ध सूक्तियाँ होती हैं जिनके द्वारा लोक जीवन या जन जीवन की बुद्धिमत्ता या कुछ नैतिक उपदेश या कोई सार्वकालिक तथा सार्वजनिक सत्य प्रकट होता है। ये किसी समुदाय विशेष की समग्र बौद्धिकता और चिंतन की परिचायक होती है। इनके पदों में भी आपस में परिवर्तन नहीं किया जा सकता और न ही इनके बीच में किसी पद को रखा जा सकता है। ये मूलतः बद्ध पदबंधों पर आधारित होती हैं। लेकिन कहावतों में बहुत से ऐसे शब्द मिलते हैं जो साधारण भाषा में नहीं पाए जाते। इसके अतिरिक्त ये संस्कृति की वाहक होती है। बड़े कोशों में कहावतें दी जा सकती हैं।। वैसे कहावतों के लिए अलग स्वतंत्र कोश ही होते हैं।

20.6 कोशीय प्रविष्टि की संरचना

कोशीय शब्द की सबसे बड़ी विशेषता होती है रूप और अर्थ दोनों ही दृष्टियों से उसकी स्वतंत्रता या निजता। भाषा की वे ही इकाइयाँ कोशीय शब्द हो सकती हैं, जिनका अपना अलग अर्थ हो या अपनी पृथक संरचनात्मक विशेषता हो। जिन इकाइयों के रूप या अर्थ व्याकरण के द्वारा पूर्वानुमेय होते हैं, वे कोशीय शब्द नहीं हो सकते। इसीलिए कोश में

विकारी रूपों को नहीं दिया जाता केवल व्युत्पन्न रूपों को दिया जाता है। जैसे कोश में 'गाड़ी' तो देते हैं लेकिन 'गाड़ियाँ' और 'गाड़ियों' नहीं। लेकिन 'गाड़ीवाला' की प्रविष्टि होती है। इसके अतिरिक्त जब दो शब्दों या रूपों का योग ऐसा होता है कि उसका अर्थ स्वतंत्र और विशिष्ट हो जाता है तो उसे कोशीय शब्द या इकाई का दर्ज़ा मिल जाता है। जैसे चार, सौ और बीस अलग-अलग शब्द हैं लेकिन एक साथ पदबंध के रूप में (चार सौ बीस) प्रयुक्त होने पर इसका अलग स्वतंत्र अर्थ 'धाखेबाज' हो जाता है। इसलिए समासों, बहुशब्दीय इकाइयों को कोशीय इकाई या शब्द का दर्ज़ा मिलता है।

जैसे ऊपर कहा गया है कि कोई आवश्यकता नहीं कि कोशीय इकाई मुक्त रूप ही हों। बद्धरूप, कारकचिह्न, उपसर्ग और प्रत्यय भी कोशीय शब्द हो सकते हैं।

शीर्ष शब्द

इसे प्रविष्टि शब्द या प्रविष्टि इकाई भी कह सकते हैं। शीर्ष शब्द के कुछ अभिलक्षणों का ऊपर वर्णन किया जा चुका है। शीर्ष शब्द के चयन और निर्धारण के दो सबसे महत्वपूर्ण आधार हैं शब्दों का रूप और उनका अर्थ। इनके आधार पर ही शीर्ष शब्द का चयन किया जाता है। इसके निर्धारण के लिए कोशकार पैराडाइम पद्धति का आश्रय लेता है। किसी भी शब्द के सभी विकारी रूपों के योग को पैराडाइम कहते हैं।। इन रूपों में शब्द के व्याकरणिक अभिलक्षण की समानता और एकता होती है। इन रूपों में मूल अर्थ की भी प्रायः समानता रहती है। (उदाहरण : घोड़ा, घोड़े, घोड़ों, जाना, गया, जाऊँ इत्यादि)।
विहितरूप का निर्धारण के कुछ आधार नीचे दिए जा रहे हैं :

1) बहुधा (हमेशा नहीं) यह रूप अकेले घटित होने की रखता है।

2) इसकी आवृत्ति पैरांडाइम के सभी रूपों में सबसे अधिक होती।

3) इसमें पूरे पैराडाइम का प्रतिनिधि बनने की क्षमता होती है।

संस्कृत : अस्मद्, अहम्, वयम्, अवाम्, मम्, अस्माकम्।

प्रत्येक कोश में उनकी स्वतंत्र प्रविष्टि नहीं दी जाती है। लेकिन उसके साथ प्रति संदर्भ दिया रहता है। उदाहरण के लिए :

हिंदी : उस सर्वनाम विभक्तियों के साथ प्रयुक्त 'वह' शब्द का रूप
अंग्रेज़ी : We pronoun=pl. poss our, ours, obj. us nom pl. of।

यह तो रही शब्दों के रूप की बात। उसके साथ ही साथ उनके अर्थ को भी कोशकार को बड़ी सूक्ष्मता और सावधानी के साथ देखना चाहिए। यदि पैराडाइम के तमाम रूपों में किसी एक का भी अर्थ विहित रूप के अर्थ से भिन्न हो तो उस रूप को कोश में स्थान देना आवश्यक हो जाता है। उनको या तो विहित रूप के साथ शीर्ष शब्द की प्रविष्टि में ही दिया जाता है या फिर उनकी स्वतंत्र प्रविष्टि की जाती है। उदाहरण के लिए :

अंग्रेज़ी : Waters (often pl.) जलाशय
arms. n. (usually pl.) a weapon.

वर्तनी और उच्चारण

शीर्ष शब्द के बाद बहुधा उसका उच्चारण दिया रहता है। लेकिन उच्चारण का देना, न देना, कोश के प्रकार, भाषा की प्रकृति और उसके अभिलक्षणों पर आधारित होता है। अगर किसी भा में स्वनिम और लेखिम नें विशेष अंतर है तो उच्चारण का दिया जाना बड़ा ही आवश्यक है।

व्युत्पत्ति

बहुत से शब्दकोश प्रत्येक प्रविष्टि में पूरी व्युत्पत्ति देते हैं। कुछ कोशों में व्युत्पत्ति प्रविष्टि के अंत में दी जाती है। लेकिन बहुत से कोशा में उत्पत्ति संबंधी सूचना या संकेत दिया रहता है। इस संकेत के अंतर्गत कुछ कोशो में केवल शब्द की स्रोत भाषा का नाम दिया रहता है तो कुछ कोशों में स्रोत भाषा का नाम और उसमें स्रोत शब्द का स्वरूप दोनों ही दिए रहते हैं। उदाहरण :

घड़ी	स्त्री	(सं. घटी)
निबटना	अ.क्रि.	(सं. निवंत)
दीवाना	वि.	(फा. दीवान)
दौजख	पु.	(फा. दौजख)

व्याकरणिक सूचना

लिंग हिंदी में संरचना की दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है। शब्द के रूप और अर्थ के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि कोई शब्द किस लिंग का है। उपरितः हिंदी में लिंग व्याकरणिक होता है। कर्ता और क्रिया में लिंग का अन्विति होती है। इसलिए हिंदी कोश के लिए यह आवश्यक है कि उसमें शब्द के लिंग का निर्देश किया जाए। ऐसा नहीं करने से पाठक भयानक भूलें कर सकता है। कोशों में बहुधा क्रियाओं की सकर्मक और अकर्मक सूचनाएँ दी जाती हैं। सकर्मक क्रियाओं के लिए कर्म की आवश्यकता होती है, अकर्मक के लिए नहीं। इसलिए जब कोश में क्रियाओं के इस लक्षण का निर्देश दिया जाता है तो एक प्रकार से वाक्य संरचना की सूचना दी जाती है। इसी प्रकार कोशों में जब संज्ञा के साथ गणनीय और अगणनीय होने की सूचना दी जाती है तो इसका अर्थ होता है कि गणनीय संज्ञाओं के बहुवचन रूप होते हैं अगणनीय के नहीं।

कोशीय प्रविष्टि का दूसरा भाग कोशीय इकाई का अर्थपरक विवरण प्रस्तुत करता है। अर्थ के विभिन्न घटकों का, जो किसी भी शब्द के अर्थगन अभिलक्षणों को निर्धारित करते हैं, वर्णन ऊपर दिया जा चुका है। कोश का प्रमुख और केंद्रीय उद्देश्य होता है शब्द के अर्थ को यथासंभव अधिक से अधिक स्पष्ट और सटीक रूप से प्रस्तुत करना। इस स्पष्टता को देखाने के लिए कई उपकरणों का प्रयोग किया जाता है जिनमें प्रमुख निम्न हैं :

) शाब्दिक इकाई की परिभाषा या वर्णन (विवरण)

) समीकरण-शाब्दिक इकाई के समान अर्थवाली इकाई के साथ संयोजन

) व्युत्पत्ति

) उदाहरण

) चित्र

) नामांकन

) प्रतिसंदर्भ

किन कोश की प्रत्येक प्रकार की प्रविष्टि के लिए ऊपर लिखे समस्त उपकरणों का प्रयोग हीं किया जाता है। किसी एक शब्द के अर्थ के लिए ऊपर का एक ही घटक पयार्प्त होगा ब कि किसी अन्य शब्द के लिए एकाधिक उपकरणों का प्रयोग करना पड़ेगा। उदाहरण लिए, तकनीकी शब्दों के लिए उदाहरण देने की विशेष आवश्यकता नहीं होती। लेकिन हुअर्थक शब्द के लिए प्रत्येक मुख्यार्थ और गौण अर्थ के लिए उदाहरण का देना परम ावश्यक होता है। आगत शब्दों के लिए उनके स्रोत या व्युत्पत्ति का देना आवश्यक है। न शब्दों का प्रयोग सीमित होता है उनके लिए कुछ ऐसे निर्देश (नामांकन) देना ावश्यक है जो उस सीमा की प्रकृति को दिखा सकें। कुछ शब्दों का अर्थ मूल शब्द के र्थ के द्वारा दिया जाता है या फिर शब्द परिवार के साथ प्रति संदर्भ के द्वारा दिया जा कता है।

हिंदी : भेड़िया (पुं.) कुत्ते से कुछ बड़ा एक जंगली हिंसक पशु, जो झुंड बनाकर रहता है और बस्तियों से मुर्गियाँ, बतखें, छोटी छोटी भेंड़ बकरियाँ, नन्हें बच्चे आदि को उठाकर ले जाता है।

मुल्ला : (पुं.) (अ) मुसलमानी धर्मशास्त्र का आचार्य या विद्वान् मकतब में छोटे बच्चों को पढ़ाने वाला मुसलमान शिक्षक।

अंग्रेज़ी: Horse n. 1.a large, solid-hoofed quadruped, domesticated since prehistoric times and employed as a beast of draft and burden and for carrying a rider.

परिभाषा : शब्द के समस्त विभिन्न अर्थीय अभिलक्षणों का उसी भाषा में वाक्यों या वाक्यांशों में विवरण या अन्वय या व्याख्या की परिभाषा है। उदाहरण के लिए :

देखना : सं. किसी पदार्थ के रूप रंग, आकार-प्रकार आदि का ज्ञान या परिचय कराने के लिए उसकी ओर आँख करना।

शस्त्र : पुं. कोई ऐसी चीज़ जिससे लड़ाई-झगड़े या युद्ध के समय शत्रु पर प्रहार किया जाता है।

अंग्रेजी : merit-n. (1) Claim to commendation (2) some-thing that entitles to reward or commendation.

लेकिन भाषा के सभी शब्दों की परिभाषा के लिए मात्र भाषाई अर्थ ही पर्याप्त नहीं हुआ करते। बहुत से शब्दों के अर्थ के विकास में भाषा के बोलनेवालों की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, मिथकीय और लोक साहित्यिक परंपराओं का योगदान रहता है। ऐसे शब्दों की परिभाषा देते समय कोशकार को इन तमाम तथ्यों को अपनी दृष्टि में रखना होता है।

20.6.1 नामांकन

भाषा परिवर्तनशील होती है। समय के साथ उसमें रूपगत और अर्थगत परिवर्तन होते रहते हैं। भाषा की इस परिवर्तनशीलता का आभास सबसे पहले भाषा के शब्द भंडार के द्वारा होता है। शब्दों के रूप और अर्थ में निरंतर परिवर्तन होता रहता है। कुछ शब्द प्रचार में लुप्त हो जाते हैं। कुछ शब्दों के अर्थों में विस्तार आ जाता है। कुछ शब्दों का प्रयोग सिमटकर बहुत ही सीमित और विरल हो जाता है। इन शब्दों का प्रयोग या तो एक वर्ग विशेष में होने लगता है या विषय विशेष के लिए। यही बात बहुत से शब्दों के विभिन्न अर्थों पर भी लागू होती है। बहुअर्थक शब्द के कुछ अर्थों का प्रयोग एक विषय या वर्ग विशेष तक ही सीमित रह जाता है। चाहे वह वर्ग या विषय साहित्य, विज्ञान या परमाणु से संबद्ध हो या फिर चोरों और डकैतों के नितांत गोपनीय व्यावसायिक व्यवहार से अथवा स्कूल के विद्यार्थियों के वार्तालाप की संकेत भाषा (slang) से।

कालगत या शैलीगत भेदों के अतिरिक्त भाषा में अन्य प्रकार के भेद भी पाए जाते हैं। 'चार कोस पर पानी बदले आठ कोस पर बानी' के अनुसार भाषा में स्थानीय विकल्पण भी बहुत मिलते हैं। किसी क्षेत्र विशेष में एक शब्द का अर्थ एक होता है तो दूसरे में दूसरा। कुछ शब्द किसी क्षेत्र विशेष में ही प्रचलित और प्रयुक्त होते हैं दूसरे क्षेत्रों में नहीं। शब्दों के रूप में यह विकल्पण और भी अधिक परिलक्षित होता है। एक ही शब्द के कई रूप क्षेत्र विशेष में पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए :

भोजपुरी : मँगुर, मँगुरी, मडगुर = एक तरह की मछली
फजिर, फजिरे, फजीर = सुबह

कोशकार को भाषा के इन भेदों और प्रभेदों को अपने कोश में किसी न किसी प्रकार दिखलाना होता है। नहीं तो पाठक को शब्दों के प्रयोग में काफी असुविधा होती है और गलत प्रयोग के खतरे होते हैं। आवश्यक निर्देश नहीं होने से पाठक किसी सीमित प्रयोग वाले या अश्लील शब्द का सभ्य समाज में प्रयोग करके उपहास का भाजन बन जाता है।

अब प्रश्न है कि भाषा के इन विकल्पणपरक अभिलक्षणों का कोश में कैसे निरूपण किया जाएं। सामान्य कोश वैज्ञानिक परंपरा में इनकी नामांकन (labels) के द्वारा निरूपित किया जाता है। यह निरूपण निम्न प्रकार से किया जाता है :

1). **शब्दगत :** जब एक शब्द के भेद होते हैं तो सबसे प्रचलित शब्द को शीर्ष शब्द मान लेते हैं और बाकी को उसके साथ उसी पेटे या प्रविष्टि में देते हैं और उसकी क्षेत्रीय या शैलीगत विशेषता का निर्देश नामांकन के द्वारा कर देते हैं।। उदाहरण के लिए :

    सेवार : सेवाल
    लिलाट = लिलार (प्रांतीय प्रयोग)

2) **अर्थगत :** जब किसी भी शब्द का कोई एक अर्थ किसी विषय विशेष के लिए प्रयुक्त होता है तो उस अर्थ को नामांकन से निरूपित किया जाता है। उदाहरण, रस मन में उत्पन्न होने वाला वह भाव या आनंद जो काव्य पढ़ने अथवा अभिनय देखने से उत्पन्न होता है (साहित्य)।

नामांकन संक्षिप्तियाँ (abbreviation) होते हैं। वे मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं :

) **व्याकरणगत नामांकन (grammatical labels) :** ये नामांकन शब्द के व्याकरणगत अभिलक्षणों का निरूपण करते हैं।। कोश में व्याकरणगत सूचना की प्रकृति और प्रकार के विषय में ऊपर चर्चा की जा चुकी है। उदाहरण के लिए :

    सैर (पुं.)
    लीला (स्त्री)

) **विषय-सूचक नामांकन (subject labels) :** इनके द्वारा किसी भी शब्द विशेष या शब्द के अर्थ विषय विशेष में होने वाले प्रयोग को दिखाया जाता है। उदाहरण के लिए :

    (ध्वन्यात्मक काव्य) जिसमें व्यंग्य प्रधान हो।

) **स्तरीय नामांकन (status labels) :** इनके द्वारा शब्दों के कालक्रमिक, स्थानीय, शैलीपरक और अन्य भेदों को दिखाया जाता है। कोश में हम जब नामांकन की चर्चा करते हैं तो उसका तात्पर्य बहुधा इसी नामांकन से है। कोश कार्य के लिए इन नामांकनों का बहुत ही महत्व रहता है। उदाहरण का लिए :

    ताता (ग्राम्य प्रयोग) = तप्त
    करमठ (पुरातन, प्रांतीय) = कर्मठ

मांकन किस प्रकार वैज्ञानिक और सटीक हों इसके विषय में कोशकार को सावधान ्ना चाहिए और पूरी कोशिश करनी चाहिए कि शब्दों के अधिक से अधिक स्तरीय भेदों ा निरूपण हो सके। इसके लिए कोशकार को उस भाषा के शैलीविज्ञान, समाज विज्ञान ादि के अध्ययनों से सहायता मिलती है। कालक्रमिक भेदों का निरूपण करने के लिए तेहासिक भाषा विज्ञान की सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त व्युत्पत्ति शास्त्र से भी ्रति दिशा निर्देश मिलता है।

20.7.2 प्रति संदर्भ

कोश को संक्षिप्त करने और उसकी प्रतिविष्टियों की और भी अधिक व्यवस्थित, गहन और वैज्ञानिक रूप देने के लिए कोशकार दो तरीके अपनाता है।

1) **प्रविष्टियों का संक्षिप्तीकरण :** यह संक्षिप्तीकरण अंतर्वेश (resting) के द्वारा होता है जिसमें रूप या अर्थ की दृष्टि से संबंधित शब्दों को एक प्रविष्टि के अंतर्गत एक ही पेटे में दिखाया जाता है। इसके संबंध में पहले चर्चा की जा चुकी है।

2) **प्रति संदर्भ :** इसके द्वारा रूप और अर्थ की समान विशिष्टता वाली प्रविष्टियों को एक दूसरे के द्वारा संदर्भित किया जाता है। दूसरे शब्दों में जब किन्हीं भी दो शब्दों (शीर्ष शब्दों) के रूप या अर्थ में कुछ ऐसे अभिलक्षण होते हैं जो समान होते हैं और उनके संबंधों को और स्पष्ट करते हैं तो एक शब्द को प्रविष्टि में दूसरे शब्द की प्रविष्टि को देखने का निर्देश दिया जाता है। उससे पाठक दूसरी प्रविष्टि में कुछ अतिरिक्त सूचना पाता है।

प्रतिसंदर्भ दो प्रकार के होते हैं :

1) **सीधा या प्रत्यक्ष प्रति संदर्भ :** इसके द्वारा एक प्रविष्टि में दूसरी प्रविष्टि को देखने का इंगित रहता है – इसको इंगित करने के लिए कई प्रकार के शब्द प्रयुक्त होते हैं यथा, देखिए कुछ कोशों में शब्द के साथ = चिह्न लगाकर प्रति संदर्भ दिखाया जाता है।

उदाहरण : तिधर-क्रि. वि. दे. उधर
पीतम-वि. दे. प्रियतम

इसके अतिरिक्त कछ अन्य शब्दों का भी प्रयोग होता है। जैसे तुलनीय। इसके द्वारा उन प्रविष्टियों को संदर्भित करते हैं जिनके रूप और अर्थ के जानने से किसी शब्द के आर्थी संबंधों व अभिलक्षणों अथवा प्रयोगपरक लक्षणों को समझने में विशेष और अतिरिक्त सहायता मिलती है। इसके द्वारा कुछ अतिरिक्त सूचना मिलती हैं। उदाहरण के लिए :

राजि (स्त्री) राई. दे. सरसों

2) **अप्रत्यक्ष या तिर्यक प्रति संबंध :** इस संदर्भ को हम स्पष्ट रूप से देख नहीं पाते। इसमें एक प्रविष्टि में दूसरी प्रविष्टि को देखने का स्पष्ट संकेत या निर्देश नहीं होता। इसमें एक प्रविष्टि के शीर्ष शब्द का प्रयोग दूसरे शब्द को परिभाषित करने के लिए किया जाता है। नीचे लिखे उदाहरणों के द्वारा इसको और भी स्पष्ट किया जा सकता है :

पीटना - क्रि. सं.	चोट पहुँचाना।
बेसन - पु.	चने की दाल का आटा
यंत्रशाला - स्त्री.	वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार के यंत्र हो
चौताल - पुं.	मृदंग का एक ताल।
अरबी - स्त्री.	एक प्रकार का कंद जो तरकारी के रूप में खाया जाता है।

इन उदाहरणों में रेखांकित शब्दकोश की प्रविष्टियाँ होती हैं और उनके द्वारा शब्द की परिभाषा दी जाती है। अगर इस परिभाषा में उस शब्द को समझने में कोई कठिनाई होती है तो पाठक उस शब्द विशेष की संबंधित प्रविष्टि को देखकर इस कठिनाई को दूर कर सकता है। इस प्रकार के संदर्भ समभावी – एक भाषी कोशों में सर्वत्र मिलते हैं।

कोश से प्रति संदर्भ का प्रयोग अनेक सूचनाओं को देने के लिए किया जाता है और उसके, प्रयोग जिनका वर्णन नीचे दिया जा रहा है :

1) **विकल्पन :** जब किसी शब्द के कई भेद, रूप या विकल्पन होते हैं तो उनमें से सबसे अधिक प्रचलित रूप या मानक रूप को शीर्षशब्द के रूप में दिया जाता है और विकल्पन के रूप को बहुधा उसके साथ उसी प्रविष्टि में दे दिया जाता है। कभी-कभी उसको अलग देने की परंपरा भी है। फिर ये विकल्पन जब अकारादि क्रम में आते हैं तो वहाँ विवेचित प्रविष्टि का प्रति संदर्भ दे दिया जाता है — उदाहरण के लिए :

बाती	-	स्त्री. दे. बत्ती
वधू	-	स्त्री. दे. वधू
नाऊ	-	प्र. - दे. नाई
सेमई	-	सेंवई - स्त्री. दे. सेवईं
ज़ुल्लाब	-	पु. जुलाब
दिवाली	-	स्त्री. दीवाली

2) जब किसी शब्द की रूपावली में कोई रूप केनोनिकल रूप से भिन्न होता है तो उसको केनोनिकल रूप के साथ उसी प्रविष्टि में दे दिया जाता है और उस भिन्न रूप के अकारादि क्रम में अपने स्थान पर आने पर पहली प्रविष्टि का प्रति संदर्भ कर दिया जाता है। इसके अंतर्गत बहुधा व्याकरणगत अपवाद रूपों को दिखाया जाता है। इसके अतिरिक्त जिन शब्दों के अर्थों में भी कोई भिन्नता होती है उनको भी प्रतिसंदर्भ के द्वारा दिखाया जाता है। उदाहरण के लिए :

जाना अ.	
गया अ.	जाना का भूतकालिक रूप
हम - सर्व.	उत्तर पुरुष, बहुवचन, सर्वनाम 'मैं' का बहुवचन का रूप

3) आर्थी रूप से परस्पर संबधित शब्दों की परिभाषा के लिए प्रति संदर्भ का प्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है। इसके द्वारा उस शब्द के अर्थ को और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। इसके अलावा उसके अन्य आर्थी अभिलक्षण भी प्रकाश में आ जाते हैं और शब्द के आर्थी संबंधों का अधिक स्पष्टता से द्योतन होता है।

4) जब परिभाषा के लिए पर्यायवाची और विपरीतार्थक शब्द का प्रयोग किया जाता है तो वह भी एक प्रकार का प्रति संदर्भ ही होता है। उदाहरण के लिए :

हिंदी : आड़ा वि. देखने वाले के दाहिने से बाँये या बाँये से दाहिने गया हुआ। खड़ा या सीधा का विपर्याय।

छापा पु. धातु अथवा लकड़ी का वह टुकड़ा जिस पर फूल पत्ती आदि खुदी रहती है और जिस पर रंग या स्याही लगाकर इसकी छाप किसी तल पर लगाई जाती है। ठप्पा

5) बोली के रूपों के अर्थ की स्पष्टता के लिए मानक रूपों से प्रति :

कहरना	-	क्रि. अ. कराहना
चौपत	-	स्त्री. कपड़े की तह
मूँजना	-	क्रि. सं. मूनना
ओदारना	-	क्रि. सं. विदीर्ण होना
पजामा	-	पुं. पाजामा
नोना	-	वि. नमकीन
नोहर	-	वि. दुर्लभ

6) आर्ष और प्रचार लुप्त शब्दों की परिभाषा के लिए सामाजिक प्रचलित शब्दों को प्रति संदर्भ के रूप में दिया जाता है :

चेर, चेरा	-	पु. 1. नौकर, सेवक, 2. चेला
जतन	-	पु. यत्न

20.7 सारांश

हम सबको नियमित रूप से कोशों का उपयोग करना होता है, यह आधुनिक बहुभाषी समाज की माँग है। लेकिन हममें बहुत से लोग यह नहीं जानते कि कितने प्रकार के कोश हैं और उनमें किस प्रकार की सूचनाएँ मिल सकती हैं। अगर किसी शब्द को देखकर हम यह जानना चाहते हैं कि वह शब्द मूलतः किस भाषा का है या उस शब्द का हमारे जनजीवन में कोई सांस्कृतिक महत्व है या नहीं तो हमे यह निश्चित करना होगा कि यह सूचना कहाँ से प्राप्त होगी। व्युत्पत्ति कोश शब्दों के स्रोत की सूचना देते हैं जबकि आवश्यकता के हिसाब से अलग-अलग कोशों में यह जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

शब्द कोश में प्रविष्टियाँ होती हैं और ये प्रविष्टियाँ आमतौर पर अकारादि क्रम में होती हैं। हम शब्द को अकारादि क्रम से ढूँढ़ सकते हैं। लेकिन प्रविष्टियाँ कैसी होती हैं इसकी जानकारी भी शब्द कोश देखने के लिए आवश्यक है। कुछ कोश केवल मूल शब्द देते हैं जबकि बड़े आकार के कोश सभी प्रकार के प्रत्यय उपसर्ग को भी प्रविष्टि के रूप में देते हैं।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको कोश निर्माण से संबंधित सामान्य जानकारी मिलेगी जिससे आप कोशों का सही उपयोग कर सकेंगे। लेकिन अगर आपने कोश बनाने संबंधी अभिरुचि है तो आप इस आधार पर यह भी देख सकते हैं कि किन क्षेत्रों में और कैसे आप यह काम कर सकते हैं।

20.8 अभ्यास प्रश्न

1. **निबंधात्मक प्रश्न**
   - (1) कोश विज्ञान को अनुप्रयोग भाषाविज्ञान की शाखा किस आधार पर कहा जा सकता है।
   - (2) कोश कितने प्रकार के होते हैं।
   - (3) कोश निर्माण की प्रक्रिया समझाइए।

2. **टिप्पणियाँ**
   - (1) कोश की प्रविष्टि
   - (2) विश्व कोश
   - (3) कोश में नामांकन और प्रति संदर्भ
   - (4) कोश बनाने से पूर्व की तैयारी

इस खंड के लिए उपयोगी संदर्भ ग्रंथ

1. मनोरमा गुप्त (सं.) (1987) : *मनोभाषाविज्ञान,* केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।
2. अमर बहादुर सिंह (सं.) (1983) : *अन्य भाषा शिक्षण के कुछ पक्ष,* केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।
3. रवींद्रनाथ श्रीवास्तव एवं कृष्णकुमार गोस्वामी (1985) : *अनुवाद सिद्धांत और समस्याएँ,* आलेख प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. *स्नातकोत्तर अनुवाद डिप्लोमा* की सामग्री, इग्नू, नई दिल्ली।
5. कृष्ण कुमार गोस्वामी (1996) : *शैलीविज्ञान की रूपरेखा,* संघी प्रकाशन, जयपुर।
6. मनोरमा गुप्त (सं.) (1984) : *कोशविज्ञान,* केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।
7. Lado, Robert (1957) : *Language Teaching : A Scientific approach*, McGraw Hill, New York.
8. S. Pit Corder (1973) : *Inroducing Applied Linguistics*, Penguin.
9. Green, Judith (1972) : *Psycholinguistics (Chomsky and Psychology)*, Penguin.